तिरि भगवंत भूदबति भंडारय पणीदौ

45061

त्तियो अणुभागवंशारिकारी [तृतीय अनुभागंदन्याधिकार]

पुस्तक र



भारतीय ज्ञानवीठ

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

[महाधवल सिद्धान्त-शास्त्र]

तदियो अणुभागबंधाहियारो

[तृतीय अनुभागबन्धाधिकार]

पुस्तक ५

सम्पादन-अनुवाद

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री



भारतीय ज्ञानपीठ

द्वितीय संस्करण : १६६६ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ६, वीर नि. सं. २४७०, विक्रम सं. २०००, १८ फरवरी, १६४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित एवं जनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमृती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तिमल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

> ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम संस्करण) डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक : आर.के. ऑफसेट, दिल्ली-११० ०३२

© भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

MAHĀBANDHO

Third Part: Anubhāga-bandhādhikāra | of Bhagavān Bhūtabalī

Vol. V

Editor and Translated by

Pt. Phoolchandra Siddhantashastri



BHARATIYA JNANPITH

Second Edition: 1999 ☐ Price: Rs. 140.00

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N. Sam. 2470 🗆 Vikrama Sam. 2000 🗀 18th Feb. 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt. Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt. Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc., are being published in the respective languages with their translations in modern languages.

Also

being published are catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies, art and architecture by competent scholars, and also popular Jain literature.

General Editors (First Edition)

Dr. Hiralal Jain & Dr. A.N. Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at: R.K. Offset, Delhi-110032

O All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

प्रशस्ति

जितचेतोजातनुर्वीश्वरमकुटतटोदुघुष्टपादारविन्द-द्वितयं वाक्कामिनीपीवरक्चकलशालङ्कृतोदारहार-। प्रतिमं दुर्दौरसंसृत्यतुलविपिनदावानलं माघनन्दि-व्रतिनायं शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशो राजिताशान्तकान्तम् ॥१॥ भावभवविजयिवरवाग्देवीमुखदर्पणनान-मुनावनिपालकनेसेदनिलाविश्नुतिकत्ते माघनन्दिमुनीन्द्रम् ॥२॥ वरराद्धान्ताम्भोनिधितरलतरङ्गोत्करक्षालितान्तः-करणं श्रीमेघचन्द्रव्रतिपतिपदपङ्केरुहासक्तषट्-। चरणं तीव्रप्रतापोधृतविततबसोपेतपुष्पेषु भृत्सं-हरणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेकळ्दं माधनन्दिवृतीन्द्रम् ॥३॥ महनीयगुणनिधानं सहजोन्नतबुद्धिविनयनिधियेने नेगळुदम्। महिविनुतिकन्ते कित्तितमहिमानं मानिताभिमानं सेनम् ॥४॥ विनयद शीलदोळ् गुणदगाळिय पेंपिनपृह्विजमनो-जनरति रूपिनोळ्पनिळिसिर्द-मनोहरमप्पुदोन्दु रू-। पिन मने दानदागरमेनिष्य वधुत्तमेयप्य सन्दसे-नन सति मल्लिकव्वेगे धरित्रियोळारु दोरे सदगुणङ्गळिम् ॥५॥ सकलघरित्रीविन्तप्रकटितधीयसे मल्लिकव्वे बरेसि सत्पु-ण्याकरमहाबन्धद पुस्तकं श्रीमाधनन्दिमुनिगळिगित्तळ ॥६॥

—जिन्होंने मन्मथ को जीत लिया है, जिनके दोनों पादकमलों को राजाओं के मुकुट के अग्रभाग चूमते हैं, जो सरस्वती के पीवर स्तनकलशों से अलंकृत मनोहर हार के समान हैं, जो दुर्निवार संसाररूपी विपुल कानन के लिए दावानलस्वरूप हैं, ऐसे माधनन्दिव्रतिपति शरत्कालीन मेघ के समान दिगन्तव्याप्त उज्ज्वल यश से विराजमान हैं ॥१॥

मन्मथिवजयी, सरस्वती-भुख के लिए दर्पणरूप और पृथ्वीविश्रुतिकीर्ति माघनन्दि मुनीन्द्र पृथ्वीपालक हैं ॥२॥ जो श्रेष्ठ सिद्धान्तरूपी समुद्र की तरल तरंगों से प्रक्षालित अन्तःकरणवाला है, जो श्री मेघचन्द्र व्रतिपति के पादकमलों में आसक्त भ्रमर के समान है, जो तीव्र प्रतापी है, जिसने अपने विपुलबल से मन्मथ को जीत लिया है ऐसा माघनन्दि व्रतीन्द्र सैद्धान्तिकाग्रेसर के नाम से प्रख्यात था ॥३॥

जो महनीय गुणों का आकर है, जो सहज और उन्नत बुद्धि तथा विनय का निधिस्वरूप है, पृथिवी में जिसकी कीर्ति वन्दनीय है, जिसकी महिमा विख्यात है और जिसका मान-सम्मान है वह सेन प्रसिद्ध है ॥४॥

पृथ्वी में सद्गुणों में विनययुक्त, शीलवती, रित के समान मनोहर रूपवती और दानशूर ऐसी सन्दसेन की भार्या मल्लिकव्वे के समान कौन है ॥५॥

सकल पृथ्वीमण्डल द्वारा विनुत तथा प्रख्यातबुद्धि और यशवाली मल्लिकव्ये ने पुण्याकर महाबन्ध पुस्तक लिखवाकर माघनन्दि मुनीन्द्र को भेंट की ॥६॥

यह प्रशस्ति अनुभागबन्ध के अन्त में उपलब्ध होती है। स्थितिबन्ध के अन्त में भी एक प्रशस्ति आयी है। गुणभद्रसूरि के उल्लेख को छोड़कर इस प्रशस्ति में वही बात कही गयी है जिसका निर्देश स्थितिबन्ध के अन्त में पाई जानेवाली प्रशस्ति में किया गया है। मात्र इसमें मेघचन्द्र व्रतपित का विशेष रूप से उल्लेख किया है और माघनन्दि व्रतपित को इनके पादकमलों में आसक्त बतलाया है।

विषय-सूची

सन्निकर्षप्ररूपणा	9	92	भुजगारबन्ध	२३€	३२५
सन्निकर्ष के दो भेद		٩	- अर्थपद	२३€	२४०
स्वस्थान सन्निकर्ष	9	ξ τ,	समुत्कीर्तना	२४०	२४१
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	ą	२७	स्वामित्व	२४१	२४४
जघन्य सन्निकर्ष	२७	ξţ	काल		२४४
परस्थान सन्निकर्ष	६८	१२६	अन्तर	૨૪૯	२७६
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	६८	€३	भंगविचय	२७६	२७८
जघन्य सन्निकर्ष	€३	१२६	भागाभाग	२७८	9૬
भंगविचयप्ररूपणा	१२६	૧ર€	परिमाण	રે હ€	२८३
उल्कृष्ट	१२६	१२७	क्षेत्र	२⊏३	२८५
जधन्य	१२८	१२€	स्पर्शन	२८६	Зо€
भागाभागप्ररूपणा	१ २€	939	काल	₹०€	३ १२
उत्कृष्ट	१२€	१३०	अन्तर	392	३१७
जघन्य	930	939	भाव	३१७	39⊂
परिमाणप्ररूपणा	939	१४२	अल्पबहुत्व	३१८	३२५
उत्कृष्ट	939	ঀঽড়	पदनिक्षेप	इ२४	३५€
जघन्य	930	१४२	समुत्कीर्तना		३२५
क्षेत्रप्ररूपणा	982	959	दो भेद		३२५
उत्कृष्ट	१४२	१४६	उत्कृष्ट		३२५
जघन्य	१४६	949	ज ्ञधन ्य		324
स्पर्शनप्ररूपणा	949	299	स्वामित्व दो भेद	३२४	344
उत्कृष्ट	ዓ ሂ ዓ	१८२		2014	37¥
जघन्य	१⊏२	૨ ૧૧	उत्कृष्ट जघन्य	३ २५	380
कालप्ररूपणा	२ ११	२१६	अत्प ब हुत्व	380	₹ १ १
उत्कृष्ट	299	२१४	दो भेद	348	३ ५€ ३ २६
जघन्य	२१४	२१६	उत्कृष्ट	3 50	₹ ५ €
अन्तरप्ररूपणा	२१६	२१€	जघन्य	3 ₹@	302
उत्कृष्ट	२१६	২৭৩	वृद्धि	₹ <u>₹</u>	305
जघन्य	२१८	ર૧૬	समुत्कीर्तना समुत्कीर्तना	₹₹	369
भावप्ररूपणा		२२०	स्वामित्व	16.7	269
अल्पबहुत्वप्ररूपणा	२२०	२३€	काल		३६ १
अल्पबहुत्व के दो भेद		२२०	अन्तर		3६२
स्वस्थान अल्पबहुत्व	२२०	२२८	भंगविचय		363
उत्कृष्ट	२२०	२२४	भागाभाग	3£3	३६४
जघन्य	२२४	२२८	परिमाण		३६४
परस्थान अल्पबहुत्व	२२८	२३€	क्षेत्र		३६४
<i>ઉત્</i> કૃષ્ટ	२२८	२३३	स्पर्शन	३६५	३६६
जघन्य	२३३	२३€	काल	३६७	३६⊏
		•			

अन्तर	રૂદ્£	२७०	श्रेणिप्ररूपणा	₹ <i>⊏</i> ७	३ς€
भाव		१७६	दो भेद		३८७
अल्पबहुत्य	३७१	३७२	अनन्तरोपनिधा	३ ८७	⊋⊏⊏
अध्यवसानसमुदाहार	३७२	४१३	परम्परोपनिधा	३८८	₹c.€
तीन भेद		३७२	अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान	3८€	3€?
प्रकृतिसमुदाहार	३७३	३८६	दो भेद	•	3€0
दो भेद		३७३	अनन्तरोपनिधा	3 €¢	3€9
प्रमाणानुगम		३७३	परम्परोपनिधा	3€9	३ €२
अल्पबहुत्व	इ७३	३८६	•	₹51	843
दो भेद		इ७इ	तीव्रमन्दता	• • •	
स्वस्थान अल्पबहुत्व	३७३	३७७	अनुकृष्टि -	३€ २	३६⊏
परस्थान अल्पबहुत्व	७७६	३ᢏ३	तीव्रमन्द	३⋲⋲	४१३
स्थितिसमुदाहार	またの	રૂદર	जीवसमुदाहार	843.	४१५
दो भेद		३८७			
प्रमाणानुगम	३८७				

सिरिभगवंतभूदबलिभडारयपणीदो सहाबंधो

तदियो अणुभागवंधाहियारो १५ सरिणयासपरूवणा

१. सण्णियासं दुविहं-सत्थाणं परत्थाणं च । सत्थाणं दुवि०--जह० उक्क० । उक्कम्सए पगदं । दुवि०--आये आदे० । ओये० आभिणिबोधियणाणावरणस्स उक्कस्सयं अणुभागं वंश्वंतो चदुंणाणावरणीयं णियमा वंश्वगो तं तु उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छहाणपदिदं वंधिद् अणंतभागहीणं वा ५ । एवमण्णाणं । णिद्दाणिशए उक्क० वं० अहदंस० णियमा वं० । तं तु छहाणपदिदं वंधिद् । एवमण्ण-मण्णाणं । साद० उ० वं० असाद० अवंधिमा । असाद० उ० वं० साद० अवंधि० । एवं आउ-गोदं पि ।

१५ सन्निकर्पमरूपणा

 सिन्नकर्प दो प्रकारका है—स्वस्थान सिन्नकर्प और परस्थान सिन्नकर्प। स्वस्थान सिन्नकर्प दो प्रकारका है--जबन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी व्यपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है---श्रोच श्रीर श्रादेश । श्रोचसे श्रासिनिबोधिकज्ञातात्ररण्के उत्स्रष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञातावरएका नियमसे बन्ध करना है। किन्तु वह इनके उरछप्ट अनुभागक। भी यन्य करता है और अनुतकृष्ट अनुसागका भी बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुसागका बन्ध करता है,तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धकी अपेद्धा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । या तो अनन्तभागहीन अनुभागका बन्ध करता है या श्रसंख्यात भागहीन या संख्यात-भागहीन या संख्यातगुण्हीन या ऋसंख्यातगुण्हीन या अनन्तगुण्हीन अनुभागका बन्ध करता है। पाँचों ज्ञानावरर्णोका इसी प्रकार परस्पर सन्निकर्प ज्ञानना चाहिए। निद्रानिद्रांक उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव ऋाठ दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है, किन्तु वह इनके उत्कृष्ट श्रमुभाग का भी बन्ध करता है। खौर ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागका भी। यदि छनुत्कृष्ट - छनुभागका वन्ध करता है। तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुस्कृष्ट अनुभागका वन्य करता है । सब दर्शनावरर्खोका परस्पर इसी प्रकार सन्निकर्प जानना चाहिए । लातावेदनीयके उस्क्रप्ट **अनुभागक। वन्य करने**वाला जीव स्रासाताबेदनीयका बन्य नहीं करता है । ऋसाताबेदनीयके उस्क्रप्ट श्रतुभागका बन्ध करनेवाला जीव साताबेदनीयका वन्ध नहीं करता है। इसी प्रकार आयु और गोत्र कर्मके विषयमें भी जानना चाहिए।

ता० प्रतौ ऋसुभागा (गं) चदु- इति पाठः ।

- २. मिच्छ० उ० बं० सोलसक० णवुंस-अरिद-सोग-भय०-दु० णिय० बं० ।
 तं तु छहाण० । एवं सोलसक०-पंचणोक० । इत्थि० उ० बं० मिच्छ०-सोलसक०अरिद-सोग०-भय०-दु० णि० बं० अणंतगुणहीणं वं० । एवं पुरिस० । इस्स० उक०
 बं० मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु० णियमा बं० अणंतगुणहीणं वं० । इत्थि०-णवुंस०
 सिया बं० सिया अवं० । यदि बं० णि० अणु० अणंतगुणहीणं । रिद० णिय० तंतु० ।
 एवं रदीए० ।
- ३. णिरयगदि० उ० वं० पंचिदि०-वेषव्व०-तेजा०-क०-वेषव्व० ऋंगो०-पसत्थ० ४--अगु०३-तस०४--णिमि० णि० वं० अणंतगुणहीणं वं०ै। हुंड०-अप्पसत्थ०४-- शिरयाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिञ्च० णि० वं०। तं तु० छहाणपदिदं। एवं णिरयाणु० ।
- २. मिथ्यात्वके उत्क्रष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सोलह कपाय, नपुंसकवेद, श्ररति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह उनके उत्कृष्ट अनुभाग बन्धकी अपेचा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार सोलह कवाय और पाँच नोकवायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्रीवेदके उत्कृष्ट अनुसागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कवाय, अरित, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट श्रतुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय श्रीर जुगुप्साक। नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुऐ हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है श्रीर कदाचित् नहीं बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो नियमसे इनके अनन्तगुर्ण हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। रितका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उसके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रानुतकृष्ट श्रानुभागका बन्ध करता है,तो वह उसके उत्कृष्ट श्रानुभाग वन्धकी श्चपेता छह स्थान पतित अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।
- 3. नरकगितके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चोन्द्रिय जाति, वैकियिक श्रार्ति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु तीन, अस्यतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह इनके उत्कृष्ट अनुभागका अपेक्षा छह स्थान पतित अनुतुकृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१ ता०-श्रा॰प्रत्योः 'रदि० शिय०' इत श्रारभ्य 'शिमि० शि० ०० श्रग्तंतगुण्हीर्गं ००' इति यावत्। पाठस्य पुनरावृत्तिः।

- ४. तिरिक्सगिद् उ० वं० एइंदि०-अप्पसत्थिव ०-थावर-दुस्सर सिया तं तु० छडाणपिद्दं वं० । पंचिदि०-ओरालि० ऋंगो०-असंपत्त-आदाउज्जो०-तस० सिया अणंत-गुणहीणं वं० । ओरालिय०-तेजा०-स०-पसत्थ०४ अगु०३ बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । हुंड०-अप्पसत्थ०४ तिरिक्खाणु०-उप०-अथिराद्गिंच णिय० तं तु० छडाणपिद्दं० । एवं तिरिक्खाणु० ।
- ४. मणुसग० उ० वं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थवण्ण ४-अगु०४-पसत्थ०-तम०-४-थिरादिञ्च०-णिमि० णिय० अग्रांतगुणहीगां०। ओरालि०-ओरालि०त्रंगो०-वज्जिरिस०-मणुसाणु० णिय० वं० तं तु० छहाणपदिदं०। तित्थे० सिया० अणंतगुण० वं०। एवं ओरालि०-ओरालि०श्रंगो०-वज्जिर०-मणुसाणु०।
 - ६. देवगदि० उ० वं० पंचिदि०-वेजिव०-तेजा०-क०-समचदु०-वेजिवय-
- 8. तिर्यश्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है वो वह अगेर अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यश्च त्वर्क अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा छह स्थान पतित अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। पश्च न्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, असम्प्रातास्ट्रपाटिका संहनन, आतप, उद्योत और प्रसका कदाचित् वन्ध करता है और कदाचित् नहीं वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह इनके अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह इनके अपने उत्कृष्ट वन्धकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीन अनुकृष्ट अनुभागका नियमसे बन्ध करता है जो उनके अपने उत्कृष्ट वन्धकी अपेक्षा अनन्तगुणे हीन अनुकृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उनके उत्कृष्ट अनुभागका मध्य करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो अनुकृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागक वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागक वन्ध करता है तो उत्कृष्ट वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागक वन्ध करता वन
- प. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए बन्ध करता है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वअर्थभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनके उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। विधे हुए बन्ध करता है। तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है तो उसका यह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है और कहाचिन् नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार अर्थान् मनुष्यगतिके समान अोदारिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वअर्थभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।
 - ६. देशगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पत्रचेन्द्रिय जाति, वैकियिक शरीर,
- १. ता॰ म्रा॰ प्रत्यो॰ एइंदि॰ अप्यसत्य॰ अप्यसत्यवि॰ इति पाठः । २. आ॰प्रतौ पदिदं॰। आहारदुर्ग तित्य॰ इति पाठः।

त्रांगों ०-पसत्य ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्य ०-तस०४-थिरादिपंच ०-णिमि० णिय० बं० | तं तु० छहाणपदिदं | आहारदुग-तित्य ० सिया० | तं तु० छहाणपदिदं० | अप्प-सत्य ०४-उप ०-जस० णिय० अणंतगुणहीणं० | एत्रमेदाओ पसत्थाओ ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु० ।

७. एइंदि० उ० वं० तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्थ०४ - तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच णिय० । तं तु० ब्रहाणपदिदं० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४ - अगु०३ - बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अगंतगुणहीणं० । आदाखज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं० । एवं थावर० । वीइंदि०, उ० बं० तिरिक्खग०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि० अंगो०-पसत्थापसत्थ०४ - तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०- तस०-बादर-

तैजस शरीर, कामैण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रिथिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरूलघुनिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्कृष्ट अनुमागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। आहारक द्विक और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है आर कदाचित् बन्ध नहीं करता। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो उसका वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। अपशस्त वर्ण चतुष्क, उपवात और यशक्कीर्तिका नियमसे अनन्तगुणी हानिको लिये हुए अनुत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अनुभागका परस्पर अनुसाग बन्ध उत्कृष्ट भी करता है। अपशस्त परस्पर अनुसाग बन्ध उत्कृष्ट भी करता है। और अनुत्कृष्ट भी। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है तो उनका वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए अनुभाग बन्ध करता है।

७. एकेन्द्रिय जातिके उत्हृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव विर्यव्चाति, हुण्डसंस्थान, श्रवशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यव्चात्वानुपूर्वी, उपघात, स्थावर श्रौर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उत्हृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। श्रीदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रमुक्तवुत्रिक, बादर, पर्यात, प्रत्येक श्रौर निर्माणका नियमसे श्रनन्तगुणा हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। श्रातप श्रौर उग्रोतका कदाचिन् वन्ध करता है श्रौर कदाचिन् नहीं बन्ध करता है। श्रातप श्रौर उग्रोतका कदाचिन् श्रमुक्तुष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता वीव तिर्यव्याति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चनुष्क, श्राप्तस्त वर्ण चनुष्क, तिर्यव्यगत्यानुपूर्वी, श्रमुक्तवु, उपवात, त्रस, वादर, श्रपर्यात, प्रत्येक, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रौर निर्माणका नियमसे श्रमन्तगुणा हीन श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है। श्रसम्प्राप्तास्पाटिका संहननका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह दरकृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है या श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह दरकृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है या श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका

१, ता०-स्त्रा०प्रत्योः समचदु० श्रन्थसम्यवि• श्रंगो• इति पाठः।

अपज्ज०-पत्ते ०-अधिरादिषंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं | [असंप० णि० तं तु०] । एवं तेईदि० चढुरिंदि० /

- =. पागोद० उ० वं० तिरिक्खग०-मणुसग०-चदुसंघ०-दोआणु०-उज्जो० सिया अणंतग्रुणहीणं वं०|पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ख्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४— अगु०४-[अ—] पसत्थ०-तस०४-अथिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतग्रुणहीणं। एवं सादि० | णवरि तिण्णिसंघ० |
- ह. खुज्ज० उ० अणु० वं० तिश्विस्व०पंचिद्दि०-ओरास्टि०-तेजा०-क०-ओरास्टि०ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४—ितिश्विस्वाणु०-अग्र०४—[अ─] पसत्थ०-तस०४— अथिरादिञ्च०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। दोसंघ०-उज्जो० सिया० अणंतगु०। एवं वामणसंठा०। णवरि एयसंघ० -उज्जो० सिया अणंतगु०।
- १०. हुंड० उ० वं० णिरय-तिरिक्खग०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ-विहा०-[थावर०]-दुस्सर०सिया०।तंतु० छडाणपदिदं०। पंचिदि०-ओरास्ठि०-वंउव्वि०-दोद्यंगो०-आदाव०-तस० सिया० अणंतगु०। तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०३-

भी बन्ध करता है। यदि ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्व जानना चाहिए।

- द. नयमोध संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यव्यवित, सनुष्यगित, वार संहनन, दो आनुतूर्वी और उदातका कदाचित् अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। पव्येन्द्रिय जाति, औदारिक शारीर, तैजस शारीर, कार्मण शारीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त विहायोगिति, जसचतुष्क, अस्थिर आदि छह और निर्णालका नियमसे अनन्तगुणाहीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार स्वाति संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके तीन संहनन कहने चाहिए।
- 8. कुन्तक संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका यन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक रारीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गागल्ला, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, त्रियंक्रगत्यालुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विद्यायोगिति, त्रसचतुष्क अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियनते अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुमागका वन्ध करता है। दो संहनन श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। जो श्रानन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। इसी प्रकार वामन संस्थानकी मुख्यताने सन्निकर्य जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वह एक संहनन और उद्योतका कदाचित् अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है।
- १०. हुण्ड संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सरकगित, तियैश्चगित, एकेन्द्रिय जाति, असंप्राप्तास्पाटिका संहतन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, और दुःस्वरका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है । विविद्याति, औदारिक नो वह इनका छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। पेचेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, वैकियिकशरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप और असका कदाचित् बन्ध करता है जो अननतगुणा

रै. ता •-श्रा॰ प्रत्योः श्रर्धपः इति पाठः । . २. ता •-श्रा॰प्रत्योः शादाव्जो • तस॰ इति पाठः ।

बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुण०। उज्जोवं सिया अणंतगुणहीणं०। अप्पसत्थ०४-उप०-अधिरादिपंच० णिय०ं। तं तु० छद्वाणपदिदं०। एवं हुंड०भंगो अप्पसत्थवण्ण०४--उप०-अथिरादिपंच। यथा संठाणं तथा चहुसंघ०।

- ११. असंप० उ० अणु० बं० तिरिक्ख०--हुंड०--अप्पसत्थवणण०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-अप्पस०-अधिरादिछ० णि०। तं तु० छडाणपदिदं०। पंचिदि०-ओरास्थि०-तेजा०-क०-ओरास्थि०ग्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणंे।
- १२. आदाव० उ० बं० तिरिक्खग०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-फ०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-- तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-द्भ०-अणादे०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणहीणे० | उज्जो० उ० बं० विरिक्ख०-पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-

हीन ऋतुरुष्ट अनुभागका बन्ध करता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्योक्ष, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुरुष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुरुष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपवात और अस्थिर आदि पाँच का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उर्छ्ष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह इनके उर्छ्ष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुरुष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। विद अनुरुष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार हुण्डक संस्थानके समान अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। जिस प्रकार चार संस्थानोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष कहा है, उसी प्रकार चार संहननोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

- ११. असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संइननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाल। जीव तिर्यञ्चगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विद्वायोगित और अस्थिर आदि अहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि वह इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है, तो इनका छह स्थान पतित हानिको लिये हुए बन्ध करता है। पंचिन्द्रिय जाति, औदारिक शारीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, अगुरुत्तवृत्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणेदीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणेदीन अनुतकृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है।
- १२. त्रातपके उत्कृष्ट त्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, एकेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, त्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, त्रप्रश्नस्त वर्ण चतुष्क, त्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, त्रियंत्र्यगत्यानुपूर्वी, त्रगुरुलघु चतुष्क, स्थावर, बादर, पर्यात, प्रत्येक, दुर्भग, त्रजादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो त्रान्तराुणे हीन त्रानुल्कष्ट चनुभाग बन्धको लिये हुए होता है। स्थिर, त्रस्थिर, श्रुम, त्रश्चम, यशःकीर्ति श्रीर त्र्यशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तराुणे हीन चनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतके उत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करने-

१. ता॰-आ॰प्रस्योः पंच शिमि॰ शिय॰ इति पाठः । २. ता॰ आ॰प्रस्योः 'अर्श्यतगुणहीर्ण' अतोऽमे 'यथा गदि तथा आसुपुन्ति॰' इत्यिकः पाठोऽस्ति। ३. ता॰ आ॰प्रस्योः उन्नो॰ उप॰ तिरिक्ति॰ इति पाठः ।

ओरालि०श्रंगो०-बज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्त्वाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगु०।

- १३. अप्पसत्य० उ० वं० णिरय०-तिरिक्त्व०-असंप०-दोआणु० सिया०। तं तु० ब्रहाणपदिदं० । पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्य०४—अगु०३—तस४—णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । ओरालि०-वेउन्वि०-दोश्रंगो०-उज्जो० सिया० अणंतगुण- हीणं०। हुंड०-अप्पसत्यवण्ण०४—उप०—अधिरादिछ० णिय० । तं तु० ब्रहाण-पदिदं०। एवं दुस्सर०।
- १४. सुहुम्० उ० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थवण्ण०४--तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । अपज्ज०-साधार० णिय० । तं तु० छष्टाणपदिदं० । एवं अपज्जत-साधारण० । पंचंतराइयाणं णाणावरणभंगो ।
 - १५. णिरएसु सत्तण्णं कम्माणं ओधं । तिरिक्ख० उ० बं० पंचिंदि०-

बाला जीव तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रिय जाति, ध्यौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, सम-चतुरस्र संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्कोपाङ्ग, वश्रपेभ नाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलवु चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है।

- १३. अप्रशस्त विहायोगितिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगित, तिर्येश्वगति, असम्प्राप्तास्पादिका संहतन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध
 करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुरुष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है।
 यदि अनुरुष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है।
 पञ्चेन्द्रिय जाति, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु त्रिक, त्रसचतुष्क
 और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुरुष्ट अनुभागको लिये हुए
 होता है। श्रीदारिक शरीर, वैकियिक शरीर, दो आङ्गोपाङ और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता
 है जो अनन्तगुणे हीन अनुरुष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क,
 उपधात और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उरक्ष्य अनुभागका भी
 बन्ध करता है और अनुरुष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुरुष्ट अनुभागका बन्ध
 करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार दुःस्यर प्रकृतिकी
 मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।
- १४. सूत्रमके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यंश्वगति, एकेन्द्रियजाति, श्रौदारिकरारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, श्रस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रमन्तगुण हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अपर्याप्त और साधारणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिए। पाँच अन्तरायोंकी मुख्यतासे सन्तिकर्ष जानना चाहिए।

१५. नारिकयोंमें सात कमेंका भंग श्रोधके समान है। तिर्यञ्जगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका

ओरालि०- तेजा०- क०- पसत्य०४-अगु०३-तस०४--णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु० छद्वाणपदिदं०। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०।

१६. मणुसगदि० उ० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-श्रंगो०--वज्जरि०--पसत्थ०४ — मणुसाणु०--अगु०३ — तस०४ —पसत्थवि०-थिरादिछ०-णिमि० णिय० । तं तु० छहाणपदिदं । अप्पसत्थ०४ —उप० णिय० अणंतगुणहीणं बं० । तित्थ० सिया० । तं तु० छहाणपदिदं । एवं पसत्थाओ ऍक्समेंक्केण सह । तं तु० तित्थय-रेण सह कादव्यं । चदुसंटा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघं। एवं छसु पुढवीसु । णवरि उज्जोवं उ० वं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४--

बन्धक जीय पंचेन्द्रिय जाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्तवर्ण चतुरक, श्रमुरुलघुत्रिक, त्रसचतुर्क श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रमन्तगुणे होन श्रमुरुष्ट श्रमुभागको लिये हुए होता है। हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, श्रप्रास्त वर्णचतुर्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, श्रप्रास्त विहायोगित श्रौर श्रिस्थर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है श्रौर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। चिद श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका मा बन्ध करता है तो वह हुह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचिन् बन्ध करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्वञ्चगतिके समान हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुरक, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रौर श्रस्थिर श्रादि छहकी मुख्यता से सन्निकर्प जानना चाहिए।

१६. मनुष्यगितिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-शारीर, तैजसरारीर. कार्मणशारीर, समचनुरस्त संस्थान, औदारिक आङ्गोगाङ्ग, यम्प्रपंभानाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचनुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयुत्रिक, त्रसचनुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है जोर अनुरकृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुरकृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचनुष्क और उत्थातका नियमसे वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुरकृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुरकृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुरकृष्ट अनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे एक दूसरेके साथ सन्निकर्य कहना चाहिए। किन्तु वह तीर्थङ्कर प्रकृतिके साथ कहना चाहिए। चार संस्थान, चार संहनन, और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। अर्थान् इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्य कोषके समान कहना चाहिए। इसी प्रकार प्रथमादि छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उरकृष्ट अनुभागका बन्ध कनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रिय जाति. औदारिकशरीर, तैजसरारीर, कामिणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचनुष्क,

१ ऋा० प्रतौ सिया०। छुडाग्एपदिदं इति पाठः।

तिरिक्खाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०-छयुगल सिया अणंतगुणहीणं । सत्तमाए णिरयोघं । णवरि दोसंठा०-दोसंघ० उ० वै० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० णिय० अणंतगुणहीणं० ।

- १७. तिरिक्षेसु सत्तरणं कम्माणं ओघं। णिरयगदि० उ० वं० पर्चिदि०-वेउन्वि०-वेउन्वि०-ग्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०२-तस०४-णिमि० णिय० अणतगुण-हीणं०। हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पस०-अधिरादिञ्च० णिय०। तं तु० इहाणपदिदं। एवं णिरयगदिभंगो अप्पसत्थाणं।
- १=. तिरिक्खग० उ० बं० एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ णिय० । तं तु० छहाणपदिदं० । बोरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्य ०४-अग्र०-उप०- अथिरादिपंच०--णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । एवं तिरिक्खगदिभंगो एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ ।
 - १६. मणुसग० उ० वं० पंचिद्०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थं०४-

अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, तियंख्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुत्वचु चतुष्क, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुःकृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित श्रीर छह युगलका कदाचित् यन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन अनुःकृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। सातवीं प्रथिवीमें सामान्य नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि दो संस्थान श्रीर दो सहननके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तियंख्यगति श्रीर तिर्यक्षगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्तगुणे हीन अनुःकृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है।

१७. तिर्यक्रोमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोधके समान है। तरकगतिके उत्कृष्ट श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीध पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रामुख्तपुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्तगुणे हीन अनुत्रुष्ट श्रानुभागका बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपचात, श्रप्रशस्त विद्यायोगित श्रोर श्रस्थिर श्रादि श्रद्धका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुत्रुष्ट श्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुत्रुष्ट श्रानुभागका बन्ध करता है। यदि श्रमुत्रुष्ट श्रानुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार श्रमुभागका बन्ध करता है। स्थापनित हानिको लिये हुए दोता है। इसी प्रकार नरकगतिकी मुख्यतासे सहे गये सिन्नकष्ठ समान श्रप्रशस्त प्रश्रुतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१८. तिर्यञ्चगतिके उन्छष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उन्छष्ट अनुभागका
भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका
बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर,
कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वयु, उपधात, अस्थिर
आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको
लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान एकेन्द्रिय
जाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१६. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पख्चेन्द्रियजाति, तैजस शरीर,

२ म्रा॰ प्रती ऋगु॰ ४ तस॰ सिमि इति पाठः। २ ऋा॰ प्रती तेजाकः पस्थापसस्य॰ इति पाठः।

अगु०४-पसत्य ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०--णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं०। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-वज्जिर०-मणुसाणु० णि०। तं तु० ब्रह्माणपदिदं। तिण्णियुग० सिया० अणंतगुणहीणं०। एवं मणुसगिदभंगो ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-वज्जिर०-मणुसाणु०।

- २०. देवगदि० उ० वं० पंचिदि०-वेडव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेडव्वि०-श्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०, अग्रु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिञ्च०-णिमि० णिय० । तं तु० ञ्चहाणपदिदं० । अप्पसत्थ०४-उप० णि० अणंतगुणहीणं० । एवं पसत्थाणं देवगदीए सह ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु० ।
- २१. बीइंदि० उ० व० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंढ०-ओरालि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-अगु०- उप०- तस०- वाद्र- अपज्ञा०- पत्ते०- अथिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । असंप० णि० । तं तु० छहाण-पदिदं० । एवं असंप० । तीइंदि०-चदुरिंदि० ओघं । चदुसंठा०-चदुसंघ०- कार्मण शरीर, समबतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, बादेय और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, औदारिक आङ्गो-पाङ्ग, वऋवभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। तीन युगलका

कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुन्छष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार

मनुष्यगतिकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान खोदारिक शरीर, खोदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्ञप्रभागाराच सहनन खोर मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२०. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेयाता जीव पद्धोन्द्रय जाति, वैकियिक शरीर, तैजल शरीर, कार्मण शरीर. समचतुरक्ष संस्थान, वैकियिक खाङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु त्रिक, प्रशस्त विद्वायोगिति, त्रस चतुष्क, स्थिर खादि छद खौर निर्माण का नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। खप्रशस्त वर्ण चतुष्क खौर उपधातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंका देवगित के साथ विवक्षित प्रकृतिकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। किन्तु विवक्षित प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है जो उसी प्रकार प्रशस्त करता है जो उसी प्रकार प्रशस्त करता है जो उसी प्रकार स्थित करता है जो उसी प्रकार स्थान करता है जो उसी प्रकार स्थित करता है जो उसी प्रकार स्थान करता है जो उसी प्रकार स्थान करता है जो उसी प्रकार

बन्ध करता है, जिस प्रकर देवगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा है।

२१. डीन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुमागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, श्रीदारिक शारीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्ड संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, स्रप्रस्त वर्णचतुष्क, त्रियंख्रगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर श्रादि पाँच श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। श्रास्म्प्राप्तास्प्रपाटिका संहननका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तास्प्रपाटिका संहननकी लिए हुए होता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तास्प्रपाटिका संहननकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। श्रीन्द्रियजाित श्रीर चतुरिन्द्रियजाितकी

आदाव० ओघं। उज्जोवं पहमपुढविभंगो। एवं पंचिदियतिरिक्ख०३।

२२. तस्सेव अपज्जतेमु इण्णं कम्माणं ओघं। मिच्छतं ओघं। एवं सोलसक०-पंचणोक०। इत्थि० उ० बं० मिच्छत-सोलसक०-भय०-दु० णिय० अणंतगुणहीणं। इस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया अणंतगुणहीणं०। एवं पुरिस०। इस्स० उ० बं० मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दुं० णिय० अणु० अणंतगुणहीणं०। रदि० णिय० तं तु० इहाणपदिदं०। एवं रदीए।

२३. तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४--अथिरादि०पंचै० णि०। तं तु० छडाणपदिदं० | ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु० णिमि० णिय० अगांतग्रणहीगां०। एवं तिरिक्खगदिभंगो एई दि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथिरादिपंच०।

२४. मणुसगदि० उ० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०-श्रंगो०-वज्जरि०--पसत्थ० ४-मणुसाणु०--अगु०३-पसत्थवि०---तस०४-थिरादिछ०-

मुख्यतासे सन्निकर्ष श्रोघके समान है। चार संस्थान, चार संहनन श्रोर श्रातपकी मुख्यतासे सन्निकर्ष श्रोघके समान है। उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष पहली पृथिवीके समान है। इसी प्रकार श्रर्थात् सामान्य तिर्यञ्जोंके समान पञ्जोन्द्रिय तिर्यञ्जित्रकमें जानना चाहिए।

२२. तिर्यक्क अपर्याप्तकों में छह कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। मिध्यात्वका भङ्ग श्रोघके समान है। इसी प्रकार सोलह कवाय और पाँच नोकवायों की मुख्यतासे जानना चाहिए। स्वीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो श्रान्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। हास्य, रित, श्ररति और शोकका कदाचित बन्ध करता है जो श्रान्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिध्यात्व; सोलह कवाय, नपुंसकवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो श्रान्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट श्रानुभागको लिये हुए होता है। रितका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह इसके उत्कृष्ट श्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हीन श्रानुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रथीत हास्यके समान रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

र३ तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुमागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर आदि चार और अस्थिर आदि पाँचका नियम से बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, पशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, अपशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार और आस्थर आदि पाँचकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४. मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पद्मेन्द्रिय जाति, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्रवंभनाराच संहनन

१. ৠা০ प्रतौ सोलसक । भयदु । इति पाठः । २ आ० प्रतौ० श्रिथरादिख् । इति पाठः ।

णिमि० णि० । तं० तु० छडाणपदिदं । अप्पसत्थ०४-उप० णि० अग्तंतगुणहीगां० । एवं पसत्थागां सब्वागां मणुसगदीए सह ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु० छडाणपदिदं। बीइंदियजादि० जोणिणिभंगो । तीइंदि०-चदुरिंदि० ओधं।

२५. णगोद० उ० बं० पंचिदि०—ओराहि०—तेजा०—क०-ओराहि०श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—अप्पसत्थिव०-तस०४—दूभग-दुस्सर-अणादेँ०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं० । तिरिक्ख०-मणुस०-चदुसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अजस० सिया अणंतगुणहीणं०। एवं सादि०। णविर तिण्णिसंघ० सिया० अणंतगुणहीणं। एवं खुज्जसंटा०। णविर दोसंघ० सिया० अणंतगुणहीणं। एवं वामण०। णविर असंपत्तसे० णिय० अणंतगुणहीणं। यथा संटाणं तथा संघडणं। असंप० बीइंदियभंगो। आदाउज्जो० पंचिदियतिरिक्खभंगो।

प्रशस्त वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रमुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, श्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उरक्रष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुरक्रष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुरक्रष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंक। मनुष्यगतिके साथ परस्पर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। किन्तु उनका परस्पर उरक्ष्य अनुभाग वन्ध भी होता है श्रोर अनुरक्रष्ट अनुभागवन्ध भी होता है। यदि अनुरक्रष्ट अनुभागवन्ध होता है। यदि अनुरक्रष्ट अनुभागवन्ध भी होता है। यदि अनुरक्रष्ट अनुभागवन्ध होता है। द्रीन्द्रियजाति की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जिस प्रकार तिर्यञ्चयोनिनीके कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। श्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोर चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोष्के समान है।

२५. न्यप्रोधसंस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीवपञ्चोन्द्रिय जाति, औदारिक-शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुरक, श्रप्रशस्त वर्णचतुरक, अगुरुलघुचतुरक, अप्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुरक, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुकृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तिर्यक्रगति, मनुष्यगति, चार संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुऐ हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है । इसी प्रकार ऋर्थान् न्यमोधसंस्थानके समान स्वातिसंस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह तीन संहननोंका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन श्रतुःकुष्ट श्रतुभागको लिये हुए दोता है। इसी प्रकार कुन्त्रक संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि यह दो संहननोंका कदाचित चन्ध करता है जो अनन्तगुऐ। हीन श्रमुत्कृष्ट त्रमुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार वामन संस्थानकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह श्रासम्प्राप्तासुपाटिका संहननका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुस्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। यहाँ संस्थानोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्ष कहा है, उसी प्रकार सहनतोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मात्र असम्प्राप्तास्रपाटिका संहननकी सुरूपतासे सन्निकर्ष द्वीन्द्रिय ज्ञातिकी सुरूपतासे कहे गये सन्निकर्षके समान है। आतप और उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार पद्धेन्द्रिय तिर्यद्वीके कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

- २६. अप्पसत्थ० उ० वं० तिरिक्त्व०-बीइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्त्वाणु०-अगु०४-तस०-दूभ०--अणादे०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं। उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणंतगुणहीणं०। दुस्सर० णि०। तं तु छहाणपदिदं०। एवं दुस्सर०। एवं अपज्जताणं सन्वविगलिंदि०-पुटवि०-आउ०-वणप्पदि-बादरपत्ते०-णियोद०।
 - २७. मणुसेसु स्वविगाणं ओघं । सेसाणं पंचिदियतिरिक्खभंगो ।
- २८. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं ओघं। तिरिक्ख० ड० बं० एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर०-दुस्सर० सिया०। तं तु ब्रह्माणप०। पंचिदि०-ओरालि०झंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं। ओरालि०-तेजा०-क० पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं० । हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच० णिय० तं तु ब्रह्मणपदिदं। एवं तिरिक्खगदिभंगो

२७. मनुष्योंमें सपक प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है श्रीर शेव प्रकृतियोंका भङ्ग पंचे-नियुत्तर्यक्रोंके समान है।

२०. देवोंमें सात कर्मोंका मङ्ग बोचके समान है। तिर्यक्रगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, श्रसम्प्राप्तासृशिटका संहनन, श्रप्तशस्त विहायोगित, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हातिको लिये हुए होता है। पञ्जोन्द्रिय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोशिङ्ग, श्रातप, उद्यात श्रीर श्रसका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। श्रीदारिक श्रार, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्ण चतुक्क, श्रगुरुलधुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। विक्रुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। दि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार तिर्यक्रगतिके समान हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष जानना चाहिए; किन्तु इतमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे

२६. अप्रशस्त विहायोगितिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, द्वीन्द्रियजाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, स्प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, श्रमुक्तचु चतुष्क, त्रस चतुष्क, दुर्भग, श्रनादेय श्रोर
निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है।
उद्योत, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुभ, श्रशुभ, यशःकीर्ति श्रोर श्रयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो
अनन्तगुणे हीन श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है।
किन्दु यह उन्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है।
किन्दु यह उन्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है।
इसी प्रकार श्रयांत् अप्रशस्त विहायोगितिके समान दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
इसी प्रकार श्रयांत् अप्रशस्त विहायोगितिके समान दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
इसी प्रकार श्रयांत् एख्रोन्द्रिय तिर्यक्ष श्रपर्याप्रकांके समान सब श्रपर्याप्तक, सब विक्लेन्द्रिय,
प्रिथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक बादर प्रत्येक श्रीर निगोद जीवोंके जानना चाहिए।

हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०अथिरादिपंच० । मणुसगदिसंजुताओ पसत्थाओ णिरयभंगो । एइंदि०-आदाव-थावरं ओधं । चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघं ।

- २६. असंप उ० बं० तिरिक्ख०-हुंडस०-अप्पस०४-तिरिक्खाणु०--उप०-अप्पस०-अथिरादिछ० णि०। तं तु०। पंचिंदि०-ओरास्ति०-तेजा०-क०-ओरास्ति-श्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०२-तस०४-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं। एवं अप्पसत्थविहायगदी। दुस्सर०-उज्जोव० पढमपुढविभंगो।
- २०. भवणवासिय-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्ते ओघं । तिरिक्ख गदि० उ० वं० एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच णियमा । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--बादर-पज्जत-पत्तेग०-णिमि० णि० अणंतगु० । आदाउ० सिया० अणंतग्रुणहीणं० ।
 - ३१. असंप० उ० बं० तिरिक्ख०-पंचिं०-ओराह्मि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओराह्मि०-

शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है या अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। मनुष्यगित संयुक्त प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग जिस प्रकार नरकगितमें कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोधके समान है।

२६. श्रसम्प्राप्तास्तृपादिका संहननके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुंदसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्षाचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विद्वायोगति, श्रोर श्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पश्चिन्द्रियजाति, श्रीदारिक शरीर, तेजस शरीर, कामण शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुश्रिक, त्रसचतुष्क श्रोर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रनुकृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रमन्तगुणे हीन श्रनुकृष्ट श्रनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रप्रशस्त विद्वायोगतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। दुःस्वर श्रोर उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष प्रथम पृथिवीके समान जानना चाहिए।

३०. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी श्रीर सौधर्म-ऐशान तकके देवोंमें सात कर्मीका भंग श्रोघके समान है। तिर्यक्षगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णवतुष्क, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर श्रीर श्रास्थर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। श्रीदारिक शरीर, तैजसरारीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णवतुष्क, श्रमुक्तधृत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माण का नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे श्रमन्तगुणे हीन श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागको लिये हुए होता है। श्रात्म श्रीर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमन्तगुणेहीन श्रमुभागको लिये हुए होता है।

३१. श्रसम्प्राप्तास्पाटिका संहननके उत्क्रष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्नगति, पंचेन्द्रियजाति, श्रौदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, हुण्डसंस्थान, श्रौदारिक

[🐧] सा० प्रती सोधम्मी० तस्य ग्रोधं, 🛭 🗷 पतौ सोघम्मीमार्गतस्य ग्रोघं इति पाठः ।

अंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४-[तिरिक्खाणु०-] अगु०४-तस०४-अथिरादिपच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं। उज्जो० सिया० अणंतगुणहीणं। अप्पसत्थ०-दुस्सर० शिय०।तं तु०। एवं अप्पसत्थवि०-दुस्सर०। सेसं देवोघं।

- ३२. सणक्कुमार याव सहस्सार ति विदियपुढविभंगो । आगाद याव गाव-गेवज्ञा ति सो चेव भंगो। गाविर तिरिक्खगदिदुगं उज्जोवं वज्ज । अणुदिस याव सव्वष्ठ ति छएएां कम्माणं ओग्नं। अप्यचक्ताणकोध० उ० वं० ऍकारसकसाय-पुरिस०-अरदि – सोग – भय – दु० गाय० । तं तु छहाणपदिदं० । एवमएएामएएएएं। तं तु० ।
- ३३. हस्स० उ० बं० बारसक०-पुरिसवे०-भय-दु० णिय० अर्णातग्रणहीर्णं०। रांदे० णि०। तं तु०। एवं रदीए०। मणुसगदि० देवोधं। एवं पसत्थाओ सब्बाओ।

श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णवतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णवतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुत्वयु चतुष्क, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रोर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रोर दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु यह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रार्थात् श्रासम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहननके समान श्रप्रास्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरकी सुख्यतासे सिन्नकर्व जानना चाहिए। श्रेष भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

- ३२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग हैं। आनत कल्पसे लेकर नी मैंत्रेयक तकके देवोंमें वही भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यक्ष-गितिहिक और उद्योतको छोड़कर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थिखि तकके देवोंमें छह कर्मोका भंग श्रोधके समान है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव ग्यारह कपाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष होता है जो उत्कृष्ट अनुभाग बन्धक्प भी होता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्धक्प भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक्प भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक्प होता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है।
- ३३. हास्यके उत्हाब्द अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव बारह कषाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुभागको लिये हुए होता है। रितका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्हाद्ध अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्हाद्ध अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अनुत्हाद्ध अनुभागका बन्ध करता है, तो वह अनन्तगुरो हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थान् हास्यके समान रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंमें जिस प्रकार कह आये हैं, उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थान् मनुष्यगितके समान सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

- ३४, अप्पसत्थवएण ० उ० वं० मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०श्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु ०-अगु०-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-िणमि० णि० वं० अणंतगुराहीग्यं० । अप्पसत्थगंध०३-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णि०। तं तु छहाणपदिदं०। एवमण्णमण्यस्स । तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतगुराहीग्यं०।
- ३५. एइंदिएसु सत्तार्णं कम्मार्णं पंचिदि०तिरि०अपज्ज०भंगो । पंचिदि० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० सिया अर्णातगुर्णाहीर्णं० । मणुसग०-मणुसाणु०-उज्जो० सिया० । तं तु० । ओराल्ठि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओराल्ठि०-वज्जरि०-पसत्थ०४ अगु० ३ —पसत्थ०--तस० ४ —थिरादिछ० —िएमि० णि० तं तु० । अप्पसत्थ०४ उप० शिय० अर्णातगुर्णाहीर्णं० । एवं पंचिदियभंगो पसत्थार्णं सन्वाणं। मणुस० मणुसाणु० वज्जरि०सेसार्णं पंचिदि०तिरिक्खअपज्जतभंगो । एवं सन्वर्ण्डंदियार्णं० ।

३५. एकेन्द्रियों में सात कर्मोंका मङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों के समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगति सात्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है तो यह अह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो यह अह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो यह अह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। विभन्न वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। के अनुभाग बन्ध भी करता है। इसी उकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान सब अशस्त प्रकृतियोंको मुख्यतासे सिन्नकर्प जानता चाहिए। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यापूर्वी और वज्जपमनाराचसंहनन तथा शेप प्रकृतियोंकी मुख्यतासे

३४. स्प्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति पंचेन्द्रियजाति, स्रोदारिकशरीर, तें सशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, स्रोदारिक स्राङ्गोपाङ्ग, वस्रवंभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, स्रादेय स्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो स्रनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। स्राप्तस्त गन्धस्यादि तीन, उपधात, अस्थिर, स्राधुभ स्रोर स्रवराकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट स्रनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट स्रनुभागका मी बन्ध करता है। यदि स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागका मी बन्ध करता है। इसी प्रकार इन स्राधुभ प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट स्रनुभाग बन्ध करनेवाला जीव उन्होंमेंसे शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्रनुभाग बन्ध भी करता है स्रोर स्रनुत्कृष्ट स्रनुभाग बन्ध करता है। यदि स्रनुत्कृष्ट स्रनुभाग बन्ध करता है। त्रियंङ्कर प्रकृतिका कराचिन् बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिए हुए होता है। त्रियंङ्कर प्रकृतिका कराचिन् बन्ध करता है जो स्रनन्तगुणे हीन स्रनुभागको लिए हुए होता है। त्रियंङ्कर प्रकृतिका कराचिन् बन्ध करता है जो स्थानतगुणे हीन स्रनुभागको लिए हुए होता है।

१ ऋ।० प्रतौ-वण्या० ४ उ० इति पाठः ।

तेड०-वाडका० एइंदियभंगो०। णवरि तिरिक्खगदि०-तिरिक्खाणु० धुवभँगो। पसत्थार्सः उज्जो० सिया०। तं तु०।

३६. पंचिदि०-तस०२ ओघभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-कोधादि४-अचवखु०-भवसि०-सण्णि-आहारग ति । ओरालि० मणुसभंगो ।

३७, ओरालियमि० सत्तण्णं कम्माणं अपज्ञत्तभंगो । तिरिक्ख०-चदुजा०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-आदाउड्जो०-अप्पसत्थ०-थाव-रादि०४-अधिरादिर्द्धं० पंचिंदियतिरिक्खअपज्ञत्तभंगो । मणुसगदिपंचगं पंचि०-तिरिक्खभंगो । देवगदि उ० वं० पंचिंदि०-वेउच्वि०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउच्वि० श्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-धिरादिञ्च०-णिमि० णिय० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० णि० श्रग्णंतगुण्हीणं० । तित्थ० सिया० । तं तु० । एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स तं तु० ।

३⊏. वेडव्वियका०-वेडव्वियमि० देवोघं । एावरि उज्जो० मूलोघं । आहार०-

सिन्नकर्ष पंचेन्द्रिय तिर्थेक्क श्रपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंके जानना चाहिए। श्राग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्काति श्रोर तिर्थेक्कात्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ध्रुवभङ्गके समान है। प्रशस्त प्रकृतियों श्रोर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है, किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रानुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह क्षद्य स्थानपतित हानिको लिए हुए होता है।

३६. पंचेन्द्रियद्विक श्रोर त्रसद्धिक जीवोंमें श्रोषके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, कोधादि चार कषायवाले, श्रचतुर्शनी, भन्य, संज्ञी श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। श्रोदारिककाययोगी जीवोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है।

३७. श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग श्रापांप्तकोंके समान है। तिर्यक्षाति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, अप्रशस्त वर्णचतुर्क, तिर्यक्षात्यानुपूर्वी, उपघात, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर आदि चार और श्रस्थिर श्रादि छहका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यक्षोंके समान है। मनुष्यगतिपश्चकका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यक्षोंके समान है। मनुष्यगतिपश्चकका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यक्षोंके समान है। देवगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेत्राला जीव पंचेन्द्रिय जाति, विक्रियिक श्रारि, तैजसरारीर, कार्मणशारि, समचतुरक्ष संस्थान. वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुक्षपुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है। श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। श्रिश्चारत वर्णचतुष्क और उपघातका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध स्वत्रात्रिक होता है। स्थि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिक्किष जानना चाहिए।

वैकियिककाययोगी और वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान

Jain Education International

१. आ॰ प्रतौ थिरादिछ॰ इति पाठः ।

आहारमि० छण्णं कम्माणं सञ्बद्ध०भंगो । कोधसंज० उ० बं० तिण्णिसंज्ञ०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय०-दु० णिय० । तं तु० । एवमेंक्रमेंक्रस्स । तं तु० ।

३६. हस्स० उ० वं० चदुसंज०-पुरिस०-भय०-दु० णि० अणंतगुणहीणं० रिद० णि० । तं तु० । एवं रदीए !

- ४०. देवगदि० उ० बं० पंचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-समचदु०--वेउव्वि०-त्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि०। तं तु०। अप्पसत्थवण्ण०४-उप० णिय० अणंतगुणहीणं०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं पसत्थाओ ऍक्रमेंक्रस्स । तं तु०।
 - ४१. अध्यसत्थवण्णै० उ० वं० देवगदि०--पंचिदि०-वेडव्वि०-तेजा०-क०-
- भक्त है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग मूलोघके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छह कर्मोंका भक्त सर्वार्थसिद्धिके समान है। क्रोध संज्वलनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुत्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्तिकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट

३६. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय श्रोर जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। रितका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४०. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पंचेन्द्रिय जाति, वैकियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण्शरीर, समचतुरह्म संस्थान, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुरक, देवगत्यानुपूर्वी, अगुक्लघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरक, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुर्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागको भी बन्ध करता है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। विन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंका परस्पर सिक्कि जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे शेषका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है।

४१. अप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनैवाला जीव देवगति, पंचेन्द्रिय जाति,

१. ऋा॰ प्रतौ ऋष्पसःथवण्ण० ४ इति पाठः ।

समचुद्व-वेउव्विव्यंगो०-पसत्य०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्य०-तसं०४-सुभग-सुस्सर-आदे ०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं० | अप्पसत्थगंघ०३-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णि० | तं तु० | तित्थ० सिया० अणंतगुणहीणं० | एवं अप्पसत्थगंघ०३-[उप०-] अथिर-असुभ-अजस० |

४२. कम्मइ० सत्तण्णं कम्माणं ओघं । तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-असंप०अप्पसत्थिति०-थातर-सुहुम-अपज्ज०-साधार०-दुस्सर० सिया० । तं तु० ! पंचि०ओरालि०द्यंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगुणहीणं०।ओरालि०तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०-णिमि० णिय० अणंतगु० । हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच० णि० । तं तु० । एवं तिरिक्खगदिभंगो हुंड०अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच० । मणुसग० उ० बं० णिरयोघं । एवं
ओरालि०-ओरालि०द्यंगो०-वज्जरि०-मणुसाणु०। देवगदि०४ ओरालियमिस्स०भंगो।

वैक्रियिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मण्शरीर, समचतुरस्न संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण्यतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अप्रशस्त गन्ध तीन, उपचात, अस्थिर, अञ्चम और अयशाःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। तीर्यङ्कर प्रकृतिका कदाचित्र बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुतकृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थान् अप्रशस्त वर्णके समान अप्रशस्त गन्ध आदि तीन, उपघात, अस्थिर, अञ्चम और अयशाःकीर्तिकी गुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग श्रोधके समान है। तिर्यश्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, श्रासम्प्राप्तास्प्रपाटिका संहनन, श्राप्रस्त विहायोगित, स्थावर, सूदम, अपर्याप्त, साधारण और दुःस्वरक्त कराचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। पंचेन्द्रिय जाति, श्रोदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उचीत श्रोर त्रसचतुष्कका कराचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग रूप होता है। श्रोदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग रूप होता है। हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्थानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अतुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अतुत्कृष्ट अनुभागका का बन्ध करता है जो वह छह स्थानपतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगतिके समान हुण्डक संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचकी सुख्यतासे सन्निकर्य जानना चाहिए। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट अनुभागवन्धकी सुख्यतासे सन्निकर्य सामान्य नारिक्योंके जिस्पकार कह आये हैं, उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार औद गिनकरी सामान्य नारिकर्योंके जिसप्कार कह आये हैं, उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार श्रीदारिकशारीर, श्रीदारिकशाङ्गोपाङ, वश्चवभनाराच संहनन, और मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी

१ आ ॰ प्रती अगु॰ ३ तस॰ इति पाठः। २ ता॰ प्रती ऋगादे॰ इति पाठः।

- ४३. पंचिदि० ७० बं० मणुसग०-देवग०-दोसरी०-दोश्रंगो०-वज्जरि०-दो-आणु०-तित्थय० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिञ्ज-०णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० णिय० अणंतगु० । एवं पंचिदियभंगो पसत्थाणं ।
- ४४. एइंदि० उ० वं० तिरिक्खग०-हुंड०-अप्पसत्य०४-तिरिक्खाण०-उप०-थावर-अधिरादिपंच० णि०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णि० अणंतगु०। पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-वादर-पज्जत०-पत्ते० सिया० अणंत-गुणहीणं०। सुहुम०-अपज्ज०-साधार० सिया०। तं तु०। एवं थावर०।
- ४५. सुहुम० उ० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अपज्ज०-साधार०-अथिरादिपंच० णि० । तं तु० । ओराल्ठि०-तेजा०-क०-

मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगति चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जिसप्रकार कह स्राये हैं, उसप्रकार जानना चाहिए।

४३. पञ्चेन्द्रिय जातिके च्त्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीन मनुष्यगित, देवगित, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रपंभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपित हानिको लिये हुए होता है। वैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुन्निक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग का भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपधातका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान प्रशस्त प्रकृतियों की मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए।

४४. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तन्गुणे हीन अनुस्कृष्ट अनुभागका लिये हुए होता है। परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तन्गुणे हीन अनुस्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। सूच्म, अपर्याप्त और साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। इसी प्रकार अर्थात् एकेन्द्रिय जातिके समान स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ज्ञानना चाहिए।

४५. सूरम प्रश्नतिके उत्कृष्ट ऋतुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, स्थावर, श्रपर्याप्त, साधारण श्रीर पसत्थ०४-अग्रु०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । एवं अपज्ज०-साधार० । सेसं ओघं । तिरिक्तव०-मणुस० एइंदि० ग्रुहुम०-अपज्जत्त०-साधारणसंजुत्तसंकिलेस्स णेरइय० पंचि-दियसंजुत्तसंकिलेस्स ति ।

४६, इत्थिवेदेसु सत्तव्यां कम्माणं ओद्यं। णिरयग० उ० वं० पंचिदियादि-पसत्थाओ ओद्यं। हुंड०-अप्पसत्थ०४--णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०।तं तु०। एवं णिरयाणु०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर०।

४७. तिरिक्ख० उ० वं० एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्य०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०-अथिरादिपंच० णिय० । तं तु० । ओरालियादिपगदीओ देवोघं । एवं एइंदि०-[हुंड०-अप्पसत्थ०४-]तिरिक्खाणु०-[उप०-]थावर०-[अथिरादिपंच०] । तिण्णि जादि० पंचि०तिरिक्खओणिणिभंगो ।

४८. सेसाणं पगदीणं ओघं । णवरि असंप० उ० वं० तिरिक्ख०-ओरास्रि०-तेजा०-

अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु और निर्भाणका नियससे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अर्थात् सूदम प्रकृतिके समान अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियों की मुख्यतासे सिन्नकर्य जानना चाहिए। शेष जोपके समान है। तिर्यक्ष और मनुष्य जीव सूदम, अपर्यात्र और साधारण संयुक्त सैक्लेश परिणामोंसे एकेन्द्रिय जातिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं और पञ्चेन्द्रिय जाति संयुक्त संक्लेश परिणामोंसे नरकगतिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं।

४६. स्त्रीवेदी जीयोंमें सात कर्मांका भङ्ग श्रोपके समान है। नरकगतिके उरकृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाले जीयके पञ्चोन्द्रिय जाति श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोपके समान है। वह हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रोर श्रस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उरकृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है और श्रनुरकृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है। यदि श्रनुरकृष्ट श्रनुभागवन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानि को लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रार्थान् नरकगतिके समान नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोग्गति श्रोर दुःस्वरकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

४७. तिर्यञ्चगतिके उत्हृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव एकेन्द्रिय ज्ञाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्य करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। औदारिक शरीर आदि प्रकृतियोंका सन्निकर्प जिस प्रकार सामान्य देवोंमें कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए। इसी प्रकार एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर और अस्थिर आदि ५ की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तीन जातिकी मुख्यता से सन्निकर्ष पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनीके जिस प्रकार कह आये हैं, उस प्रकार है।

. ४८. रोप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोपके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रासम्प्राप्तासुपाटिका संह-

१. ता० प्रती श्रोघं ! उ० वं० इति पाउः !

क०-हुंड०-ओराल्ठि०ऋंगो०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-तस०४—अथि-रादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगु० | वे० सिया० तं तु० | पंचि०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पस०-पडजत्तापडज०-दुस्सर० सिया० अणंतगुण० | तिरिक्ख-मणुसिणीओ बेइंदिय-संजुत्तं संकित्तेस्सं ति | आदाउडजो० देवोघं |

- ४६. चदुसंठा०-चदुसंघ०--अप्पसत्थ०--दुस्सर० ओघं । सुहुम० उ० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावर-अधिरादिपंच०-णिमि० णिय० अणंतगुणहीणं । अपज्जत्त-साधार० णिय० । तं तु० । एवं अपज्जत्त-साधार० ।
 - ५०. पुरिसेसु ओघं।
- ५१. णवुंसमे सत्तण्णं कम्माणं ओवं। णिरयमदि० उ० बं० पंचिदियादिपमदीओ सन्त्राओ ओवं। हुंड-अप्पसत्थवण्ण०४--णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय०। तं तु०। एवं (णेरयाणुपु०।

ननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीय तिर्यक्रगति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंड संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्र्यान्त्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपयात, जसचतुष्क, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। द्वीन्त्रिय जातिका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुवन्ध भी करता है। यदि अतुत्कृष्ट अनुवन्ध भी करता है। यदि अतुत्कृष्ट अनुवन्ध करता है, तो वह नियमसे छह स्थानपतित हानिकृप होता है। पञ्चीन्त्रय-जाति. परधात, उच्छ्वास. उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, पर्यात, अप्रयात और दुःस्वरका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। तिर्यक्रयोनिनी और मनुष्यनी संक्लेश परिणामयुक्त द्वीन्त्रिय जातिका बन्ध करती है। आतप और उद्योतका मङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

४६. चार संस्थान, चार संहतन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका भक्त श्रीयके समान है। सुद्दम प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयु, चपयात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुत्कृष्ट अनुभागको लिये हुए होता है। अपर्याप्त और साधारण का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध भी करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

५०. पुरुषवेदी जीवोंमें खोघके समान भङ्ग है।

५१. नपुंसकवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्रोधके समान है। नरकगितके उत्कृष्ट स्रानुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पद्धान्त्रिय जाति स्रादि सब प्रकृतियोंका भङ्ग स्रोधके समान है। वह हुण्डसंस्थान, स्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपधात, स्रप्रशस्त विहायोगित और स्रस्थिर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट स्रनुभागबन्ध भी करता है सौर स्रानुत्कृष्ट स्रानुभाग बन्ध भी करता है। यदि स्रानुत्कृष्ट स्रानुभाग बन्ध भी करता है। यदि स्रानुत्कृष्ट स्रानुभाग बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

- ५२. तिरिक्खगदि० उ० बं० पंचिदियादिपसत्थाओ अणंतगुणहीणं० । हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अधिरादिञ्च० णिव० । तं तु इद्याणपदिदं०। एवं असंप०-तिरिक्खाणु०।
- ५३. एईदि० उ० वं० थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० णिय० । तं तु० । सेसं णिय० अणंतगुणहीणं । एवं एइंदियभंगो थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साधार० । सेसं ओद्यं ।
- ५४. अवगद्वेदे० आभिणि० उ० बं० चदुणा० णि० वं० णि० उक्कस्सं । एवं चदुणाणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंतरा० । कोधादि०४ ओघं ।
- ४५. मदि०-सुद्द०-विभंग०-मिच्छादि० ओरास्ति० उ० वं० तिरिक्खग०-तिरि-क्लाणु० सिया० अणंतग्रणहीणं०। मणुसगदिदुग-उज्जो० सिया०। तं तु०। पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतग्र०। ओरास्ति०अंगो०-वज्जरि० णिय०। तं तु०। एवं ओरास्ति०अंगो०-
- ५२. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीन पञ्चोन्द्रय जाति श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका अनन्तगुणा हीन अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध करता है। हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तासु-पाटिका संह्वनन, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपधात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । वित्र अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
- ५३. एकेन्द्रिय जातिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव स्थावर, सूहम, अपर्याप्त और साधारणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेष प्रकृतियोंका निथमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय जातिके समान स्थावर, सूहम, अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सिशकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग ओघके समान है।
- ५४. श्रपगतवेदी जीवोंमें श्राभिनियोधिकज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्रवुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे वन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट श्रवुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रौर पाँच श्रन्तरायकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। क्रोधादि चार कवायवाले जीवोंमें श्रोधके समान भन्न है।
- ५५. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी और मिध्यादृष्टि जीवोंमें श्रोदारिक शरीरके उत्कृष्ट श्रानुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। मनुष्यगतिद्विक और उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है,तो उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी होता है श्रोर अनुकृष्ट अनुभागवन्ध भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी होता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है,तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। पञ्चीन्द्रयज्ञाति, तैजसशारीर, कार्मणश्ररीर, समचतुरस्र संस्थान, अञ्चस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्कष्ठ अगुरुत्वचुष्क, अगुरुत्वच वर्णचतुष्क, विद्यायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए

वज्जरि०। सैसाणं ओघं आहारदुगं तित्थयरं च वज्ज। णवरि देवगदि० उ० बं० जस० णिय०। तं तु०। एवं सञ्वाणं पसत्थाणं ।

४६. आभिणि०-सुद्द०-ओधि० सत्तण्णं क० उक्कस्स० अणुद्दिसभंगों । अप्प-सत्थवण्ण० ड० वं० मणुसग०-देवग०-ओराहि०-वेडिव०-[ओराहि०द्यंगो०-वेडिव०-द्यंगो०-] वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० अणंतगु०। पंचिदियादिपसत्थाओ णिय० अणंतगु०। अप्पसत्थगंध०३—उप०-अथिर-असुभ-अजस० णिय०। तं तु०। एवं एदाओ ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु०। सेसं ओघं। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छादि०।

५७. मणपज्जव ० खइयाणं ओघं। सेसाणं आहारका०भंगो। एवं संजद-सामाइ०-छोदोव०। परिहारे आहारकायजोगिभंगो। णवरि आहारदुगं देवगदिभंगो। णवरि

होता है। श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर वर्ज्यभनाराच संहत्मका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु बह उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध भी करता है। यद अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर वर्ज्यभनाराच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकष जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रीधके समान है। किन्तु आहारकद्विक श्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिको छोड़ कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव यशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु उसका उत्कृष्ट बन्ध भी करता है। किन्तु उसका उत्कृष्ट बन्ध भी करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट बन्ध भी करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

पदः श्रामिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रविध्ञानी जीवोंमें सात कर्मोंके उत्कृष्ट श्रनुमागवन्थका सिन्नकर्ष श्रनुदिशके समान है। श्रप्रशस्त वर्णके उत्कृष्ट श्रनुमागका वन्य करनेवाला जीव मनुष्यगति, देवगति, श्रीदारिक शरीर, विक्रियिक शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, विक्रियिक, श्राङ्गोपाङ्ग, वश्र्षमनाराच संहनन, दो श्रानुपूर्वी श्रीर तीर्यद्भरका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुमागको लिये हुए होता है। पञ्चिन्त्रिय जाति श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे यन्य करता है जो श्रवन्तगुणे हीन श्रमुमागको लिये हुए होता है। श्रथशस्त गन्ध श्रादि तीन, उपघात, श्रस्थिर, श्रग्रुम श्रीर श्रयशाकोर्तिका नियमसे वन्ध करता है। श्रवेद श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागका भी वन्ध करता है। श्रदे श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागका क्य करता है तो वह छह स्थानयित हानिको लिये हुए होता है। श्रदे श्रनुत्कृष्ट श्रनुमागका वन्ध करता है तो वह छह स्थानयित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव इन्हींमेंसे शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित हानिको लिये हुए होता है। शेष कथन श्रोयके समान हं। इसी प्रकार श्रवधिदर्शनी, सम्यग्रहिए, श्रायिक सम्यग्रहि, वेदकसम्यग्रहि, उपशामसम्यग्रहिए श्रीर सम्यग्रिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

५७. मनः पर्ययकशानी जीवोंमें चायिक प्रकृतियोंका मङ्ग खोघके समान है। शेव प्रकृतियोंका मङ्ग खाहारकाययोगी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके जानना चाहिए। परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें खाहारकाययोगी जीवोंके समान मङ्ग है। इतनी विशेषता है कि आहारकदिकका मङ्ग देवगितके समान है। इतनी खोर विशेषता है कि

१. ता॰ प्रती पसत्थार्गं पसत्थार्गं १ इति पाठः । २. आ॰ प्रती उकक्स अग्रुकस्तभंगी इति पाठः ।

संजदेसु अप्पसत्थाणं तित्थयरं ण बंधदि । एवं सच्चाणं । सुहुमसंप० अवगतवेदभंगो । संजदासंजद०परिहारभंगो। णविर अप्पणो पगदीओ णादच्चाओ । असंजदे मदि०भंगो। णविर तित्थयरं० उ० वं० देवगदि०४ णि० वं०। तं तु०। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो ।

४८. किण्णाए सत्तण्णं कम्माणं ओघं। णिरयगदिदंडओं तिरिक्खगदिदंडओं एइंदियदंडओं णबुसगदंडगभंगों। मणुसगदिदंडओं णिरयोघं। देवगदि० उ० बं० वेउव्वि०-वेउव्वि०श्चंगो०-देवाणु० णिय०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। सेसाणं पसत्थाणं अप्पसत्थाणं च णिय० अणंतगु०। एवं देवगदि०४-तित्थ०। सेसं ओघं।

४६. णील-काऊणं सत्तपणं क० ओघं। णिरय० उ० बं० णिरयाणु० णिय०। तं तु०। सेसाओ पगदीओ णिय० अणंतगु०। एवं णिरयाणु०। तिरिक्खग० उ० वं० हुंडसंठाणादि० णिरयोघं। सेसाणं किण्णभंगो। काऊए तित्थ० पणुसगदिभंगो।

संयत जीवोंमें श्राप्रशस्त प्रकृतियोंके साथ तीर्थंद्वर प्रकृतिका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार सबके जानना चाहिए। सून्तमारंपरायसंयत जीवोंमें अपगतवेदी जीवोंके समान भक्क है। संवतासंयत जीवोंमें परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि श्रपनी-श्रपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। श्रसंयत जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि तीर्थंद्वर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी यन्ध करता है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है, तो नियमसे छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। चजुदर्शनवाले जीवोंमें श्रसपर्याप्त जीवोंके समान भंग है।

प्त. कृष्णलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग खोयके समान है। नरकगितिदण्डक, तिर्यक्रगितिदण्डक और एकेन्ट्रिय जाति दण्डकका भङ्ग नपुंसकवेददण्डकके समान है। मनुष्यगित-दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। देवगितके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वि वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि ए अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि इन्छ अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि इन्छ अनुभागका क्षी बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो वह इह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। तीर्यद्वर अनुभागका क्षी बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। इसी अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो बहुं अहि स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेव प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंका निथमसे वन्ध करता है को अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार देवगित चार और तिर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। शेव भङ्ग ओषके समान है।

पृष्ट. नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोधके समान है। नरकगितके ह्र चत्रुष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणे हीन अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्यक्क्षगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके हुण्डसंस्थान आदिका भङ्ग सामान्य नारिक्योंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कृष्ण लेश्याके समान है। कापोत लेश्यामें तीर्थेक्टर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है।

१. ता० प्रती णिरयगदिदंडग्री:एइंदियदंडग्री इति पाठः ।

- ६०. तेऊए सत्तण्णं कम्माणं ओघं। तिरिक्ख० उ० बं० एइंदि०-हुंडसं०-सोधम्मपढमदंडओ मणुसगिद्धंचगस्स ओघं। देवगिद्दंडओ परिहार०भंगो। असंप० उ० बं० तिरिक्ख०-पंचिदियादि-सोधम्मदंडओ अप्पसत्य०-दुस्सर० णि०। तं तु०। चदुसंठा०-चदुसंघ० सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि अप्पसत्थाणं सहस्सार-भंगो। सुकाए सत्तण्णं कम्माणं मणुसगिद्धंचगस्स खिनगणं च ओघं। हुंडगादीणं अप्पसत्थाणं णवगेवज्ञभंगो।
- ६१, अन्भवसि० सत्तरणं क० ओघं । दुगदि-चदुजादि-पंचसंग्र०-पंचसंघ०-अप्पसत्यवण्ण०४-दोआणु०-उप०-आदाउज्जोव०-अप्पसत्थ०-धावरादि०४ अधिरादि-छ० ओघं । मणुसगदिपंचग०-देवगदि०४ तिरिक्खोघं । पंचिदि० उ० बं० दुगदि-दोसरी०-दोश्रंगो००वज्जरि०-दोआणु०-उज्जो० सिया० । तं तु० । सेसाओ पगदीओ पसत्थाओ णिय० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थाणं णिय० अणंतगुणही० । ६२, सासणेक्षण्णं कम्माणं ओघं । अणंताणुबं० कोध० उ० बं० पण्णारसक०
- ६० पीत लेश्यावाले जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग क्रोचके समान है। तियंक्क्यातिके उत्कृष्ट क्रमुभागका बन्ध करनेवाले जीवके एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, सौधर्मकल्पसन्बन्धी प्रथम दण्डक क्रोर ममुष्यगतिपद्धकका भङ्ग श्रोघके समान है। देवगतिदण्डकका भङ्ग परिहारिवशुद्धसंयत जीवोंके समान है। असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहननके उत्कृष्ट श्रमुभागको बाँधनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, पञ्चोत्त्रिय जाति आदि सौधर्मदण्डक, श्रप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुतकृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार पद्म लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्वार कल्पके समान है। हुण्डक संस्थान श्रादि श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। हुण्डक संस्थान श्रादि श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। हुण्डक संस्थान श्रादि श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है।
- ६१. श्रभव्योंमें सात क्मींका मङ्ग श्रोघके समान है। दो गति, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, दो श्रानुपूर्वी, उपघात, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, स्थावर श्रादि चार श्रीर श्रस्थिर श्रादि छहका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक श्रोर देवगतिचतुष्कका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पञ्चोन्द्रिय जातिके उत्स्ष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वश्रपंभनाराचसंहनन. दो श्रानुपूर्वी श्रोर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्स्रष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। श्रेष प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। विन्तु वह उत्स्रष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। विन्तु वह उत्स्रष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका कि वस्थ करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका कि वस्थ करता है। श्रप्रशस्त विहायोगितिका नियमसे वन्ध करता है जो श्रनन्तगुणे हीन श्रनुभागको लिये हुए होता है।

६२. सासादनसम्यन्द्रष्टि जीवोंमें छह कर्मीका भङ्ग खोघके समान है। श्रनन्तानुबन्धी

१. ऋा॰ प्रतौ-पंचग॰ देवगदिभंगो । देवगदि० इति पाठः।

इत्थि०-अरदि-सोग-भय-दु० णिय०। तं तु०। एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु०। पुरिस०-इस्स-रदि ओघं। तिरिक्खग० उ० वं० वामण०-स्वीलि०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णि०। तं तु०। पंचिदियादि० णिय० अणंत-गु०। उज्जोवं सिया० अणंतगु०। सेसं ओघं। असण्णी० तिरिक्खोघं। णवरि मोह० मणुसअपज्जतभंगो। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उकस्सओ सण्णियासो समत्तो।

६३. जहण्णए पगदं । दुर्वि०-ओघे० आदे० । ओघे० आभिणिबोधियणाणा-वरणस्स जहण्णयं अणुभागं बंधंतो चढुणाणाव० णिय० वं० । णिय० जह० । एव-मण्णमण्णस्स जहण्णा । एवं पंचण्णं श्चंतराइयाणं । णिहाणिहा० जह० अणु० वं० पचलापचला-थीणगि० णिय० वं० । तंतु० छहाणप० । अणंतभागव्भहि०५ । छदंसणा०

क्रोधके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पन्द्रह कपाय, स्त्रीवेद, श्ररति, शोक, भय और जुराप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और श्रमुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुरक्षप्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन सब शकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष प्रकृतियों का ब्स्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनु-भागबन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पुरुषवेद, हास्य और रितका सङ्ग अभिष्क समान है। तिर्यञ्जगितके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव वामन संस्थान, कीलक संहत्तन, अप्रशस्त वर्णाचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित श्रीर श्रस्थिर खादि छहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिको लिये हुए होता है। पद्धीन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुभागको लिये हुए होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रानन्तगुर्णे हीन श्रानुभागको लिये हुए होता है। श्रेष भङ्ग श्रोघके समान है। ऋसंज्ञी जीवोंमें सामान्य तिर्वञ्चोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भक्न है।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्प समाप्त हुआ।

६३. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आंघ और आदेश। अोघकी अपेक्षा आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरणका नियमसे वन्ध करता है जो नियमसे ज्ञान्य अनुभागको लिये हुए होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका ज्ञान्य अनुभागवन्धके साथ सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँच अन्तरायका सिन्नकर्ष जानना चाहिए। निद्रानिद्राके ज्ञाचन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धिका नियमसे बन्ध करता है जो ज्ञान्य भी होता है। या तो अनन्तभागवृद्धिकप होता है या असंख्यातभागवृद्धि आदि पाँच वृद्धिकप होता है। अह दर्शनावरणका नियमसे वन्ध होता है या असंख्यातभागवृद्ध आदि पाँच वृद्धिकप होता है। इह दर्शनावरणका नियमसे वन्ध

१. ता • प्रतौ जह० दुवि० इति पाठः।।

णियः अणंतगुणब्भहिः । एवं पचलापचला-थीणिगिद्धिः । णिहाए जहः बं पचलाः णियः । तं तुः छहाणः । चदुदंसणाः णियः अणंतगुणब्भः । एवं पचलाः । चक्खुदं जः वं विण्णिदंसः णिः वं । णिः जहण्णाः। एवं तिण्णिदंसः । सादाः जहः वं असादस्स अवं । एवं असादः । एवं चदुआउ०-दोगोः ।

६४. मिच्छ० जह० वं० अणंताणु०४ णि० । तं तु० । वारसक०--पुरिस०-हस्स-रिद-भय-दु० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं अणंताणु०४ । अष्पचक्ताणकोध० ज० वं० तिण्णिकसा० णिय० । तं तु० । अहक०-पंचणोक० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं तिण्णिक० । पचक्ताणकोध० ज० वं० तिण्णिक० णिय० । तं तु० । चदुसंज०--पंचणोक० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं तिण्णं क० । कोधसंज० ज० वं० तिण्णिसंज० णि० अणंतगु० । माणसंजै० ज० वं० दोण्णं संज० णिय० अग्रांतगुणब्भ० ।

करता है जो अनन्तगुणवृद्धिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिकी मुख्यतासे सिन्निकर्प जानना चाहिए। निद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य भी होता है और अजधन्य भी होता है। यदि अजधन्य होता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। चार दर्शनावरण्का नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिको लिये हुए होता है। इसी प्रकार प्रचलाकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए। चजुदर्शनावरण्के जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन दर्शनावरण्का नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन दर्शनावरण्का मुख्यतासे जानना चाहिए। सातावेदनीयके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव असातावेदनीयका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार असातावेदनीयकी अपेचा जानना चाहिए। इसी प्रकार चार आयु और दो गोत्रके सम्बन्धमें जानना चाहिए।

६४. मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता हैं। बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय श्रीर जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्त-गुणी वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अनन्तानुदन्धी चारकी मुख्यतासे सन्निकर्व जानना चाहिए। श्चप्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाजा जीव तीन कवायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। श्राठ कषाय और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्तगुण्वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यान मान आदि तीन कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष ज्ञानना चाहिए। प्रत्याख्या-नावरण क्रोधके जवन्य ऋतुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेव तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुसागबन्ध भी करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुसागबन्ध भी करता है। यदि अजयन्य अनुभागवन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। चार संज्वलन और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शेष तीन प्रत्याख्यानावरम् कवायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जातना चाहिए। क्रोधसंज्वलनके जघन्य श्रमुभाग का बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलनोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता

१. ता व आ व प्रत्योः छुडाण् । चदुसंजविष्यः श्रर्णतगुण्यः मव। एवं इति पाठः । २. ता व आ व प्रत्योः तिष्णिसंजविष्य अर्णतगुव। माण्यंजव जव बंविष्णिसंजविष्य अर्णतगुव। माण्यंजव इतिपाठः ।

भायसंज्ञ ज्ञ बं छोभसंज्ञ णिय अणंतगुणब्भ । छोभसंज्ञ ज्ञ बं सेसाणं अबंध । इत्थि ज्ञ बं मिच्छ्य सोलस्क - भय-दुगुं णिय अणंतगुणब्भ । इस्स-रिद - अरिद - सोग सिया अणंतगुणब्भ । एवं णवुंस । पुरिस ज्ञ बं च दुसंज्ञ णिय अणंतगुणब्भ । इस्स ज्ञ वं च च दुसंज्ञ - पुरिस ज्ञ णिय अणंतगुणब्भ । इस्स ज्ञ वं च च दुसंज्ञ - पुरिस ज्ञ णिय अणंतगुणब्भ । रिद - भय-दुगुं णिय । तं तु । एवं रिद - भय-दुगुं । अरिद ज्ञ वं च च दुसंज्ञ - पुरिस - - भय-दु णिय अणंतगुणब्भ । सोग । णिय । तं तु । एवं सोग ।

६५. णिरयगदि ज० बं० पंचिंदि०--वेउच्वि०--तेजा०--क०--वेउच्वि०ग्रांगो०--पसत्थापसत्थवण्ण०४-अगु०४--तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । हुंड०--णिरयाणुषु०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० । तं तु० । एवं णिरयाणु० । तिरिक्ख० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०--तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०ग्रंगो०-वज्जरि०-पसत्था-

है। मानसंज्वलनके जघन्य श्रतुभागका धन्य करनवाला जीव दी संज्वलनींका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। मायासंज्यलनके जघन्य अनुभागक। वन्ध करनेवाला जीव लोभसंज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। लोभसंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेष संज्वलनोंका अवन्धक होता है। स्त्रीवेदके जधन्य अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव मिध्यास्व, सालह क्याय, भय त्र्यीर जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुर्णवृद्धिकृप होता है। हास्य, रति, अरति और शांकका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार नपुंसकदेदकी मु**र**ातासे सन्निकर्प जानना चाहिए। पुरुषवेदसे जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुरावृद्धिरूप होता है। हास्यके जघन्य ऋनुभागका वन्य करनेवाला जीव चार संज्वलन स्रौर पुरुववेदका नियमसे बन्ध करता है जो स्ननन्तगुणवृद्धिरूप होता है। रति, भय स्रौर जुगुप्सा का नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागबन्ध भी करता है स्त्रीर अजघन्य अनुभागवन्थ भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागवन्थ करता है तो वह छह स्थान परित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार राति, भय ऋौर जुगुप्साकी मुख्यतासे सन्निकर्प जानना चाहिए। अरातके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार संज्वलन, पुरुपवेद, भय श्रीर जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागवन्ध भी करता है और श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध भी करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागबन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६५. नरकगितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पक्चेन्द्रिय जाति, वैकिथिक-शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, वैकिथिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्तवुच्तुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणवृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विद्यायोगिति और अस्थिर आदि छदका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागवन्ध भी करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य अनुभागवन्ध भी करता है। यदि अजधन्य अनुभागवन्ध करता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्यक्चगतिके जघन्य अनुभागवन्ध करनेवाला जीव पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-

१. आ॰ प्रतौ एवं रदीए भगदु० इति पाठ:।

पसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिञ्च०-णिमि० णिय० अणंतगुणस्भ० । तिरिक्ताणु० णि० । तं तु० । उज्जो० सिया० अणंतगुणस्भ० । एवं तिरिक्ताणु० । मणुसगदि० ज० वं० पंचिदि० ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० झंगो०-पसत्थापसत्थ०४ अगु०-उप०-तस०-वादर०-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणस्भ० । इस्संटा०-छस्संघ०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिञ्चगुग० सिया० । तं तु० छहाणपदिदं० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-पज्ज० सिया० अणंतगुणस्भ० । एवं मणुसाणु० । देवगदि०-ज० वं० पंचिदि०--वेउव्व०- तेजा०--क०--वेउव्व० झंगो०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अगांतगुणस्भ० । समचदु०--देवाणु०--पसत्थ०-सुभग-मुस्सर-आदे० णिय० । तं तु० । थिराथिर--सुभासुभ--जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं देवाणु० ।

चतुरस्रसंस्थान, ऋौदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहतन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुगवृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य त्रानुभागवन्ध भी करता है और त्राजघन्य त्रानुभागवन्ध भी करता हैं। यदि श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तिर्यख्रगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिके जघन्य ऋनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पख्चोन्द्रिय जाति, ऋौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणुशरीर, ऋौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक श्रौर निर्माणका नियम से बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, अपर्यात और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है, को वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता हैं । यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है । परघात, उच्छ्वास स्त्रीर पर्यातका कदाचित बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। देवगतिके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पद्धीन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुचतुष्क, त्रसचतुष्क, और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। समचतुरस्रसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर ऋौर ऋादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य ऋतुभागका भी वन्ध करता है और श्रजधन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका बम्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। स्थिर, श्रस्थिर, हुम, श्रहुम, यशाः कीर्ति और अयराःकीर्तिका कवाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जबन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार देवगस्यानुपूर्वीकी मुख्यता से सिश्वकर्ष जानना चाहिए।

६६. एइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भिह्यं० । हुंड०-थावर-दूभग-अणादेँ०
णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-बादर-पज्जत-पत्ते० सिया० अणंतगुणब्भ० ।
मुहुम-अपज्ज०--साधार०-थिराथिर--मुभामुभ-जस०--अजस० सिया० । तं तु० । एवं
थावरं । बीइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० आंगो०--पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--अगु०--उप०--तस०--बादर०--पत्ते०--णिमि० णिय० अणंतगुणब्भिह्यं० । हुंड०-असंप०-दूभग०-अणादेँ० णि० । तं तु० । पर०-उस्सा०-उज्जो०पज्ज० सिया० अणंतगुण० । अप्पसत्थ०-अपज्ज०-थिराथिर०--मुभामुभ-दुस्सर-जस०अजस० सिया० । तं तु० । एवं तीइंदि०--चदुरिं० । पंचिदि० ज० बं० णिरय०-तिरिक्खग०-असंपत्त०-दोआणु० सिया० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०-वेउव्वि०-दोझंगो०उज्जो० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०--पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० णि० ।

६६. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येश्चगतिः स्रोदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येश्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघ, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, स्थावर, दुर्भग स्त्रौर स्त्रनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। परवात, उच्छवास, त्रातप, उद्योत, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। सूच्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति श्रीर अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका धन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। द्वीन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रमति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रमात्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छवास, उद्योत ऋौर पर्याप्तका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुःस्वर, यशःकीर्ति न्त्रीर त्र्रयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रतुभागका भी बन्ध करता है ऋौर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रियजाति त्र्यौर चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे जानना चाहिए। पञ्चीन्द्रिय जातिके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यक्रगति, श्रसम्प्राप्तासपाटिका संहतन श्रीर दो श्रानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रीदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रतुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रतुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान

तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०--अप्पसत्थ०--अधिरादिछ० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं तस० ।

६७. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अयिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भिह्यं० । एइंदि०-असंपत्त०-अप्पस०-थावर०-दुस्सर०
सिया० अणंतगुणब्भिह्र० । पंचि०--ओरालि० झंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० । तं
तु० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत्त-पर्न०-णिमि० णि० । तं तु० ।
एवं उज्जो० । वेउच्वि० ज० बं० णिरय०--हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०--उप०अप्पसत्थ०-अथिरादिख० णियं० अणंतगुणब्भिह्यं० । पंचिदि०--तेजा०-क०-वेउच्वि०झंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० । तं तु० झहाणपदिदं० । एवं
वेउच्वि० झंगो० । आहार० ज० बं० देवगदि०--पंचिदि०--वेउच्वि०-तेजा०--क०-समचदु०-वेउच्वि० झंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-थिरादिख०-

पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मेखशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है, जो तं तुन्कप होता है। हुण्डसंस्थान, त्रप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, उपघात, त्रप्रशस्त विहायोगित और त्रस्थिर त्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा त्राधिक होता है। इसी प्रकार त्रसम्ब्रुतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

६७. ऋौदारिक शरीरके जघन्य ऋतुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्तगुरा। अधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, श्रासम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, श्राप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर श्रीर दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रानन्तगुणा श्रिधिक होता है। पक्कोन्द्रियजाति, श्रीदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रीर त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रतुभागका भी बन्ध करता है और श्रतघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रतघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूपहोता है।जो तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण्वतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है, वह जघन्य व श्रजघन्य श्रतुमाग बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छद स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। वैकियिक शरीरके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विद्यायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तर्गुणा अधिक होता है। पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मण्शारीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैकियिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यता-से सन्निकर्ष जानना चाहिए। श्राहारकशरीरके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति, पक्के न्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगर्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त

१. ता० प्रतौ ऋथिरादिछ । (समि० सिय० इति पाठः।

णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । आहार०अंगो० णि० बं० । तं तु० । तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं आहारअंगो० । तेजा० जह० बंधै० णिरय०-तिरिक्सव०- एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ०थावर-दुस्सर० सिया० अणंतगु० । पंचिदि०- दोसरी०-दोश्रंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० । तं तु० । कम्मइ०-पसत्थ०४—अगु०३— बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४—उपै०-अथि-रादिपंच० णि० बं० अणंतगुणब्भहियं० । एवं कम्मइ०-पसत्थ०४—अगु०३—बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० ।

६८. समचढु० ज० वं० तिरिक्ख०-दोसरीर०-दोत्रांगो०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-सिया० अणंतगु० । मणुसग०--देवग०-अस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०--थिरादिञ्चयुग० सिया० । तं तु० । पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । एवं समचढुर०भंगो पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आर्दे० । णग्गोद०

विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तग्रणा अधिक होता है। आहारक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तराणा अधिक होता है। इसी प्रकार श्राहारक श्राङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । तैजसशरीरके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासुपाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त बिहायोगति, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पद्धान्द्रिय जाति, दो शरीर, दो आङ्गो-पाङ्ग, स्रातप, उद्योत स्रोर त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य स्रमुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है। तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुत्तघुत्रिक, बादर, पर्यप्ति, प्रत्येक स्त्रीर निर्माण का नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य ऋनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरा अधिक होता है। इसी प्रकार कार्मणशरीर, प्रशस्त, वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६=. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येश्वगति, दो शरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, देवगति, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। पञ्चोन्द्रिय जाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, असचतुष्क, श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थानके समान प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर और

१. ता॰ प्रती श्राहारमं॰ (श्रं) गो॰, श्रा॰ प्रती श्राहारमंगो० इति पाठः । २. श्रा॰ प्रती तेजाक० बंध० इति पाठः । ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रसंपत्तवण्ण० ४ डप॰ इति पाठः ।

जिं बं ि तिरिक्ख - तिरिक्खाणु - उज्जो विस्ता विश्वांतगुण विभाग मणुस - इस्संघ - मणु- साणु - दोविहा - थिरादि इयुग विस्ता । तं तु । पंचिदि - ओरालि - ते जा - क - ओरालि व्यंगो व - पसत्थापसत्थ विश्व - अगु विश्व - तस विश्व - णिमि विण्य अणंतगुण विभ । एवं तिष्णिसंदाणं पंचसंघ । हुंडसं विज्ञ वं विषय - मणुस - चदु जादि - इस्संघ - दो आणु - दोविहा - थावरादि ४ - थिरादि इयुग विस्ता । तं तु व । तिरिक्ख - पंचिदि - दोसरीर-दोश्रंगो व - तिरिक्ख णु - पर - उस्सा - आदा उज्जो व - तस व ४ सिया व अणंतगुण व भ । ते जा व - क - पसत्थापसत्थ व ४ - अगु व - उप व - णिमि विषय व अणंत गुण व भ । एवं दभग - अणादे ।

६६. ओरालि०श्रंगो० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरि-क्खाणु०-उप०-अप्पस०--अधिरादिछ० णिय० अणंतग्रुणब्भ०। पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० णिय०। तं तु० । उज्जोवं सिया०। तं तु० ।

श्रादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। न्यप्रोधपरिमण्डल संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुरण अधिक होता है। मनुष्यगति, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति श्रौर स्थिर ऋादि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजयंन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्जे न्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे यन्य करता है जो श्रानन्तगुणा श्राधिक होता है। इसी प्रकार तीन संस्थान त्रौर पाँच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। हुण्डसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, मनुष्यगति, चार जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर ऋदि चार ऋौर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वह बन्ध करता है तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगति, पञ्चोन्द्रयजाति, दो शारीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छवास, श्रातप, उद्योत, और असचतुष्कका कदाचित बन्ध करता है जो अमन्तगुणा अधिक हातो है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरूल्घ, उपवात श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार दुर्भग और श्रनादेशकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

६६. श्रीदारिक आङ्गोपाङ्गके जधन्य अनुभागक। बन्ध करनेत्राला जीव तिर्यक्रगति, हुण्ड-संस्थान, असम्प्रातास्पाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति श्रीर अस्थिर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघृतिक, यसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजबन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है तो बह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचिन बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है

- ७०. असंप० ज० बं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-पज्ज० सिया० अणंतगुणव्भ० । मणुसगदि-तिण्णिजादि-छसंठा०-मणुसाणु०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०श्चेगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०-उप०-तस०-शदर-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ० ।
- ७१. अप्पसत्थवण्ण० ज० बं० देवगदि-पंचिदि०-वेउव्वि०-तेजा०-क०-सम-चढु०-वेउव्वि०त्रंगो०-पसत्थवण्ण०४-देवाणु०-अगु०३--पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। आहारदुगं तित्थय० सिया० अणंतगुणब्भ०। अप्पसत्थ-गंध-रस-पस्स०-उपै० णि०। तं तु०। एवं अप्पसत्थगंध-रस-पस्स०-उप०। यथा गदी तथा आणुपुन्ती।
- ७२. आदाव० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४--तिरि-क्खाणु०-उप०-थात्रर०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भ० | ओरास्त्रि०-तेजा०-क०-

तो वह जघन्य ऋतुभागका भी बन्ध करता है और ऋजघन्य ऋतुभागका भी वन्ध करता है। यदि ऋजघन्य ऋतुभागका वन्ध करता है तो वह छहं स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

- ७०. असम्प्राप्तास्त्पादिका संहननके जवन्य अनुभागका यन्य करनेवाला जीय तिर्यक्चगति, पक्चोन्द्रिय जाति, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, परवात, उच्छ्वास, उद्योत और पर्याप्तका कदाचित् वन्य करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति, तीन जाति, छह संस्थान, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, अपर्याप्त और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् वन्य करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कामैणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वयु, उपघात, त्रस, वादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।
- ७१. श्रप्रशस्त वर्णके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव देवगति, पख्चे न्द्रिय जाति, विकियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विद्यायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छ्रह श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो श्रानन्तगुणा श्राधिक होता है। श्राप्तारकद्विक श्रोर तीर्थङ्करका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रानन्तगुणा श्राधिक होता है। श्राप्तारकद्विक श्रोर तीर्थङ्करका कदाचित् वन्ध करता है जो श्राप्तारकप्रशासत रस, अप्रशस्त वन्ध और उपयातका नियमसे वन्ध करता है जो जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है त वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्राप्तारस गन्ध, रस व स्पर्श श्रोर उपयातकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए। गतियोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्ष कह श्राये हैं उसी प्रकार श्रानुपूर्वियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प जानना चाहिए।
- ७२. आतपके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्क्याति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येक्क्यात्यानुपूर्वी, उपयात, स्थावर ख्रीर खस्थिर खादि पाँचका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा ख्रिधिक होता है। ख्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर,

१. त्रा० प्रतौ झुस्तंघ० इति पाठः । २. ता० प्रतौ भ्रप्पस्त्यगंघस्य पस० उप० इति पाठः ।

पसत्य०४—अगु०२—बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० | तं तु० | उज्जोवं ओरालिय-भंगो० |

- ७३. अप्पसत्यवि० ज० बं० णिरय०-मणुस०-३जादि०-झस्संठा०-झस्संघ०-दो-आणु०-थिरादिझयु० सिया० । तं तु० । तिरिक्ख०-पंचिदि०-दोसरी०-दोझंगो०-तिरि-क्खाणु०-डज्जो० सिया० अणंतगुण्डभ० । तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि० णिय० अणंतगुण्डभ० । एवं दुस्सर० ।
- ७४. स्रहुम० ज० वं० तिरिक्ख०-ओरालि०--तेजा०--क०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० | एइंदि०-हुंड०-थावर०-दूभ०-अणादे०-अजस० णिय० | तं तु० | पर०-उस्सा०-पज्जत०-परो० सिया० अणंतगु-णब्भ० | अपज्ज०-साधा०-थिराथिर०-सुभासुभ० सिया० | तं तु० | एवं साधार० |
 - ७५. अपज्ज० ज० बं० तिरिक्खं०-पंचिदि०-ओरालि० ग्रंगो०-तिरिक्ख०-तस०़-

कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है।

- ७३. अप्रशस्त विहायोगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगित, मनुष्यगित, तीन जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। तिर्यञ्चगित, पञ्च न्द्रिय जाति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसप्रशीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वचुचतुष्क, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
- ७४. सूच्मप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाजा जीव तिर्यक्रगति, स्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क; तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, त्रगुरुलघु, उपघात स्रोर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय स्रोर स्थराःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। स्रपर्याप्त, साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ और अश्रुभका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार साधारण प्रकृतिकी मुख्यतासे जानना चाहिए।

७५. अपर्याप्त प्रकृतिके ज्ञान्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्कगति, पश्चेन्द्रिय-

१. श्रा॰ मतौ सुभासुम॰ सिया॰ तं तु॰ तिरिक्ख॰ इति पाठः ।

बादर-पत्ते ० सिया ० अणंतग्रणब्भ ० । मणुस० -चढुजादि०-असंप०-मणुसाणु०-थावर०-स्रहुम०-साधार० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४ -अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतग्रणब्भ० । हुंड०-अथिरादिपंच णि० । तं तु० ।

७६, थिर०ज० बं० तिरिक्ख०-पंचिदि०-दोसरी०-दोश्चंगो०-तिरिक्खाणु०-आदा-उज्जो०-तस०४--तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । मणुसग०-देवग०-चढुजादि-इस्संठा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-सुहुभ०-साधार०-सुभादिपंचयुग०सिया०। तंतु०। तेजा०-कम्म०-पसत्थापसत्थ०४-पज्ज०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भं० । वादर-पत्तेय० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं सुभ०-जसगि० । णवरि जस०-सुहुम-साधारणं वज्जं ।

७७, अथिर० ज० वं० णिरय-देवर्गाद-मणुसगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-तिण्णिआणु०-दोविहा०-थावरादिश्व-सुभादिपंचयुग० सिया० । तं तु० । तिरिक्ख०-

जाति, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर श्रौर प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रमन्त्राण्ण। श्रिधिक होता है। मनुष्यगित, चार जाति, श्रमन्त्राप्तास्प्राटिका संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूदम श्रौर साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि श्रम करता है। यदि श्रम श्रमणका भी बन्ध करता है। यदि श्रमणका भी बन्ध करता है। यदि श्रमणका श्री बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। श्रौदारिकशारीर, तैजसरारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघु, उपधात श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह अयन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रौर श्रमण्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। विन्तु वह अयन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रौर श्रमण्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। विन्तु वह अयन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है।

७६. स्थिर प्रकृतिके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येक्कगति, पक्कोन्द्रियजाति, दो शरीर, दो आक्नोपाक्क, तिर्येक्कगत्यानुपूर्वी, आतप, ख्योत, अस्वतुष्क और तीर्थेक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। भनुष्यगति, देवगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संह्वन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर, सूद्रम, साधारण और शुभादि पाँच युगलोंका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका वन्ध करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका वन्ध करता है। विहायोगित, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, पर्यात और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार शुभ और प्रत्येकका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार शुभ और यशाकीतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्य जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशाकीतिके भन्नसे स्थावर, सूद्रम और साधारणको छोड़ देना चाहिए।

७७. अस्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव नरकगति, देवगति, भनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर आदि चार और शुभादि पाँच युगलका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है, तो वह अह स्थान पतित युद्धिस्प होता है। तिर्यक्कगति, पक्केन्द्रिय-

ता० प्रतौ खिमि० श्रर्णतगुष्य । इति पाठः ।

पंचिद्दि ०-दोसरीर-दोश्चंगो०-तिरिक्खाणु०- पर०-उस्सा०-आदाबुक्जो०-तस०४ - तित्थै० सिया० अणंतगुणव्य०| तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४ - अगु०-उप०-णिमि० णिय०अणंत-गुणव्य० | एवं असुभ-अजस० |

७८. तित्थय० ज० बं० देवगदि-पंचिदि०-वेखव्वि०-तेजा०-क०--समचढु०-बेखव्वि०ञ्चंगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-अथिर-अग्रुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-अजस०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भहियं बंधदि ।

७६. णिरंपसु आभिणिबोधि० ज० अणु० वं० चतुणाणा० णिय० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । एवं पंचंतराइ० । जिहाणिहाए ज० वं० पचलापचला-थीणिनि० णि० । तं तु० । छदंसणा० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं पचलापचला-थीणिनि ० । णिहा० ज० वं० पंचदंस० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० । वेदणीय-आउग-गोद० ओघं ।

जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यक्रागत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्यास, आतप, उद्योत, त्रस चतुष्क श्रीर तीर्यङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रस्त वर्णचतुष्क, अप्रस्त वर्णचतुष्क, अप्रस्त अर्थात श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अशुभ और अपशाकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

ज्य. तीर्थङ्कर प्रकृतिके जवन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैकियिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक खाङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्धी, अगुरुत्वधुचतुष्क, प्रशस्त विद्यायोगिति, त्रसम्बतुष्क, ख्रास्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्थर, आदेय, अयशःकीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध होता है जो अनन्तगुणा अधिक बाँचता है।

७६. नारिकयोंमें ऋभिनियोधिक ज्ञानावरणके जयन्य ऋनुमागका बन्ध करनेवाला जीव चार झानावरएका निथमसे दन्य करता है। किन्तु वह जधनव ऋनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजवन्य श्रतुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजवन्य श्रतुभागका वन्ध करता है, तो यह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रश्नुतियोंका परस्पर समिक्ष जानेना चाहिए। इसी प्रकार पाँच अन्तर।यका परस्पर सिन्नकर्ष जातना चाहिए। निद्रानिद्राक अधन्य श्रतुभागका बन्ध करनेवाला जीव प्रचलाप्रचला और स्त्यानागृद्धिका नियमसे बन्ध करता है। फिन्तु वह ज्ञघन्य अनुभागका भी धन्ध करता है और अद्रधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि बद श्चजवन्य श्चमुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। छह दर्शनावरणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला और स्त्यान-मृद्धिकी मुख्यतासे सक्षिकर्ष जानना चाहिए। निद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच दर्शनावर एका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जबन्य अनुभागका भी वन्ध करता है स्त्रीर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सबका परस्पर सन्निकर्प जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है जो जयन्य अनुसागका भी बन्ध करता है ख्रीर अजयन्य अनुमाग हा भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो यह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। देदनीय, आयु

२. स्ना० प्रती स्नादायुक्ती० तित्थ० इति पाठः । २. स्ना० प्रती थिस्मिग०३ इति पाठः ।

- द्र०, मिच्छ० ज० बं० अणंताणु०४ णिं० वं० । तं० तु० । बारसक०-पंच-णोक० णि० अणंतगुणब्भिह्यं० । एवं अणंताणु०४ । अपचक्खा०कोध० ज० बं० एकारसक०-पंचणोक० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० । इत्थि० ज० बं० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु० णिय० अणंतगुणब्भिहे० । इस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं णवुंस०। अरदि० ज० बं० बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-णिय० अणंतगुणब्भ०। सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग०।
- ८१. तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० ओघं। मणुसग०-मणुसाणु० ओघं। णविर अप-ज्जतं वज्ज । पंचिदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ऋंगो०--पसत्थ०४ — अगु०३ — तस०४ — णिमि० णिय०। तं तु०। उज्जो० और गोत्र कर्मका सङ्ग छोघके समान है।
- प्तव. मिध्यात्वके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका वन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित बृद्धिकप होता है। बारह कषाय और पाँच नोकवायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुए। अधिक होता है। इसी प्रकार श्रनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरण कोधके जघन्य त्रातुमागका बन्ध करनेवाला जीव ग्यारह कपाय श्रौर पाँच नोकपावका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य ऋनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजघन्य ऋनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर मिश्रकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जधन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेवका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय श्रीर जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानन्तगुए। श्राधिक होता है। हास्य, रति, अरति श्रीर शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुए। अधिक होता है। इसी प्रकार तेषु सक बेदकी मुख्यतासे सञ्जिकर्ष जानना चाहिए। अरतिके जघन्य अनुसागका वन्ध करनेवाला जीव बारह कपाय, पुरुष्वेद, भय श्रीर जुगुष्साका नियमसे बन्ध करता है जो श्रातन्त-गुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है ऋौर अजधनय अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधनय अनुभागका बन्ध करता है। तो वह छह स्थानपतित बुद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्य जानना चाहिए।
- दश्याति और तिर्येश्चगति और तिर्येश्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रोधके समान है। तथा मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। पश्चोन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपधात, अप्रशस्त विहायोगति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अोदारिक शरीर, तैजसर्शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुनिक, त्रसचतुष्क, और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी

१. ता० आ० प्रत्योः ऋखंतागुः ४ गिमि गि० इति पाठः ।

सिया । तं तु ० । एवं एदाओ ऍकमें कस्स । तं तु ० । इस्संटा०-इस्संघ०-दोविहा०-इयुगल०--तित्थय० ओयं । अप्पसत्थवण्ण० ज० वं ० मणुस०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर-समचदु ०-ओरालि० संगो०--वज्जरि०---पसत्थव०४--मणुसाणु०--अगु०३--पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि० णिय० अणंतगुण ० । अप्पसत्थगंघ०३--उप० णिय०। तं तु ० । एवं पदाओ ऍकमें कस्स । तं तु ० । इस उवरिमासु तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० मणुसगदिभंगो । सेसं णिरयोघं ।

द्भर. सत्तमाए तिरिक्ल०-तिरिक्लाणु० ओघं । मणुसग० ज० बं० पंचिंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०ऋंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-अग्रु०४-पसत्थ०--तस०४-अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर--आर्दे०--अजस०--णिमि० णि० अणंत-गुणब्भ० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं मणुसाणु० । पंचिंदियदंडओ जिरयोधं ।

बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभाग का बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित चृद्धिरुप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जघन्य अनुभागका भी वन्य करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्य करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए । किन्तु इनमेंसे किसी एक प्रकृतिका बन्ध करनेत्राला जीव रोषके जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, छह युगल श्रीर तीर्थकर प्रकृतिका भङ्ग श्रोघके समान है। अप्रशस्त वर्णके जवन्य अनुभागका बन्य करनेवाला जीव मनुष्यगति, पक्कोन्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रीदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, वत्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्धत्रिक और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य ऋनुभागका भी दन्ध करता है ऋौर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमें से किसी एकका बन्ध करनेवाला जीव शेषका उसी प्रकार बन्ध करता है, जिस प्रकार अपन शस्त वर्णकी मुख्यतासे कह त्राये हैं। अपरकी छह पृथिवियोंमें तिर्यक्कागति स्त्रीर तिर्यक्कागत्यानु-पूर्वीका भङ्ग मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए। शेष भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

प्रश्निमां पृथिवीमें तिर्यक्षगिति श्रीर तिर्यक्षगित्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रोघके समान है।
मनुष्यगतिके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव पश्चोन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तेजस-शरीर, कार्मणशरीर, समुचतुरस्र संस्थान. श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्चर्यभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रश्मरत वर्णचतुष्क, श्राह्मत विद्यायोगिति, त्रसचतुष्क, श्राह्मर, श्रम्म, सुम्बर, श्रादेय, श्रयशाक्षीर्ति श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु जधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो यह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। इसी प्रकार मनुष्यंगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिश्वक जानना चाहिए। पञ्चोन्द्रयजाति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

१ ता० आर प्रत्योः तं तु० सिया० अग्तंतगु० एवं इति पाठः ।

- द्भः समचदु० ज० बं० तिरिक्ख०-पंचि०-ओराहि०-तेजा०-क०--ओराहि०-श्रंगो०---पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्खाणु०---अग्र०४—तस०४—-णिमि० णिय० अणंत-गुणब्भ० | इस्संघ०--दोविहा०--थिरादिइयुग० सिया० | तं तु० | उज्जो० सिया० अणतगुणब्भ० | एवं पंचसंठा०-इस्संघ०-दोविहा०-मिक्सञ्चाणि युगलाणि | थिर० ज० बं० तिरिक्ख०--मणुस०--दोआणु०--उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० | पंचिदियदंडओ णिय० अखंतगुणब्भ० | इस्संठा०-इस्संघ०-दोविहा०-सुभगादिपंचयुग० सिया० | तं तु० | एवं अथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० | सेसाणं णिरयोदं |
- ८४. तिरिक्खेस छण्णं कम्माणं णिरयोघभंगो। मोहणीयं ओघो। णवरि पश्चक्खाण ०कोध ० ज० बं० सत्तक ०-पंचणोक ० णिय०। तं तु०। एवमण्णमण्णस्स । तं तु०। अरदि० ज० बं० अद्वक ०-पुरिस ०-भय०-दु० णिय० अणंतगुण ० भागे । सोग० णि०। तं तु०। एवं सोग०।
- समचतुरक्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्जगति, पद्मोन्द्रिय-जाति, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। छह संहनन, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु यह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित यृद्धिरूप होता है। च्छोतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसीप्रकार पाँच संस्थान, छह संहतन, दो विहायोगति और मध्यके तीन युगलोंकी सुख्यतासे सिनकर्षं जानना चाहिए। स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येक्सगति, मनुष्यगति, दो आनुपूर्वी श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पक्क निद्रयज्ञातिदण्डकका नियमसे बन्ध करता है जो अपनन्तगुणा अधिक होता है। छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित और सुभग श्रादि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु यह जयन्य अनुभागक। भी बन्ध करता है और अजयन्य अनुभागक। भी बन्ध करता है। यदि अज-धन्य श्रानुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्रस्थिर, शुम, श्रशुम, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। दोष प्रकृति-योंका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।
- -४. तिर्यक्रों के इह कमोंका भङ्ग सामान्य नारिकयों के समान है। मोहनीय कर्मका भङ्ग सोयके समान है। इतनी विशेषता है कि प्रत्याख्यानायरण कोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करने वाला जीव सात कथाय और पाँच नोक्षणयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करने वाला जीव शेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। अरिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव आठ कथाय, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है जो अनंतगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है जो अनंतगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनु-

८५. चदुग०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० ओघं । पंचिदि० ज० बं० णिरय०--हुंड०--अप्पसत्थ०४--णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ० णिय० अणंतगुणब्भ० । वेजव्वि०-तेजा०-क०-वेजव्वि० श्रंगो०-पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० णि० । तं तु० । एवमेदाओ ऍक्कमेंकस्स । तं तु० ।

द्ध. ओरास्ति० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावरादि०४—अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । ओरास्ति०श्चंगो० ज० बं० तिरिक्ख०--बेइंदि०--ओरास्ति०--तेजा०-हुंड०-असंप०-पसत्थापसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-तस०-बादर--अपज्ज०-पत्ते०-अथिरादिपंच-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० ।

८७, आदाव० ज० बं० तिरिक्ख०-एईदि०-ओरास्ति०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्था-पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-बादर-पज्जत-पत्ते०-अथिरादिपंच-णिमि० णि० अणंतगु०। एवं उज्जो०। अप्पसत्थ०४- उप० ओघं। एवं पंचिदियतिरिक्ख०३।

भागका भी बन्ध करता है। यदि ऋजघन्य ऋनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित दृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

म्था चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहतन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग खोवके समान है। पख्रोन्द्रिय जातिके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपधात, अप्रशस्त विहायोगिति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतिल वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इनका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु वह उसी प्रकार जानना चाहिए, जिस प्रकार पद्धोन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे कहा है।

द्ध, श्रीदारिकरारीरके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यश्चगति, एकेन्द्रियजाति, तैजसरारीर, कार्मण्यारीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यान्तुपूर्वी, अगुरुलयु, उपघात, स्थावर श्रादि चार, श्रास्थर आदि पाँच और तिर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रीदारिक आङ्गोपाङ्गके जयन्य अनुभागका बन्ध अरनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, द्वीन्द्रियजाति, श्रीदारिकरारीर, तेजसरारीर, कार्मण्यारीर, हुण्ड-संस्थान, असम्प्राप्तास्वपाटिका संहतन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रयन्तगुण। अधिक होता है।

५७. श्रातपके ज्ञवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्जगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु चतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर आदि पाँच और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उद्योतकी णवरि [तिरिक्ख०-] तिरिक्खाणु० परियत्तमाणियासु कादव्यं ।

८८. पंचिदि०तिरिक्ख०अपज्ज० पंचण्णं कम्माणं णिरयभंगो । णिदाणिद्याण् ज० बं० अद्वदं० णि० । तं तु० । एवमण्णमण्णस्स । तं तु० ।

- ८६, मिच्छ० ज० बं० सोस्रसक०-पंचणोक० णिय०। तं तु०। एवमेदाओ ऍकमेंकस्स । तं तु०। सेसं णिरयभंगो ।
- ह०. तिरिक्ख० ज० बं० पंचजादि-इस्संठाण-इस्संघ०--दोविहा०-तस०-थाव-रादिदससुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०--उप०-णिमि० अणंतगुणव्भ० । ओरालि० झंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणव्भ० । तिरिक्खाणु० णिय० । तं तु० । एवं तिरिक्खाणु० ।

मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोधके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् सामान्य तिर्यञ्चके समान पञ्चे निद्रय तिर्यञ्च- त्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी परिगणना परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करनी चाहिए।

दन. पश्चीन्द्रिय तिर्यक्क अपर्याप्तकों में पाँच कर्मीका भक्क नारिकयों के समान है। निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव आठ दर्शनावरएका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। बीर अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सबका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए जो उसी प्रकार होता है, जैसा निद्रानिद्राकी मुख्यतासे कहा है।

- ्ह. भिध्यात्वके ज्ञधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सोलह कषाय श्रोर पाँच नोक-पायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु यह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध दरता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके ज्ञधन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे वन्ध करता है जो जधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेप प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य नारकियोंके समान है।
- है? तिर्यक्चमितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगिति, जस और स्थावर आदि इस युगलका क्दाचिन् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका नन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। अौदारिकशारीर, तैजसशारीर, कामेणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अपशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अौदारिक आङ्गोपाङ, परधात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका द्वाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चमत्यानुपूर्वीका नियमसे वंध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है जो राज्यन्त अनुभागका भी बन्ध करता है यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिक्किय जानना चाहिए।

- ६१. मणुस० ज० वं० पंचिदि०-मणुसाणु०-तस-बादर-पत्ते० णिय० । तं तु० । सेसं तिरिक्खगदिभंगो । एवं मणुसाणु० ।
- ६२. एईदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०--थावर-दूभ०-अणादेँ० णियमा० । तं तु० । ओराल्ठि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । बादर-सुहुम-पज्जत्त०-अपज्ज०-पत्ते० साधार०-थिरादितिण्णियुग० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।
- ६३. बेइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-तिरिक्खाणु०-तस-बादर-पत्ते०-दूभ०-अणादेँ० णिय० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०-क०--ओरालि०ऋंगो०--पसत्था-पसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । पर०-उस्सा०-उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । अप्पस०-पज्जत्तापज्ज०-थिराथिर०-सुभासुभ०-दूभग०-दुस्सर०-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं तीइंदि०-चदुरिंदि० ।
- ६१. मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेत्राला जीव पश्चेन्द्रिय जाति, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी, त्रस, बादर श्रीर प्रत्येकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है। विद अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्थक्कगतिके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीको मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
- हर. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग और अनादेयका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। विदे अजवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। श्रीदारिक शरीर, तेजसशरीर, फार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। परघात, उच्छ्वास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। यदि द्वर्भ, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
- ६३. द्वीन्द्रिय जातिके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तस्पादिकासंहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, प्रत्येक. दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णबतुष्क, अपशस्त वर्णबतुष्क, अगुरुत्वयु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है को अनन्तगुणा अधिक होता है। परधात, उच्छ्वास और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अपशस्त विहायोगित, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अञ्चम, दुर्भग, दुःस्वर, यशःकीर्ति और अयशाःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध

- १४. पंचिदि० ज० वं० तिरिक्ख०--मणुसग०--झस्संटा०-झस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-पज्जतापज्ज०-थिरादिछ० सिया० | तं तु० | ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ग्रंगो०-पसत्थापसत्थवण्ण०४--अगु०---जप०--णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० | पर०-जस्सा०-आदाजजो० सिया० अणंतगुणब्भ० |
- ६५. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्प-सत्थ०४-थावरादि०४-अथिरादिपंच०णिर्य० अर्णतगुणब्भ०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-णिमि० णि०। तं तु०। एवमेदाओ ऍक्कमेंक्स्स । तं तु०।
- ६६. समचदु० ज० वं० तिरिक्ख०--मणुस०--झस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-थिरादिञ्जयुग० सिया०। तंतु०। पंचिदि०-तस०४ णियमा०। तंतु०। ओरास्रि०-

करता है,तो जचन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियजातिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

हिं. पद्मेन्द्रियजातिके जवन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्याति, मनुष्यगिति, छह संस्थान, छह संहतन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, पर्याप्त, अपर्याप्त और स्थिर आदि छहका कहाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। आदि। क्योदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, औदारिक आज्ञोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अपशस्त होता है। परचात, उच्छ्यास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

६५. श्रौदारिकरारीरके जयन्य श्रनुमागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यश्चगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, स्थायर श्रादि चार श्रौर श्रास्थर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। तेजसञ्चरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजपन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन तेजसशरीर श्रादि सब प्रकृतियोंका परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेवका नियमसे बन्ध करता है जो अधन्य श्रनुभागका का भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका का भी बन्ध करता है जो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका कन्ध करता है होते वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

६६. समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यख्यगित, मनुष्यगति, छह संहनन, दो ख्रानुपूर्वी, दो विहायोगित ख्रीर स्थिर ख्रादि छह युगलका कदाचित् बन्ध
करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका
भी बन्ध करता है। यदि ख्रजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप
होता है। पञ्चिन्द्रियजाति ख्रीर असचनुष्कका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य
अनुभागका भी बन्ध करता है ख्रीर ख्रजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य
अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। श्रीदारिकशरीर, तैजस-

१. ता० स्रा० प्रत्यो:-पंच० खिमि० खिय० इति पाठः ।

तेजा०-क०-ओरात्ति०ऋंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अग्रु०४—णिमि० णि० अणंतग्रुणब्भ० । उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं समचदुरभंगो—चदुसंठा०-पंचसंघ०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे० ।

- ६७. हुंड० ज० वं० तिरिक्ख०-मणुस०-पंचजादि झस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुगल० सिया०। तं तु० | ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४— अगु०-उप०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० | ओरालि० झंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० | एवं हुंड०भंगो अथिरादिपंच० | ओरालि० झंगो० तिरिक्खोघं |
- ६८. असंपत्त० ज० वं० दोगदि-चदुजादि--छस्संटाण--दोआणु०---दोविहा०-पज्जतापज्जत्त०--थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । सेसं हुंड०भंगो । अप्पसत्थ०४--उप० णिरयभंगो० ।
- ६६. पर० ज० वं० एइंदि०-ओराछि०--तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-अग्रु०-उप०-थावर०-मुहुम०--पज्जत्त०-साधार-दूभग०-अणादेँ०--अजस०-

शरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-चतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्राधिक होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थानके समान चार संस्थान, पाँच संहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेयकी मुख्यतासे सिक्कर्ष जानना चाहिए।

६७. हुण्डकसंस्थानके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो बिहायोगिति और त्रस-स्थावर आदि इस युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छहस्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्यरिर, प्रशस्त वर्णचनुष्क, अप्रशस्त वर्णचनुष्क, अगुरुलखु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परधात, उच्छ्यास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार हुण्डसंस्थानके समान छस्थिर आदि पाँचकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। औदारिक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य तिर्येक्षोंके समान है।

६न. श्रसम्प्राह्मस्पादिका संहतनके जवन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, चार जाति, छह संस्थान, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, पर्याप्त, अपर्याप्त श्रोर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जवन्य श्रनुभागका भी बन्व करता हैं और श्रजवन्य श्रनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि श्रजवन्य श्रनुभागका वन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतिल वृद्धिरूप होता है। शेव प्रकृतियोंका भन्न हुण्ड संस्थानके समान है। श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क श्रोर उपधातका भन्न नारिक्योंके समान है।

हह. परधातके जघाय अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णवतुष्क, अप्रशस्त वर्णवतुष्क, तिर्वञ्चगत्यानु-पूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूरुभ, पर्याप्त, साधारण, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । उस्सा० णि० । तं तु० । थिराथिर-सुभासुभ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं उस्सासं० ।

१००, आदाव० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०--ओराह्रि०--तेजा०-क०-हुंडसं०-पसत्थापसत्थ०४ --तिरिक्खाणु० -- अगु०४ -- थावर० -- वादर० -- पज्जत्त०--पत्ते०--दूभग-अणादेँ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० | थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० अणं-तगु० | एवं उज्जो० |

१०१. पसत्यवि० ज० बं० दोगदि०-चदुजादि०-छस्संटा० छस्संघ०-दोआणु'०-थिरादिछयुग० सिया०। तं तु०! ओरालि०-तेजा०--क०-ओरालि० झंगो०-पसत्या-पसत्य०४-अगु०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। छज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। तस०४ सिया०। तं तु०। एवं दुस्सर०। एवं चेव तस०। णवरि पज्जतापज्जत० सिया०। तं तु०।

निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्छ्वासका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उच्छ्वासकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१००. त्रातपके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, त्रोदा-रिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुजघु चतुष्क, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निक्ष जानना चाहिए।

१०१.प्रशस्त विहायोगितिके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गित, चार जाति, छह संस्थान, छह संहमन, दो आनुपूर्वी और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रश्लघु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। उस बतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। त्रस बतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका वन्ध करता है। इसी प्रकार दुःस्यर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्व जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्व जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्व जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह पर्याप्त और अपर्यातका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है।

१. आ॰ प्रतौ छस्तंठा॰ दोश्राग्रुः इति पाठः ।

- १०२. वादर० ज० बं० दोगदि-पंचजादि-छस्संग्र०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविद्दा०-तस-थावर--पज्जतापज्जत-पत्ते०-साधार०-थिरादिखयुग० सिया०। तं दु०। ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०अंगो०--पर०-उस्सा०--आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं पज्जत्त-पत्ते०। णवरि पडिपक्खा ण बंधदिं।
- १०३. सुहुम० ज० वं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग-अणादेँ०-अजस० णिय० । तं तु० । ओराल्लि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-णिमि० णिय० अजह० अणंतगुणब्भ० । पज्जतापज्जत-पत्तेय-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ० सिया० । तं तु० । एवं साधार० ।
- १०४. अपज्ज० ज० वं० दोगदि-पंचजादि-असंप०-दोआणु०-तस०-थावर-बादर-मुहुम--पत्तेय--साधार० सिया० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०--क०-पसत्थापसत्थ०४-
- १०२. बाद्र प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवालां जीव दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो बिहायोगिति, त्रस, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधु, उपघात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छवास, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार पर्याप्त और प्रत्येककी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता।
- १०३. सूच्मके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येश्वगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्हसंस्थान, तिर्येश्वगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो यह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुजधु, उपेधात और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रयप्ति, अपर्यात, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभका कदाचित् वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। इसी प्रकार साधारण्की मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए।

१०४. ऋपर्याप्तके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, श्रासम्प्राप्तास्य-पाटिका संहनन, दो आनुपूर्वी, त्रस, स्थावर, बादर, सूद्रम, प्रत्येक और साधारएका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मएशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. ऋग० प्रती ग्एं बंधदि इति पाटः :

अगु०~उप०--णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। हुंह०--अथिरादिपंच णिय०। तं तु०। ओरालि०श्रंगो० सिया० अणंतगुणब्भ०।

१०५. थिर० ज० बं० दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०तस-थावर-बादर-सुहुम-पत्तेय-साधारण-सुभगादिपंचयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०४-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०अंगो०आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ०। पज्जत० णि०। तं तु०। एवं सुभ-जस०।
णविर जस० सुहुम-साधारणं वज्ज। एवं सव्वअपज्जत्तयाणं सव्वविगलिंदि०--पुढ०आउ०--वणप्फिदिपत्तेय-वणप्फिदि-णियोदाणं च। तेष-वाऊणं पि तं चेव। णविर
तिरिक्खं०-तिरिक्खाणु०--णीचा० धुवं कादव्वं। मणुस०--मणुसाणु०--उच्चा० वज्ज।
णविर अप्पसत्थ०४-उप० णिय०। तं तु०। सव्वएइंदियाणं पि तं चेव। णविर
तिरिक्खगदि०३ तेष्ठ०भंगो। अप्पसत्थवण्ण० ज० वं० तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०

अगुरुलघु, उपघात श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्ड संस्थान श्रीर श्रस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। श्रीदारिक आङ्गोपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रिधिक होता है।

१०५. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्घ करनेवाला जीव दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूदम, प्रत्येक, साधा-रण ऋौर शुभ श्रादि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अअधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। औदारिक शरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, त्रातप श्रौर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पर्यातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य ऋनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शुभ और यशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यशःकीर्तिका सूचम और साधारणको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार अर्थात् तिर्येख अपर्याप्तकों के समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। तेजस्कायिक और वायु-कायिक जीवोंके भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रको ध्रुव करना चाहिए। तथा मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्यगोत्रको छोड्-कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। इतनी स्नौर विशेषता है कि अप्रशस्त वर्ण चतुष्क और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जबन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनु-भागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित ष्टिक्ष होता है। सब एकेन्द्रियों के भी यही सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्येष्ट्रगति-त्रिकका भङ्ग स्रग्निकाथिक जीवोंके समान है। तथा अप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुसागका मन्ध

१. ता० प्रतौ तिरिक्ख०३ इति पाठः ।

सिया । तं तु । मणुस ०-मणुसाणु ०-उज्जोव ० सिया ० अणंतगुणब्भ ० । पंचिदियादि-धुवियाओ णिय० अणंतगुणब्भ ० । अप्पसत्थगंध ०३—उप० णिय० । तं तु ० ।

१०६, मणुस०३ खवियाणं आहारदुगं तित्थय० ओघं। सेसं पंचिदियतिरिक्ख-भंगो।

१०७. देवेसु सत्तणं कम्माणं णिरयभंगो । तिरिक्ख० ज० बं० एइंदि०-अस्तंद्रा०-छस्तंघ०-दोविहा०-थावर०-धिरादिष्ठयुग० सिया० । तं तु० । पंचिदि०-ओरालि० अंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणव्भ० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४ – अगु०४ – बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणव्भ० । तिरि-क्वाणु० णि० । तं तु० । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि० तिरिक्खभंगो । णवरि एइंदियं आदाउज्जोवं थावरं च वज्ज । एवं मणुसाणु० ।

१०८. एइंदि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-दूभग-अणादे० णिय०। तं तु०। ओराल्ठि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-बाद्र-पज्जत०-

करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह अह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति आदि श्रुव प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि श्रीर उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह अह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है।

१०६. मनुष्यत्रिक्में क्षपक प्रकृतियाँ, आहारकद्विक श्रौर तीर्यंद्धर प्रकृतिका भङ्ग श्रोघके समान है। तथा शेप प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चीन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है।

१०७. देवों में सात कर्मोंका भक्त नारिकयों के समान है। तिर्यक्रगतिके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका कन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। पश्चोन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक गारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, गारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, गारीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, गारीर, पर्योक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यगतिका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत और स्थावरको छोड़कर यह सिन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी की मुख्यतासे सिन्निकर्य जानना चाहिए।

१०८. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, हुण्ड-संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग और अनादेयका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० । आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । थिराथिर-सुभा-सुभ-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । एवं थावर० ।

१०६. पंचिदि० ज० वं० तिरिक्ख०--हुंड०--असंप०--अप्पसत्थ०४--तिरि-क्खाणु०--उप०--अप्पसत्थ०--अथिरादिछ० णिय० अणंतग्रुणब्भ० । ओरालि०--तेजा०-क०--ओरालि० ग्रुंगो०--पसत्थ०४--अगु०३--तस०४--णिमि० णि० । तं तु० । उज्जोव० सिया० । तं तु० । एवं ओरालि० ग्रुंगो०-तस० ।

११०. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच णि० अणंतगुणब्भ०। एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थ०-थावर०-दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भ०। ओरालि०झंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया०। तं तु०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-पर०-उस्सा०-बादर-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० णि०। तं तु०। एवं

वह जयन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत वृद्धिस्प होता है। श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रप्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रप्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रप्रशस्तवर्ण चतुष्क, श्रप्राक्त खुचतुष्क, बादर, पर्यात श्रोर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। श्रातप श्रोर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। स्थिर, श्रस्थर, श्रुभ, अश्रुभ, यशा-कीर्ति श्रोर श्रयशाकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१०६. पश्चेन्द्रिय जातिके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यश्चगति, हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तासृपादिका संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यश्चगत्यामुपूर्वी, उपघात, श्रप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुण। श्रधिक होता है। श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुतधु- त्रिक, त्रस चतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिस्प होता है। उद्योतका क्दाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। उद्योतका क्दाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिस्प होता है। इसी प्रकार श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग और त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

११०. औदारिकरारीरके जघन्य अनुभागका वन्य करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहनन, अप्रशस्त विहायागित, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अौदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है। विज्ञस्ता है। विज्ञस्ता है। विज्ञस्ता है। विज्ञस्त वर्णचतुष्क, अगुक्तधु, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभाग

तेजा०-क०-पसत्य०४-अगु०३-उज्जो०-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमिणं ति । आदावं एवं चेव । णवरि एइंदि०-थावर० णिय० अणंतगुणब्भ० । चदुसंठा०-चदुसंघ०-दोविहा०-सुभग-दोसर०-अणार्दे० पढमपुढविभंगो ।

१११, हुंड० ज० बं० दोगदि-एइंदि०-इस्संघ०-दोआणु०--दोविहा०--थावर-थिरादिइयुग० सिया०। तं तु०। पंचिदि०--ओराल्डि० झंगो०--आदाउज्जो०--तस० सिया० अणंतगुणब्भ०। ओराल्डि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगु०। एवं हुंडभंगो दूभग--अणार्दे०। अप्पसत्थ०४-उप० णिरयभंगो।

११२, थिर० ज० बं० दोगदि-एइंदि०-छस्संद्या०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर०-सुभादिपंचयुग० सिया० । तं तु० । पंचि०--ओरालि०अंगो०--आदाउज्जो०--तस०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । ओरालि०--तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०४-बादर०--पज्जत्त--पत्ते०--णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । एवं अथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० । तित्थ० णिरयभंगो ।

का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ण जानना चाहिए। आतपकी मुख्यतासे भी सिन्न-कर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियज्ञाति और स्थावरका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। चार संस्थान, चार संहनन, दो विहायोगित, सुभग, दो स्वर और अनादेयका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है।

१११. हुण्डसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रिय जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थायर और स्थिर आदि छह युगलका कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और असका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शरीर, तेजसशरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अपुरस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वधु चतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग, अनादेय की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष नारिकरोंके समान है।

११२ स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर और शुआदि पाँच युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है भीर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। पक्षेन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, त्रस और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, अश्चभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। तीर्थङ्कर

- ११३. भवण०-वाणर्वेतर-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तरणं कम्माणं देवोघं। तिरिक्खग० ज० बं० दोजादि--इस्संद्याण--इस्संघ०--दोविहा०--तस-थावर--थिरादिं-इयुग० सिया०। तं तु०। ओरालि०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४--बादर--पज्जत-पत्ते०--णिमि० णि० अणंतगु०। ओरालि० अंगो०---आदाजज्जो० सिया० अणंतगु०। तिरिक्खाणु० णिय०। तं तु०। एवं तिरिक्खाणु०।
- ११४. मणुसग० ज० बं० तिरिक्खगदिभंगो । णवरि पंचि०-मणुसाणु०-तस० णि० । तं तु० । एवं मणुसाणु० । एइंदि०-थावर० देवोघं ।
- ११५. पंचिदि० ज० बं० दोगदि-छस्संठा०--छस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०-थिरादिद्ययुग० सिया० । तं तु० । ओरालि०--तेजा०--क०--ओरालि०झंगो०--पसत्था-पसत्थ०४-अगु०४-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । उज्जो० सिया०

प्रकृतिका भङ्ग नारिकयों के समान है।

११३. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशान करपके देवोंमें सात कर्मोंका भक्ष सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो घह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

११४. मनुष्यगित के जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यक्षगितिके समान है। इतनी विशेषता है कि पक्षे न्त्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और असका नियमसे बन्ध होता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यता सिन्नकर्ष जानना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति और स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवों के समान है।

११५. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, छह संस्थान, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है और श्रजघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्यारीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचनुष्क, श्रमशस्त वर्णचनुष्क, श्रमशस्त वर्णचनुष्क, श्रमशस्त वर्णचनुष्क, श्रमशस्त वर्णचनुष्क, श्रमुक्तमु चनुष्क, श्रमशस्त वर्णचनुष्क, श्रमशस्त वर्णचन्त होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमनतगुणा श्रमिक होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमनतगुणा श्रमिक होता है। उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रमनतगुणा श्रमिक

रे. ता० ग्रा० प्रस्योः थावरादि इति पाठः।

अणंतग्रणब्भ० | तस० णि० | तं तु० | एवं पंचिदिय०भंगो चदुसंठा०--चदुसंघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदेँ० |

११६. हुंड० ज० बं० दोगदि-दोजादि-छस्संघ०-दोआणु०दोविहा०-तस-थावर-थिरादिञ्चयुग० सिया० । तं तु० । सेसं तिरिक्खगदिभंगो । एवं हुंड०भंगो दूभग-अणादेँ० । एवं चेव थिराथिर--सुभासुभ--जस०-अजस० । णवरि तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० ।

११७. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४—तिरिक्खाणु०-उप०-थावर--अथिरादिपंच० णि० अणंतगुणब्भ० । तेजा०--क०-पसत्थ०४—अगु०३— बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० णिय० । तं तु० । आदाउज्जो० सिया० । तं तु० । एवं एदाओ ऍक्कपेंक्कस्स । तं तु० ।

११८. ओरास्त्रि०श्चंगो० ज० वं० तिरिवस्व०-पंचिदि०-ओरास्त्रि०-तेजा०-क०-हुंडसंठा०--असंप०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--अग्रु०४--अप्पसत्थ०---तस०४-

होता है। त्रसका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह ज्ञघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अज्ञघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अज्ञघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। इसी प्रकार पञ्जोन्द्रिय जातिके समान चार संस्थान, चार संहत्तन, दो बिहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयकी सुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

११६. हुण्ड संस्थानके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो जाति, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस, स्थावर और स्थिर आदि छह युगलका करावित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। रोष प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यक्रगितिके समान है। इस प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग और अनादेय की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार स्थिर, अस्थिर, श्रुभ, अशुभ, यशाकीर्ति और अयशाकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तीर्थेद्वर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुए॥ अधिक होता है।

११७ स्रोदारिक शरीरके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, एकेन्द्रिय-जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर श्रीर अस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजबन्य अनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आतप श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है तो जवन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभाग का बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियों का परस्पर सिक्तकर्ष जानना चाहिए,किन्तु वह उसी प्रकारका होता है।

११८. श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जचन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, पश्चे-न्द्रिय जाति, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कामंणशरीर, हुण्डसंस्थान, श्रसम्प्राप्तास्रपाटिका संहतन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रागत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, अप्रशस्त विद्यायो- अथिरादिञ्च०-णिमि० णिय० अणंतगुणब्भ० | उज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० |

११६, सणक्कुमार यात्र सहस्सार ति पढमपुढविभंगो । आणद यात्र णव-गेवज्जा ति सत्तण्णं कम्माणं देवोघं। मणुस० ज० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०झंगो०--पसत्थ०४-मणुसाणु०--अगु०३-तस४-णिमि० णि० । तं तु० । हुंद०-असंप०-अप्पसत्थ०४-उप०अप्पसत्थित०-अथिरादिञ्च० णि० अणंतगुणब्भ०। एवं मणुसगदिभंगो पंचिदियादि तं तु० पदिदाणं सञ्चाणं।

१२०. समचदु० ज० बं० मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-औरालि० स्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-तस०४-णिमि० अणंतगुणव्भ०। इस्संघ०-दोविहा०-थिरादिळयुग० सिया०। तं तु०। एवं पंचसंठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादिळयुग० सिया०। तंत्र०। एवं पंचसंठा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादि-छयुग०। णविर तिणियुग०-तित्थय० सिया० अणंतगुणव्भ०। अप्पसत्थ०४-जप०-तित्थयरं च देवोघं।

१२१. अणुदिस याव सन्वद्व ति सत्तपणं कम्माणं आणदभंगो । णवरि थीण-गिद्धि३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-णीचा० वज्ज । मणुस० ज० वं०

गति, त्रसचतुष्क, श्रस्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुण। श्रिषक होता है। उद्योतका कदाचिन बन्ध करता है जो अनन्तगुण। श्रिषक होता है।

११६. सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नौ प्रैवेयक तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। मतुष्यगतिके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला कीव पद्मोन्द्रियजाति, औदारिकशारीर, तैजसरशारीर, कार्मणशारीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिष्ठप होता है। हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्पादिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात, अप्रशस्त विहायोगिति और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगितके समान पञ्चोन्द्रय जाति आदि 'तं तु' पतित सब प्रकृतियोंकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष कहना चाहिए।

१२०. समचतुरल संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगित, पञ्चीन्द्रिय जाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्धी, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस चतुष्क श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इह संहनन, दो विहायोगित स्थौर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। श्रीर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है,तो षह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। इसी प्रकार पाँच संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित स्थौर स्थिर आदि छह युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्तवर्ण चतुष्क, उपघात और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंके इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे जैसा कह आये हैं, वैसा है।

१२१. अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सात कर्मीका भन्न आज़त करमके समान है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रक, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी सार् स्वीतेष्य वर्षुं सकवेद आणदभंगो । णवरि अप्पसत्य०४-उप०-अधिर०-असुभ०-अतस० णिय० अणंतगुणब्भ० । समचदु०-वज्जरि०-पसत्यवि० - सुभग - सुस्सर० - आर्दे० णि० । तं तु० ।
तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं तं तु० पदिदाओ ऍक्तमेक्कस्स । तं तु० । अप्पसत्य०४उप० देवोघं ।

१२२. थिर० ज० वं० सुभासुभ-जस०-अजस० सिया०। तं तु०। तित्थय० सिया० अर्णतगुणव्भ०। एवं तिण्णियुग०।

१२३. पंचिदि०--तस०२-पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि०-ओराल्यिका०-कोधादि०४-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०--मिच्छादि०-मदि०-सुद०-विभंग०-असंजद०-सण्णि-असण्णि-आहारग ति ओधभंगो । णवरि किंचि विसेसो णादव्वो । ओराल्थिय-का० मणुसोघं । णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० तिरिक्खोधं । कोधे कोधसंज० ज० बं० तिण्णं संज० णि० जहण्णा । माणे माणसंज० ज० बं०ै दोसंज० णि० जहण्णा ।

स्थार नीचगात्रका छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। मनुष्यगतिके जधन्य अनुभागका बन्ध करने वाले देवका मङ्ग आनत कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। समचतुरक्ष संस्थान, वज्रपेभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगिति, सुभग, सुस्वर और आदेयका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। तीथेंद्धर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जधन्य अनुभागका का भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह जधन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। इसी प्रकार 'तं तु' पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका यथासम्भव बन्ध करता है। जो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है जोर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है जोर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है जोर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। अपशस्त वर्ष चतुष्क और उपधात प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जैसा इनकी मुख्यतासे सामान्य देवों के कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए।

१२२. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थकुर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्त-गुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तीन युगलोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१२३. पञ्चोन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगीं, श्रोदा-रिककाययोगी, कोधादि चार कषायवाले, चलुदर्शनी, श्रचलुदर्शनी, भव्य, मिध्यादृष्टि, मत्यज्ञानी, श्रुतज्ञानी, विभक्षज्ञानी, श्रसंयत, संज्ञी, श्रसंज्ञी श्रोर श्राहारक जीवोंके श्रोघके समान भक्ष है। इतनी विशेषता है कि कुछ विशेषता जाननी चाहिए। श्रोदारिककाययोगी जीवोंमें सामान्य मनुष्यों के समान भक्ष है। इतनी विशेषता है कि यहाँ तिर्यञ्चगति श्रोर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए। कोधकषायमें कोध संज्वलनके जघन्य श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलनोंका

ता• प्रतौ तिरिक्ख॰ तिरिक्खोधं इति पाठः ।
 ता• प्रतौ माण्यसंज० बं॰ इति पाठः ।

मायाए मायसंज० ज० वं० लोभसंज० णि० जहण्णा । सेसाणं मोहविसेसो णादव्वो ।

१२४. ओरालियमिस्से सत्तणणं कम्माणं देवोघं। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु० ओघं। मणुस०-पंचजादि-छस्संठाण-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तस-थावरादि०४— सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेँ०-अणादे० पंचिदि०तिरि०अपज्ज०भंगो। देवग० ज० बं० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४—पसत्थ०-तस०४-अथर-अस्भ-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-अजस०-णिमि० णिय० अणंतगुणव्भ०। वेजव्बि०-वेजव्बि० श्रंगो०--देवाणु० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया०। तं तु०। एवं चदुपगदीश्रो०। ओरालिय-तेजइगादीओ ओरालि०श्रंगो०-पर०-जस्सा०-आदाजज्जो० पंचिदि०तिरि०-अपज्जनभंगो।

१२५. अप्पसत्थवण्ण० जं० बं० देवगदि-पसत्थपगदीणं णिय० अणंतगुणब्भ० । अप्पसत्थगंघ०३—उप० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । थिरादि-

नियमसे जघन्य ऋनुभागबन्ध करता है। मानकधायमें मानसंज्ञलनका जघन्य ऋनुभागबन्ध करने-बाला जीव दो संज्ञ्ञलनोंका नियमसे जघन्य ऋनुभागबन्ध करता है। मायाकषायमें माया संज्ञ्ञलन-का जघन्य ऋनुभागबन्ध करनेवाला जीव लोभ संज्ञ्ञलनका नियमसे जघन्य ऋनुभागबन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका मोहके समान विशेष जानना चाहिए।

१२४. श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मीका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यञ्चगति श्रौर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग श्रोचके समान है। मनुष्यगति, पाँच जाति, छइ संस्थान, छह संहत्तन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रस-स्थावर त्रादि चार युगल, सुमग, दुर्भग, हुस्वर, दुःस्वर, श्रादेय और अनादेयकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जिस प्रकार इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे पद्धोन्द्रिय तिर्येख्न अपर्याप्तकोंके कह ब्राये हैं , उस प्रकार जानना चाहिए । देवगति के जघन्य अनुभागका बन्य करनेयाला जीव पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतु-रस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशः कीर्ति और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरण अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानु-पूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य ऋनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य श्रातुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्राज्ञघन्य श्रातुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् वन्य करता है। यदि बन्ध करता है तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर आदि चार प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। श्रीदारिकशरीर श्रीर तैजसरारीर क्रादि तथा श्रीदारिक त्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छवास, श्रातप श्रीर उद्योतका भङ्ग पश्चीन्द्रय तिर्वेश्च अपर्याप्तकोंके समान है।

१२५. श्रप्रशस्त वर्णके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगित श्रादि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध श्रादि तीन श्रोर उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थंड्स प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक

तिण्णियुग० पंचिदि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । णवरि तिरिवख०--देवगदि-वेउव्व०-ओरालि०-वेउव्वि०श्चंगो०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तित्थ० सिया० अणंत-गुणब्भ०।

१२६. वेडिव्ययकायजोगीसु सत्तण्णं कम्माणं देवभंगो। तिरिक्तव०-तिरिक्ताणु० णिरयोधं। मणुस०--मणुसाणु० देवोघभंगो। एइंदि०--थावर० देवोघभंगो। णविरि तिरिक्तव०-तिरिक्ताणु० णिय० अणंतगुण्णभ०। पंचिदि०--ओरालि० अंगो०--तस० णिरयोधं। ओरालि० ज० बं० तिरिक्तव०-हुंड०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्ताणु०-उप०-अथिरादिपंच० णि० अणंतगुण्णभ०। एइंदि०--असंप०--अप्पसत्थ०--थावर--दुस्सर० सिया० अणंतगुण्णभ०। पंचिदि०--ओरालि०अंगो०--आदाउज्जो०--तस० सिया०। तं तु०। तेजा-क०-पसत्थ०४-अगु०३--बादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि०। तं तु०। एवं तेजइगादीणं ऍकमेंकस्स। तं तु०। सेसाणं देवोधं। एवं वेडिव्यमि०।

१२७. आहार०-आहारमि० सत्ताणं कम्माणं अणुदिसभंगो । णवरि अहक०

होता है। स्थिर आदि तीन युगलोंका भङ्ग पञ्चिन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तिर्यञ्चगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और तीर्यङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१२६. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यक्र-गति स्त्रौर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है। मनुष्यगति और मनुष्य-गस्यातुपूर्वीका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। एकेन्द्रियजाति स्थीर स्थानरका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि यह तिर्यञ्चगति श्रीर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पख्रोन्द्रिय जाति, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसका भद्ध सामान्य नारिकयोंके समान है। श्रीदारिक शरीरके जबन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येश्चगति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, तिर्येश्चगत्यानुपूर्वी, उपघात और श्रास्थिर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रधिक होता है। एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तासृपाटिका संहत्तन, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रीर दुःस्वरका कदादित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पक्के न्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर त्रादि प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्त इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रानुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्राज्यन्य श्रानुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्राज्यन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भन्न सामान्य देवोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

१२७ ब्राहारककाययोगी और ब्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भक्त अनुदिशके

वज्ज । देवगदि० जं० वं० पंचि०-वेउव्वि०-तेजा०-फ०-समचदु०-वेउव्वि०ग्रंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर- असुभ-अजस० णिय० अणंतगुणब्भ० । तित्थ० सिया०।तं तु० । एवं देवगदिआदीओ तप्पाओँगाओ तित्थयरं च ऍक्कमेंक्कस्स ।तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप० ओग्नं।

१२८. थिर० ज० बं० देवगदिसंजुत्ताणं पसत्थापसत्थाणं पगदीणं णिय० अणंत-गुणब्भ० । सुभासुभ-जस०-अजस० सिया० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं अथिर-सुभ-असुभ-जस०-अजस० ।

१२६. कम्मइ० सत्ताणं कम्माणं देवोघभंगो । तिरिक्ख०-मणुसग०-चढुजादि-इस्संठा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिळयुग० ओघं । देवगदि४ ओरालियमिस्स०भंगो । पंचिदि० ज० बं० तिरि०---हुंड०-असंप०--अप्पसत्य०४--

समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कषायोंको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए। देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पक्रोन्द्रियजाति, वैक्रियिकशारीर, तैजसशारीर,कार्मण्यारीर, समचतुरक्रसंस्थान, वैक्रियिक आक्रोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुरुक, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुनिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थक्कर पक्षतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। विश्व अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तत्प्रायोग्य देवगति आदि और तीर्थक्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेषका यथासम्भव बन्ध करता है। वह जघन्य अनुभागका बन्ध करता है और अजघन्य अनुबन्ध भी करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपद्यातका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपद्यातका धन्य करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपद्यातका धन्य करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपद्यातका धन्य करता है।

१२८. स्थिर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगति संयुक्त प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित दृद्धिरूप होता है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशः-कीर्ति और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१२६. कार्मणकाययोगी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। तिर्यक्रगति, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर आदि चार और स्थिर आदि छह युगलका भङ्ग ओघके समान है। देवगति चतुष्कका भङ्ग औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। पञ्चोन्द्रिय जातिके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव

तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० | ओरात्ति-यादि० णि० | तं तु० | उज्जो० सिया० | तं तु० | एवं ओराठि०श्रंगो न्तस० |

१३०. ओरालि० ज० बं० तिरिक्ख०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-जप०-अथिरादिपंच० णिय० अणंतगुणब्भ० । एइंदि०-अप्पसत्थ०-थावरै--दुस्सर० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिदि०-ओरालि० श्रंगो०-आदाजजो०-तस०४ सिया० । तं तु० । तेजा०--क०--पसत्थ०४-अगु०३--णिमि० णि० । तं तु० । एवमेदाओ ऍक-मेंकस्स । तं तु० ।

१३१. तित्थ॰ ज॰ बं॰ मणुसमदिपंच॰ सिया॰ अणंतगुणब्भ॰ । देवमदि०४ सिया॰ । तं तु॰ । पंचिंदियादि॰ णि॰ अणंतगुणब्भ॰ ।

तिर्यक्चगित, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्यादिका संहनन, अप्रशस्त वर्णं चतुष्क, तिर्येक्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति, अस्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिक शरीर आदिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप होता है। इसी प्रकार औदारिक आङ्गोपाङ्ग और अस प्रकृतिकी मुख्यता से सिन्निकर्ष जानना चाहिए।

१३०. श्रीदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्चगति, हुण्ड संस्थान, श्राशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, उपघात श्रीर श्रस्थिर श्रादि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। एकेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर श्रीर दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा श्रिष्ठिक होता है। पद्धोन्द्रिय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रीर त्रस चतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि धन्ध करता है। यदि धन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। त्रीजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रामुक्तघुत्रिक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन सब प्रकृतियोंका परस्पर सिक्रकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इन्हींमेंसे किसी एकके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह अपन्य करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि

१३१. तीर्थं क्कर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगित पञ्चकका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। देवगितचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बुद्धिक्य होता है। पक्चेन्द्रियजाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है।

१. आ॰ प्रती श्रोरालि॰भंगो॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती श्रप्पसत्य॰श्रत्पसत्य॰ (१) यावर इति पाठः ।

- १३२. इत्थिवे० सत्ताणं कम्माणं ओषं । णवरि कोधसंज० ज० बं० तिण्णि-संज०-पुरिस० णिय० बं० णियमा जहण्णौ । चदुगदि-चदुजादि-छस्संठाण--छस्संघं०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० पंचिदि०तिरि०भंगो ।
- १३३. पंचि० ज० बं० णिरयगदि-हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्प-सत्थवि०-अथिरादिछ० णि० अणंतगुणब्भ० | वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि० त्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३--तस०४-णिमि० णि० | तं तु० | एवं [वेउव्वि०-] वेउव्वि०- श्रंगो०-तसै० | ओरालि०-आदाउज्जो० सोधम्मभंगो |
- १३४. ओरालि० ग्रंगो० ज० वं० तिरिवल०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-असंप०-पसत्थापसत्थ०४ —ितिरिक्लाणु० - अग्र०-उप० - तस० - बाद्र० -पत्ते० - अथिरादिपंच०-णिमि० णि० अणंतग्रणस्भ० । वेइंदि०--पंचिदि०--पर०-उस्सा०-उज्जो०--अप्पसत्थ०-पज्जत्तापज्ज०-दुस्सर० सिया० अणंतग्रणस्भ० ।

१३५. तेजा०-कम्मइ० ओघं। णवरि [ओरालियद्यंगो०-] असंपत्तं वज्ज।

३२. स्रीवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि कोध संज्वलनके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन श्रोर पुरुषवेदका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जघन्य होता है। चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संह्वन, चार श्रानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर श्रादि चार श्रोर स्थिर श्रादि छह युगलका भङ्ग पञ्चोन्द्रिय तियञ्चोंके समान है।

१३३. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपचात, अप्रशस्त विहायोगित श्रीर श्रिस्थर श्रादि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। श्रीदारिकशरीर, श्रातप श्रीर उद्योतका भंग सौधर्मकरूपके समान है।

१३४. श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, श्रासम्प्राप्तासुपाटिका संहनन, प्रशस्त-वर्ण्वतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्षगस्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, श्रस्थिर श्रादि पाँच श्रोर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। ह्योन्द्रिय जाति, पञ्चोन्द्रय जाति, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगित, पर्याप्त, श्रपर्याप्त श्रीर दुःस्वरका कदाचिन् बन्ध करता है जो श्रानन्तगुणा श्रधिक होता है।

१३५. तेजसरारीर और कार्मणरारीरका भङ्ग खोचके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिक ब्राङ्गोपांग श्रीर श्रसम्प्राप्तास्पाटिका संहतनको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए।

१. ता॰ प्रती कोधसंब॰ पुरिस॰ गिय॰ बंध॰ गियमो॰ (मा॰) नहण्या इति पाठः। २ ता॰ श्रा॰ प्रत्योः –जादि चदुसंठाणं श्रोरालि॰ श्रंगो॰ छस्संब॰ इति पाठः। ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः तस॰ ४ इति पाठः।

पंचिदि०-ओरालि०-वेडिव्य-०वेडिव्यि०श्चंगो०-आदाउज्जो०-[तस०] सिया०। तं तु०। एइंदि॰-थावर० सिया० अणंतगुणब्र्यं०। कम्मइगादि० णिमि० णि०। तं तु०। एवं तेजइगादि० अण्णमण्णस्स । तं तु०। आहारदुग-अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थय० ओघभंगो०।

१३६, पुरिसेसु सत्तप्णं कम्माणं इत्थिभंगो । सेसं ओधं। णवरि तिरिक्खगदिदु० परियत्तमाणिमा कादन्वा ।

१३७. णबुंसगे सत्तक्णं कम्माणं इत्थिवेदभंगो । चढुगदि-चढुजादि-छस्संठा०-इस्संघ०-चढुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयुग० ओघं । पंचिंदि० ज० बं० दोगदि-असंप०-दोआणु० सिया० अणंतग्रुणब्भ० | दोसरीर-दोत्रंगो०-उज्जो० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०--पसत्थ०४-अगु०३-तस०४ [--णिमि०] णि० । तं तु० ।

पञ्चोन्द्रयजाति, श्रोदारिकशारीर, वैक्रियिकशारीर, वैक्रियिकशाङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत और असका कदाचित् वन्ध करता है। किन्तु वह जयन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। एकेन्द्रियजाति श्रोर स्थाधरका कदाचित् वन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। कार्मणशारीर आदि श्रोर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तैजसशरीर आदिका परस्पर सिन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इनमेंसे किसी एकके जधन्य अनुभागका बन्ध करना है और अजधन्य अनुभागका जीव शेवका नियमसे बन्ध करता है जो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। आहा स्कद्धिक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है।

१३६. पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भंग खीवेदी जीवोंके समान हैं। शेष भंग श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतिद्विककी परिवर्तमान प्रकृतियोंमें परिगणना करनी चाहिए।

१३७. नपुंसकवेदी जीवों सं सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार त्रानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावर त्रादि चार क्रोर स्थिर त्रादि छह युगलका भङ्ग श्रोधके समान है। पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, असम्प्राप्तास्पाटिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित बन्ध करता है जो श्रनन्तगुणा अधिक होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है । यदि श्रजधन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुक्क, अगुरुतधुत्रिक, त्रस चतुक्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है।

१, ता॰ श्रा॰ प्रत्यो: सिया॰ तं तु॰ श्रर्गतगुर्गाच्म० इति पाठः।

[हुंड॰-] अप्पसत्थत्रण्ण०४-उप० [-अप्पसत्थ०-] अथिरादिञ्च० णि० अणंत-गुणब्भ० । एवं तेजइगादि० । एवं ओरास्तिगादीणं पि सिया० । तं तु० । ओरास्ति० ओरास्ति०श्चंगो० सिया० । सेसं मणुसभंगो । [णवरि आदवं तिरिक्खोघं] ।

१३८. अवगदवे० पंचणा०-चढुदंसणा०-पंचंतरा० णि० बं० णि० जहण्णा। चढुसंज० ओर्घ।

१३६. आभि०-सुद्द०-ओधि० सत्तण्णं कम्माणं ओघं। मणुसग० ज० वं० पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचढु०--ओरालि०झंगो०-वज्जरि०--पसत्थ०४-मणु-साणु०-अग्र०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि० णि०। तं तु०। अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णिय० अणंतगुणब्भ०। एवं मणुसगदि-चढुक०।

१४०, देवगदि ज० बं० मणुसमंगो । णवरि तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं देवगदिचदुकस्स वि ।

हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित और अस्थिर आदि छहका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नियमसे तं तु-पितत तैजस-शरीर आदिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार सिया तं तु-पितत औदारिक-शरीर आदिकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु इन्हींमेंसे किसी एकके जघन्य अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव शेषका कदाचित् बन्ध करता है। जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत हि छित्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीर के जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव औदारिकशाङ्गीपाङ्गका कदाचित् बन्ध करता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। किन्तु आतपका भङ्ग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है।

१३८. अपगतवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे जयन्य होता है। तात्पर्य यह है कि इन चौदद प्रकृतियोंमें से किसी एकके जयन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव शेवका नियमसे जवन्य श्रनुभागवन्य करता है। चार संख्वलनका भक्त श्रोधके समान है।

१३६. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोमें सात कमोंका भङ्ग ओधके समान है। मनुष्यगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पश्चिन्त्रियजाति, औदारिक शारीर, तेजसरारीर, कार्मणशरीर, समचनुरस्त संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वश्चर्यमनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विद्वायोगित, असचनुष्क, मुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात, अस्थिर, अशुभ और अयश्वभितिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी आदि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१४०. देवगतिके जघन्य अनुभागका घन्य करनेवाले जीवका भङ्ग मनुष्यके समान है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्कर प्रकृतिका कराचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और आजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धित्व होता है। इसी प्रकार देवगत्यानु

१४१, पंचिदि० ज० बं० दोगिद-दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्य० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-समचढु०-पसत्थवण्ण०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आर्दे०-णिमि० णि० । तं तु० । अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस० णि० अर्णतगुणब्भ० । एवं पंचिदिय०भंगो तेजइगादीणं पसत्थाणं ।

१४२. तित्थ० ज० वं० देवमदि० णि० । तं तु० । आहारदुर्ग-अप्पसत्थ०४-उप० ओघं ।

१४३. थिर० ज० बं० दोगदि-दोसरीर० सिया० अणंतगुणब्भ०। पंचिदि-यादिक णिक अणंतगुणब्भ०। दोयुग० सिया०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंत-गुणब्भ०। एवं तिण्णियुग०। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खइगस०। णवरि खइगे मणुसगदिपंचग० जह० तित्थ० सिया०। तं तु०।

पूर्वी चतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१४१. पञ्चेन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्चभनाराच संहनन, दो आनुपूर्जी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुर्क, अगुरूलघुनिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुर्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जबन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुर्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशाकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्त-गुणा अधिक होता है। इसी प्रकार पञ्चोन्द्रयजातिके समान तैजसशरीर आदि प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्य जानना चाहिए।

१४२. तीर्थंद्धर प्रकृतिके जघन्य श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव देवगतिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रानुभागका भी बन्ध करता है और श्राजघन्य श्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्राजघन्य त्रानुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। श्राहारकद्विक, श्राप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपधातका भंग श्रोघ के समान है।

१४३. स्थिर अर्द्धतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गित और दो शरीरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पक्षेन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। दो युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह जबन्य अनुभागका भी बन्ध करता और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका चन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। तीर्थक्कर अकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तीन युगलोंका भक्न है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनियोधिकज्ञानी आदि जीवोंके समान अवधिदर्शनी, सम्यादृष्टि और क्षायिकसम्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यादृष्टि जीवोंमें मनुष्यगति पञ्चकके ज्ञान्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह ज्ञान्य अनुभागका भी बन्ध करता है और

१, ता॰ प्रतौ तेजइगादीणं पसं (स) त्थाणं। तित्थ॰, त्या॰ प्रतौ तेजइगादीणं तित्थ॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ शि॰। तित्थ स्राहारदुगुं॰ (गं), स्रा॰ प्रतौ शि॰ तं तु॰ स्राहारदुगं इति पाठः।

१४४. मणपञ्जवे सत्तप्णं कम्माणं ओधिभंगो०। णवरि अडकसायं वज्ज। णाम० ओधिभंगो। णवरि मणुसगदिपंचगं वज्ज। तित्य० ओघं। एवं संजद-सामाइ०-खेदो०-परिहार०-संजदासंजद०। सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो।

१४५. किण्णाए सत्तरणं कम्माणं णिरयभंगो । सेसं णबुंसगभंगो । णील-काऊणं सत्तरणं कम्माणं णिरयभंगो । णिरयगदि० ज० ओघं० । पंचिदि० ज० बं० तिरिक्त०-हुंड० णि० अणंतगु० । ओरालि० णि० । तं तु० [सेसं] णिरयदंडओ भाणिदच्चओं । वेखिव० जं० बं० णिरयगदिअद्वावीसं अणंतगुणब्भ० । वेखिव०- अंगो० णि० । तं तु० । एवं वेखिवय०अंगो० । सेसं किण्णभंगो० । काऊ० तित्थ० णिरयभंगो ।

१४६. तेऊए सत्तप्णं कम्माणं देवगिदभंगो। णविर कोधसंज० ज० बं० तिष्णि-संज०-पंचणोक्क० णि०। तं तु०। दोगिदि-दोजिदि--छस्संटा०-छस्संघ०--दोआणु०-

श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है।

१४४- मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सात कर्मीका मङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कवायोंको छोड़कर यह सिन्नकर्ष कहना चाहिए। नामकर्मका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिपञ्चकको छोड़कर यह सिन्नकर्ष कहना चाहिए। तीर्षद्धर प्रकृतिका भङ्ग छोचके समान है। इसी प्रकार संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार- विशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। सूच्मसाम्परायसंयत जीवोंके अपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है।

१४४. कृष्ण लेश्यामें सात कर्मीका भंग नारिकयों के समान है। रोप भङ्ग नपु'सकों के समान है। नील और कापोत लेश्यामें सात कर्मीका भङ्ग नारिकयों के समान है। नरकगित के जघन्य अनुभागके बन्धक जीयोंका भङ्ग श्रोघके समान है। पञ्चोन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगित और हुण्डसंस्थानका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। औदारिकशरीरका नियमसे बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है । यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिसप होता है। शेष प्रकृतियोंका भंग नरकदण्डक समान कहना चाहिए। वैकियिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगित आदि अद्वाहंस प्रकृतियोंका बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थानपतित वृद्धिसप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गका भी भङ्ग जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग कृष्णालेश्याके समान है। कापोतलेश्वामें तीर्थेङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

१४६. पीत लेश्यामें सात कर्मोंका भंग देवगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन संज्वलन और पाँच नोकषायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु यह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित,

१. ऋा॰ प्रतौ भाषादःधाऋो इति पाठः ।

[दोविहा०-] तस-थावर-तिण्णियुग० सोधम्मभंगो । देवगदि० ज० बं० पंचिदियादि णि० अणंतगुणब्भ० । वेडिव्व०-वेडिव्वण्य । अग्राहि०-वेडिव्वण्य - विद्याविद्यात्व विद्यात्व । विद्यादितिण्णियुगलाणं विद्यात्व विद्यात्व । विद्यात्व विद्य विद्यात्व विद्य विद्यात्व विद्यात्व विद्यात्व विद्यात्व विद्यात्व विद्यात्व विद्य विद्यात्व विद्य

१४७. सुकाए सत्तण्णं क० ओघं। देवगर्दि०४-आहारदुगं पम्माए भंगो। सेसाणमाणदभंगो। अप्पसत्थ०४--उप० ओघं। अब्भव० मदि०भंगो। णवरि अप्पसत्थ-वण्ण० ज० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० सिया०। तंतु०। दोगदि-दोसरीर-दोस्रंगो०-

त्रस, स्थावर श्रीर तीन युगलका संग सीधर्मकल्पके समान है। देवगतिके जधन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चोन्द्रिय जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है जो अनुनत्तगुणा अधिक होता है। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी वन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोप।ङ्ग श्रौर देवगत्यातुपूर्वीका भङ्ग जानना चाहिए। श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्म खशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघुत्रिक, ऋगतप, उद्योत, बादर, पर्याप्त प्रत्येक, निर्माण और तीर्थद्वरका भङ्ग सौधर्म करपके समान है। स्थिर छ।दि तीन युगलके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गतिका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो वह जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। देवगति चतुष्कका कदा-चित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। इसका शेष भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। आहारकद्विक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका भन्न मनुष्योंके समान है। इसी प्रकार पद्म-लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चीन्द्रय जाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, त्रस श्रीर सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे वॅथनेवाली सत्र प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। तथा तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग देवोंके समान है।

१४० शुक्तलेश्यामें सात कर्मीका भङ्ग श्रोघके समान है। देवगति चार श्रोर श्राहारक दिकका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। श्रेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रानतकल्पके समान है। श्रप्रशस्त वर्ण चतुष्क श्रीर उपघातका भङ्ग श्रोघके समान है। श्रभव्योंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानियों के समान है। इतनी विशेषता है कि श्रप्रशस्त वर्णके जघन्य श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति श्रीर तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका कदाचिन बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह अधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह अह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। दो गित, दो श्रीर, दो

रे. ता॰ आ॰ प्रत्योः पिमि॰ पि॰ तं तु॰ सोधम्मभंगो इति पाठः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः श्रोधं । पामगदि देवगदि॰ इति पाठः ।

वज्जरि०-दोआणु०- ज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । पंचिदि०-तेजा०-क०-समचहु०-पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिञ्ज०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ०। अण्यसत्थगंध३-उप० णि० । तं तु० ।

१४८, वेदग०-उबसम० श्रीधिदंसणिभंगो। अष्पसत्थ०४-उप० श्रोघं। सासा० मिद०भंगो। मिच्छतं वज्जा। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० श्रोघं। दोगदि-पंचसंटा०-पंच-संघ०-दोशाणु०-दोविहा०-थिरादिश्चयुग० श्रोघं। णविर पज्जत्तसंजुत्तं कादव्वं। पंचिदि० ज० बं० तिरिक्खगदिश्रादिं० णि० अणंतग्रुणब्भ०। श्रोरालिगादिसव्वसंकिलिहाणं णि०। तं तु०। उज्जो० सिया०। तं तु०। एवं मणुस०-मणुसाणु०। तं तु०। वेउ-विय० ज० बं० पंचिदियादि० णि० अणंतगुणब्भ०। तिण्णियुगल् सिया०। तं तु०।

आंगोपांग, वज्जर्यभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चोद्धियज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त
वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका
नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। अप्रशस्त गन्ध आदि तीन और उपघातका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य
अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजवन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान
पतित बृद्धिस्प होता है।

१४८. वेदकसम्यग्दृष्टि और उपश्मसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ऋवधिद्शीनी जीवोंके समान भङ्ग है। मात्र अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातका सङ्ग छोधके समान है। सासादनसम्बग्द्रष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीयोंके समान भन्न हैं। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वको छोड़कर सन्निकर्ष कहना चाहिए। तिर्यञ्चगति और तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वीका संग ऋोघके समान है। दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहत्त, दो त्रानुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका संग त्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्त प्रकृतिको संयुक्त करके कहना चाहिए। पञ्चोन्द्रिय जातिके जयन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति त्रादिका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्त-गुणा ऋधिक होता है। औदारिक आदि सर्व संक्लिष्ट परिणामोंसे बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजयन्य श्रतुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रतुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है छौर श्रजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगति स्रोर मतुष्यगत्य।तुपूर्वीका भंग है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य त्रानुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। वैक्रियिक शरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पञ्चोन्द्रिय जाति आदि का नियमते बन्ध करता है जो अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जधन्य अनुमागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पितत बुद्धिरूप होता है।

१. ता० स्ना० प्रत्योः स्रोधं श्रब्भव० मदिभंगो । मिच्छुतं इति पाठः । २, ता० प्रतौ जादि० इति पाठः ।

किंचि० विसेसो जाणिद्वा । एवं वेखव्वि०श्चंगो० । [सम्मामि० वेद्ग०भंगो । विसेसो जाणिद्वा ।] मिच्छादिद्दी० मदि०भंगो । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं जहण्णसिण्णयासी समत्ती। एवं सत्थाणसिण्णयासी समती।

१४६. परत्थाणसण्णियासे दुवि०-जह० उक्क०। उक्कस्सए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० आभि० उक्क० अणुभागं वंधंतो चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अधिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० णिय० वंध०। तं तु० छहाणपदिदं वंधदि। अणंतभागहीणं वा०५। णिरय०-तिरिक्ख०-एइंदि०-असंप०-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर-दुस्सर० सिया०। तं तु०। पंचिदि०-दोसरीर-दोझंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं०। तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०-पर०-उस्सा०-वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणहीणं०। एवं आभिणि०भंगो चदुणा०-णवदंसणा०-असादा० - मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०- हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंतरा०।

जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए। इसी प्रकार वैक्रियिक आंगोपांग की मुख्यतासे सिन्निकर्ष है। सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भन्न है। किन्तु कुछ विशेषता जाननी चाहिए। मिध्यादृष्टि जीवोंका भंग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। अनाहारक जीवोंका भंग कार्मणुकाययोगी जीवोंके समान है। इस प्रकार जवन्य सिन्निकर्ष समान हुआ।

इस प्रकार स्वस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

१४६. परस्थान सन्निकर्षकी ऋपेसा निर्देश दो प्रकारका है-ज्जयन्य ऋौर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेदा निर्देश दो प्रकारकां है-अोघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा श्राभिनिवोधिक ज्ञातावरएके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरए, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, अपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानि रूप बाँधता है। श्रर्थात् या अनन्तभागहीन वाँधता है, या श्रसंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातग्णहीन या अनन्तगुणहीन बाँधता है। नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, असम्प्राप्तास्ट्रेपाटिका संहनन, दो स्रानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चीन्द्रयज्ञाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा होन होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्व, परघात, उच्छवास, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार आभिनिवोधिकज्ञानावरणके समान चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्ड

१. ता० प्रतौ म्प्रस्तिभागं इति पाठः ।

१५०. सादावेदणीयं उक्क॰ अणुभागं वंधंतो पंचणा०-चढुदंस०-पंचंत० णि० अर्णतगुणहीणं बं० । जसगि०-उच्चा० णि० उक्कस्स० । एवं जस०-उच्चा० ।

१५१. इत्थिवे० उक्क० बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-अरदि-सोग-भय-दु०- तिरिक्स०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० ऋंगो०-पस-त्थापसत्थ०४ — तिरिक्लाणु० - अगु०४—अप्पसत्थ० - तस०४—अथिरादिछ० - णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० बं० अणंतग्रुणही० | तिण्णिसंद्या०-तिण्णिसंघ०-उज्जो० सिया० अणंतग्रुणही० | एवं पुरिस० | णवरि दोगदि--पंचसंद्या०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो० सिया० अणंत०हीणं० |

१५२. हस्स ० उक्क ० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-अथिरादिपंच०-णिमि० णीचा०-पंचत० णि० अणंतगु०हीणं० । इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचजादि-पंचसंठा०-ओरालि० श्रंगो०-पंचसंघ-दोआणु०-पर०-उस्सा०--आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जतापज्ज०-पचे०-साधार०-दुस्सर० सिया० अणंतगु०ही० । रदि० णि० । संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात, श्रास्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रान्तरायका

भङ्ग जानना चाहिए। १५० सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्य करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है।

यशःकीर्ति और उद्योत्रका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार यशःकीर्ति और उद्योत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५१. स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, स्रासातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, स्रारति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्बञ्जगित, पञ्जेन्द्रिय जाति, स्रोदारिक श्रांगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, स्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्वेञ्जगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, स्रप्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येञ्जगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघु चतुष्क, स्रप्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्रिक्य स्रादि छह, निर्माण, नीचगोत्र स्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुणा दीन होता है। तीन संस्थान, तीन संहनन स्रोर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि दो गित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो श्रानुपूर्वी श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रानन्तगुणा हीन होता है।

१५२. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मण्रारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचत्र अस्थिर आदि पाँच होता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच ज्ञाति, पाँच संस्थान, औदारिक आंगोपांग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगिति, त्रस, स्थावर, बादर, सूदम, पर्यात, अपर्यात, प्रत्येक, साधारण और दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो अनन्तगुणा हीन होता है। रतिका नियमसे बन्ध करता है जो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है, तो

तं तु० । एवं रदीए० ।

- १५३. णिरयायु० उ० बं० पंचणा०-णवदंसगा०-असादा०-मिच्छ०-सोत्तसक०-पंचणोक्त०-णिर्यगदिअहावीस०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०हीणं०।
- १५४. तिरिक्लायु० ड० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०--सोलसक०-भय-हु०-तिरिक्ख०-पंचिदि० - ओरालि०-तेजा०-क० - समचदु०-ओरालि०त्रांगो० - वर्ज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४ – तिरिक्त्वाणु० -- अगु०४ –पसत्थवि० - तस४ - सुभग--सुस्सर--आर्दे०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । सादासाद०-इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रदि-अरदि-सोग-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ जस०-अजस० सिया० अणंतगुणही० । एवं मणुसायु⁶०। णवरि उञ्चा० णि० अणंतगु_०ं।
- १५५. देवायु० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-देवगदिसत्तहावीसं--उच्चा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं०। आहारदु०-तित्थय० सिया० अणंतग्रणहीर्ण० ।
- १५६. णिर्यगदि उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-यह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए ।
- १५३. नरकायुके उत्ह्रंष्ट श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति आदि अट्टाईस प्रकृतियाँ, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनन्तगुरो हीन अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है।
- १५४. तिर्येख्वायुके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शना-वरण, मिश्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुत्सा, तिर्यक्रगति, पक्रोन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, स्त्रौदारिक स्त्रांगोपांग, वर्ऋ्यभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, नीचगोत्र त्रीर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो ऋतुरुष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, उद्योत, स्थिर, श्रस्थिर, शुम, अशुम, श्रशःकीर्ति अगैर अयशः कीर्तिका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है।
- १५५. देवायुके उत्कृष्ट ऋतुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साताबेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति त्रादि सत्ताईस या अद्राईस प्रकृतियाँ, उचगोत्र अौर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुतकृष्ट अनन्त-गुए। हीन होता है। त्राहारकद्विक त्रौर तीर्थङ्करका कदाचित बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट ऋनन्त-गुणा हीन होता है।

१५६. नरकगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शना-

१. ता० ऋा० प्रश्योः मगुजागु० इति पाठः ।

पंचणोक ०-णीचा ०-पंचंत० णि० | तं तु० छ्रहाणपदिदं० | णामपसत्थाणं णिय० अणंत-गुणहीणं | णामअप्पसत्थाणं णाणावरणभंगो | एवं णिरयाणु० | एवं तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० | णाम० सत्थाणभंगो |

१५७. मणुस०-मणुसाणु० उ० बं० पंचणा०--छदंसणा०-सादावे०--बारसक०-पंचणोक०--उच्चा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं०। णाम० सत्थाणभंगो०। एवं मणुस-गदिपंचगस्स ।

१५८. देवगदि० उ० बं० पंचणा०-चदुदंसणा०--सादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतग्रणहीणं० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं देवगदिसंजुत्ताग्रां पसत्थाग्रां णामार्ग्रा ।

१५६. बेइं ०-तेइंदि०-चदुरिं० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचते० णिय० असांत०ही० । णाम० सत्थाणभंगो । णग्गोद० उ० वं० पंचणा०--णवदंसणा०- असादा०--मिच्छ०--सोलसक०--चदुणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० असांत०ही० । इत्थि०-णवुंस० सिया० असांत०ही० । णाम०

वरण, असातावेदनीय, मिध्यात्त्र, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्हृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्हृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्हृष्ट अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतिस हानिरूप होता है। यामकर्मकी प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्त-गुणा होन होता है। नामकर्मकी अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग झानावरणके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार तिर्यक्रगित और तिर्यक्रगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। किन्तु यहाँ नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।

१५७. मनुष्यगति श्रीर सनुष्यगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कपाय, पाँच नोकषाय, उद्यगीत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे धन्य करता है जो अनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मकी प्रकृतियों का भंग स्वस्थान सन्निकर्पके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५८. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकपाय, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे दन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगतिसंयुक्त प्रशस्त नामकर्मकी प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१५६. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति त्रीर चतुरिन्द्रिय जातिके उत्हृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, त्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्पके समान है। न्यप्रोधसंस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, चार नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुतकृष्ट

१. स्त्रा॰ प्रतौ० ग्रि॰ पंचंत॰ इति पाठः ।

सत्थाणभंगो । एवं सादि० । एवं खुक्क०-वामण० । णवरि णवुंस० णियमा अर्थात० ही० । चढुसंघ० चढुसंटाणभंगो । असंप० णाणावरणभंगो हेटा उवरि । णाम० सत्थाणभंगो । एवं एइंदि०-थावर० ।

- १६०. आदाव० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोस्रसक०-णबुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणही० | सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंत०-ही० | णाम० सत्थाणभंगो |
- १६१. उज्जो० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-सादावे०-मिच्छ०--सोलसक०-पुरिस०-इस्स-रदि-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णिय० अणंत०ही०।णाम० सत्थाणभंगो ।
- १६२. अप्पसत्थवि०-दुस्सर० उ० बं० हेडा उवरि णिरयगदिभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।
 - १६३. सुहुम०-अपज्जत--साधार० उ० वं० पंचणा०--णवदंसणा०--असादौ०-

श्रनन्तगुणा हीन होता है। स्नीवेद श्रीर नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रानुरकृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार स्वाति-संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार कुब्जक श्रीर वामन संस्थानकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह नपुंसकवेदका नियमसे बन्ध करता है जो श्रानुतकृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। चार संह्वनका भंग चार संस्थानके समान है। असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संह्वनका भंग नामकर्मसे पहलेकी और श्रागेकी प्रकृतियोंकी श्रापेक्षा ज्ञाना-वरणके समान है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार श्रार्थात् श्रास-श्राप्तास्त्रपाटिका संह्वनके समान एकेन्द्रिय जाति और स्थावर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

- १६०. आतप प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच आनावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भक्क स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।
- १६१. उद्योतके उत्क्रष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कवाय, पुरुववेद, हास्य, रित, भय, जुगुण्सा, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका मङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।
- १६२. श्रप्रशस्त विहायोगिति श्रीर दुःस्वरके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रीर श्रामेकी प्रकृतियोंका भङ्ग नरकगतिके समान है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।
 - १६२. सूदम, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला, जीव पाँच

१. श्रा० प्रती एइंदि० श्रादाच थावर उ० वं० इति पाठः। २. ता० प्रती पंचगा० श्रसादा० इति पाठः।

मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-णीचा०--पंचंत० णिय० अणंत०ही०। णाम० सत्थाणभंगो।

१६४. णिरएसु आभिणिबो० उ० वं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्स०--हुंड०-असंप०--अप्पसत्थ०४--तिरिक्साणु०-उपघा०-अप्पसत्यवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० १ तं तु० । पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०अंगो०-पसत्थ०४--अग्र०३--तस०४--णिमि० णि० अणंत०ही०। उज्जो० सिया० अणंत०ही०। एवं णाणावरणादि० तं तु० पदिदाओ ताओ अण्ण-मण्णस्स । तं तु०।

१६५. सादा० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंत०ही० । मणुस०-पंचिदि०-तिष्णिसरीर-समचदु०-ओरालि०-श्रंगो० - वज्जरि० - पसत्थ०४-मणुसाणु० - अगु०३-पसत्थवि० - तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उचा० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० । तं तु० । एवं सादभंगो तं तु० पदिदाणं० ।

ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोतह क्याय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अहुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नाम-कर्मका मंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१६४. नारिकयों में आभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुमागका वन्ध करनेवाला जीय चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, स्रमाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यक्षगति, हुण्ड संस्थान, श्रसम्प्राप्तास्यपिटिका संहतन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, उपधात, अप्रशस्त विहायोगित, श्रस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिकृप होता है। पश्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलधुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तै तु-पतित ज्ञानावरणादि जितनी प्रकृतियोँ हैं, उनका परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु आभिनियोधिक ज्ञानावरण को मुख्य करके जिस प्रकार सिनकर्ष कहा है, उसी प्रकार ते तु-पतित शेष सत्र प्रकृतियोंकी मुख्यतासे कहना चाहिए।

१६५. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपधात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगित, पञ्चोन्द्रियजाित, तीन सरीर, समचतुरका संस्थान, श्रीदारिक आंगोपांग, वर्ञ्चभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिक्प होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है। यदि विक्ष्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि

१६६. सेसं ओघं ! णविर तिरिक्तवायु० उ० वं० मिच्छ० णि० अणंतगु०ही० । एवं धुवियाणं० । सादासाद० सिया० अणंत०ही० । एवं परियत्तमाणियाओ सव्वाओ सादभंगो । मणुसाउ० उ० वं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि० ग्रंगो ०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४—मणुसाणु०--अगु०४—पसत्थ०--तस०४—सुभग--सुस्सर-आदे०-णिमि०--उच्चा०-पंचंत०णि० अणंत०ही० । सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिण्णियुग०-तित्थ० सिया ० अणंत०ही० । चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० ओघं० । एवं छसु पुढवीसु । णविर उज्जो० तिरिक्तवायुभंगो । सत्तमाए पुरिस०-हस्स-रदि-[चदु-] संठा०-पंचसंघ० उ० वं० तिरिक्तव-गदी धुवं काद्व्यं । सेसं णिरयोघं ।

१६७. तिरिक्खेसु आभिणिबोधि० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोल्लसक०-पंचणोक०--णिरयग०-हुंड०--अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्प-सत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। पंचिदि०-तिण्णिसरीर-वेजव्यि०-

अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु॰ पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं,उनका सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

१६६, रोष प्रकृतियोंका भंग श्रोचके समान है। इतनी विशेषत√है कि तिर्यञ्चायके उत्कृष्ट श्चनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मिथ्यात्वका नियमसे बन्ध करता है/जो श्चनुत्कृष्ट श्चनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार भूव बन्धवाली प्रकृतियों का जानना चाहिए। सातावेदनीय श्रौर श्रमातावेदनीयका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। परिवर्तमान जितनी प्रकृतियाँ हैं उनका इसी प्रकार सातावेदनीयके समान भंग है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, वारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, त्रीदारिक आंगोपांग, विश्वर्षभनाराच संहतन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। साताबेदनीय, असाताबेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर आदि तीन युगल और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। चार संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भंग स्रोघके समान है। इसी प्रकार प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग तिर्यञ्चायुके समान है। सातवीं पृथिवीमें पुरुषवेद, हास्य, रति, चार संस्थान ऋौर पाँच संहननके उत्कृष्ट ऋनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगतिका ध्रुव बन्ध करता है अर्थात् नियमसे बन्ध करता है। शेष सब प्ररूपणा सामान्य नारिकयोंके समान है।

१६७. तिर्यञ्जों में आभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगित, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुतकृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है।

१. স্থাত प्रतौ तेजाक श्रोरालि श्रंगो इति पाठः। २. ता प्रतौ तिष्यियुग सिया इति पाठः।

श्रंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-तस४-णिमि० णि० अणंत०ही०। एत्थ एदाओ तं तु॰ पदिदाओ अण्णमण्णस्स आभिणि०भंगो।

१६८. साद० उ० बं० पंचणा०-छदंसणा०-अडक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०--पंचंत० णि० अणंतग्रणही०। देवगदिसत्तावीस-उचा० णि०। तं तु०। एदाओ सादभंगो। चदुणोक०-चदुआयु० ओघं।

१६६. तिरिक्खग० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलस-क०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत णि० अणंत०ही०। णाम० सत्याणभंगो। एवं चदुजादि-असंप०-तिरिक्खाणु०-थावरादि४०।

१७०. मणुसग० उ० बं० पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचत० णि० अणंतगु०ही० | सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंत०-ही० | णाम० सत्थाणभंगो | एवं मणुसगदिपंच० | चदुसंठा०--चदुसंघ०--आदाव० ओर्घ | उज्जो० पढमपुढविभंगो | अथवा बादर-तेउ०-वाउ० उक्कस्सयं करेदि | सब्ब-

भागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चोन्द्रिय जाति, तीन शरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुस्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। यहाँ ये तं तु॰पतित जितनी प्रकृतियों हैं, उनका परस्पर आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके समान भङ्ग है।

१६८. साताबेदनीयके उत्कुष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कथाय, पाँच नोकथाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। देवगित आदि सत्ताईस प्रकृतियाँ और उचगोत्रका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। यहाँ देवगित आदि प्रकृतियोंका भंग साताबेदनीयके समान है। चार नोकषाय और चार आयुका भंग ओचके समान है।

१६६. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शना-वरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार चार जाति, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिकासंहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१७०. मनुष्यगितके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कथाय, पुरुववेद, भय, जुगुप्सा, उचगोत्र चौर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकथायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार मनुष्यगित पञ्चक्की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। चार संस्थान, चार संहनन और आतपका भंग ओवके समान है। उद्यातका भंग पहली पृथिवीके समान है। अथवा वादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव उत्कृष्ट करते हैं।

१. ता० प्रतौ आदाचु • श्रोघं, श्रा० प्रतौ श्रादाउजो० श्रोघं इति पाठः ।

विसुद्धो मूलोघो । एवं पंचिंदियतिरिक्ल०३ ।

१७१. पंचिं०तिरि०अपज्जत्तगेसु आभिणिबो० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोल्लसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरि-क्खाणु० - उप० - थावरादि४--अथिरादिपंच० - णीचा० - पंचंत० णि० | तं तु० | ओरालि०--तेजा०-क०--पसत्थ०४-अगु०--णिमि० णि० अणंत०ही० | एवमेदाओ अण्णोण्णस्स तं तु० |

१७२. सादा० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतगुणही० । मणुसग०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०ऋंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०--अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० । तं तु० । एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स । तं तु० ।

१७३. इत्थि० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिदि० - ओरालि० - तेजा० - क० - ओरालि० संगो० - पसत्थापसत्थ०४--अप्पसत्थ० -

यदि सर्व विशुद्ध तिर्यञ्च करते हैं, तो मूलोघके समान भंग है। इसी प्रकार अर्थान् सामान्य तिर्यञ्चोंके समान पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकके जानना चाहिए।

१७१. पख्नेन्द्रिय तिर्येख्न अपर्याप्तकों आभिनिनोधिक ज्ञानावरण्के उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण्, नौ दशैनावरण्, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्येख्नगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येख्नगत्यानुपूर्वी, उपधात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका कथ्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिहप होता है। अौदारिक शरीर, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधु और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। यहाँ तं तु-पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी अपेक्षा परस्पर इसी प्रकार सन्निकर्य जानना चाहिए।

१७२. सातावेदनीयके उत्हृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनां वरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट आनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, पश्चोन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वअर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोन्नका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यहीं तं तुन्पतित जितनी प्रकृतियों हैं, उनकी अपेन्ना परस्पर जैसा सातावेदनीयकी अपेन्ना सिन्नकर्ष कहा है, उसी प्रकार सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

१७३. स्निवेदके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कथाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण्यनुष्क, श्रप्रशस्त वर्ण्यनुष्क, श्रप्रशस्त विहायोगित, तस०४-दूभग--दुस्सर- अणादेँ०--णिमि०--णीचा०--पंचंत० णिय० अणंतगुणहीणं० | सादास।द०--चदुणोक०-दोगदि--तिण्णिसंठा०--तिण्णिसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिरादि-तिष्णियुग० सिया० अणंतगुणहीणं० | एवं पुरिस० | णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ० |

१७४. हस्स० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दुं ०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०-उप०-थावरादि०४-थिरादिपंच०--णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० | रदी णि० | तं तु० | एवं रदीए० | दोआउँ० णिरयभंगो |

१७५. वेइं ०-तेइं ०-चदुरिं० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतग्रणही०। सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंतग्रणहीणं०। णाम० सत्थाणभंगो।

१७६. चदुसंठा० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छँ०-सोलसक०-भय-दु०-णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० | दोवेद०-चदुणोक० सिया० अणंत-

त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो गति, तीन संस्थान, तीन संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत श्रौर स्थिर श्रादि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ तीन संस्थान श्रौर तीन संदननके स्थानमें पाँच संस्थान श्रौर तीन संहननके स्थानमें पाँच संस्थान श्रौर पाँच संहनन कहने चाहिए।

१७४. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका वन्य करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कवाय, नपुंसक वेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यक्चगित, एकेन्द्रिय जाति, श्रौदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, अगुस्त्वचु उपघात, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुता हीन होता है। रितका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका कम्य करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार रित की मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। दो आयुओंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष नारिक्योंके समान है।

१७५. द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति स्रोर चतुरिन्द्रियजातिके उत्कृष्ट अनुभागका अन्ध करने-वाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र स्रोर पाँच स्थन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट स्थनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय स्रोर चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो स्थनुत्कृष्ट स्थनन्तगुणा हीन होता है। नासकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

१७६. चार संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रमुरकृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। दो वेद श्रीर

१. श्रा॰ प्रतौ सोलसक॰ भयतु॰ इति पाठः। २. श्रा॰ प्रतौ दोन्नासु॰ इति पाठः। ३. ता॰ प्रतौ स्पबदंससा॰ मिच्छ० इति पाठः।

गुणहीणं । णाम सत्थाणभंगो । णविर णग्गोद ०-सादि ० उक्कस्सं बंधंतो दोवेद ० सिया ० अणंतगुणहीणं ० । खुज्ज ०-वामण ० णवुंस ० णि० अणंतगुणहीणं ० । एवं चदु-संघ ० । असंपत्त ० बेइंदियभंगो ।

१७७. अप्पसत्थ०-दुस्सर० उ**०** वं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोस्रसक०-णवुंस०-भय-दु³०-णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणहीणं० । सादासाद०-चदुणोक० सिया० अणंतगुणहीणं०। णाम० सत्थाणभंगो। आदाउज्जो० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। एवं सव्यअपज्जत-सव्वविगलिंदियाणं पुढ०-आउ०--वणप्फदिपत्तेय--णियोदाणं च। तेउ०-वाऊणं पि तं चेव। णवरि मणुसायु०-मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० वज्ज०।

१७८. मणुसेसु खविगाणं ओघं | सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो | एवं मणुसपज्जत-मणुसिणीसु ।

१७६. देवेसु आभिणिबो० उ० बं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--तिरिक्स०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्स्नाणु०--उप०-अथिरादि-

चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुस्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भक्ष स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इतनी विशेषता है कि न्यश्रेषपरिमण्डल संस्थान और स्वाति संस्थानके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो वेदका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तथा कुठजक संस्थान और वामन संस्थानके उत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करनेवाला जीव नपुंसकवेदका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार चार संहननोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। असम्प्राप्तास्रपादिकासंहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष द्वीन्द्रयज्ञातिके समान है।

१७७० अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुस्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुस्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुस्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिक्तकष्ठे समान है। आतप और उद्योतकी मुख्यतासे सिक्तकष्ठे पश्चोन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है। इसी प्रकार अर्थात् पश्चोन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकांके समान सब अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पति प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी यही सिक्रकर्ष है। इतनी विशेषता है कि इनके मनुष्यायु, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्यगोत्रको छोड़कर सिक्तकर्ष कहना चाहिए।

१७≍. मनुष्योंमें चपक प्रकृतियोंका भङ्ग खोचके समान है। रोष भङ्ग पछ्चोन्द्रिय तिर्यक्षोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त ख्रौर मनुष्यिनियोंके जानना चाहिए।

१७६. देवोंमें ऋाभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट ऋनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्रगति, हुण्डसंस्थान, ऋप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपचात, ऋस्थिर ऋादि पाँच, नीचगोत्र

१. आ ॰ प्रतौ चदुसंघ॰ श्रम्पसत्य॰ वेइंदियमंगो इति पाठः। २. आ ॰ प्रतौ सोलसक॰ भयदु॰ इति पाठः।

पंच-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । एइंदि०-असंप०-अप्पसत्थवि०-थावर०-दुस्सर० सिया०।तं तु०। पंचिदि०-ओरास्ति०श्चंगो०-आदाउज्जो०-तस० सिया० अणंतगुणहीणं०। ओरास्ति०-तेजा०-क०--पसत्थ०४-श्चगु०३-बादर--पज्जत-पत्ते०-णिमि० णि० अणंत-गुणहीणं। एवं तं तु० पदिदाणं । साददंडओ इत्थि०-पुरिस० णिरयोघभंगो ।

- १८०. हस्स० उ० ओघं। णवरि दोगदि-दोजादि-पंचसंठा०-ओराठि०झंगो०-पंचसंघ०-दोआणु०-आदाउज्जो०-अप्पत्थवि०-तस०-थावर०-दुस्सर०सिया० अणंतगुण-हीणं०। इत्थि०-णवुंस० सिया० अणंतगुणहीणं०। रदि० णि०। तं तु०। एवं रदीए०। एइंदि०-थावर० ओघं। चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघं।
- १८१. असंप० उ० बं० हेडा उवरि तिरिक्खभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। सेसं णिर्यभंगो।
 - १८२. भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० आभिणिवोधि० ड० वं० चढुणा०-

श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। एकेन्द्रियजाति, श्रसम्प्रासास्पाटिकासंहतन, श्रप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर श्रीर दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत हानिरूप होता है। पञ्चीन्द्रयज्ञाति, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रातप, उद्योत श्रीर त्रसका कदाचित् वन्ध करता है को श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रीदारिकशरीर, तेजसश्रीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचनुष्क, श्रान्तगुणा हीन होता है। श्रीप्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु॰पित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीय द०डक, स्त्रीवेद श्रीर पुरुषवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीय द०डक, स्त्रीवेद श्रीर पुरुषवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य नारिकयोंके समान है।

१८०. हास्य प्रश्नृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भन्न श्रोचके समान है। इतनी विशेषता है कि दो गति, दो जाति, पाँच संस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो श्रानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, अश्रास्त विहायोगिति, श्रस, स्थावर श्रोर दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रमुन्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रमुन्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। रितका नियससे बन्ध करता है। किन्तु बह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है। यदि श्रमुन्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिकृष होता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए। एकेन्द्रियज्ञाति श्रोर स्थावरकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष श्रोधके समान है। चार संस्थान श्रोर चार संइननकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष श्रोधके समान है।

१८९. श्रसम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहनसके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्ध करनेवाले जोवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्वेञ्चोंके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। शेष भङ्ग नारिकयोंके समान है।

१८२. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म श्रौर ऐशान कल्पके देवोंमें श्राभिनि-बोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०--तिरिक्तव०-एइंदि०-हुंड०-अप्प-सत्थ०४--तिरिक्तवाणु० - उप०-थावर० - अधिरादिपंच० - णीचा० - पंचंत० । तं तु० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि० णिय० अणंत०-हीणं० । आदाउज्जो० सिया० अणंत०हीणं० । एवमेदाओ तं तु० पदिदाओ ऍक-मेंकस्स । तं तु० ।

१८३. ऋसंप० उ० वं० हेटा उवरिं तिरिक्खगिदभंगो। णवरि णि० अणंतगुण-हीणं०। [णाम० सत्थाणभंगो। णवरि] अप्पस०-दुस्सर० णिय०। तं तु०। सेसं देवोघं।

१८४. सणवकुमार याव सहस्सार ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवगेवज्ञा त्ति आभिणिबो० उ० बं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-उप०अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । मणुस०-पंचिदि०-तिण्णिसरीर-ओरालिझंगो०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-णिमि० णि० अणंतगुणही० । एवमेदाओ ऍकमेंकस्स तं तु० ।

श्रसाता वेदनीय, मिथ्यात्य, सोलह कथाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्रगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्ड-संस्थान, श्रप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थायर, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीच-गोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। श्रीदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्ण् चतुष्क, श्रगुरुत्वपुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रातप श्रीर उद्योतका कदाचित् वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्त-गुणा हीन होता है। इसी प्रकार यहाँ जितनी तं तु-पतित प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे परस्पर उसी प्रकार सिन्नकर्ष जानना चाहिए, जिस प्रकार श्राभिनिवोधिक झानावरणकी मुख्यतासे कहा है।

१८३. असम्प्राप्तास्पाटिका संहतनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और आगेकी प्रकृतियोंका भङ्ग तिर्यक्ष्मगतिके समान है। इतनी विशेषता है कि नियमसे अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन बन्ध करता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिक्नकर्षके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

१८४. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत कल्पसे लेकर नी मैवेयक तकके देवोंमें आभिनिवीधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, आसाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्पाटिका सहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष्य होता है। मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रिय जाति, तीन शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो

सेसं सहस्सारभंगो । णवरि मणुसगदि [२] धुवं कादव्वं ।

१८५. अणुदिस याव सव्वद्व ति आभिणिबो० उ० बं० चढुणा०--छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत णि०। तं तु०। मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचढु०-ओरालि०ग्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३--पसत्थवि०-तस०४-सुभग०-सुस्सर०--आर्दे०-णिमि०-उच्ची० णि० अणंतगुणही०। तित्थ० सिया० अणंतगुणही०। एवं आभिणि०भंगो अप्पसत्थाणं सञ्चाणं। सादादीणं आणदभंगो।

१८६. एइंदिएसु साद० उ० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत णि० अणंत०हीणं०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंत०हीणं०। मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उचा० सिया०। तं तु०। पंचिदियादिवंधगा णिय० बं०। तं तु०। एवं तं तु० पदिदाणं सञ्जाणं। सेसाणं

अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार यहाँ तं तु॰ पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आभिनिशोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे जैसा कहा है, वैसा जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सहस्रार कल्पके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति द्विकको भूव करना चाहिए।

रन्थ. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवों अभिनिक्षेषिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुमागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकणय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुम, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुस्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। मनुष्यगित, पञ्चिन्त्रिय जाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्त संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वर्ज्यभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुनिक, प्रशस्त विहायोगिति, असचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दसी प्रकार सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्प आभिनियोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे कहे गये सिन्नकर्षके समान ज्ञानना चाहिए। तथा सातादिककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष, आनत कल्पमें इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे जिस प्रकार सिन्नकर्ष कहा है, उस प्रकारका है।

१८६. एकेन्द्रियों में सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तिर्यक्षमित, तिर्यक्षमित्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। विक्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। पक्षित्य जाति आदिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है।

१. ता० स्ना० प्रत्योः गिमि० गि० उचा० इति पाठः ।

अप्पज्जत्तभंगो ।

१८७. पंचिदि० - तस०२-पंचमण० - पंचवचि० - काययोगी० ओघो । ओरा-लियका० मणुसभंगो। ओरालियमि०आभिणि०दंडओ पंचि०तिरि०अपज्ज० पढमदंडओ। साददंडओ तिरिक्लोघो । इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रिद-दोआड०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुसंघ०-आदाडज्जो०-पसत्थवि०-दुस्सर० अपज्जतभंगो। मणुसग० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०--मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०ही०। दोवेदणी०-चदुणोक० सिया० अणंतगु०ही०। णाम० सत्थाणभंगो।

१८८. वेडिव्वयका०-वेडिव्वयमि० देवोघं। उज्जोवं ओघं। आहार०-आहारमि० आभिणिबो० उ० वं० चदुणा०--छदंसणा०--असादावे०--चदुसंज०--पंचणोक०--अप्पसत्थ०४--उप०--अथिर--असुभ०--अजस०--पंचंत० णि०। तं तु०। पसत्थाणं घुविगाणं णि० अणंतगुणही०।

तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं तु॰ पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उन सबकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जैसा साताबेदनीयकी मुख्यतासे कहा है, वैसा जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष अपर्याप्तक जीवोंके समान है। अर्थात् पहले जिस प्रकार अपर्याप्तक जीवोंके सिन्निकर्ष कह आये हैं, उस प्रकार यहाँ शेप प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्निकर्ष जानना चाहिए।

१६७. पश्चे न्ट्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंका भङ्ग श्रोचके समान है। श्रोदारिक हानावरण श्रादि प्रथम दण्डककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष पश्चे निद्रय तिर्यश्च श्रप्यांप्रकोंके प्रथम दण्डकके समान है। सातावेदनीयदण्डककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष पश्चे निद्रय तिर्यश्चे श्रप्यांप्रकोंके प्रथम दण्डकके समान है। सातावेदनीयदण्डककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य तिर्यश्चोंके समान है। स्रीवेद, पुरुपवेद, हास्य, रित, दो श्रायु, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, श्रातप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित श्रीर दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रप्यांप्रकोंके समान है। मनुष्यगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच श्चानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कथाय, पुरुपवेद, भय, जुगुप्सा, उद्यगति श्चीर पाँच श्चन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्चनन्तगुणा हीन होता है। दो वेदनीय श्चीर चार नोक्यायका कदाचित वन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्चनन्तगुणा होन होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।

१८८. वैकिथिककाययोगी और वैकिथिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सामान्य देवोंके समान है। उद्योत प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष स्रोधके समान है। स्राहारकाययोगी जीवोंमें स्राभिनियोधिकज्ञानावरण्के उत्कृष्ट स्राहारकाययोगी स्रीर स्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें स्राभिनियोधिकज्ञानावरण्के उत्कृष्ट स्राहारकाययोगी स्रीर सार करनेवाला जीव स्रार ज्ञानावरण्, छह दर्शनावरण्, स्रसातावेदनीय, स्राह संज्यलन, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, स्रस्थिर, श्रहुभ, श्रयशाकीति श्रीर पाँच श्रनत्रायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है स्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिकृष होता है। प्रशस्त ध्रुव प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है।

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः स्रोरातियमि॰ ऋमििखिबो॰ उ० बं॰, एवं ऋमििखिदंडस्रो इति पाठः। २. ऋा॰ मतौ -दंडस्रो तिरिक्खोघो इति पाठः।

- १८६. सादा० उ० वं० अप्पसत्थाणं णि० अणंतगु०। देवगदिपसत्थद्वावीसं उचा० णि०। तं तु०। तित्थकरं सिया०। तं तु०। एवं पसत्थाणं ऍक्कमेंक्कस्स तं तु०।
- १६०. हस्स० उ० वं० धुवियाणं अप्पसत्थाणं असाद०-अथिर-असुभ-अजस० णि० अणंतगु०ही० | सेसाणं पि णि० अणंतगुण ही० | रदि० णि० | तं तु० | एवं रदीए० |
- १६१. कम्मइगका० आभिणिबो० उ० वं० चहुणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ० - सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ति० - हुंड०-अप्पसत्थ०४ - तिरिक्ताणु० - उप०-अधिरादिपंच०-णीचा०-पंचेत० णि० । तं तु० । एइंदि०-असंप०-अपसत्थवि०-थाव-रादि०४ - हुस्सर० सिया० । तं तु० । पंचि०-ओरालि०श्रंगो०-पर०-उस्सा०-आदा-उज्जो०-तस०४ सिया० अणंतगु०ही० । ओरालि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०-
- १८६. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव अप्रशस्त प्रकृतियों का नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। देवगति आदि प्रशस्त अहाईस प्रकृतियाँ और उद्यगित्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। विद अनुत्कृष्ट अनुभागका कथ करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार प्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष कहना चाहिए जो सातावेदनीयकी मुख्यतासे जैसा कहा है, उसी प्रकारका है।
- १६०. हास्य प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव श्रप्रास्त ध्रुव प्रकृतियाँ, श्रसातावेदनीय, श्रास्थर, श्रह्मम श्रोर श्रयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। शेय प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध करता है जो श्रमुत्कृष्ट श्रमन्तगुणा हीन होता है। रितका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार अर्थात् हास्यके समान रितकी मुख्यतासे भी सिम्नकर्ष जानना चाहिए।
- १६१. कार्मणकाययोगी जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेयाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह क्याय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्वानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच. नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। एकेन्द्रिय जाति, असम्प्राप्तास्त्रपाटिकासंहनन, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर आदि चार और दुःस्वरका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह इह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपङ्क, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और त्रसचतुष्कका कदाचित् वन्ध करता है जो अनुतकृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। औदारिक

णिमि० णि० अणंतगु०ही० । एवं तं तु० पदिदाओ सन्वाओ ।

१६२. साद० ड॰ वं० पंचणा०-छदंसणा०-वारसक०--अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंत०ही० | दोगदि-दोसरीर-दोश्चंगो०-वज्जिरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० तं हु० | पंचिंदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३--पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० | तं हु० | एवं तं हु० पदिदाओ सञ्वाओ | इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रदि-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदुसंघ० ओघो |

१६३. इत्थिवेदेसु आभिणियो० उ० वं० चढुणा०--णवदंसणा०--असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अधिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० णि०। तं तु०। णिर्यग०-तिरिक्ख०-एइंदि०-दोआणु०-अप्पसत्थिवं०-थावर-दुस्सर० सिया० तं तु०। पंचिं०-दोसरीर-वेउन्वि०श्रंगो०-आदाउद्धो०-तस० सिया० अणंतगु०-

शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघु और निर्माणका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तुन पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष आभिनिवोधिक ज्ञानावरणकी मुख्यतासे सहे गये सिन्नकर्षके समान जानना चाहिए।

१६२. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो गति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वअर्थभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थेङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। प्रश्चेन्द्रिय जाति, तेजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरक्त संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरु-लघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार तं दु पतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। स्नीवेद, पुरुष्वेद, हास्य, रित, तीन जाति, चार संस्थान और चार संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ओघके समान है।

१६२. स्रीवेदी जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरएके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरए, नौ दर्शनावरए, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्ण चार, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुरुष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। नरकगित, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रिय जाति, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर और दुःस्वरका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है, तो वह

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः दोश्रासु। दुवि॰ श्रप्यसत्थिवि॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रती सिया॰ पंचि॰ इति पाठः ।

ही । तेजा ०-क ०-पसत्थ ०४ - अगु ०३ - बाद र-प ज्जत-पत्ते ०-णिमि ० णि ० अणंत ० ही ० । एवं तं तु ० पिददाणं अण्णमण्णस्स । तं तु ० । इत्थि ०--पुरिस ०-हस्स-रिद--च दुआ ७०-मणुसगिद पंच ० - सादादिखि विगाणं तिण्णि जादि--च दुसंठा ० - च दुसंघ ० - अप ज्ज ० - साहा ० ओगं।

१६४. णिरय० उक्क० बं० ओघं । एवं णिरयाणु०--अप्पसत्थवि०-दुस्सर० । तिरिक्ख० उ० बं० हंटा उवरिं एइंदियसंजुत्ताओ सोधम्मपढमदंडओ ।

१६५. असंप० उ० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिवख०३-ओरालि०-तेजा०-क०-हुंड०-ओरालि० श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०-उप०-तस०-वाद्र-पत्ते०--अथिरादिपंच०--णिमि० णीचा० पंचंते० णि० अणंत-गुणही० । पंचिं०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसत्थवि०-पज्जतापज्ज० सिया० अणंतगु०-ही० । बेई० सिया० । तं तु७ ।

छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चोन्द्रिय जाति, दो शरीर, बैकियिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुण। हीन होता है। तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण चार, अगुरुलचुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु॰ पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनकी मुख्यतासे परस्पर सिन्नकर्ष जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानावरणको मुख्यतासे कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए। स्वीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार आयु, मनुष्यगित पञ्चक, साताबेदनीय आदि अपक प्रकृतियाँ, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, सूद्म, अपर्याप्त और साधारणकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष स्रोधके समान है।

१६४. नरकगतिके उरक्कष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवके सद प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष स्रोधके समान है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्यञ्जगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी एकेन्द्रियजाति संयुक्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष सौधर्मकल्पके प्रथम दण्डकके समान है।

१६५. श्रसम्प्राप्तासृपिटिका संहननके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, श्रसाता वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यक्षमिति त्रिक, श्रीदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपचात, त्रस, वादर, प्रत्येक, श्रस्थिर श्रादि पाँच, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। पञ्चोन्द्रियज्ञाति, परचात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, पर्याप्त श्रीर अपर्याप्तका कदाचिन् वन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। द्वीन्द्रियज्ञातिका कदाचिन् वन्ध करता है। यदि वन्ध करता है तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है।

१ ऋा॰ प्रतो । गिर्मि । गि । पंचत । इति पाठः ।

१६६, पुरिसेसु ओघो । णवरि उज्जोवं देवोघं ।

१६७. णवंस० आभिणिबो० उ० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-असादा०-भिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक-०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० | दोगदि-असंप०-दोआणु० सिया० । तं तु० । पंचि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णियमा अणंतगु० । दोसरीर-दोझंगो०--उज्जो० सिया० अणंत०ही० । णिरयग० ओघं ।

१६=. तिरिक्ख० उ० बं० असंपत्त०-तिरिक्खाणु०-अप्पसत्थवि०-दुस्सर० णि०। तं तु०। पंचि०-ओरालि०श्चंगो०-तस०४ णि० अणंत०ही०।

१६६. एइंदि० उ० बं० थावरादि०४ णि०। तं तु०। एवं थावरादि०४। सैसं ओघं।

२००. अवगदवे० आभिणिबो॰ उ० बं० चढुणा०--चढुदंसणा०--चढुसंजै०-

१६६. पुरुपवेदी जीवोंमें श्रोधके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतकी मुख्यतासे सिन्नकर्प सामान्य देवोंके समान है।

१६७. नपुंसकवेदी जीवोंमें आभिनिवोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कथाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात, अप्रशस्त विद्वायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित हानिकृष होता है। दो गिति, असम्भातास्यादिका संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिकृष होता है। पक्ष निद्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरत्कृष्ट अनुभागका के अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपङ्ग और उद्योतका कदाचिन् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। नरकगितिकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष ओषके समान है।

१६८. तिर्यञ्चगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो यह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चीन्द्रयज्ञाति, औदारिक आद्वोपाद्व और त्रसचतुष्कका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणाहीन होता है।

१६६. एकेन्द्रियजातिके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव स्थावर श्रादि चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। इसी प्रकार स्थावर श्रादि चारकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। शेष भङ्ग श्रोधके समान है।

२००. ऋपगतवेदी जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला

१. मा॰ प्रतौ चदुसा॰ चदुसंज॰ इति पाटः।

पंचंत० णि० उक्क० । साद०-जस०-उचा० णि० अणंतगु०ही० । एवं अप्पसत्थाणं । साद०-जस०-उचा० ओघो । एवं सुहुमसंप० । कोधादि०४ ओघो । णविर साद०-जस०-उचा० उ० वं० पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० णि० अणंतगु० । माणे तिण्णिसंजल० णि० अणंतगु०ही० । मायाए दोसंज० णि० अणंतगु०ही० । लोभे ओघं ।

२०१. मदि०-सुद् आभिणि०दंडओ ओघो । साद्दंडओ ओघो । णविर पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतगु०। देवगदिसंजुत्ताओ याव जस०-उच्चा०गोद त्ति णि० । तं तु० । सेसं ओघं। एवं विभंगे ।

२०२. आभिणि०--सुद्०-ओधि० आभिणि० उ० वं० चढुणा०-छदंसणा-० [असाद०--बारसक०-पुरिसवे०--अरद्दि०-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-] उप०-अथिर'-असुभ-अजस०-पंचंत० णि० ! तं तु० । दोगदि-दोसरीर-दोत्रंगो०-वज्जरि०-

जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन स्त्रीर पाँच अन्तरायका नियमसे उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार अप्रशस्त प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष स्त्रामत है। इसी प्रकार सूच्मसान्परायिक संयत जीवोंके ज्ञानना चाहिए। क्रीय खादि चार कपायवाले जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ब्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशः कीर्ति और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मानमें तीन संज्वलनका नियमसे बन्ध होता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मायामें दो संज्वलनका नियमसे बन्ध होता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मायामें दो संज्वलनका नियमसे बन्ध होता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। लोभमें स्त्रीयके समान भन्न है।

२०१. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें आभिनियोधिकज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विरोधता है कि यह पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कथाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुस्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। देवगतिसंयुक्त प्रकृतियोंसे लेकर यशःकीर्ति और उचगोत्र तककी प्रकृतियोंका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। यदि अनुस्कृष्ट अनुभागका वन्ध करता है। वो वह इह स्थान पतित हानिरूप होता है। शेष भङ्ग श्रोघके समान है। इसी प्रकार श्रंथांतृ मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभक्षज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।

२०२. आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें आभिनियोधिक ज्ञाना-वरणके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुपवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गित, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वअर्थभ-

१. ता॰ प्रतौ एवं विभंगे स्त्राभिणि० उ० वं० चढुणा॰ छुदंत्त॰ उप॰ """ स्त्रिये० इति पाठः।

दोआणु०--तित्थ० सिया० अणंतगु०ही० । पंचि०-तेजा०-क०-समचदु०--पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-सुभर्ग-सुस्सर आर्दे०-णिमि०-उचा० णि० अणंतगु०ही० । एवं अप्पसत्थाणं चकस्ससंकिलिद्वाणं ।

२०३. इस्स० उक्क० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिदि०--तेजा०--क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४- पसत्थिव --तस०४--अधिर-अग्रुभ-ग्रुभग-ग्रुस्सर-आदे०-अजस०--णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु०। रिद० णि०। तं तु०। दोगदि-दोसरीर-दोश्रंगो०-चज्जिरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० अणंतगु०ही०। एवं रदीए०।

२०४. मणुसाउ० देवोघं । सादादीणं खिवगाणं देवाउ० मणुसगिद्यंचगस्स य ओघो । एवं आभिणि०भंगो ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम० । मणपज्ज० आभिणि०भंगो । णविर असंजदपगदीओ वज्ज । एवं संजद-सामाइय-च्छेदो०-पिहार० । संजदासंज० आभिणि०दंडओ साददंडओ ओधि०भंगो । णविर संजदासंजदपगदीओ

नाराच संहतन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। पञ्चोन्द्रयजाति, तेजस शरीर, कामणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुरक, अगुरूलवृत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट बन्धको प्राप्त होनेवाली अप्रशस्त प्रकृतियोंकी सुख्यतासे सित्रकर्ष इसी प्रकार जानना चाहिए।

२०३. हास्यके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कवाय, पुरुववेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशाकीर्ति, निर्माण, उद्यगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनुभागका भी वन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। दो गिति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रबंभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार रितकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२०४. मनुष्यायुक्ती मुख्यतासे सिन्निकर्ष सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीय श्रादि क्षपक प्रकृतियाँ, देवायु और मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सिन्निकर्ष श्रीधके समान है। इसी प्रकार श्राभिनिवाधिक ज्ञानी जीवोंके समान श्रवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदग-सम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके ज्ञानना चाहिए। मनः पर्ययज्ञानी जीवोंका भङ्ग श्राभिनिक्षोधिक ज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रसंयतोंके वैधनेवाली प्रकृतियोंको छोड़कर यह सिन्निकर्ष कहना चाहिए। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, ख्रेदोपस्थापनासंयत और परिहार-विशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिए। संयतासंयत जीवोंमें श्राभिनिक्षोधिक ज्ञानावरण दण्डक श्रीर सातावेदनीय दण्डक श्रवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि संयतासंयत प्रकृतियोंको

१. ता॰ प्रतौ तस॰ सुभ॰ इति पाठः ।

धुविगाओ कादव्वाओ। सेसं ओघो। असंजदेसु मदि०भंगो। णवरि असंजदसम्मादिहि-पगदीओ णादव्वाओ। चक्खु०-अचक्खु० ओघभंगो।

२०५. किण्णाए आभिणि०दंडओ णबुंसगर्मगो । साददंडओ णिरयभंगो । चढुआउ० ओघं । णबरि देवाउ० उ० बं० पंचणा०-झदंसणा०-सादा०--बारसक०-पंचणोक०--देवगदिअद्वावीस--उचा०--पंचंत० णि० अणंतग्रुणही० । तित्थ० सिया० अणंतग्रु० । अथवा मिच्छादिद्वी यदि करेदि तो मिच्छादिद्विपगदीओ सम्मादिद्वि-पगदीओ वि णादव्वाओ ।

२०६. देवगदि० उ० बं० पंचणा०-झदंस०-साद०-बारसक०-पंचणोक०-पंचिंदि-यादिपसत्थाओ-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतग्र०ही० । वेउच्वि०-वेउच्वि० अंगो ०-देवाणुपुच्चि० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० । तं तु० । एव देवगदिभंगो वेउच्वि०-वेउच्वि० अंगो०-देवाणु०-तित्थ० । तिरिक्ख०-एइंदि० णवुंसगभंगो । सेसं ओघं ।

२०७. णील-काऊणं आभिणि०दंडओ साददंडओ णिरयमंगो । इत्थि०-पुरिस०-

ध्रुव करना चाहिए। शेव भक्त श्रोघके समान है। असंयत जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दष्टि सम्बन्धी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। चजुदर्शनी खीर श्रचजुदर्शनी जीवोंमें श्रोघके समान भक्त है।

२०५. कृदणलेश्यामें आभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डक नपुंसकोंके समान जानना चाहिए। सातावेदनीय दण्डक नारिकयोंके समान जानना चाहिए। चार आयुआंका भक्त श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय. देवगति आदि अष्टाईस प्रकृतियाँ, उच्च-गोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थ-छूर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। अथवा मिध्यादृष्टि यदि करता है तो मिध्यादृष्टि प्रकृतियाँ भी जाननी चाहिए।

२०६. देवगतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कवाय, पाँच नोकषाय पञ्चिन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ, निर्माण, उद्यगोत्र, श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अनुस्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। वैकियिकशारीर, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रोर देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष होता है। इसी प्रकार देवगतिके समान वैकियिकशारीर, वैकियिकशाङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिक्तिकर्ष जानेना चाहिए। तिर्येक्कगित श्रोर एकेन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे सिक्तवर्ष नपुंसक जीवोंके समान है। शेष भङ्ग श्रीधके समान है।

२०७. नील और कापोतलेश्यामें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डक श्रीर सातावेदनीय

१. श्रा॰ मतौ मिच्छादिहिपगदीश्रो वि इति पाठः। २. श्रा॰ मतौ श्रयां तगु॰ही॰ । वेउव्वि॰ श्रंगो॰ इति पाठः।

हस्स-रदि-चदुसंठा०-चदुसंघ०-उज्जो० णिरयभंगो | चदुआउ० ओघं । णवरि देवाउ० उ० बं० पंचणा०--छदंसणा०-साद०--बारसक०--पंचणोक०--देवगदिअद्वावीस--उच्चा०- पंचंत० णि० अणंतगुणही० । तित्थ० सिया० अणंतगुणही० । अथवा पुण मिच्छा-दिद्विस्स पि होदि तदो णादव्या विभासा । णिरयगदि० उ० बं० णिरयाणु० णि० । तं तु० । सेसाओ णि० अणंतगु० । एवं णिरयाणु० । देवगदि४--तित्थय० किण्ण०- भंगो । चदुजादि-आदाव--थावरादि०४ --बुंसगभंगो । उज्जोवं पढमपुढविभंगो । काऊए तित्थ० णिरयभंगो ।

२०८. तेऊए आभिणि०दंढओ सोधम्मभंगो | साददंढओ परिहार०भंगो | इत्थि०-पुरिस०--हस्स--रदि--दोआड०--चदुसंठा०--पंचसंघ० सोधम्मभंगो | देवाड० ओघो | मणुसगदिपंचगं ओघं | एवं पम्माए वि | णविर अप्पसत्थाणं सहस्सारभँगो णादच्वो | सुकाए आभिणि०दंढओ इत्थि०--पुरिस०--हस्स--रदि--मणुसाउ०--चदुसंठा०-चदुसंघ० आणदभंगो | सेसं ओघं |

२०६. भवसि० औषं । अब्भवसि० आभिणि०दंढओ ओषं । साद० उ० बं० पंचणा०- णवदंसणा०-मिच्छ०-सोस्रसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० णि०

दण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। कीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार, संस्थान, चार संहनन चौर उद्योतका भङ्ग नारिकयोंके समान है। चार आयुका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवायुके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव भाँच श्रानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, बारह कषाय, भाँच नोकषाय, देवगित आदि श्रष्टाईस प्रकृतियाँ, उचगोत्र और भाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। श्रथवा यदि मिध्यादृष्टिके भी होता है तो विकल्प जानना चाहिए। नरकगितके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव नरकगित्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिकृप होता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिकृप होता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिकृप होता है। श्रेष प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार नरकगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष ज्ञानना चाहिए। देवगित चतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष कृष्णुलेश्याके समान है। चार जाति, श्रातप और स्थावर श्रादि चारकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष नपुंत्रकर्ष पहली पृथिवीके समान है। कार्पोतलेश्यामें तीर्थङ्कर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष नारिकर्योंके समान है।

२०८. पीत लेश्यामें आभिनिबोधिक ज्ञानावरण दण्डकका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। स्रीवेद, पुरुववेद, हास्य, रित, दो आयु, चार संस्थान और पाँच संहननका भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। देवायुका भङ्ग आधके समान है। मनुष्यगित पञ्चकका भङ्ग आधके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग सहस्रार कल्पके समान है। शुक्तलेश्यामें आभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डक, स्तीवेद, पुरुववेद, हास्य, रित, मनुष्यायु, चार संस्थान और चार संहननका भङ्ग आनत कल्पके समान है। शेप भङ्ग आधके समान है।

२०६. भव्य जीवोंमें श्रोधके समान भङ्ग है। श्रभव्य जीवोंमें श्राभिनियोधिक ज्ञानावरण दण्डक श्रोधके समान है। सातावेदनीयके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण अणंतग्रु०। तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतग्रु०। मणुसगदिपंचग-देवगदि४-उज्जो ०-उचा० सिया०।तं तु०।पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०[४-] अग्रु०२-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिञ्च०-णिमि० णिय०।तं तु०। एवं उच्चागोदं पि। णविर तिरिक्खसंजुतं वज्ज।

- २१०. मणुस-देवगदि० उ० वं० पसत्थाणं णि०।तं तु०। अप्पसत्थाणं अणंत-गु०ही०। एवं मणुसाणु०-देवगदि०४।
- २११. ओरालि० उ० वं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतगु० । मणुसग०-मणुसाणु०-उज्जो० सिया० । तं तु० । सेसं मणुसगदिभंगो । एवं ओरालि०-श्रंगो०-वज्जरि० । एवं उज्जो० । सेसं ओघो ।
 - २१२. सासणे आभिणि० उ० वं० चढुणा०-णवदंसणा०-असादा०-सोलसक०-

नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्य करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगतिपञ्चक, देवगति चतुष्क, उद्योत और उचगोत्रका कदाचित् वन्य करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्य करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष होता है। पञ्चीन्द्रयज्ञाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणका नियमसे बन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्य करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्य करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिक्ष होता है। इसी प्रकार उच्चगोत्रकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रगतिसंगुक्त प्रकृतियोंको छोड़कर सिन्नकर्ष कहना चाहिए।

२१०. मनुष्यगति श्रीर देवगतिके उत्कृष्ट श्रनुभागका वन्य करनेवाला जीव प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित ह।निरूप होता है। श्रप्रशस्त प्रकृतियोंका श्रनुत्कृष्ट श्रानन्तगुणहीन बन्ध करता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर देवगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सन्निकर्य जानना चाहिए।

२११. श्रीदारिक शरीरके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित हानिक्ष होता है। शेव भन्न मनुष्यगतिके समान है। इसी प्रकार श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वज्जर्षभनाराच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार उद्योत प्रकृतिकी मुख्यतासे भी सिन्नकर्ष जानना चाहिए। शेष भन्न ओघके समान है।

२१२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीघोंमें आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके उत्कृष्ट अनुमागका बन्ध

रै. म्रा॰ प्रतौ ऋप्यस्थर उज्जो॰ इति पाठः ।

इत्थि०--अरदि--सोग-भय--दुगुं०--तिरिक्ख०--वामण०-खील्ठिय०--अप्पसत्थ०४--तिरि-क्खाणु०-उप०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिञ्ञ०-णीचा०-पंचंत० णि० । तं तु० । पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०--क०--ओरालि०श्चंगो०--पसत्थ०४-अगु०३-तस०४--णिमि० णी० अणंतगु०ही० । उज्जोवं सिया० अणंतगु० । एवं तं तु० पदिदाणं ।

२१३. साद० उ० बं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० अणंतर्गु० । दोगदि-दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरिस०-दोआणु०--उज्जो०-उच्चा० सिया० । तं तु० । पंचणाणावरणादिअप्पसत्थाणं णिय० अणंतगु० । पंचिदियादिपसत्थाणं णि० । तं तु० । इत्थि०-पुरिस०--इस्स-रदि--तिण्णिआउ-तिण्णिसंद्या०-तिण्णिसंघ०-उज्जो० ओघं । सेसाणं कम्माणं हेटा उविरं सादभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।

२१४. सम्मामिच्छादिही० आभिणि०भंगो । मिच्छादिही० मदि०भंगो । ओरालि० उ० बं० तिरिक्सा०-तिरिक्साणु०-णीचा० सिया० अणंतगुणही०। मणुसगदि-

करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसाता वेदनीय, सोलह कषाय, खीवेद, अरित, शोक, भय, जुगुण्सा, तिर्यञ्चगित, वामन संस्थान, कीलक संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यातुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। पञ्चोन्द्रिय जाति, औदारिक शारीर, तेजस शारीर, कार्मणशारीर, औदारिक आङ्गोणङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वधुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार तं तु॰पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकृष्ठ जानना चाहिए।

२१३. सातावेदनीयके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। दो गति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्अर्थभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिकृप होता है। पाँच ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अनुत्कृष्ट अनन्तगुणा हीन होता है। पश्चेन्द्रिय जाति आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित हानिकृप होता है। स्रविद पुरुषवेद, हास्य, रित, तीन आयु, तीन संस्थान, तीन संहनन और उद्योतका भङ्ग ओधके समान है। शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिक्षकर्षके समान है।

२१४. सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें श्राभिनिबोधिक ज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। मिध्या-दृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। किन्तु श्रोदारिक शरीरके उत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्यञ्जगति, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी श्रोर नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता

१. स्ना॰ प्रतौ तिरिक्खासु॰ स्रर्णतगु॰ इति पाठः । २. ता॰ आ० प्रत्योः सेसास् सामास् हेडा इति पाठः ।

उज्जोवं सिया० । तं हु[°]० । ओरालि०त्रंगो०-वज्जरि० णि० । तं तु० । सेसाओ पसत्थाओ णि० अणंतगु० । एवं ओरालिक्रंगो०-वज्जरि० ।

२१५. सण्णि० ओघं। असण्णी० तिरिक्लोघो। साददंढओ मदि०भंगो। आहार० ओघं। अणाहार० कम्महग०भंगो।

एवं उकस्सं सम्मत्तं।

२१६. जहण्णपरत्थाणसण्णियासे पगदं। दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० आभिणि० जह० अणुभागं वंधंतो चदुणा०-चदुदंस०-पंचंत० णि० वं० जहण्णा। साद०-जस०-उचा० णि० वं० णि० अजहण्णं अणंतगुणब्भिहयं वंधिद्। एवं चदुणा०-चदुदंस०-पंचंत०।

२१७. णिद्दाणिद्दाए जहण्णं वं० पंचणा०-छदंसणा०-सादा०-वारसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दुगुं०--देवगदि-पंचिदि०-वेउन्ति०-तेजा०-क०-समचदु०-वेउन्ति० छांगो०-पसत्थापसत्थ०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०--तस०४- थिरादिछ०-णिमि०--उच्चाँ०-

है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। मनुष्यगित श्रीर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वश्रवंभनाराच संहननका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह उत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित हानिरूप होता है। शेष प्रशस्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो श्रनुत्कृष्ट श्रनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वश्रवंभनाराच संहननकी मुख्यतासे सन्निक्षं जानना चाहिए।

२१५. संक्षियोंमें श्रोघके समान भङ्ग हैं। श्रसंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यञ्जोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयदण्डक मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। श्राहारक जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। श्रनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष समाप्त हुत्रा।

२१६. जघन्य परस्थान सिन्नकर्षका प्रकरण है। उसकी अपेदा निर्देश दो प्रकारका है— अघ और आदेश। ओघसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागका नियमसे बन्ध करता है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो नियमसे अज्ञयन्य अनन्तगुणे अधिक अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार चार ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष ज्ञानना चाहिए।

२१७. निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, सातावेदनीय, बारह कपाय, पुरुपवेद, हास्य, रित, भय, जुगुरसा, देवगित, पञ्चे न्द्रियज्ञाति, वैकियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो

१. ता० प्रतौ उज्जोवं तं तु० इति पाठः। २, त्रा• प्रतौ स्पिमि० सि० उचा० इति पाठः।

पंचंत०-णि०वं० णि० अज० अणंतगु०। पचलापचला-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि०। तं तु०। छद्वाणपदिदं वं० अणंतभागब्भहियं वा ४। एवं पचलापचला०-थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अणंताणु०४।

२१८. णिद्याए ज० वं० पंचणा०-चढुदंस०-सादा०-चढुसंज०-पंचणोक०-णामाणि णिद्याणिद्याए भंगो । उच्चा०-पंचंत० [णि०] अणंतगुणब्भ० । पचला० णि० । तं तु० छट्टाणपदिदं० । आहारदुग-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवं पचला० ।

२१६. साद० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-पसत्था-पसत्थ०४-अगु०--उप०--णिमि०--पंचंत० णिय० अणंतगुण्डभ० । श्रीणगिद्धि ३--मिच्छ०-बारसक०--सत्तणोक०--तिरिक्ख०-पंचिदि०--दोसरीर-दोश्चंगो०-तिरिक्खाणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०-तस०४--तित्थ०-णीचा० सिया० अणंतगुण्डभ० । तिण्णि-आउ-दोगदि-चदुजादि-- छस्संठा०-- छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०--थिरादिछयुग०-उश्चा०

नियमसे अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। कीर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित युद्धिरूप बन्ध करता है। अर्थान् या तो अनन्तभागवृद्धिरूप या असंख्यातभागवृद्धिरूप, संख्यातभागवृद्धिरूप, संख्यातभागवृद्धिरूप, संख्यातगुणवृद्धिरूप, संख्यातगुणवृद्धिरूप, असंख्यातगुणवृद्धिरूप या अनन्तगुणवृद्धिरूप वन्ध करता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिथ्यात्व, और अनन्तानुबन्धी चार की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२१८. निद्राके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय और नामकर्मकी प्रकृतियोंका भक्न निद्रानिद्राके समान है। उचगोत्र और पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रज्जघन्य श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। प्रचलाका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। श्रीर श्रजघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक प्रता है। श्राहारकद्विक श्रीर तीर्थक्करका कदाचित् बन्ध करता है को श्रज्जघन्य श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रकृतिकी भुख्यतासे सिष्ठकर्ष ज्ञानना चाहिए।

२८. सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संख्वलन, भय, जुगुप्सा, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अभश्यस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, वारह कथाय, सात नोकषाय, तिर्यक्षगति, पन्नोन्द्रिय जाति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, असचतुष्क, तीर्थङ्कर और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, दो गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है। इसी प्रकार

सिया० । तं तु० । एवं असाद०-अधिर-असुभ-अजस० । णवरि णिरयाणु-णिरयगदि-देवगदि-दोआणु० सिया० । तं तु० ! देवाड० वज्ज ।

२२०. अपचक्ला० कोध० ज० बं० तिण्णि क०। तं तु०। सेसं णिहाए भंगो। णवरि अद्वकसायं भाणिदन्वं । एवं तिण्णं क०।

२२१. पचक्लाणकोधः जिंब वं तिण्णिकः णिवितं तुव्। सेसं णिहाए भंगो। एवं तिण्णिं कव्।

२२२. कोधसंज० ज०बं० पंचणा०-चढुदंस०-सादा०-तिण्णिसंज०-जसगि०-उचा०-पंचंत० णिश्वणंतगुणब्भ०| माणसंज० ज०बं० दोसंज० णि० अणंतगुणब्भ०| सेसं० कोधभंगो | मायसंज० ज० वं लोभसंज० णि० अणंतगुणब्भ० | सेसं माणभंगो | लोभ-संज० ज०बं० पंचणा०-चढुदंसणा०-सादा०जस०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० |

२२३, इत्थि० ज० बं० पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०-

श्रसातावेदनीय, श्रस्थिर, श्रश्चम और अयशःकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्निकर्प जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नरकायु, नरकगति, देवगति और दो श्रानुपूर्वीका कदाचित् वन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मात्र देवायुको छोड़कर इन श्रसातावेदनीय श्रादिकी मुख्यतासे यह सिन्निकर्ष कहना चाहिए।

२२०. अप्रत्याख्यानावरण कोधके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। फिन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष प्रष्टतियोंका भङ्ग निद्राके समान है। इतनी विशेषता है कि आठ कपाय कहलाना चाहिए। इसी प्रकार तीन कषायोंकी मुख्यतासे सिक्षकर्ष जानना चाहिए।

२२१. प्रत्याख्यानावरण क्रोधके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव तीन कषायोंका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। शेष भक्क निद्राप्रकृतिके समान है। इसी प्रकार तीन कषायोंकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२२२. क्रोध संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, साता वेदनीय, तीन संज्वलन, यशःकीर्ति, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मानसंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग क्रोध संज्वलनके समान है। मायासंज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव लोभ संज्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग मान संज्वलनके समान है। लोभ संज्वलनके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच क्रानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तराणा अधिक होता है।

२२३. स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शन।वरण,

१. ता॰ प्रतौ भिएदम्बं इति पाठः।

पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-चढुणोक०-तिण्णिगदि-दोसरीर-तिण्णिसंठा०-दोश्चंगो०--तिण्णिसंघ०-तिण्णिआणु०-उज्जो०--धिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-णीचुचागो० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं णवुंस०। णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ० सिया० अणंतगुणब्भ०।

२२४. पुरिस० ज० बं० कोधसंजलणभंगो। णवरि चहुसंज० णि० अणंतगुणब्भ०। २२५. हस्स० ज० बं० पंचणा०--चढुदंसणा०--सादौ०--चहुसंज०--पुरिस०-जस०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। रदि-भय-दु० णियमा। तं तु०। एवं रदि-भय-दु०।

२२६. अरदि० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा-सादा०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवगदि-पसत्थद्वावीस-उचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। तित्थ० सिया० अणंत-गुणब्भ०। सोग० णि०। तं तु०। एवं सोग०।

मिण्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा, पश्चीन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्ण् चतुष्क, अप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकधाय, तीन गति, दो शरीर, तीन संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, तीन संहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशाःकीर्ति, अयशाः कीर्ति, नीचगोत्र और उच्चगोत्रका कदाचित् वन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पाँच संस्थान और पाँच संहननका कदाचित् वन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२२४. पुरुषवेदके जघन्य त्रानुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग क्रीध संब्वलनके समान है । इतनी विशेषता है कि चार संब्वलनका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजचन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है ।

२२५. हास्यप्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ह्यानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीतिं, उद्यगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। रति, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। श्रीर अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। इसी प्रकार रति, भय और जुगुप्साकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२२६. अरितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगित आदि प्रशस्त अट्टाईस प्रकृतियाँ, दबगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीर्थंद्वर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु यह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार शोककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१. ऋा॰ प्रतौ पंचणा॰ सादा॰ इति पाठः।

२२७. णिरयाउ० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-पंचि०-वेउव्वि०-तेजा०--क०--वेउव्वि०ग्रंगो०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०४-तस०४--णिमिं०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । असाद०-णिरय०-हुंड०-णिरयाणु०-अप्पसत्थवि०-अथिरादिछ० णि० । तं तु० । एवं णिरयगदि-णिरयाणु० ।

२२ द्र. तिरिक्ताउ० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोस्रसक०-णवुंस०-भय-दु०-तिरिक्त०-ओरास्ति०--तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४ –अगु०३--उप०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासा०-चदुजादि-असंप०-थावर-मुहुम-साधार० सिया०। तं तु०। चदुणोक०-पंचि०-ओरास्ति० अंगो०-तस०-बादर-पत्ते० सिया० अणंतगुणब्भे०। हुंड०-अपज्ज०-अथिरादिपंच० णि०। तं तु०। मणुसाउ० ज० तिरि-क्लाउ०भंगो । णवरि मणुस०-हुंड०-असंप०-मणुसाणु०-अपज्ज०-अथिरादिपंच णि०। तं तु०।

२२७. तरकायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, पञ्चोन्द्रय जाति, वैक्रियिकशारीर, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, अस्चतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तराया अधिक होता है। असातावेदनीय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगिति और अस्थिर आदि अहका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्य होता है। इसी प्रकार नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२२० तिर्यञ्चायुके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगित छौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुज्ञघुत्रिक, उपघात, निर्माण,
नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता
है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार जाति, असम्प्राप्तास्त्रपाटिका संहनन, स्थावर, सूद्म और
साधारणका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जचन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और
अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह
स्थान पतित बृद्धिकप होता है। चार नोकषाय, पश्चोन्द्रिय जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, त्रस,
बादर और प्रत्येकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। हुण्ड
संस्थान, अपर्याप्त और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य
अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य
अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिकप होता है। मनुष्यायुके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग तिर्यञ्चायुके समान है। इतनी विशेवता है कि मनुष्यगित,
हुण्डसंथान, असम्प्राप्तस्वपटिका संहनन, मनुष्यगत्वासुपूर्वी, अपर्याप्त और अस्थिर आदि पाँचका
नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका
नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका

१. ऋा॰ प्रतौ तस॰ गिमि॰ इति पाठ:। २. ऋा॰ प्रतौ पत्ते॰ ऋगांतगुण्डम॰ इति पाठः। ३. ऋा॰ प्रतौ मगुसाड॰ उ० तिरिक्लभंगो इति पाठः।

- २२६. देवाउ० ज० वं पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिं०-वेडिव्व०-तेजा०-क०-वेडिव्वि० ऋंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०-पंचेत० णिय० अणंतगुणबभ०। सादौ०--देवग०--समचदु०--देवाणु०--पसत्थवि०-थिरादिछ०-उचा० णि०। तं तु०। इत्थि०-पुरिस० सिया० अणंतगुणब्भ०।
- २३०, तिरिक्ख॰ ज॰ बं॰ पंचणा॰--णवदंस०--सादा॰-मिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०-पंचंत॰ णि॰ अणंतग्रुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । णीचा० । तं द्य० । एवं तिरिक्खाणु०-णीचा० ।
- २३१. मणुसं० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-मणुसाउ०-झस्संठा०-झस्संघ०-दोविहा०-अपज्ज०-थिरादिञ्चयुग०-डचा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-पर०-उस्सा०-पज्ज०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० झंगो-पसत्था-

भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धि-रूप होता है।

२२६. देषायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पद्धेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मण्शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अपुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, देवगति, समचतुरक्षसंस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्यायोगति, स्थिय आदि छह और उद्यगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है जो खह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। स्विवेद और पुरुषवेदका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है।

२३०. तिर्येश्वगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेयाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शना-वरण, सातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तिर्येद्धगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२३१. मनुष्यगितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शना-वरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजपन्य श्रनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, मनुष्याय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगिति, श्रपर्याप्त, स्थिर श्रादि छह युगल श्रीर उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। सात नोकषाय, परधात, उच्छ्वास, पर्याप्त श्रीर नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रीविक होता है। पञ्चीन्द्रियजाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्यरीर,

१. ऋा• प्रतौ सादासाद॰ इति पाठः।

पसत्थ॰४—अगु०-उप०-तस०-बादर-पत्ते०-णिमि० णि० अणंतगुणब्भ० । मणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं मणुसाणु० ।

२३२. देवगर्दि० ज० वं पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचेतं० णि० अणंतगुणन्भ०। सादासाद०-देवाउ० सिया०। तं तु०। इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रदि--अरदि--सोग० सिया० अणंतगुणन्भ०। उञ्चा० णि०। तं तु०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं देवाणु०।

२३३. एइंदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय०-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतग्रुणब्भ० । सादासाद०-तिरिक्खाउ० सिया० । तं तु० । हस्स-रदि-अरदि-सोग० सिया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं बेइं०-तेइं०-चदुरिं० हेट्टा उवरिं एइंदियभंगो । णाम० सत्थाणभंगो ।

श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। मनुष्य-गत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रज-घन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित शृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२३२. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञ घन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और देवायुका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। स्विवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, अरित और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अज्ञ घन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अज्ञ घन्य अनुभागका सी बन्ध करता है। यदि अज्ञ घन्य अनुभागका सी बन्ध करता है। यदि अज्ञ घन्य अनुभागका सी बन्ध करता है। इसी प्रकार देवगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सिक्नकर्ष जानना चाहिए।

२३३. एकेन्द्रिय जातिके जघन्य श्रानुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यादव, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुष्सा, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य श्रन्तत्गुणा श्रिषक होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, श्रीर तिर्यक्षायुका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जवन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है। वेद श्रह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। हास्य, रित, श्ररित और शोकका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य श्रन्तत्गुणा धिषक होता है। नामकर्मका भन्न स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति श्रीर खतुरिन्द्रिय जातिकी मुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी श्रीर बादकी प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष एकेन्द्रिय जातिके समान है तथा नामकर्मका भन्न स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।

१. ता॰ प्रती एवं मशुसासाु॰। शि॰ तं तु॰ एवं मशु॰ एतिश्वन्हान्तर्गतः पाठोऽश्विकः प्रतीयते।]
देवगदि॰, श्रा॰ प्रती एवं मसुसासाु॰ शि॰ तं तु॰ एवं मसुस॰ देवगदि॰ इति पाठः। २. श्रा॰ प्रती
सोलसक॰ यावुंस॰ भयदु॰ गीचा॰ पंचंत॰ इति पाठः।

२३४. पंचिदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं तस० ।

२३५. ओरास्ति० जं० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोस्रसक०-पंचणोक०--णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो। एवं उज्जो०।

२३६. वेजिव्व० ज० बं० रेडा जबरिं पंचिदिय०भंगो । णाम० सत्थाणभंगो । एवं वेजिव्व०त्रंगो० ।

२३७. आहार० ज० बं० पंचणा०-छदंस०-सादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-देव-गदिपसत्थद्वावीसं-उचा०-पंचंत० णि० अणंतमुणब्भ०। आहार०छंगो ै० णि०। तं तु०। तित्थ० सिया० अणंतमुणब्भ०। एवं आहारंगोवंग०।

२३८. तेजाक० हेट्टा उवर्रि पंचिदियभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। एवं तेजइग-भंगो कम्मइ०-पसत्थवण्ण४-अग्रु०३-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि०।

२३४. पद्धोन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रासातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्त-रायका नियमसे बन्ध करता है जो श्राजघन्य श्रानन्तगुणा श्रधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार त्रस प्रकृतिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३५. श्रौदारिकशरीरके जयन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रासातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य श्रानन्तगुणा श्राधिक होता है। नामकर्मका भक्न स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार उद्योतकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३६. वैक्रियिकशरीरके जघन्य ब्यनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी ब्यौर बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चीन्द्रिय जातिके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिक ब्राङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२३७. स्राहारकरारीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, देवगति स्रादि प्रशस्त स्रष्टाईस प्रकृतियाँ, उचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। श्राहारक स्राङ्गोपाङ्गका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अज्ञचन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थंद्वर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार आहारक आङ्गोपाङ्गकी मुख्यतासे सिनिकर्षं जानना चाहिए।

२२८. तैजसरारीरके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रौर बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्जोन्द्रिय जातिके समान है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्वके समान है। इसी प्रकार तैजसरारीरके समान कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुरक, श्रगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक श्रौर निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

१, ता • आ • प्रत्योः श्राहारमंगो • इति पाठः ।

२३६. समचढु० ज० बं० पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णि०अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-देवाड०-उच्चा० सिया० । तं हु० । सत्तणोक०-दोआउ०--णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदेँ० ।

२४०. णग्गोद० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०--भिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचंत० णिय० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-उच्चा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-दोआउ०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो। एवं णम्गोद०भंगो तिण्णिसंठा०-पंचसंघ० ।

२४१. हुंड० ज०बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० | दोवेदणी०-तिण्णिआउ०-उच्चा० सिया० | तं तु० | सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भहियं० | णाम० सत्थाणभंगो | एवं हुंड०भंगो दूभग-अणादेँ० |

२३६. समचतुरस्र संस्थानके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, मय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और उचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह अह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। सात नोकपाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर और आदेयकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४०. न्यमोध संस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुष्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और उच्चात्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार न्यमोध संस्थानके समान तीन संस्थान और पाँच संहननकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४१. हुण्ड संस्थानके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रज्ञघन्य श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। दो वेदनीय, तीन श्रायु श्रोर उच्चगोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रज्ञघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रमुभागका मी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञघन्य श्रमुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय श्रोर नीचगोत्र का कदाचित् वन्ध करता है जो श्रज्ञघन्य श्रमन्तगुणा श्रिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार हुण्ड संस्थानके समान दुर्भग श्रोर श्रनादेयकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४२. ओरास्त्रि॰झंगो ज० वं॰ हेद्वा उनिरं ओरास्त्रिय॰भंगो।णाम॰ सत्थाणभंगो। २४३. असंप० ज० वं॰ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोस्रसक०-भय०-दुगुं०-पंचंत०णि० अणंतगुणब्भ०। दोवेदणी०-तिरिक्ख०-मणुसाउ०-उच्चा० सिया०।तंतु०। सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ०। णाम० सत्थाणभंगो।

२४४. आदाउज्जो० ज०बं०पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०--णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० | णाम० सत्थाणभंगो० |

२४५. अप्पतत्थवि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोत्तसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतगुण्डम० । सादासाद०-णिरयाउ०-उद्या० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०--दोआउ०--णीचा० सिया० अणंतगुण्डभ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं दुस्सर० ।

२४६. सुहुम० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-भय०-दु०-णीवा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। सादासाद०-तिरिक्खाड० सिया०।तंतु०।

२४२. श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी श्रीर बादकी प्रकृतियोंका भंग श्रीदारिकशरीरके समान है। तथा नामकर्मका भंग स्वस्थान सिम-कर्षके समान है।

२४३. श्रसम्प्राप्तासृपादिका संहतनके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञाना-वरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा और पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। दो वेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और उद्यमोश्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि धन्ध करता है, तो जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकघाय श्रीर नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। नामकर्मका मंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४४. त्रातप श्रोर उद्योतके जघन्य श्रतुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कवाय, पाँच नोकवाय, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्त-रायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य श्रनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४५. अप्रशस्त विद्वायोगितके जधन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कथाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, नरकायु और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, दो आयु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भंग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार दुःस्वर प्रकृतिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४६. सूर्त्सके जधन्य अनुमागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कवाय, नणुंसकवेद, भय, जुगुंत्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे धन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और तियंक्षायुका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अज-

चढुणोकः सियाः अणंतगुणःभः । णामः सत्याणभंगो । एवं अपज्जः -साधारः । णवरि अपज्जनो दोआउ० सियाः । तं तुः ।

२४७, थिर० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय०-दु०-पंचंत० णि० अणंतग्रुणब्भ० । थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-बारसक०--सत्तणोक०--तिरिक्ख-मणुसाउ०-णीचा० सिया० अणंतग्रु० । सादासाद०-देवाउ०-उचा० सिया० । तं तु० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं सुभ-जस० ।

२४८. तित्थ० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-असाद०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० | णाम० सत्थाणभंगो |

२४६. उचा० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०--सोलसक०-भय०-हु०-पंचि०-तेजा०-क०--पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-तस०४-णिमि०--पंचंत० णि० अणंत-गुणबभहियं० । सादासाद०-देवाउ०-छसंठा०-छस्संघ०-दोगदि-दोआणु०--दोविहा०-

घन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत बृद्धिरूप होता है। चार नोकषायका कराचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकषायका कराचित् बन्ध करता है। इसी प्रकार अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियोंकी मुख्यताने सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो आयुओंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत बृद्धिरूप होता है।

२४७. स्थिरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संख्वलन, भय, जुंगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तर गुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, बारह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मतुष्यायु और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। साता-वेदनीय, असातावेदनीय, देवायु और उद्योजका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्षप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार शुभ और यशाकीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२४८. तीर्थंद्धर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कथाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुष्सा, उद्यगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है।

२४६. उचगोत्रके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलइ कथाय, भय जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रिय जाति, तेजसरारीर, कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, देवायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो गति, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और स्थिर आदि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है तो

थिरादिञ्चयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-मणुसाउ०-दोसरीर-दोश्रंगो० सिया० अणंतगुणब्भहियं बंधदि ।

२५०, आदेसेण णिरएसु आभिणि० ज० वं० चढुणा०-छदंसणा०-बारस-क०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। साद०-मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालि०--तेजा०--क०-समचढु०--ओरालि०झंगो०--वज्जरि०-पसत्थ०-४-मणुसाणु०--अगु०३--पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०--उच्चा० णि० अणंत-गुणब्भ०। तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। एवं आभिणि०भंगो० तं तु० पदिदाणं सन्वाणं।

२५१. णिद्दाणिद्दाए ज० वं० पंचणा०-छदंस०-साद०-वारसक०-पंचणोक०-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०--समचदु०-ओरालि०द्यंगो०--वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४ – अगु०४ –पसत्थवि०--तस०४ –थिरादिछ०--णिमि०--पंचंत० णि० अणंतगु०। पचला-पचला०-थीणगिद्धिं०-मिच्छ०-अणंताणु०४ णि०। तं तु०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया०। तं तु०। मणुस०-मणुसाणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० अणंतगुणक्य०।

वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय, मनुष्यायु, दो शरीर श्रीर दो स्राङ्गोपाङ्ग-का कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक श्रमुभागबन्ध करता है।

२५०. श्रादेशसे नारिकयोंमें श्राभिनिक्षेधिक ज्ञानावरएके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरए, छह दर्शनावरए, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, उपघात और पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजधन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पश्चेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मएशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्चर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलधुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादिछह, निर्माण और बचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजधन्य श्रनन्तगुए। श्रधिक होता है। इसी प्रकार तं तुम्यतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिष्ठकर्ष श्राभिनक्षेधिक ज्ञानावरएके समान जानना चाहिए।

२५१. निद्रानिद्राके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, पञ्चोन्द्रियजाति, त्रौदारिकशरीर, तेजसशरीर,
कार्मणशरीर, समचतुरस्नसंस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्रपंभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क,
श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर द्यादि छह, निर्माण
स्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रज्ञचन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है।
प्रज्ञलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिध्यात्व श्रौर श्रज्ञचन्यीचारका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु
वह जचन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रौर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि
श्रज्ञचन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। यदि श्रज्ञचन्य
श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रौर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञचन्य
श्रनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगित, मनुष्यगत्या-

१. ग्रा॰ प्रतौ थीणगिद्धि०३ मिच्छा० इति पाठः ।

एवं पचलापचला ०-थीणगिद्धि ०-मिच्छ०-अणंताणु०४ ।

२५२. साद० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय०-दु०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क० - ओरालि०ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अग्र०४-तस०४-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतग्र० | धीणमिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-तित्थ०-णीचा० सिया० अणंतग्रणब्भ० | दोआउ०-मणुसग०-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहाब-थिरादिछ०-उचा० सिया० | तं तु० | एवं सादभंगो असाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० |

२५३. इत्थि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि० झंगो०-पसत्थापसत्थ०४—अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगुण्ण्चभ० । सादासाद०-चदु-णोक०-दोगदि-तिण्णिसंदा०-तिण्णिसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस०-दोगोद० सिया० अणंतगुण्ण्चभ० । एवं णवुंस० । णवरि पंचसंदा०-पंचसंघ० सिया० अणंतगुण्चभ० ।

तुपूर्वी, उद्योत श्रीर उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिध्यात्व श्रीर अनन्तानुबन्धी चारकी मुख्यतासे जानना चाहिए।

२५२. सातावेदनीयके जघन्य श्रमुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कघाय, भय, जुलुप्सा, पञ्चोन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मण्शरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रोर पाँच श्रम्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रमन्तगुणा श्रिषक होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिध्यात्व, श्रमन्तानुबन्धी चार, सात नोकधाय, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तीर्थञ्चर श्रोर नीचगोत्रका कदाचिन् बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रमन्तगुणा श्रिषक होता है। दो श्राय, मनुष्यगति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थिर श्रादि छह श्रोर अचगोत्रका कदाचिन् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रायका स्राता वेदनीय, स्थर, श्रम् अग्रम, यशःकीर्ति श्रोर अयशः-कीर्तिकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२५३. स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कथाय, भय, जुगुष्सा, पञ्चोन्द्रय जाति, औदारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मण्रारीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, दो गित, तीन संस्थान, तीन संहतन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजवन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्य जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह पाँच संस्थान और पाँच संहननका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य

२५४. अरदि० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-सादावे०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुसग०-पंचिदि० - ओराल्ठि० - तेजा०-क० - समचदु० - ओराल्जि० झंगो० - वज्जरि०-पसत्यापसत्य०४ - मणुसाणु०-अग्र०४ - पसत्यवि०-तस०४ - थिर-सुभ - सुभग - सुस्सर-आर्दे०-जसगि०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतग्रणब्भ० । तित्थ० सिया० अणंत-गुणब्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० ।

२५५. तिरिक्खाउ० ज० बं० पंचणी०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोल्सक०-भय०-दु०-तिरिक्ख०-पंचिदि०- ओराल्णि०-तेजा०-क० - ओराल्णि० झंगो० - पसत्थापसत्थ०४ — तिरिक्खाणु०-अगु०४ —तस०४ --णिमि०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुण्डभ० । सादा-साद०-इस्संडा०-इस्संघ०-दोविहा०-थिरादि छुग्ग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-उज्जो० सिया० अणंतगुण्डभ० । एवं मणुसाउँ० । णवरि सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुण्डभ० । सादादि याव उद्या० सिया० । तं तु० । मणुस०-मणुसाणु०

अनन्तगुणा अधिक होता है।

२५४. श्रातिके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, वारह कथाय, पुरुष्वेद, भय, जुगुन्सा, मनुष्यगित, पश्चिन्द्रिय जाति, श्रीदारिक-शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्चवभनाराच-संहमन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रुभ, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो श्रज्जचन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रज्जचन्य श्रन्तगुणा श्रधिक होता है। शोकका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रज्जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्जचन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। इसी श्रकार शोककी मुख्यतासे सिक्रकर्ष जानना चाहिए।

२५५. तिर्यक्चायुके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुरसा, तिर्यक्चगित, पद्धोन्द्रिय जाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी श्रगुरुलघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य श्रनन्तगुणा श्रिषक होता है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित् बन्ध करता हैं। यदि बन्ध करता है,तो जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिष्ठप होता है। सात नोकपाय श्रोर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी मुख्यतासे सिश्चकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सात नोकषाय श्रोर नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। सातावेदनीयसे लेकर उद्यगोत्र तककी प्रकृतियोंका कदाचित् बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका का भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका

१. ता॰ प्रतौ॰ ज॰ बं॰ पं॰ (१) पंचिणा॰ इति पाठः। २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः मशुसासुः इति पाठः।

मणुसाउ०भंगो० ।

२५६. पंचिदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरिद-सोग-भय-दु०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्याण-भंगो । एवं पंचिदियभंगो ओराल्चि०-तेजा०-क०-ओराल्चि०श्चंगो०-पसत्थ०४-अगु०३-उज्जो०-तस०४-णिमि० ।

२५७. समचदु० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-णि० अणंतगुणब्भ० । सादासाद०-दोआउ०-उचा० सिया० । तं तु० । सत्तणोक०-णीचा० सिया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं समचदुर०भंगो पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभादितिष्णियुग० ।

२५८. तित्थ० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-उद्या०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० | णाम० सत्थाणभंगो |

२५६. उचा० ज० वं० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०--भय० दु०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०ग्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४--अग्र०४-तस०४'-

बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। मनुष्यगति श्रीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीकी मुख्यतासे सित्रकर्ष मनुष्यायुके समान जानना चाहिए।

२५६. पञ्चेन्द्रिय जातिके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसक्षवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भक्क स्वस्थान सिक्रकर्षके समान है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जातिके समान औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आक्रोपाक्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरूलपु- त्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणकी मुख्यतासे सिक्रकर्ष जानना चाहिए।

२५७ समचतुरस्रसंस्थानके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुत्साका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, अमातावेदनीय, हो आयु और उचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषाय और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भक्न स्वस्थान सिक्नकर्षके समान है। इसी प्रकार समच्युरस्रसंस्थानके समान पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगित और शुमादि तीन युगलकी सुख्यतासे सिक्नकर्ष जानना चाहिए।

२५८. तीर्थं हुर प्रकृतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शन।वरण, असातावेदनीय, बारह कवाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुण्सा, उद्योश और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भक्न स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है।

२५६. उच्चगोत्रके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नी दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, सोलह कथाय, भय, जुगुत्सा, पञ्चोन्द्रियजाति, स्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर,

१, ऋा॰ प्रतौ पस्त्यापस्त्यः ४ तस॰ ४ इति पाउः ।

णिमि० णि० अणंतगुण्डभ० । सादासाद०--मणुसाउ०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा०थिरादिछयुग० सिया० । तं तु० । सत्तणोक० सिया० अणंतगुण्डभ० । मणुसगदिमणुसाणु० णि० । तं तु० । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा०
तित्थयरभंगो । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०--णचुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे ० णीचा० एदेसिं तिरिक्खगदी धुवं कादव्यं ।
णवरि धीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० वं० तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा०
णि० । तं तु० । एवमेदाओ अण्णोण्णस्स तं तु० । णवरि साद० ज० वं० दोगदिदोआणु०-उज्जो०-दोगो० सिया० अणंतगुण्डभ०। एवं असाद०-थिरादितिण्णियुगलाणं ।
छसु उवरिमासु णिरयोघो । णवरि तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० परियत्तमाणियाणं कादव्यं । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि-णवुंसगाणं मणुसगदिदुगं कादव्यं ।

कार्मण्शरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण्चतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रागुरुलघुचतुष्क, त्रसंचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, मनुष्यायु, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगित श्रीर स्थिर श्रादि छह युगलका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है,तो वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अज्घन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है स्त्रीर अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका बना करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी श्रीर उच्चगोत्रका भङ्ग तीर्थद्वर प्रकृतिके समान है। तथा स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रन-न्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अतादेय और नीचगोत्र इनकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष कहते समय तिर्येख्नगतिको धुव करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रनस्तानुबन्धी चारके जघन्य त्र्यनुभागका बन्ध करनेवाला जीव तिर्येख्नगति, तिर्येख्नगत्यानुपूर्वी श्रौर नीचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है । किन्तु वह जघन्य श्रानुभागका भी बन्ध करता है और श्राजघन्य श्रानुभाग का भी बन्ध करता है। यदि अज्ञचन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष जानना चाहिए। किन्तु वह स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिकी मुख्यतासे कहे गये सन्निकर्षके समान ही जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेयाला जीव दो गति, दो आनुपूर्वी, उद्योत श्रीर दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है जो श्राज्यवस्य श्रानन्तगुणा श्राधिक होता हैं । इसी प्रकार असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलोंकी अपेदा जानना चाहिए । प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें सामान्य नारिकयोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्क्यगति, तिर्यक्क गत्यानुपूर्वी त्र्योर नीचगोत्रको परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करना चाहिए। तथा स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके मनुष्यगति द्विक करना चाहिए।

१. ता० प्रती परियमाणि कादव्यं इति पाठः ।

२६०. तिरिक्षेसु आभिणि० ज० वं० चदुणा०-छदंस०-अहकसा०-पंचणोर्कं०अप्पसत्थ०-४--उप०-पंचंत० णिय० । तं तु० । साद०-देवग०पसत्थसत्तावीसं-उच्चा०
णि० अणंतगुणक्भ० । एवं तं तु पदिदाओ अण्णमण्णस्स तं तु० । सेसं ओघं । णविर अरिद० ज० वं० पंचणा०-छदंस०-अहक०-पुरिस०-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि अणंत-गुणक्भ० । सेसं णामाणं णाणावरणभंगो । एवं पंचिदिय०तिरि०३ । णविर तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीवा० परियत्तमाणियाणं काद्व्वं तिरिक्खेसु० । णविर पंचिदियजादीणं ओरास्ति०-ओरास्नि०इंगो०-उज्जो०-तिरिक्खगदिदुग० अप्पपणो सत्थाणं काद्व्वं ।

२६१. पंचिदि०तिरि०अपज्ज० आभिणि० ज० बं० चदुणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४—उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। साद०-मणुस०-पंचिदि०--तिण्णिसरीर--समचदु०--ओरालि०अंगो० - वज्जरि०-पसत्थ०४-मणु-साणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस४-धिरादिछ०-णिमि०-उच्चा० णि० अणंतगुणब्भ०। एवं तं तु० पदिदाओं अण्णोणं तं तु०।

२६०. तिर्येक्कोंमें आभिनियोधिकज्ञानावरएके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त, वर्णचतुष्क उपघात, और पाँच श्रान्तर।यका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रानुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रज्ञचन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो बह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। सातावेदनीय, देवगति आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रश्नुतियों और उद्यगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार तं तुःपतित जितनी प्रकृतियाँ हैं उनकी मुख्यतासे परस्पर आभिनिबोधिकज्ञानावरणकी मुख्यतासे जिस प्रकार सन्निकर्ष कहा है उस प्रकार जानना चाहिए। शेष भङ्ग त्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रारतिके जघन्य श्रामुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, स्राठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उचगोत्र श्रौर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष नामकर्मकी प्रकृतियोंका झानावरणके समान भक्क है। इसी प्रकार ऋथीत सामान्य तिर्यक्कोंके समान पक्कोन्द्रिय तिर्यक्कविकके सब प्रकृतियोंकी मुख्यत।से सन्निकर्ष जानना चःहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यक्कोंमें तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी त्रीर नीचगोत्रको परिवर्तमान प्रकृतियोंमें करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चोन्द्रियजाति त्रादिमें त्रीदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, उद्योत श्रीर तिर्यञ्जगतिद्विकका श्रपना-श्रपना स्वस्थान सन्निकर्ष कहना चाहिए।

२६१. पश्चे न्द्रिय तिर्थश्च अपर्याप्तकों में आभिनिबोधिकज्ञानावरण के जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। सातावेदनीय, मनुष्य गति, पख्चे न्द्रियजाति, तीन शरीर, समचतुरकासंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्क, बर्ञ्यभाराच-संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक

१. श्रा॰ प्रतौ चतुर्गोकः इति पठः ।

२६२. साद ० ज० वं० पंचणा ०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४—अग्रु०-उप०--णिमि०--पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । सत्तणोक०--ओरा०अंगो०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो० सिया० अणंतगुणब्भ० । दो आउ०-दोगदि-पंचजादि-छस्संठा०-छस्संधै०-दोआणु०-दोविहा०-तस-थावरादिदसयुग०-दोगो० सिया० । तं तु० । एवं सादभंगो असाद०-अथिर-असुभ०-अजस० ।

२६३. इत्थि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०मणुस०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०-क०-ओरालि०श्चंगो०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०अगु०४-पसत्थिवि ०तस०४ - सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगुणव्भ० । सादासाद०-चदुणोक०-तिण्णिसंठा०-तिण्णिसंघ०-थिरादितिण्णियुग०
सिया अणंतगुणव्भ० । एवं णवंस० । णवरि पंचसंठा०-पंचसंघ० ।

२६४. अरदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-

होता है। इसी प्रकार तं तु॰पतित जितनी प्रकृतियाँ हैं ,उनकी मुख्यतासे परस्पर सन्निकर्ष स्नाभिनि-बोधिकज्ञानावरणके समान जानना चाहिए।

र६२. सातावेदनीयके जधन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शना-बरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा. श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य श्रनन्तगुणा अधिक होता है। सात नोकषाय, श्रोदारिक आङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, श्रातप श्रोर उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो आयु, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, श्रस-स्थावर श्रादि दस युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और श्रजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धित्वप होता है। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान असातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ और अयशाकीर्तिकी मुख्यतासे सिककर्ष जानना चाहिए।

२६३. स्निवेदके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्म, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चोद्रियजाति, खौदारिकशरीर, तैजलशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचनुष्क, अप्रशस्त वर्णचनुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचनुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, असचनुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उद्यगोत्र, और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, तीन संस्थान, तीन संहनन और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार नषु सक्वेदकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें पाँच संस्थान और पाँच संहनन कहने चाहिए।

२६४. श्ररतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण,

१. ता॰ प्रतौ पंचजादि॰ छ्रहर्भा॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ स्रगु॰ पसत्थापसत्य॰ इति पाठः ।

०-दु०-मणुसं०-पंचिदि०-ओरालि०-तेजा०क०-समचदु०-ओरालि०झंगां०-वज्जिरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि०-उच्चा०-पंचत० णि० अणंतगुणन्भ० । सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० सिया० अणंतगुणन्भ० । सोग० णि० । तं तु० । एवं सोग० । तिरिख०-मणुसाउ०-मणुसग०-मणुसाणु० ओघं ।

२६५. तिरिक्ख॰ ज॰ वं॰ पंचणा०-जवदंस०-मिच्छ०-सोल्लसक०-भय०-दु०-पंचंत० णि॰ अर्णतगुणब्भ०। सादासाद०-तिरिक्खाउ० सिया०। तं तु०। सत्त-णोक्ष॰ सिया० अर्णतगुणब्भ०। जीचा० णि॰।तं तु०। जाम० सत्थाजभंगो। एवं तिरिक्खाणु०-जीचा०। चदुजादि खस्संटा०-छस्संघ०-दोविहा०-थिरादि०४ ओघं।

२६६. पंचिद् ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०-भय०-दु०-पंचेत० णियमा० अणंतग्रणब्भ० । सादासाद०-दोआउ०-दोगोद० सिया० । तं तु० ।

मिण्यात्व, सोलह कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुत्सा, मनुष्यगति, पक्रोन्द्रिय जाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसरारीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थात, श्रोदारिक श्रांगोपांग, व त्रवंभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूत्री, श्रगुरुतधुचतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो श्रवधन्य श्रान्तगुणा श्रिषक होता है। सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय श्रोर स्थिर श्रादि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रवधन्य श्रान्तगुणा श्रिषक होता है। शोवका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु यह जधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रवधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। शोद श्रीर श्रवधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। वर्ष श्रवधन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। त्रवंश्रवप्त प्रतित वृद्धिक्प होता है। इसी प्रकार शोककी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। तिर्यक्रायु, मनुष्यायु, मनुष्यायु, मनुष्यायु, मनुष्याति श्रीर सनुष्यात्वातुपूर्वीकी सुख्यतासे सिन्नकर्ष श्रोपके समान है।

२६५. तिर्यक्क्यातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानायरण, नी दर्शना-बरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा और पाँच अन्तरायका नियमसे वन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। साताबेदनीय, असाताबेदनीय और तिर्यञ्चायुका कदाचित् बन्ध करता है जो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नीवगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनु-भागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भक्न स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। चार जाति, छह संस्थान, छह संहर्नन, दो बिह्ययोगित और स्थिर आदि चार युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष स्रोघके समान है।

२६६. पद्धीन्द्रिय जातिके जघन्य अनुभागका बन्य करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी द्रशानावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा श्रीर पाँच श्रान्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, दो आयु श्रीर दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्राज्यचन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्राज्यचन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह

१ ता० प्रतौ भय० मह्यु० इति पाठः ।

सत्तणोकः सियाः अणंतगुणःभः । णामः सत्थाणभंगो । एवं पंचिदियजादिभंगो तसः । थिरादिञ्जयुगः हेडा उवरिं पंचिदियभंगो । णामाणं अष्पष्पणो सत्थाणभंगो ।

२६७. ओरालि० ज० बं० पंचणा०-णवदंसणा०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णिय० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाणभंगो । एवं ओरा-लियभंगो तेजा०--क०-पसत्थव०४-अगु०-णिमि०-ओरालि० झंगो०-पर०-उस्सा० । आदाउज्जो० एवं चेव । सादासाद०-चदुणोक०िसया० अणंतगुणब्भ० । णाम० सत्थाण-भंगो । उच्चा० ओघो । णविर पंचिदिय० णि०। तंतु०। एवं सव्यअपज्जत्ताणं सव्वविग-लिदियाणं पुढ०-आउ०-वणप्किद०-बादरपत्ते०-णियोदाणं च। तेऊणं [वाऊणं] पि एवं चेव । णविर मणुसगदिचदुवकं वज्ज । तिरिक्खगदिधुविगाणं सव्वाणं आभिणि०भंगो । एइंदिएसु अपज्जतभंगो । णविर तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं ।

२६८. मणुस०३ खिवगाणं संजमपाओग्गाणं ओधं । सेसाणं पंचिदिय-तिरिक्खभंगो ।

छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। सात नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार पक्चोन्द्रियजातिके समान त्रसचतुष्ककी सुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। स्थिर आदि छह युगलकी सुख्यतासे नामकर्मसे पूर्वकी और बादकी प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष पक्चोन्द्रियजातिके समान है। तथा नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने स्वप्यान सिन्नकर्षके समान जानना चाहिए।

२६७. श्रीदारिकशरीरके जघन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, नीचगोत्र ऋौर पाँच अन्त-रायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इसी प्रकार श्रीदारिकशरीरके समान तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, परवात और उच्छ्वासकी मुख्यतासे सिनकर्ष जानना चाहिए। स्नातप स्त्रीर उद्योतकी मुख्यतासे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह सातावेदनीय, असातावेदनीय, और चार नोकषायका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मका भक्न स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। उचगोत्रकी मुख्यतासे स्रोधके समान सन्निकर्ष है। इतनी विशेषता है कि यह पक्कोन्द्रिय जातिका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य श्रनुभाग का भी बन्ध करता है। यदि श्रज घन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार अर्थात पद्धोन्द्रिय तिर्यद्ध अपर्याप्तकों के समान सब अप-र्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक बाद्र प्रत्येक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति चतुष्कको छोड़कर जानना चाहिए। तथा तिर्यक्रगति स्रादि सब ध्रुव प्रकृतियोंका भङ्ग आभिनिबोधिकज्ञानावरणके समान है। एकेन्द्रियोंमें त्रपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है ।

२६८. मनुष्यत्रिकमें श्रपक प्रकृतियाँ ऋौर संयम प्रायोग्य प्रकृतियाँ इनका भङ्ग श्रोधके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चीद्रिय तिर्यख्वींके समान है।

२६६. देवेसु सत्तण्णं कम्माणं पढमपुढविभंगो । सादावे० ज० बं० दोगदि-एइंदि०-इस्संटा०-इस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-थावर-थिरादिं इसुग०-दोगो० सिया० । तं तु० । पंचि०-ओरास्ति० झंगो०-आदाउज्जो०-तस०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । सेसाणं णिरयभंगो । णामाणं तिरिक्खगदितिगं परियत्तमाणियाणं कादव्वं । एइंदि०-आदाव-थावर० ओद्यं। पंचि०-ओरास्ति० झंगो०-तस० णिरयभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। सेसं पढमपुढविभंगो ।

२७०. भवण०-वाणवं०-जोदिसि०-सोधम्मीसाणं सत्तणणं कम्माणं देवोघं। णामाणं हेद्दां उविरं देवोघं। णविर णामाणं अप्यप्पणो सत्थाणभंगो। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति पढमपुढविभंगो। आणद याव णवगेवज्ञ ति सत्त्रणणं कम्माणं एवं चेव। णामाणं पि तं चेव। णविर मणुस० ज० वं-पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणक्षभ०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं सव्वसंकिलिद्वाणं।

२७१. अणुदिस याव सन्वद्द ति आभिणि०दंडओ देवोघं। साद०ज० बं०पंचणा०-

२६९. देवोंमें सात कर्मीका भङ्ग पहली पृथिवीके समान है। सातावेदनीयके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, एकेन्द्रियज्ञाति, छह संस्थान, छह संहतन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थायर, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो छह स्थान पतित बुद्धिरूप होता है। पश्चेन्द्रिय-जाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप, उद्योत, अस और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। किन्तु नामकर्मकी तिर्यञ्चगतित्रिकको परिवर्तमान करना चाहिए। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और असप्रकृतिका भङ्ग नारिकयोंके समान है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिक्षकर्षके समान है। शेष भंग पहली पृथिवीके समान है।

२७०. भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिपी और सौधर्म ऐशान कल्पके देवोंमें सात कर्मीका भङ्ग सामान्य देवोंके समान हैं। नामकर्मके पहले और अन्तकी प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य देवोंके समान हैं। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग अपने अपने स्वस्थानके समान हैं। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें पहली पृथिवीके समान भङ्ग हैं। आनत कल्पसे लेकर नौ प्रवेच्यक तकके देवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग इसी प्रकार हैं। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग भी उसी प्रकार हैं। इतनी विशेषता हैं कि मनुष्यगितके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थान सिम्नकर्पके समान है। इसी प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य बंधनेवाली प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जानना चाहिए।

२७१. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें आभिनियोधिक ज्ञानावरण दण्डकका

१. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः थावसदि इति पाठः । २. म्रा॰ प्रती गाम सत्थागं हेडा इति पाठः । १५

ब्रदंस०-बारसक०-पुरिस०-भय-दु०-पणुसगदि-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरालि०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आर्दे०-णिमि०-उचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। चदुणोक०-तित्य० सिया० अणंतग्रणब्भ०। मणुसाउ०-थिरादितिण्णियुग० सिया०। तं तु०। एवं सादभंगो असाद०-मणुसाड०-थिरादितिण्णियुग० । अरदि-सोगं देवोघं० ।

२७२. मणुसग् ज वं पंचणा अदंस असादा असादा अने सक अपने के पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ०। उश्चा० णि०। तं त्र०। णाम० सत्थाणभंगो०। एवं सव्वसंकिलिद्राण भंगो उचा ०।

२७३, पंचिद्दिब्न्तसब्द-पंचमणव्-पंचवचिब्न्कायजोगीव ओघो । ओरालिब् मणुसभंगो । णवरि तिरिक्ख०३ मूलोघं । ओरालियमि० आभिणि०दंडओ तिरि-क्रवोघं । णवरि बारसक० णि० । तं तु० । तित्थ० सिया० अणंतगुणव्भ० । थीण-

भक्त सामान्य देवोंके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह क्षाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पक्के न्द्रिय जाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, वश्रवंभ-नाराच संहतन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलधुचतुष्क, प्रशस्त विद्वायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, उश्रगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकषाय और तीर्थक्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है ऋौर ऋजघन्य ऋनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य ऋनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान श्रासातावेदनीय, मनुष्यायु श्रोर स्थिर त्रादि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अरति श्रीर शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है।

२७२. मनुष्यगतिके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्श-नावरण, श्रासातावेदनीय, बारह कषाय, पाँच नोकषाय श्रीर पाँच श्रन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञज्यन्य अनन्तगुरा अधिक होता है। उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य ऋनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सन्निकर्षके समान है। इस प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंके

समान उच्चगोत्रकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२७३. पञ्चोन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी ऋौर काययोगी जीवोंमें ऋोचके समान भङ्ग है। ऋौदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तिर्येख्यगतित्रिकका भक्त मूलोघके समान है। स्रोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्राभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डकका भक्त सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। इतनी विशेषता है कि बारह कषायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रतुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य

१. ता॰ स्त्रा॰ प्रत्योः महास्मिदिसंगो इति पाठः ।

गिद्धि०३-अणंताणुबं०४ देवोघं । सादासाद०-थिरादितिण्णियुग० ओघं । णविर असाद० जह० बंधगस्स विसेसो । देवगदिपंचग० सिया० अणंतगुण्णभ० । इत्थि०-पुित्स०-दोआड०-मणुसग०--पंचजादि-ओराह्णि०--तेजा०--क०--छस्संटा०--ओराह्णि०-छंगो०-छस्संघ०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०४--आदाउज्ञो०--दोविहा०-तसा-दिदसयुग०-जचा० पंचिदियतिरिक्खभंगो । अरदि-सोगं देवोघं । णविर देवगदिसंजुत्तं । तिरिक्ख० तिरिक्खाणु०-णीचा० ओघं । देवगदिपंचगं तित्थयरभंगो ।

२७४. वेउन्वि० आभिणि०दंडओ थीणगिद्धिदंडओ च णिरयोघं। तिरिक्खायु-तिरिक्खग०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णिरयोघं। सेसाणं पगदीणं देवोघं। णवरि इत्थि०-णवुंस० णिरयोघं। एवं वेउन्वियमि०।

२७५. [आहार०-]आहारमि० आभिणि० ज० वं० चदुणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अष्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० ।तं तु० । साद०-देवगदिआदिसत्तावीसं-उच्चा० णि० तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ० । एवमण्णोण्णं तं तु० । साद ज० वं० सन्बद्द०भंगो । णवरि अहक० वज्ज० । देवगदी धुवं । एवं सादभंगो देवाउ०-थिर-सुभ-

श्रानन्तगुणा श्रिषक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन और श्रानन्तानुबन्धी चारका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। साताबेदनीय और स्थिर श्रादि तीन युगलका भंग श्रोषके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रसाताबेदनीयके जघन्य श्रानुभागका बन्ध करनेवाले जीवके विशेष जानना चाहिए। देवगति पञ्चकका कदाचिन बन्ध करता है जो श्राज्यन्य श्रानन्तगुण। श्रिषक होता है। खीबेद, पुरुषेद, दो श्रायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, श्रीदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, श्रीदारिक श्रागोपांग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि दस युगल और उद्योतका भंग पञ्चोन्द्रिय तिर्यक्चोंके समान है। श्राति और शोकका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशोषता है कि देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। तिर्यक्चगति, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग श्रोषके समान है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग तीर्यक्चगति, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग श्रोषके समान है। देवगतिपञ्चकका भङ्ग तीर्यक्चर प्रकृतिके समान है।

२७४. वैक्रियिककायोगी जीवोंमें आभिनिबोधिकहानावरणदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डक सामान्य नारिकयोंके समान है। तिर्यञ्चायु, तिर्यञ्चगित, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भक्त सामान्य नारिकयोंके समान है। शेप प्रकृतियोंका भक्त सामान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि स्नीवेद और नपुंसकवेदका भक्त सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार वैक्रियक-मिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

२७५. श्राहारककाययोगी और श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें श्राभिनिबोधिकज्ञानावरएके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरए, छह दर्शनावरए, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात श्रौर पाँच श्रम्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है और श्रज्ञचन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रज्ञचन्य श्रमुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित बृद्धिक्ष होता है। सातावेदनीय, देवगित श्रादि सत्ताईस प्रकृतियों और उच्चगोत्रका नियमसे तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रज्ञचन्य श्रमन्तगुए। श्रिषक होता है। इसी प्रकार तं कुपतित प्रकृतियों की सुख्यतासे सिक्षक ज्ञानना चाहिए। सातावेदनीयके ज्ञचन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भक्क सर्वार्थिक समान है। इतनी विशेषता है कि श्राठ कषायोंको छोड़कर कहना चाहिए।

जस० । एवं तप्पडिपक्खाणं । णवरि देवाउ० णत्थि ।

२७६. देवगदि० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०-चदुसंज०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । उच्चा० णि० ! तं तु० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं सन्वसंकिलिटाणं ।

२७७. कम्मइ० आभिणि० ज० बं० दोगदि -दोसरीर -दोश्रंगी०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थ० सिया० अणंतगुणब्भ०। सेसं ओरालियमिस्स०भंगो। थीणगि०[३-] मिच्छ०-अणंताणु०४ ज० बं० मणुस०--मणुसाणु०-उज्जो०--उच्चा० सिया० अणंत-गुणब्भ०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०--णीचा० सिया०। तं तु०। सेसाणं ओघं। णवरि दोगदि-दोसरीर--दोश्रंगो०--वज्जरि०--दोआणु० सिया० अणंतगुणब्भ०। देव-गदि०४ ओरालियमिस्स०भंगो। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सत्तमपुढविभंगो।

२७≈, ओरालि० ज० बं० एइंदि०--थावरादि०४ सिया० अणंतग्रणब्भ०।

देवगतिको ध्रुव कहना चाहिए। इसी प्रकार सातावेदनीयके समान देवायु, स्थिर, श्रुभ श्रीर यशः कीर्तिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इसी प्रकार इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि देवायु नहीं है।

२७६. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शना-वरण, असातावेदनीय, चार संज्वलन, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण चतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्य करता है तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भक्क स्वस्थान सिक्वक्षके समान है। इसी प्रकार सर्व संक्लेशसे जघन्य वैधनेवाली प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

२७७. कार्मणकाययोगी जीवोंमें आभिनिशेधिकज्ञानावरणके जघन्य अनुभागका वन्ध करनेवाला जीव दो गित, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वज्रवंभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थद्धर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग औदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिश्र्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उद्योत और उद्यगित्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिकप होता है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओधके समान है। इतनी विशेषता है कि दो गित, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग. वश्र्यभनाराच संहनन और दो आनुपूर्वीका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। देवगतिचतुष्कका भङ्ग औदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सातवीं पृथिवीके समान है।

२७८. ऋौदारिकशरीरके जघन्य श्रतुभागका बन्ध करनेवाला जीव एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावर श्रादि चारका कदाचित् बन्ध करता है जो श्रजवन्य अनन्तगुरा अधिक होता है।

पंचिं ०-ओरालि ० श्रंगो ०-पर ०- उस्सा ०-आदाउज्जो ० -तस४ सिया० । तं तु० । एवं ओरालिय०भंगो तेजा०-क०-पसत्थ०४ — अगु०-णिमि०-पंचिं ०-पर०- उस्सा०- उज्जोव० । तस०४ मूलोघं । सेसाणं ओरालियमिस्स०भंगो ।

२७६. इत्थिवेदेसु आभिणि० ज० वं० चहुणा०-चहुदंस०-चहुसंज०-पुरिस०-पंचंत० णि० जहण्णा०। साद०-जस०-उच्चा० णि० अणंतगुणब्भ०। एवमेदाओ अण्णोएएां जहण्णा०। सेसाएां खवगपगदीएां ओघं।

२८०. सादा० ज० बं० पंचणा०-छदंसणा०-चदुसंज०-भय-दुगुं०-पंचंत० णि० अग्रांतगुणन्भ० । सेसं पंचिंदियतिरिक्खभंगो । तित्थ० सिया० अग्रांतगुणन्भ० । एवं असाद०-थिरादितिग्गियु०। इत्थि०-णबुंस०-चदुआउ०-चदुगदि-चदुजादि छस्संठा०-छस्संघ०-चदुआणु०-दोविहा०-थावरादि०४-मिक्सिञ्च०३-दोगो० पंचि०तिरिक्खभंगो ।

२८१. पंचिदि० ज० बं॰पंचणा०--णवदंस०--असाद०--मिच्छ०--सोलसक०--पंचणोक०-णिरयग०-हुंडसंठा०-अप्पसत्थ०४--णिरयाणु०--उप०--अप्पसत्थ०--अथिरा-दिछ०-णीचा०-पंचंतरा० णि० अणंतगुणब्भ० | वेउव्वि०-तेजा०-क०-वेउव्वि०अंगो०-

पञ्चोन्द्रयज्ञाति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत श्रोर त्रसचतुष्कका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थानपतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार श्रोदारिकशरीरके समान तैजसशरीर, कामण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघु, निर्माण, पश्चोन्द्रयज्ञाति, परघात, उच्छ्वास श्रोर उद्योतकी मुख्यतासे सिनकर्ष जानना चाहिए। श्रसचतुष्ककी मुख्यतासे सिनकर्ष मृत्रोघके समान है। श्रेप प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है।

२७६. स्नीवेदी जीवोंमें आभिनिवोधिकज्ञानावरएके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार ज्ञानावरए, चार दर्शनावरए, चार संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायका नियमसे जघन्य अनुभाग बन्ध करता है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता हैं। इसी प्रकार परस्पर जघन्य अनुभाग बन्ध करनेवाली इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। हो। अपक प्रकृतियोंका मङ्ग औषके समान है।

२८०. सातावेदनीयके जचन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुष्सा खौर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेव भङ्ग पद्धोन्द्रिय तिर्यक्कोंके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, चार आयु, चार गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, चार आयुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि चार, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रका भङ्ग पद्धोन्द्रिय तिर्यक्कोंके समान है।

२५१. पश्चे न्द्रियजातिके जवन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, असाता वेदनीय, सिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपधात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञचन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। विक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरू-

पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० णि० | तं तु०। एवं वेडव्वि०-वेडव्वि०ऋंगो०-[तस०]।

२८२. ओरालि० ज० बं० हेट्टा उवित् पंचिंदियजादिभंगो । तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०--थावर०--अथिरादिपंच०--णीचा०-पंचंत० णि० अणंतगुणब्भ० । तेजइगादीणं० णि०। तं तु० । आदाउज्जो० सिया०। तं तु० । [एवं आदाउज्जो०] ।

२८३. तेज० जह० हेडा उवरिं ओरालिय०भंगो । दोगदि-एइंदि-दोआणु०-अप्पसत्थ०-थावर०--दुस्सर० सिया० अणंतगु०। पंचि०-ओरालि०--वेजिवयदुग-आदाउ०-तस० सिया०। तं तु०। कम्म०--पसत्थ०४-अगु०३-बादर--पज्जत-पत्ते०-णिमि० णि०। तं तु०। हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अथिरादिपंच० णि० अणंतगु०। एवं कम्मइगादिसंकिलिडाणं।

लघुत्रिक, त्रसचतुष्क श्रीर निर्माणका नियमसे वन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रनुभागका भी बन्ध करता है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागका भी वन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर त्रसकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

२८२. श्रौदारिकशरीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका भङ्ग पश्चेन्द्रियजातिके समान है। तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र श्लौर पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। तिज्ञस्थारीर आदिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिकप होता है। इसी प्रकार अर्थात् औदारिकशरीरके भङ्ग समान आतप और उद्योतका भंग हैं।

रम्हे. तेजसरारीरके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी और अन्तकी प्रकृतियोंका भंग औदारिकरारीरके समान है। दो गति, एकेन्द्रियजाति, दो आनुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर और दुःस्यरका कदाचिन् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकरारीर, वैक्रियिकरारीरद्विक, आतप और त्रसका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बुद्धिक्ष होता है। कार्मण्यारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु घह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका वन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बुद्धिक्ष होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और अस्थिर आदि पाँचका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इसी प्रकार संक्लेशसे बँधनेवाली कार्मणश्रीर आदि प्रकृतियोंका सिन्नकर्ष जानना चाहिए।

२८४. ओरालि० श्रंगो० ज० बं० हेटा उवर्रि तेजइगभंगो । बीइंदि०--पंचि०-पर०-उस्सा०-उज्जो०-अप्पसर्त्थं०-पज्जत्तापज्जत्त०-दुस्सरै० सिया० अणंतग्र० । तिरिक्ख-गदिसंजुत्ताओ णिय० अणंतग्र० । तित्थयरं ओघं ।

२८५, पुरिसेसु सत्तण्णं कम्माणं इत्थिभंगो । पंचिदिय०--ओरास्ति०-वेउच्चि०-आहार०-तेजा०-क०-तिणि श्रंगो०-पसत्थ०४-अग्र०३-आदाउज्जो०-तस०४--णिमि०-खविगाणं तित्थय० ओयं । सेसाणं इत्थिभंगो ।

२८६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थिभंगो । सेसं ओघं । णवित पंचिदि० ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-भिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०--णीचा०--पंचंत० णि० अणंतगु० । दोगिदि ०-असंप०-दोआणु ०-णीचा० [सिया०] अणंतगु० । दोसरीर--दोद्यंगो०-उज्जो० सिया० । तं तु० । तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु ०३-तस०४-णिमि० णि०। तं तु० । एवं पंचिदि-यभंगो तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० । ओरास्ति ०-ओरास्ति०-

२८४. श्रौदारिक श्राङ्गोपांगके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाले जीवके पूर्वकी श्रौर श्रम्तकी प्रकृतियोंका भंग तेजसरारीरके समान है। द्वीन्द्रियजाति, पञ्चोन्द्रियजाति, परवात, उच्छ्रवास, उद्योत, श्रप्रशास्त विहायोगिति, पर्याप्त, श्रपर्याप्त श्रौर दुःस्वरका कदाचित् बन्ध करता है को श्रजघन्य श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। तिर्यञ्चगित संयुक्त प्रकृतियोंका नियमसे बन्ध करता है को श्रजघन्य श्रमन्तगुणा श्रधिक होता है। तीर्थञ्चगित संयुक्त प्रकृतियोंका समान है।

२८५. पुरुषवेदी जीवोंमें सात कर्मोंका भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। पश्चेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, वैकियिकशरीर, श्राहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तीन श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, क्षपक प्रकृतियाँ श्रोर तीर्थद्कर प्रकृतिका भङ्ग श्रोधके समान है। तथा शेव प्रकृतियोंका भङ्ग स्त्रीवेदीके जीवोंके समान है।

रत्द. नपुंसकवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका मङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेष मङ्ग स्त्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि पश्चोन्द्रियजातिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, मौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवाल, अप्रशस्त विहायोगिति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो गित, असम्प्राप्तास्रुपाटका संहनन, दो आसुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित गुद्धिरूप होता है। तेजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है। विन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। दो क्रत्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। दो वह छह स्थान पतित गुद्धिरूप होता है। इसी प्रकार पञ्चोन्द्रिय जातिके समान तेजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। औदारिक चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। औदारिक

१. द्या॰ प्रतौ श्राप्यस्थ॰४ इति पाठः । २. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः -पजन्त पने॰ दुस्सर इति पाठः । ३. ता॰ प्रतौ दोगदि॰ श्रस्पं (श्रप्यस) त्य दोश्राग्रु॰, श्रा॰ प्रतौ दोर्गाद॰ श्रप्यस्थ॰ दोश्राग्रु॰ इति पाठः । ४. ता॰ प्रतौ तस ४ ग्रिमि॰ श्रोरालि॰ इति पाठः ।

ग्रंगो०-उद्घो० णिरयभंगो । आदाव० तिरिक्लभंगो । सेसं ओघं ।

२८७. अवगदवेदेसु अप्पष्पणो पगदीओ ओघो ।

२८८. कोधादि०४ ओछं। णवरि कोधे०१८ णिय० जह०। माणे०१७ जह०। मायाए१६ जह०। लोभे० ओघो।

२८६, मदि-सुद०-आभिणि० ज० वं० चदुणा० णवदंसणा०-मिच्छ०-सोल-सक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। सादावे०-देवगदिसत्ता-वीसं-उच्चा० णि० अणंतगु०। एवमेदाओ तं तु० पदिदाओ अण्णमण्णस्स तं तु०।

२६०. अरदि० ज॰ बं० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-भय-दु०-पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थापसत्थ०४-अग्र०४-पसत्यं०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०--णिमि०-पंचंत० णि० अणंतग्र०। सादासोद०-तिण्णिगदि-दोसरीर-दोत्रंगों ०वज्जरि०-तिण्णिआणु०-उज्जो०-थिरादि तिण्णियुग०-दोगो०सिया०अणंतग्र०।

शरीर, श्रीदारिकश्रांगोपांग श्रीर उद्योतका भंग नारिकयोंके समान है। श्रातपका भंग तिर्यक्रोंके समान है। शेष भंग श्रोघके समान है।

२८७. अपगतवेदी जीवोंमें अपनी-अपनी प्रकृतियोंका भंग खोचके समान है।

२८८. क्रोधादि चार कषायों में श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रोध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संड्वलन श्रीर पाँच श्रान्तराय इन श्राटाह प्रकृतियोंका नियमसे एक साथ ज्ञान्य अनुभागबन्ध होता है। मानकषायमें संड्वलन क्रोधके सिवा सन्नह प्रकृतियोंका नियमसे ज्ञान्य श्रानुभागबन्ध होता है। माया कषायमें संड्वलनक्रोध श्रीर संड्वलन मानके सिवा सोलह प्रकृतियोंका नियमसे ज्ञान्य श्रानुभागबन्ध होता है। लोभकषायमें श्रोधके समान भंग है।

२८६. मत्यझानी और श्रुताझानी जीवोंमें श्राभिनिवोधिकझानावरणके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, पाँच नोकवाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच श्रम्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका भी बन्ध करता है। यदि श्रजघन्य श्रमुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्ष होता है। सातावेदनीय, देवगति श्रादि सत्ताईस प्रकृतियाँ श्रीर उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रमन्तगुणा श्रिषक होता है। इसी प्रकार इन तं तु॰ पतित प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्नकष परस्पर श्राभिनिबोधिक- ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए।

रह०. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्नसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तीन गति, दो शरीर, दो आंगोपांग, वअर्षभनाराचसंहनन, तीन आनुपूर्वी, उद्योत, स्थिर आदि तीन युगल और दो गोत्रका कदाचित् बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भंग आघके

र. ता॰ प्रती तं तु॰ पंचिदा (दिया) श्रो, श्रा॰ प्रती तं तु॰ पंचिदियाश्रो इति पाठः । २. श्रा॰प्रती श्रातु॰ ३ पसर्थ॰ इति पाठः । ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः दोगो॰ इति पाठः । ४. श्रा॰ प्रती तिण्यि श्रासु॰ थिरादि॰ इति पाठः ।

सेसं ओधं। एवं विभंग०।

- २६१. आभिणि०-सुद्द०-अभि० खिवगाणं पगदीणं अरिद-सोगाणं च ओधं संजमपाओग्गाणं च । साद्द० ज० बं० पंचणा०-झदंस०-चढुसंज०-पुतिस०-भय-दु०-पंचि०-समचदु०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतगु० । अद्वक०-चदुणोक०-दोगदि-दोसरीर-दोझंगो०-वज्जरि०-दोआणु०-तित्थय० सिया० अणंतगु० । दोआउ०-थिरादितिण्णि- युग० सिया० । तं तु० । एवमसा०-दोआउ०-थिरादितिण्णियु० ।
- २६२. मणुस० ज० वं० पंचणा०-छदंसणा०-असादा०--बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-अथिर-असुभ-अजस०-पंचंत० णि० छणंतगु०। पंचिदियादि याव णिमि०-उच्चा० णि०। तं तु०। एवं मणुसगदिपंच०।
- २६३. देवगदि ज० बं० हेडा उवरि मणुसगदिभंगो। णाम० सत्थाणभंगो। प्वं देवगदि०४।
- २६४. पंचिंदि० ज० वं० हेटा उविर मणुसगिदभंगो । णामाणं० दोगिदि-समान है। इसी प्रकार अर्थात् मत्यज्ञानी जीवोंके समान विभक्तज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।
- २६१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चपक प्रकृतियोंका, अरित शोकका व संयमप्रायोग्य प्रकृतियोंका मङ्क छोधके समान है। सातावेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्यलन, पुरुष्वेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, तैजसग्ररीर, कामणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, स्वापेत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। आउ कथाय, चार नोकपाय, दो गिति, दो गिरीर, दो आङ्गापाङ्ग, वर्ष्रभेनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थङ्करका कदाचित् बन्ध करता है जो अज्ञघन्य अननन्तगुणा अधिक होता है। दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, जो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अज्ञघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार असातावेदनीय, दो आयु और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।
- २६२. मनुष्यगितिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच झानावरण, छद्द दर्शनावरण, असातावेदनीय बारह कपाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। पक्चेन्द्रियजातिसे लेकर निर्माण तक और उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है,तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार मनुष्यगतिपञ्चककी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।
- २६३. देवगतिके जधन्य ऋनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी खौर बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। तथा नामकर्मका भङ्ग स्वस्थान सिन्नकर्षके समान है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्ककी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जानना चाहिए।
 - २६४. पद्धे न्द्रियज।तिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवके नामकर्मसे पूर्वकी और

Jain Education International

दोसरीर-दोश्रंगो०-वज्जरिस०-दोआणु०--तित्थ० सिया० ! तं तु० | तेजइगादिपस-त्थाओ उचा० णि० । तं तु० । अप्पसत्थवण्ण०-[उप०-अथिर-असुभ-अजस०] णि० अणंतगु० । एवं सव्वसंकिलिद्दाणं पंचिदियभंगो । [श्रहारदुगं अप्पसत्थ०४-उप० ओघं ।] एवं ओघिदं०-सम्मादि०-खइगसम्मा०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि० । णवरि उवसम० पसत्थाणं तित्थ० वज्ज असंजमपाओग्गा काद्व्वा ।

२६४. मणपज्जवे स्वविगाणं ओघो । सेसाणं ओघिभंगो । एवं संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार-संजदासंजद० । णवरि परिहारवज्जाणं पसत्थपगदीणं तित्थयरं वज्ज० । सुहुमसंप० अवगदवेदभंगो ।

२६६. असंजदेसु आभिणि॰दंडओ धीणगिद्धिदंडओ देवगिदसंजुत्तं कादव्वं । सादासाद॰-थिरादितिण्णियुग॰ सम्मादिहि-मिच्छादिहिसंजुत्ताओ कादव्वाओ । इत्थि॰-णवुंस॰ ओघं ।

२६७, अरदि० ज० बं० दोगदि--दोसरीर--दोत्रंगो० -वज्जरि०--दोआणु०-

बादकी प्रकृतियोंका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है। नामकर्मकी दोगित, दो शारीर, दो आंगोपांग, वअवंभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी और तीर्थक्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता
है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता
है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है।
तेजसशरीर आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ और उचगोत्रका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य
अनुभागका भी बन्ध करता है और अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य
अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पितत वृद्धिरूप होता है। अप्रशस्त वर्णचतुष्क,
उपघात, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा
अधिक होता है। इस प्रकार जिनका सर्वसंक्लेशसे जघन्य अनुभागवन्ध होता है जनको मुख्यतासे
सिन्नकर्ष पञ्जे न्द्रियजातिके समान जानना चाहिए। आहारकदिक, अप्रशस्त वर्ण चार और उपघातकी मुख्यतासे सिन्नकर्ष जोघके समान है। इसी प्रकार अर्थात् आभिनिवोधिकज्ञानी जीवोंके
समान अवधिदर्शनी, सन्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यनिमध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंको
तीर्थक्करप्रकृतिको छोड़कर असंयमप्रायोग्य करना चाहिए।

२६५. मनःपर्ययद्वानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भक्त श्रोघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भक्त श्रवधिकानी जीवोंके समान है। इसी प्रकार संयत, सामयिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारिवशुद्धिसंयत श्रौर संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि परिहारिवशुद्धिसंयतोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका तीर्थक्कर प्रकृतिको छोड़कर सिश्वकर्ष कहना चाहिए। सूद्रमसान्परायसंयत जीवोंमें श्रपनतवेदी जीवोंके समान भक्त है।

२६६. ऋसंयत जीवोंमें आभिनिवोधिकदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डकको देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलको सम्यग्दृष्टि और सिध्यादृष्टिसंयुक्त करना चाहिए। स्नीवेद श्रीर नपुंसकवेदका भङ्ग खोघके समान है।

२९७. अरतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव दो गति, दो शरीर, दो आक्नो-

१. स्ना॰ प्रतौ स्नाभिषादंडस्रो देवगदिसंबुत्तं इति पाठः ।

तित्य० सिया० ऋणंतगु० । सेसं ओघं ।

२६८. चक्खु०-अचक्खु० ओघं। किण्णाए आभिणि०दंडओ थीणगिद्धिदंडओ णिरयभंगो । सादादिचदुयुग०--अरदि--सोगं असंजदभंगो । इत्थि०--णबुंस० ब्रोघं। सेसं णबुंसगभंगो ।

२६६. णील-काऊए पढमदंडओ विदियदंडओ तिदयदंडओ अरिद-सोगदंडओ किण्णभंगो । इत्थि॰ ज॰ बं॰ तिरिक्खोघं । मणुस॰-देवगदि-दोआणु॰ सिया॰ अणंतगु॰ । णबुंस॰-थीणगिद्धिदंडओ पंचिंदि॰दंडओ णिरयोघं ।

२००. वेउन्वि ज० बं० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-भिच्छ०--सोलसक०-पंचणोक०--णिरयगदिअहावीसं--णीचा०-पंचंत० णि० अणंतग्र०। वेउन्वि० श्रंगो० आदावं तिरिक्लोघं | सेसं किण्णभंगो |

३०१. तेऊए आभिणि०दंडम्रो परिहार०भंगो । विदियदंडओ ओघं । साद० ज० बं० पंचणा०--छदंसणा०--चदुसंज०--भय--दु०--तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४ – अगु०४--वादर-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० णि० अणंतगु०। थीणगि०३ –मिच्छ०-बारसक०-सत्तणोक०-देवगदि-दोसरीर-दोम्रंगो०-देवाणु०-आदाउज्जो०-तित्थ० सिया०

पाङ्ग, वऋषभनाराचसहनन, दो आतुपूर्वी और तीर्थङ्कर प्रकृतिका कदाचित् बन्ध करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। शेष भङ्ग ओषके समान है।

२६८. चल्लुदर्शनी और अचल्लुदर्शनी जीवोंमें श्रोघके समान भङ्ग है। ऋष्णुलेश्यामें आभिनिवोधिकज्ञानावरणदण्डक और स्त्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। साता श्रादि चार युगल, अरित और शोकका भङ्ग असंयतोंके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग श्रोघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है।

२६६. नील श्रीर कापोत लेरयामें प्रथम दण्डक, द्वितीय दण्डक, तृतीय दण्डक श्रीर श्ररति॰ शोकदण्डकका भङ्ग कृष्णलेरयाके समान है। खीवेदके जधन्य श्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग सामान्य तिर्यक्तोंके समान है। मनुष्यगित, देवगित, श्रीर दो श्रानुपूर्वीका कदाचित बन्ध करता है जो श्रजधन्य अनन्तगुणा श्रधिक होता है। नपुंसकवेद, स्त्यानगृद्धिदण्डक श्रीर पञ्च न्द्रियजाति दण्डकका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

२००. वैकियिकरारीरके जघन्य श्रमुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगति श्रादि श्रहाईस प्रकृतियाँ नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तरायका नियससे बन्ध करता है जो श्रजघन्य श्रनन्तगुणा श्रधिक होता है। वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रौर श्रातपका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्जोंके समान है। शेष प्रकृतियों का भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है।

३०१. पीतलेश्यामें आभिनिवोधिकज्ञानावरण दण्डक परिहारिवशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। द्वितीय दण्डकका भक्त श्रोघके समान है। सातावेदनीयके जधन्य अनुभागका वन्ध करने वाला जीव पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुष्सा, तैजसशरीर, कार्भण-शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, आगुरुलयुचतुष्क, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, बारह कषाय, सात नोकषाय, देवगित, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्क, देवगत्यानु,

- अणंतग्र० । तिण्णिआउ०-दोगदि-दोजादि--इस्संठा०--इस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०-तस-थावर-थिरादिइयुग०-दोगो० सिया० । तं तु० । एवं असाद०-थिरादितिण्णि-युग० । इत्थि० ज० बं० णीलभंगो । णवुंस०-दोआउ० देवभंगो ।
- ३०२, देवाउ० ज० बं० सादा०-थिर-सुभ-जस० णि०। तं तु०। मिच्छा-दिहिसंजुत्ता कादच्वा। सेसं णि० अणंतगु०।
- ३०३. देवगदि ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-इत्थि०-अरदि-सोग-भय-दु०-उच्चा०-पंचंत० णि० अणंतग्र०। वेउव्वि०-वेउव्वि०ऋंगो०-देवाणु० णि० । तं तु० । णामाणं सत्थाणभंगो । सेसं सोधम्मभँगो । एवं पम्माए वि० । णवरि णामाणं सहस्सारभंगो । देवगदि०४ तेउभंगो । णवरि पुरिस० धुवं० ।
- २०४. सुकाए खिनगणं ओघं । सादादिचढुयुग० पम्मभंगो । देवगदि०४ पम्मभंगो । सेसं णवगेवज्जभंगो ।
- पूर्वी, आतप, उद्योत और तीर्थं इस्का कदाचित बन्ध करता है जो अजयन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, दो गित, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, जस स्थावर, स्थिर आदि छह युगल और दो गोत्रका कदाचित बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जप्तन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अजयन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका नाध करता है। यदि अजयन्य अनुभागका बन्ध करता है तो वह छह स्थान पतित बृद्धिक्त होता है। इसी प्रकार अर्थात् सातावेदनीयके समान असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। स्विवेदके जयन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भन्न नीललेश्याके समान है। नपुंसकवेद और दो आयुका भन्न देवोंके समान है।
- ३०२. देवायुके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव सातावेदनीय, स्थिर, शुभ और यशाःकीर्तिका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है और अज्ञान्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अज्ञान्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। किन्तु इन्हें मिथ्यादृष्टिसंयुक्त करना चाहिए। शेष प्रश्वतियोंका नियमसे बन्ध करता है जो अज्ञान्य अनन्तगुणा अधिक होता है।
- ३०३. देवगतिके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव पाँच आनावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, खिवेद, अरित, शोक, भय, जुगुप्सा, उद्यगीत्र और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। वैकि-यिकशारीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित बृद्धिकप होता है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका भङ्ग स्वस्थानसिक्षकं समान है। शेष भङ्ग सौधर्म कल्पके समान है। इसी प्रकार अर्थात् पीत लेश्याके समान पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें नामकर्मकी प्रकृतियों का भङ्ग सहस्थार कल्पके समान है। तथा देवगतिचतुष्कका भङ्ग पीतलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदको ध्रुव करना चाहिए।
- २०४. शुक्ललेश्यामें क्ष्पक प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। सातावेदनीय श्रादि चार युगलोंका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। देवगतिचतुष्कका भङ्ग पद्मलेश्याके समान है। शेव प्रकृतियों का भङ्ग नौमेवेथकके समान है।

३०५. भवसि० ओघं। अब्भवसि० आभिणि०दंडओ [मदि०भंगो । णवरि] तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०-णीचा० सिया० । तं तु० । दोगदि-दोसरीर--दोश्रंगो०-बज्जरि०--दोआणु० बज्जो०-बच्चा० सिया० अणंतगु० । इत्थि०-णवुंस० ओघं । अरिदे-सोग० मदि०भंगो । उवरि सञ्बमोधं ।

३०६. सासणे आभिणि० ज० बं० चढुणा०-णवर्दसणा०-सोलसक०-पंच-णोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० णि०। तं तु०। सादा०-पंचिदि०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिञ्च०-णिमि० णि० अणंतगु०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०--णीचा० सिया०। तं तु०। दोगदि--दोसरीर--दोश्रंगो०--वज्जरि०-दोआणु०-उज्जो०-उच्चा० सिया० अणंतगु०। एवमेदाओ ऍक्कमेंक्कस्स तं तु०।

३०७. सादा० ज० वं० पंचणा०-णवदंसणा०-सोत्तसक०-भय-दु०--पंचिंदि०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४--अगु०४-तस०४-णिमि० णि० अणंतगु० । चदुणोक०-

३०५ भव्यों में श्रोघके समान भङ्ग है । श्रभव्यों में श्राभिनिबोधिकज्ञानावरणदण्डकके जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाले जीवका भङ्ग मत्यज्ञानियों के समान है। इतनी विशेषता है कि तियंश्चगति, तिर्यश्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि वन्ध करता है, तो जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। श्री श्रज्ञाचन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका का बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित यृद्धिकप होता है। दो गति, दो शारीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वश्चर्भभाराच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उद्यगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है को अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। क्रीवेद और नपुंसकवेदका भङ्ग श्रोघके समान है। अरति और शोकका मङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। आगोका सब मङ्ग श्रोघके समान है।

३०६. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें आभिनिबोधिकश्चानावरण्के जघन्य अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव चार शानावरण्, नौ दर्शनावरण्, सोलह कवाय, पाँच नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुक्क, उपघात और पाँच अन्तरायका नियमसे बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है होर अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प हांता है। सातावेदनीय, पञ्चिन्द्रियजाति, तैजस्रारीर, कार्मण्शरीर, प्रशस्त वर्णचतुक्क, अगुरुलघुनिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माण्का नियमसे बन्ध करता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तिर्यक्रगिति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। किन्तु वह जघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजघन्य अनुभागका बन्ध करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिक्प होता है। दो गिति, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्क, वर्ज्यभनाराच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध होता है जो अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। इस प्रकार तंतु पतित इन प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिक्षक जानना चाहिए।

३०७. सातावेदनीयके जधन्य श्रतुभागका बन्ध करनेवाल। जीव पाँच ज्ञानावरण, नौ पूर्शना-वरण, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, पञ्चोन्द्रियजाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. ऋा • प्रतौ सन्वमोई इति पाठः ।

तिरिक्तव २ - दोसरीर-दोम्रंगो ० - उज्जो ० सिया ० अणंतग्र ० । तिण्णिआ ७० - मणुसग० - देवग० - पंचसंघ० - दोआणु० -- थिरादि इयुग० - उच्चा ० सिया ० । तं तु० । एवं तंतु० पदिदाणं सञ्चाणं सादभंगो । पंचिदियदंहओ णिरयभंगो । दोआ ७० देवभंगो । देवा ७० ओघं ।

३०८. मिच्छादिही० मदि०भंगो । सण्णी० श्रोघो । असण्णीसु आभिणि-दंडओ देवगदिसंजुत्तं० कादव्वं । सेसं तिरिक्खोघं । आहार० ओघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं जहण्णपरत्थाणसण्णियासो समतो।

१६ भंगविचयपरूवणा

३०६. णाणाजीवेहि भंगविचयं दुवि०-जह० उकस्सयं च । उक्क० पगदं । तत्थ इमं अद्वपदं मूलपगिदभंगो । एदेण श्रद्धपदेण दुवि०-ओघे० श्रादे० । ओघे० सव्वपगदीणं उक्कस्साणुकस्स० छभंगा । तिण्णिआऊणं उक्कस्साणुकस्स० सोलसभंगा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघं कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्म-इग०--णवुंस०--कोधादि०४-मदि०--सुद०--असंजद०--अचक्खु०--तिण्णले०--भवसि०

अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुल धुचतुष्क, त्रसचतुष्क और निर्माणका नियमसे बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। चार नोकषाय, तिर्यक्षगतित्रिक, दो शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग और उद्योतका कदाचित् बन्ध करता है जो अजधन्य अनन्तगुणा अधिक होता है। तीन आयु, सनुष्यगित, देवगित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, स्थिर आदि छह युगल और उच्चगोत्रका कदाचित् बन्ध करता है। यदि बन्ध करता है, तो जधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। वि अजधन्य अनुभागका भी बन्ध करता है। यदि अजधन्य अनुभागका करता है, तो वह छह स्थान पतित वृद्धिरूप होता है। इसी प्रकार तंतु-पतित सब प्रकृतियोंकी मुख्यतासे सिन्निकषे सातावेदनीयके समान है। पञ्चित्रियजातिदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। दो आयुओंका भङ्ग देवोंके समान है। देवायुका मङ्ग ओवके समान है।

३०८. मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। संज्ञी जीवोंमें श्रोधके समान भङ्ग है। श्रसंज्ञियोंमें श्रामिनवोधिकज्ञानावरण दण्डक देवगतिसंयुक्त करना चाहिए। शेष भङ्ग सामान्य तियैक्चोंके समान है। श्राहारक जीवोंमें श्रोधके समान भङ्ग है। श्रनाहारक जीवोंमें कार्मणकाय-योगी जीवोंके समान भङ्ग है।

इस प्रकार अघन्य परस्थान सन्निकर्ष समाप्त हुन्ना।

१६ भङ्गविचयमरूपणा

३०६. नाता जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—जवन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकारण है। उसके विषयमें यह अर्थपद मूलप्रकृतिके समान है। इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—जोच और आदेश । ओचसे सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टअनुभागवन्थके अह भङ्ग हैं।तीन आयुओंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टके सोलह भङ्ग हैं। इस प्रकार ओचके समान सामान्य तिर्यक्ष, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कामण्यकाययोगी, नपुंसकवेदी,

अन्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु-देवगदिपंच० उक्कस्साणुकस्स० सोलस भंगा ।

- ३१०. णेरइएसु-दोआउ० दो वि पदा सोछस भंगा । सेंसाणं सव्वपग्रदीणं दोपदा छभंगा । एवं णिरयभंगो पंचिं०तिरि०अपज्ज० मणुस०३—सव्वदेव०-सव्व-विगर्छिदि०-पंचि०--तस० तेसि पज्जतापज्जता बादर--बादरपुढवि०-श्चाउ०--तेउ० वाउ०--बादरवणप्पदिपत्तेयपज्जताणं च पंचमण०--पंचवचि०--वेउव्वि०--इत्थि०- पुरिस०--विभंग--आभिणि०--सुद०--ओधि०--मणपज्ज०--संजद० याव संजदासंजदा० चक्खुदं०-ओधिदं०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-सण्णि ति ।
- ३११. मणुस०अपज्ज०-वेजिवयमि०-आहार०-आहार०-आहारमि०-अवगद०सुहुमसं०--जवसम०-सासण०-सम्मामि० जक्क० अणुक्क० सोलस भंगा। एइंदिएसु
 दोआज ओघं। सेसाणं जकस्साणुकस्स० अथिरवंधगा य अवंधगा य। एवं एइंदियभंगो
 बादरपुढवि०-आज०-तेज०--वाज०अपज्ज०--सव्ववणप्पदिबादर-पत्तेय०अपज्ज०-सव्वणियोदाणं सव्वसुहुमाणं च। णवरि एइंदि०-बादरएइंदि० तस्सेव पज्जत्तगेसु जज्जोवं
 ओघं। पुढ०- आज०-तेज०-वाज०-वादर-पत्ते० सव्वपगदीणं ओघं।

एवं उक्तस्सं समत्तं।

कोधादि चार कवायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रवचुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, श्रमव्य, मिध्यादृष्टि, श्रसंज्ञी, श्राहारक और श्रमाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी श्रोर श्रमाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुख्य श्रमुभागवन्धके सोलह भङ्ग है।

३१०. नारिकयोंमें दो आयुओं के दोनों ही पदों के सोलह भड़ हैं। शेष सब प्रकृतियों के दो पदों के छह भड़ हैं। इसी प्रकार नारिकयों के समान पद्धे न्ट्रिय तियंद्ध जीन पद्धे न्ट्रिय तियंद्ध अपर्याप्त, मनुष्यित्रक, सब देव, सब विकलिन्ट्रिय पद्धे न्ट्रिय और अस तथा इन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अगिनकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर और इन पाँचों के पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैकियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभङ्गझानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिद्यानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयतों से लेकर संयतासंयत तकके जीव, च इदर्शनी, अवधिद्यानी, तीन लेक्यानाले, सम्यग्हिष्ट, स्रायिकसम्यग्हिष्ट, वेदकसम्यग्हिष्ट, और सिज्ञी जीवों के जानना चाहिए।

३११. मनुष्यश्रपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, ब्राह्मरककाययोगी, ब्राह्मरक्रमिश्रकाययोगी, ब्राह्मरक्रमिश्रकाययोगी, ब्राद्मरक्ष्मिश्रकाययोगी, ब्राद्मरक्षमिश्रकाययोगी, ब्राद्मरक्षमिश्रकाययोगी, ब्राद्मरक्षमिश्रकाययोगी, ब्राद्मरक्षमिश्रकाययोगी, ब्राद्मरक्षमिश्रकाययोगी, ब्राद्मरम्परायिक संयत, उपरामसम्यन्दिष्ट सासादनसम्यन्दिष्ट श्रीर सम्याप्ति अनुस्कृष्ट श्रीमाग्रक्षमिक स्थाप्ति सङ्ग अनुस्कृष्ट श्रीमाग्रक्षमिक स्थापका सङ्ग श्रीमाग्रक्षमिक स्थापका स्थापका

३१२. जहण्णए पग०। तत्थ इमं अद्वपदं मृलपगिदभंगो। एदेण अद्वपदेण दुवि०-श्रोघे० आदे०। ओघे० सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०-मणुसाणु०--दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिछयु०--उचा० ज०अज० अत्थि बंधगा य अवंधगा य। सेसाणं पगदीणं ज० अज० उकस्सभंगो। एवं ओघभंगो तिरिक्खोधं कायजोगि--ओराल्डिय०-ओराल्डियमि०--कम्मइ०--णवुंस०--कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०--तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-श्रणाहारए ति।

३१३, एइंदिय-बादरएइंदिय-पज्जत्त मणुसाउ०-तिरिक्खगदितिगं ओघं।सेसाणं ज० अज० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। बादरएइंदियअपज्ज० सन्बसुहुमाणं बादर-चदुकायअपज्जत्तगाणं सन्बवणप्पदि--बादरपत्तेयअपज्जत्त०—सन्बणियोद० मणुसाउ० ओघं। सेसाणं ज० अज० अत्थि बंध० अबंध०। पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादर-पत्ते ०--बादरपुढवि०-आउ०--तेउ० [वाउ०] धुविगाणं पसत्थापसत्थाणं केसिं च परियत्तीणं च मणुसाउ० ज० अज० उक्कस्सभंगो। सेसाणं ज० अज० अत्थि बंधगा

श्रोर बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट समाप्त हुन्ना।

३१२ जचन्यका प्रकरण है। उसके विषयमें यह अर्थपद मूल प्रकृतिके समान है। इस अर्थ-पदके अनुसार दो प्रकारका निर्देश है-स्रोघ और आदेश। श्रोघसे सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यक्षायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर श्रादि चार, स्थिर श्रादि छह युगल श्रोर उच्चगोत्रके जघन्य और श्रजधन्य श्रनुभागबन्धके बन्धक जीव हैं श्रोर श्रवन्धक जीव हैं। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और श्रजधन्य श्रनुभागबन्धका भक्त उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, श्रोदारिक काययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कथायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, श्रचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, श्रभव्य, मिध्यादृष्टि, श्रसंज्ञी, श्राहारक और श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

३१३. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मनुष्यायु और तिर्यक्षगतिन्निकका भङ्ग श्रोधके समान है। शेष प्रकृतियोंके जधन्य और श्रजधन्य अनुभागके बन्धक
जीव हैं और श्रवन्धक जीव हैं। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब सूदम, बादर चार कायवाले अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त और सब निर्माद जीवोंमें
मनुष्यायुका भङ्ग श्रोधके समान है। शेष प्रकृतियोंके जधन्य और श्रजधन्य अनुभागके बन्धक
जीव हैं और श्रवन्धक जीव हैं। पृथिवीकायिक, जलकायिक, श्रग्निकायिक वायुकायिक,
बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक, बादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, बादर श्रग्निकायिक
और बादर वायुकायिक जीवोंमें प्रशस्त और श्रप्रशस्त ध्रुववन्धवाली, कितनी ही परावर्तमान
प्रकृतियाँ श्रीर मनुष्यायुके जधन्य श्रीर श्रजधन्य अनुभागवन्धका भङ्ग उत्कृष्टके समान
है। शेष प्रकृतियोंके जधन्य श्रीर श्रजधन्य अनुभागके बन्धक जीव हैं श्रीर श्रवन्धक जीव हैं।

मा० प्रतौ श्रज्ञ गारिय इति पाठः । २, श्रा० प्रतौ तेउ० बादरपत्ते० इति वाठः ।

य अबंधगा य । बादरपज्जत्ताणं उकस्सभंगो । सेसाणं णेरइगादीणं याव अणाहारगे ति उकस्सभंगो ।

एवं भंगविचयं समत्तं ।

१७ भागाभागपरूवणा

३१४. भागाभागं दुवि०-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ०-वेउविवयछ०-तित्थ० उक्कस्सअणुभागवंधमा जीवा सव्वजीवाणं केविदयो भागो ? असंखेँज्जदिभागो । अणुक० अणुभागवंध जीवा० सव्वजीवाणं केवै० भागो ? असंखेँज्जा भागा । आहारदुगं उक्क० अणुभागवंध० सव्वजी० केव० ? संखेँज्ज० । अणु० संखेँज्जा भागा । सेसाणं उक्क० केव० ? अणंतभा० । अणु० केव० ? अणंता भागा । एवं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि०--ओरालि०-ओरालियमि०--कम्मइ०-णवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहार०-अणाहारग ति । णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारणसु देवगदिपंचग० आहारसरीरभंगो । किण्ण-णीलाणं तित्थ० आहार०भंगो । एवं औरालिय० इत्थि०वं०। णिरएसु सव्वपगदीणं उक्क० असंखेँज्जदि०। अणु० असंखेँज्ज

बादर पर्याप्त जीवोंका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष नारिकयोंसे लेकर अनाहारक तकके जीवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है।

इस प्रकार भङ्गविचय समाप्त हुआ।

१७ भागाभागप्ररूपणा

२१४. भागाभाग दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेता निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश । ओघसे तीन आयु, बैकियिक छह और तीर्थं के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । आहारकिहक उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । आहारकिहक उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । अप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अतन्तवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अतन्तवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अतन्तवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अतन्तवें भागप्रमाण हैं । इस प्रकार ओधके समान सामान्य तिर्थं अत्योगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नार्मसकेवी, कोधादि चार कथायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अच्छुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्याहि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगति-पञ्चकका भङ्ग आहारकशारीरके समान है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंमें स्रीवेदके बन्धक जीवोंका भङ्ग जानना चाहिए। नारिकयोंमें सब प्रकृतियोंके जाकृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण

१. ता॰ प्रती एवं भागाभागं समसं इति पाठो नास्ति। २. ता॰ ऋा॰ प्रत्योः जीवायां इति पाठः। १. ता॰ प्रती सन्वजीवे॰ केव॰ इति पाठः। ४. ता॰ प्रती ऋग्तभागा इति पाठः।

भागा । णवरि मणुसाउ० आहारभंगो । एवं सेसाणं पि ओघेण साधेदव्वं । एवं ए असंखेँज्जजीविगा ते देवगदिभंगो । ए संखेँज्जजीविगा ते श्राहार०भंगो । एइंदिय-वणप्फदि०-णियोदेसु तिरिक्खाउँ० ओघं । एइंदिए उज्जो० उ० अणंतभागा । अणु० अणंता भागा । सेसाणं णिरयभंगो ।

३१५. जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०मिच्छ०-सोलसक०--णवणोक०--तिरिक्ख०--पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०--ओरालि०झंगो "०-पसत्थापसत्थ०४ - तिरिक्खाणु०-अगु०४ - आदाङ०-तस०४ - णिमि०-णीचा०पंचंत० जह० अणुभा० सव्वजी० केव० ? अणंतभा० । अज० अणंता भा "० । सादासाद०-चदुआड०-तिण्णिगदि-चदुजादि--इस्संडा०--इस्संघ०--तिण्णिआणु०--दोविहा०थावरादि४ - थिरादिइयुग०--उच्चा०--वेउव्वि०--वेउव्वि०-आंगो०--तित्थ० ज० असंलेंज्जदिभा० । अज० असंलेंज्जा भागा । आहारदुगं उक्कस्सभंगो । एवं ओघभंगो
तिरिक्लोघं कायजो०-ओरालि०-ओरालियमि०-कम्मइ०-णवुंस०-कोधादि०४ - मदि०सुद०-असंज०--अचक्खु०--तिण्णिले०-भवसि०--अब्भवसि०-- मिच्छादि०--असण्ण०-

३१५. जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ और आदेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकपाय, तिर्यक्काति, पक्कोन्द्रयज्ञाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, त्रोदारिक श्राङ्गापाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच श्रान्तरायके ज्ञयन्य अनुभागके वन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं १ श्रान्तवें भागप्रमाण हैं। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, चार श्रायु, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर श्रादि चार, स्थिर आदि छह युगल, उचगोत्र, विक्रियिकशरीर, वैक्रियिक श्राङ्गापाङ्ग और तीर्थङ्कर प्रकृतिके ज्ञयन्य अनुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यातवें भागप्रमाण हैं। श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। श्राहारकद्विकका मंग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकायोगी नपुंसकवेदी, कोधादि चार कवायवाले, मत्यज्ञानी, श्राहारक और श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। विह्रयावाले, भव्य, श्रभव्य, मिण्याहिए, श्रसंज्ञी, श्राहारक और श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भङ्ग आहारकशरीरके समान है। इसी प्रकार शेष मार्गणात्रों में भी श्रोषके अनुसार साध लेना चाहिए। इसी प्रकार जो असंख्यात जीवोंवाली मार्गणाएँ हैं, उनमें देवगतिके समान भङ्ग है और जो संख्यात जीवोंवाली मार्गणाएँ हैं, उनमें आहारकशरीरके समान भङ्ग है। एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें तिर्येख्वायुका भङ्ग ओघके समान है। एकेन्द्रियोंमें स्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है।

[्] श्रा॰ प्रती पि साभेदव्यं इति पाठः । २. श्रा॰ प्रती वर्याष्प्रदि॰ तिरिक्साउ० इति पाठः । ३. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रयांतमागा इति पाठः । ४. श्रा॰ प्रती पचि॰ श्रोरालि॰श्रंगो इति पाठः । ५. ता॰ श्रा॰ प्रतीः श्रयांतमा॰ इति पाठः ।

आहार०-अणाहारम ति । णवरि ओरालि०-ओरालियमि०-इत्थिवे०-किण्ण-णील०-जवसम० तित्थ० ज० अर्जे० आहार०भंगो । ओरालियमि०-कम्मइ०--अणहार० देव-गदिपंचमं उक्कस्सभंगो । सेसाणं णिरयादि याव सिण्ण ति अप्पप्पणो उक्कस्सभंगो संखेँज्जजीविगाणं असंखेँज्जजीविगाणं अणंतजीविगाणं च । णवरि एइंदिएसु तिरिक्ख-गदितिगं ओयं । सेसं णिरयोधं । अवगद०-सुहुमसंप० ज० अज० आहार०भंगो ।

एवं भागाभागं समतंै।

१= परिमाणपरूवणा

३१६. परिमाणं दुवि०-जह० उक्क० | उक्क० पगदं | दुवि०-ओघे० आदे० | ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-दोगिद-चदुजादि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि० ग्रंगो०-छस्संघ०-अपपसत्थ०४-दोआणु०-उप०-आदावै०-अपपसत्थिव० -- थावरादि४—अथिरादिछ० -- णीचा० -- पंचंत० उक्कस्सअणुभागवंधगा केतिया ? असंखेँज्ञा | अणुक्क० अणुभा०वं० के० ? अणंता | साद०-तिरिक्खाउ० पंचिदि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४—अगु० ३—पसत्थव०-तस०४—थिरादिछ०-णिर-णिर-उचा० उक्कस्स० संखेँज्ञा० | अणु० अणंता | णिर्याउ०--णिर्यगदि०--णिर-

इतनी विशेषता है कि श्रोदारिककाययोगी, श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, स्नीवेदी, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले श्रोद उपशामसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थद्वर प्रकृतिके जयन्य श्रीर श्रजयन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंक। भंग श्राहारकशरीरके समान है। श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी श्रोर श्रमा-हारक जीवोंमें देवगतिपश्चकका भङ्ग उत्कृष्टके समान है। शेष वरकगितसे लेकर संश्री तककी संख्यात जीवोंवाली, श्रसंख्यात जीवोंवाली और श्रमन्त जीवोंवाली मार्गणाश्रोंमें श्रपने-श्रपने उत्कृष्ट के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें तिर्थश्चगतित्रिकका भंग ओघके समान है। शेष सामान्य नारिकयोंके समान है। श्रपगतवेदवाले श्रोर सूद्मसाम्पराय संयत जीवोंमें जधन्य श्रोद श्रजवन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंका भंग श्राहारकशारीरके समान है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ।

१८ परिमाणप्ररूपणा

३१६. परिमाण दो प्रकारका है-जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकार का है-आंच और आदेश । आंचसे पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, आसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कथाय, नौ नोकपाय, दो गति, चार जाति, औदारिकश्रीर, पाँच संस्थान, औदारिक आंगो-पांग, छह संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपयात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, स्थायर आदि बार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सातावेदनीय, तिर्यक्षाय, पञ्चोन्द्रयजाति, तेजसश्रीर, कार्मणश्रीर समचतुरस्तसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और

१. श्वा॰ प्रतौ तित्य॰ श्रज॰ इति पठः । २ ता॰ प्रतौ एवं भागाभागं समत्तं इति पाठो नास्ति । २. श्रा॰ प्रतौ स्रादाव॰ इति पाठः ।

याणु० उक्क० अणु० असंखेंजा । दोआउ०-देवग०-[वेउव्वि०-] वेउव्वि०म्रांगो०-देवाणु०-तित्थ० उ० संखेंजा। अणु० असंखेंजा। आहारदुगं उक्क० अणु० संखेंजा। एवं श्रोधभंगो कायजोगि-ओरालि०--णवुंस०--कोधादि०४-मदि०--सुद०--असंज०-अचक्खु०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-आहारग ति। णवरि ओरालि० तित्थ० उक्क० अणुक० संखेंजा०।

३१७. णेरइएसु मणुसाउ० उक्क० अणुक्क० केॅतिया १ संखेंजा । सेसाणं उक्क० अणुक्क० असंखेंज्जा । एवं सब्वणेरइगाणं ।

उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं। नरकायु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग का बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। दो आयु, देवगति, वैक्रियिकशारीर, वैक्रियिक आंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं। इस प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कथायवाले, मत्यक्कानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचनुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिध्यादिष्ट और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ- प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए यहाँ इनका परिमाण उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असल्य हैं, इसलिए इनका परिमाण उक्त प्रमाण कहा है। नरकायु आदि तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं, इसलिए ये असंख्यात कहे हैं। तथा दो आयु आदि दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं, अतल्य इनका उक्तप्रमाण परिमाण कहा है। आहारकद्विक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात हैं, यह स्पष्ट ही है। यह सब संख्या उत्कृष्ट अनुभागका स्वामित्व और तक्तत्र प्रकृतिक बन्धक जीवोंका विचार करके कही गई है। आगे ऐसी मार्गणाएँ गिनाई हैं, जिनमें यह ओघप्रकृत्यण अविकल बन जाती है। उनमें एक मार्गणा औदारिककाययोग भी है। परन्तु इस मार्गणामें तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध पर्याप्त मनुष्य ही करते हैं और उनका परिमाण संख्यात है, इसलिए औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे हैं।

३१७. नारिकयोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारिकयोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकी जीव यदि मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं तो गर्भज मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं। अतः इनमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव संख्यात कहे ३१८. तिरिक्षेसु णिरयाउ०-वेउव्वियञ्च० उक्क० अणु० असंखेँजा । तिण्णि-आउ० [ग्रोघं |] सेसाणं उ० असंखेँजा | अणु० अणंता | पंचि०तिरि०३ तिण्णि-श्राउ० उ० संखेँजा | अणु० असंखेँजा | सेसाणं उ० अणु० असंखेँजा | पंचि०-तिरि०अपज्ज० मणुसाउ० उ० संखेँजा | अणु० असंखेँजा | सेसाणं उक्क० श्रणुक्क० के० १ [अ०-] संखेँजा | एवं सव्वअपज्जताणं [पंचिदिय०-]तसाणं सव्वविगलिदियाणं सव्वपुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०--बादरपत्तेगसरीराणं च | णवरि तेउ-वाऊणं मणुस-गदिचदुक्कं णित्य |

३१६. मणुसेसु दोआउ०--वेउव्वियछ०--आहारदु०--तित्थ० उक्क० अणुक्क० संखेँजा। सेसाणं उ० संखेँजा। अणु० असंखेँजा। मणुसप०-मणुसिणीसु सन्ब-पगदीणं [उक्क०] अणु० संखेँजा।

३२०. देवाणं णिरयभंगो याव अपराजिता ति । सव्वद्दे सव्वपगदीणं उ०

हैं। शेष कथन सुगम है।

३१८. तियंद्वोंमें तरकायु श्रीर वैक्रियिक छहके उन्छए श्रीर श्रतुन्छए श्रतुभागका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं। तीन श्रायुश्रोंका भङ्ग श्रोधके समान है श्रीर शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रतुभागका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं तथा श्रतुन्छए श्रतुभागका बन्ध करनेवाले जीव श्रसंख्यात हैं तथा श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं शोर श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रीर अनुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रीर अनुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव संख्यात हैं शौर श्रतुन्छए अनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रीर श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रीर श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रीर श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके उन्छए श्रीर श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंक उन्छए श्रीर श्रतुन्छए श्रतुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं । इसी प्रकार सब श्रपर्यात, पश्च निक्षित सब बादर प्रत्येकशरीर जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि श्रिनकायिक श्रीर वायुकायिक जीवोंके मनुष्यगितचनुष्कका वन्ध नहीं होता ।

विशेषार्थ—श्रोधसे देवगतिचतुष्कके उत्क्रष्ट श्रमुभागका बन्ध क्षपकश्रेषिमें होता है। किन्तु तिर्यक्कोंके वह संयतासंयतके होगा श्रोर इनका परिषाम श्रमंख्यात है, इसलिए यहाँ तिर्यक्कोंमें नरकायु श्रादिके उत्क्रष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीव श्रमंख्यात कहे हैं। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३१६. मनुष्यों में दो आयु, वैकियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुमानके बन्धक जीव संख्यात हैं। रोप प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभानके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभानके बन्ध जीव असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों में सब प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभानके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें नरकायु, देवायु, वैकियिक छह, श्राहारकद्विक श्रीर तीर्थङ्कर अकृतिका बन्ध अपर्याप्त मनुष्य नहीं करते, इसलिए इनका दोनों प्रकारका परिमाण संख्यात कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३२०. देवोंमें अपराजित तक नारिकयोंके समान भक्क है। सर्वार्थसिद्धिमें सब प्रकृतियोंके

१. ब्रा॰ ६तौ संखेजाब इति पाठः ।

अणु॰ संखेंजा ।

३२१. एइंदिय--सन्ववणप्फदि--णियोदाणं तिरिक्खाउ० उ० असंखेँजा। अणु० अणंता। मणुसाउ० ओघं। सेसाणं उक्क० अणु० अणंता। णवरि एइंदि०-उज्जो० ओघं।

३२२. पंचि०-तस०२ सार्दै०-तिण्णिञ्चाड०-देवगदि-पंचि०-वेड०-तेजा०-क०-समचदु०-वेड०श्रंगो०--पसत्थव०४-देवाणु०--श्रगु०३--पसत्थ०--तस०४--थिरादिञ्च०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० डै० संखेंजा। अणु० असंखेंजा। सेसाणं ड० अणु० असंखेंजा। आहारदुगं ओघं। एवं एस भंगो पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खुदं०-सण्णि ति। णवरि इत्थि० तित्थ० उक्क० अणु० संखेंजा।

उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ--अपराजित तक प्रत्येक स्थानमें देवोंका परिमाण असंख्यात है, इसलिए वहाँ तक जहाँ जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनकी अपेक्षा नारिकयोंके समान भंग बननेमें कोई बाधा नहीं आती। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३२१. एकेन्द्रिय, सब वनस्पति और निगोद जीवोंमें तिर्यञ्चायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव ससंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। मनुष्यायुका भङ्ग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियजाति और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है।

विशेषार्थ—ये मार्गणाएँ अनन्त संख्यावाली होकर भी इनमें तिर्यक्षायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले सर्वविद्युद्ध जीव होते हैं, जिनका प्रमाण असंख्यातसे अधिक नहीं होता, क्योंकि एकेन्द्रियोंके सिवा शेष तिर्यक्ष ही असंख्यात हैं। इसलिए इनमें तिर्यक्षायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले संख्यात जीवोंको कारण जानना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उत्कृणोत्र तथा अन्य प्रशस्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट हवामित्वकी जो विशेषता कही है, उसके अनुसार यह प्रकरण दृष्टव्य है। स्वामित्व सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएँ भी ध्यान देने योग्य हैं।

३२२. पक्चेन्द्रिय, पक्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके सातावेदनीय, तीन आयु, देवगित, पक्चेन्द्रियजाति, वैक्वियिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैकि-ियक आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्षाचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उद्यानिक उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। आहारकदिकका भङ्ग आघके समान है। इसी प्रकार यह भङ्ग पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्वीवेदी, पुरुषवेदी, विभन्नज्ञानी, चनुदर्शनी और संझी जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता हैं कि स्वीवेदी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्य—स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जीव मनुष्योंमें ही होते हैं, इसिलए इनमें उसके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। शेष कथन सुगम है।

१. ता॰ श्रा॰ प्रत्यो: सादि॰ इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतौ तित्य॰ ड॰ इति पाठः ।

३२३. ओरालियमि० दोआउ० एइंदियभंगो । देवगदिपंचग० उ० अणु० संखेंजा । सेसाणं उ० अणु० ओघं । एवं कम्मइग०-अणाहार० । वेउन्वि० देवोघं । एवं चेव वेउन्वियमिस्स०। णवरि तित्थ० उक० अणु० संखेंजा । आहार०-आहारमि० सन्बहुभंगो । एवं अवगद०-मणपज्ज०-संजद-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुम० ।

३२४. श्राभिण-मुद-ओघि० पंचणा०-छदंसणा०--असादा०--बारसक०-सत्त-णोक०-मणुस०-ओरा०-ओरा०श्रंगो०-वज्जरि०-अप्पसत्थ०४ -मणुसाणु०-छप०-अथिर-असुभ०-अजस०-पंचंत० ड० अणु० श्रसंखेँज्ञा । सेसाणं ड० संखेँज्ञा । द्राणु० असंखेँज्ञा । णवरि मणुसाड०-आहारदुगं ड० अणु० संखेँज्ञा । एवं ओघिदंस०-सम्मादि०-खइग०--वेदगस०-जवसम० । णवरि सच्वाणं मणुसाड० ड० श्रणु० संखेँज्ञा । खइगस० दोआड० ड० अणु ० संखेँज्ञा । जवसम० श्राहारदुगं तित्थ० उ०

३२३. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें दो श्रायुश्रोंका मङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है। देवगतिपद्भक्त उत्हृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। शेव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीव श्रोधके समान हैं। इसी प्रकार कार्मण्काययोगी श्रीर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भङ्ग है। इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थद्धर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। श्राहारककाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार श्रपगतवेदी, मनः-पर्ययहानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत श्रीर सूर्मसाम्पराय संयत जीवोंके जानना चाहिए।

विशोषार्थ—जो सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मर कर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, इनके अपयित अवस्थामें औदारिकिमिश्रकाययाग होता है और ये जीव संख्यात होते हैं, इसलिए इस योगमें देवगतिपञ्चक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य देवों और नारिकयों में उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के वैकियिक-मिश्रकाययोगमें तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध होता है और ये जीव संख्यात होते हैं, इसलिए इस योगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। शोष कथन स्पष्ट ही है।

३२४. श्रामिनिबोधिकाज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रौर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रमातावेदनीय, बारह कपाय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, श्रोदारिकशारीर, श्रोदारिक श्रागोपांग, बश्रपंभनराच संहनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपधात, श्रस्थिर, श्राष्ट्रम, श्रयशाकीर्ति श्रोर पाँच श्रम्तरायके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। इतनी विशोधता है कि मनुष्यायु श्रोर श्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। इतनी विशोधता है कि इन सबमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। श्रायिक सन्यग्दृष्टि जीवोंमें दो श्रायुकों उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। श्रायिक सन्यग्दृष्टि जीवोंमें दो श्रायुकों उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। स्था उपशाससम्यग्दृष्टि

१. ऋा॰ प्रती दोश्राउ० ऋग्रु॰ इति पाटः ।

त्रपु० संखेँजा ।

३२५, संजदासंजदेसु सादादीणं उक्क० संखेंज्जा। अणु० श्रसंखेंज्जा। तित्थ० मणुसि०भंगो। सेसाणं उ० श्रणु० असंखेंज्जा।

३२६, किण्ण०-णील० च**दु**आउ०-वेउव्वियद्य० ओघं। तित्थ**० मणुसि०भंगो**। सेसाणं उक्क० असंखेँजा। अणु० अणंता। एवं काऊए पि। णवरि तित्थ० उ० अणु० असंखेँजा।

३२७, तेऊए सादादीणं तिणिणआउ० देवगदिएसत्थाणं तित्थ० उच्चा० उ० संखेंजा। अणु० असंखेंजा। सेसाणं उ० अणु ० असंखेंजा। एवं पम्माए। सुकाए

जीवोंमें आहारकद्विक श्रीर तीर्थंड्ररके उत्क्रष्ट श्रीर श्रनुन्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ—गर्भज मनुष्य संख्यात हैं छोर इन्होंमें आहारकद्विकका बन्ध होता है, इसलिए आभिनिवोधिकज्ञानी आदिमें मनुष्यायु और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। आगे अवधिदर्शनी आदि मार्गणाओं में भी इन प्रकृतियों के सम्बन्ध में इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र क्षायिकसम्यक्तका प्रारम्भ मनुष्य करते हैं और ये ही चारों गतियों में उत्पन्न होते हैं, इसलिए इनमें मनुष्यायुके समान देवायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। तथा जो मनुष्य उपशासम्यक्ष्टि होते हैं या ऐसे जीव मर कर देव होते हैं, उनमेंसे ही तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले होते हैं, अन्य उपशासम्यक्ष्टि नहीं। अतः इनमें आहारकद्विकके समान तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं। शेष अथन सुगम है।

३२५. संवतासंयत जीवोंमें सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। तीर्थक्कर प्रकृतिका भन्न मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं।

विशेषार्थ — जो मनुष्य संयत।संयत होते हैं, उनमें ही इन्छ तीर्थङ्कर प्रकृतिका वन्ध करते हैं, अतः यहाँ तीर्थङ्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव संख्यात कहे हैं। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३२६. कृष्ण श्रीर नील लेश्यामें चार श्रायु श्रीर वैक्षियिक छहका भक्त श्रोधके समान है। तीर्थक्कर प्रकृतिका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार कापोत लेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें तीर्थक्कर प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं।

विशेषाथं — जो नारकी कृष्ण और नील लेश्यावाले होते हैं, उनमें नरकायु, देवायु और वैक्रियिक छहका बन्ध नहीं होता; इसलिए यह प्रक्षिपण श्रोधके समान बन जाती है। तथा इन लेश्याओं में नरकमें तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता, श्रतः यहाँ तीर्थक्कर प्रकृतिका मंग मनुष्यिनियों के समान कहा है। मात्र कापोत लेश्यामें नरकमें भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इस लेश्यामें तीर्थक्कर प्रकृतिके श्लुक्ष और श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीव श्रासंख्यात कहे हैं। श्रेष कथन सुगम है।

ैं३२७. पीतलेश्यामें सातावेदनीय, तीन आयु, देवगति आदि प्रशस्त प्रकृतियाँ तीर्थक्कर और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात

१. ता॰ प्रतौ सेसाम् ऋग्तु॰ इति पाठः।

खइगाणं पंचिदियभंगो । दोआउ० मणुसि०भंगो । सेसाणं आजदभंगो । आहारदुगं ओघं ।

३२८. अब्भवसि० णिरयाउ०-वेउ०छ० उ० ब्राणु० असंखेँजा । तिण्णिआउ० ओघं। सेसाणं उ० ऋसंखेँजा। अणु० ऋणंता। सासणे दोआउ० उ० संखेँजा। अणु० असंखेँजा। मणुसाउ० मणुसि०भंगो। सेसाणं उ० अणु० असंखेँजा। सम्मामि० सन्वपगदीणं उ० अणु० असंखेँजा । असण्णीसु दोश्राउ०-वेउन्वियञ्च० उ० अणु० असंखेँजा । मणुसाउ० ग्रोधं । सेसाणं उ० असंखेँजा । अणु० अणंता ।

एवं उक्कस्सं परिमाणं समत्तं ।

३२६, जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०--अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० अणु० केॅनिया १ संखेंजा । अज० ऋणुभा० के० ? अणंता । सादासाद०-तिरिक्खाड०-मणुसगदि-चदुजादि-छस्संठा०-छस्संघ०--मणुसाणु ०--दोविहा०-थावरादि०४--थिरादिछ०--उचा०

हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें चायिक प्रकृतियोंका संग पक्चीन्द्रयों-के समान है। दो आयुश्रोंका भंग मनुष्टियनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग आनत कल्पके समान है। आहारकद्विकका भंग खोधके समान है।

विशेषार्थ—गुक्ललेश्यामें मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अप्रमत्तसंयत मनुष्य करता है। इसी प्रकार इनके अनुत्कृष्ट अनु-भागके बन्धक भी संख्यात हैं, इसलिए इनका भग मनुष्यिनियोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम हैं।

३२=. श्रभव्योंमें , नरकायु श्रीर वैकिथिक छहके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। तीन आयुओंका भक्त स्रोचके समान है। शेष प्रकृषियोंके उत्कृष्ट स्रमुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें दो आयुत्र्योके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। मनुष्यायुका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीव असंस्थात हैं। सन्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। असंज्ञी जीवोंमें दो आयु और वैकिथिक छहके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। मनुष्यायुका भंग श्रीघके समान है। रोप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाण समाप्त हुआ।

३२६. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है-स्रोघ स्रोर स्रादेश। स्रोधसे पाँच क्वानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्रायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर

ता॰ प्रतौ एवं उक्कस्सं परिमाणं समत्तं इति पाठो नास्ति । २. ता॰ प्रतौ मसुसाउ इति पाठः । १५

जै० अज० अणंता । इत्थि०-णवुंस०--तिरि०-पंचिद्दि०--ओरा०--तेजा०-क०--ओरा०-श्रंगो०-पसत्थव०४--तिरिक्खाणु०--अग्र०३--आदाउज्जो०-तस०४--णिमि०-णीचागो० ज० असंखेज्जा । अज० अणंता । तिण्णिआउग०-वेउव्वियञ्च० ज० अज० असंखेज्जा । स्राहारदुगं ज० अज० संखेज्जा । तित्थ० ज० संखेज्जा । अज० असंखेज्जा । एवं ओघभंगो कायजोगि--ओरालि०--णवुंस०--कोधादि०४--अचक्खु०--भवसि०-आहारए ति । णवरि स्रोरालि० [तित्थ०] ज० श्रज० संखेज्जा ।

श्रादि छह श्रीर उच्चगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रनन्त हैं। स्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, पञ्चोन्द्रयजाति, श्रीदारिकशारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्रांगोपांग, प्रशस्त वर्णचनुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुत्रिक, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। तीन श्रायु श्रीर वैकिथिक छहके जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार श्रोघके समान कायधोगी, श्रीदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले श्रचचुदर्शनी, भव्य श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानाधरणादिमें से कुछ का जघन्य अनुभागधन्य चपकश्रेणिमें होता है, स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारका जघन्य श्रनुभागबन्ध संयमके श्रमिमुख हुए मिथ्यादृष्टिके होता है। आठ कषायोंका जघन्य अनुभागबन्ध भी संयमके अभिमुख हुए अविरत-सम्यादृष्टि और संयतासंयतके होता है। अरित और शोकका जवन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तसंयतके होता है। यतः इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं. अतः ये संख्यात कहे हैं। इतके श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीव अतन्त हैं, यह स्पष्ट ही है। सात।वेदनीय आदिका जयन्य अनुभागवन्य चारों गतिके जीव करते हैं स्त्रीर तिर्यञ्चाय और तीन जातिका जयन्य अनु-भागबन्ध तिर्यञ्च श्रीर मनुष्य तथा एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरका जघन्य श्रनुभागबन्ध तीन गतिके जीव करते हैं। ये बन्ध करनेवाले जीव अनन्त हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके जबन्य ऋौर अज-घन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त कहे हैं। स्त्रीवेद आदिका जधन्य अनुभागवन्ध यथायोग्य संज्ञी पञ्चिन्द्रिय जीव ही करते हैं, इसिलिए इन प्रकृतियों के जबन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त कहे हैं। तीन अध्यु आदिके जधन्य अनुभागके बन्धक जीव पञ्चोन्द्रिय हैं सात्र मनुष्यायुक्ते विषयमें यह नियम नहीं है। पर मनुष्य श्रसंख्यात होते हैं, इसलिए इनके बन्धक भी असंख्यात ही होंगे, इसलिए इनके जघन्य और श्रजधन्य श्रनुभागके वन्यक जीव असंख्यात कहे हैं। आहारकद्विकक्षे जवन्य और अजधन्य अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं यह स्पष्ट ही है। तीर्थद्वर प्रकृतिका जवन्य अनुभागवन्य मनुष्य ही करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात कहे हैं। यह अरोध प्ररूपणा काययोगी आदि मार्गणाओं में घटित हो जाती है, इसलिए उनकी प्ररूपणा श्रीधके समान कही है। मात्र ऋौदारिककाययोगमें तीर्थद्वर प्रकृतिका बन्ध गर्भज मनुष्य

१. ऋषा प्रतौ थियादिछ ० उक्का उच्चा ० ज० इति पाठः । २. ऋष प्रतौ संखेजा इति पाठः । ३. ऋष प्रतौ ज० क्ससंखेजा इति पाठः ।

- ३३०. णेरइग-सव्वदेवाणं ज० अज० उक्कस्सभंगो । तिरिक्खेस्न साददंडओ तिण्णिआड०--बेडिव्यछ० ओघं । सेसाणं ज० असंखेँजा । अज० अणंता । सञ्ब-पंचिदिय तिरि० सव्वपग० ज० अज० असंखेँजा । एवं सव्वअपज्ज०-सव्वविगर्छिदि०-सब्वपुद०-आड०-तेड०-वाड०-वादरपने० ।
- ३३१. मणुसेसु पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओराठि०श्रंगो०-पसत्थापसत्थ०४-अग्र०४-श्राद्यञ्जो०-तस०४-णिमि०--पंचंत० ज० संखेँजा। श्रज० असंखेँजा। सादासाद०--दोआउ०--दोगदि-चढुजा०-छस्संघ०--दोआणु०-दोविहा०--थावरादि०४--थिरादिछ्यु ०-दोगो० ज० श्रज० श्रसंखेँजा। दोआउ०-वेजव्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० ज० अज० संखेँजा । मणुसज्जत्म-मणुसिणीसु सव्वपग० ज० अज० उक्कस्सभंगो।
- ३३२, एइंदिएसु तिरिक्ख-मणुसाउ०-तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० जह० अज० ओद्यं। सेसाणं ज० अज० अणंता। वणप्पदि-णियोदाणं मणुसाउ०-तिरिक्ख०-

ही करते हैं श्रीर वे संख्यात हैं, श्रतः इस योगमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके जघन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनु-भागके बन्धक जीव संख्यात कहे हैं।

- ३३०. नारिकयों और सब देवोंमें सब प्रकृतियोंके जवन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग उत्कृष्ट प्रकृतणाके समान है। तिर्यक्कोंमें सालावेदनीयदण्डक, तीन आयु और वैक्रियिकछ्हका भङ्ग ओघको समान है। शेष प्रकृतियोंके जधन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीव असन्त हैं। सब प्रक्लेन्द्रिय तिर्यक्कोंमें सब प्रकृतियोंके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, सब पृथिबीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब बायुकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।
- ३३१ मनुष्यों में पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, पद्धोन्द्रियज्ञाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्ण्-चतुष्क, श्रप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, अगुरुलधुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्राज्यन्य श्रानुभागके वन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, दो आयु, दो गित, चार जाति, श्रह संस्थान, श्रह संहतन, दो श्रानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर श्रादि चार, स्थिर श्रादि छह युगल और दो गोत्रके जघन्य श्रोर श्राज्यन्य श्रानुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। दो श्रायु, वैकियिक छह, श्राहारकद्रिक श्रोर तीर्थक्करके जघन्य श्रोर श्राज्यन्य श्रानुभागके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त श्रोर मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रोर श्राज्यन्य श्रानुभागके बन्धक जीवोंका भंग उत्कृष्टके समान है।

३३२. एकेन्द्रियोमें तिर्यक्षायु, मनुष्यायु, तिर्यक्षगति, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जघन्य और खजबन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग ओवके समान है। शेषप्रकृतियोंके जघन्य और अजबन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। बनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें मनुष्यायु, तिर्यक्षः

ता० प्रती यावरादि० थिरादिखयु० इति पाठः। २. ता० श्रा० प्रत्योः श्रक्षेजा • इति पाठः।

तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० अज० ओघं । संसाणं ज० अज० अणंता । पंचि०-तस०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४ – उप०-तित्थय०-पंचंत० ज० संखेँज्ञा । अज० असंखेँज्ञा । आहारदुगं ओघं । सेसाणं ज० अज० असंखेँज्ञा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

३३३, ओरालियमि० पंचणा०-छदंसणा०--बारसक०--अष्पसत्य०४-उप०-पंचंत० ज० संखेंजा। अज० अणंता। मणुसाउ० ओघं। देवगदिपंचगस्स उकस्स-भंगो। सेसाणं ओरालियकायजोगिभंगो। वेउव्वि०-वेउव्वियमि०-आहार०-आहारमि० उकस्सभंगो। कम्मइ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ-०सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-पंचि०--ओरा०-तेजा०-क०--ओरा०झंगो०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--अगु०४--आदाउज्जो०-तस०४--णिमि०-णीचा०-पंचंत० ज० असंखें०। अज० अणंता। देवगदि-पंचगं उकस्सभंगो। सेसाणं सादादीणं ज० अज० अणंता।

३३४. अवगद् ०--मणपज्जव०--संजद्--सामाइ०-छेदो०--परिहार० - सुहुमसंप० उकस्सभंगो ।

गति, तिर्यक्क्षगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भंग छोषके समान है। शेष प्रकृतियोंके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। पक्कोन्द्रिय, पक्कोन्द्रिय, पक्कोन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दशनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, तीर्यक्कर और पाँच अन्तरायके जयन्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। आहारकद्विकका भंग आष्टिक समान है। शेष प्रकृतियोंके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, क्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चजुदर्शनी और संज्ञो जीवोंके जानना चाहिए।

३३३. श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात श्रीर पाँच श्रान्तरायके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीव संख्यात हैं। श्राव्यत्य श्रनुभागके वन्धक जीव श्रान्त हैं। मनुष्यायुका भंग श्रोवके समान है। देवमतिपञ्चकका भंग उत्कृष्टके समान है। श्रेष प्रकृतियोंका भंग श्रोदारिककाययोगी जीवोंके समान है। विकियिककाययोगी, विकियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी श्रोर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यञ्चगित, पञ्चोन्द्रियज्ञाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणश्रारीर, श्रोदारिक श्रागोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रापुरुलघुष्ठरुक, आतप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके ज्ञवन्य श्रनुभाग के बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। श्रेष सातावेदनीय श्रादिके ज्ञवन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रमन्त हैं। शेष सातावेदनीय श्रादिके ज्ञवन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रमन्त हैं। शेष सातावेदनीय श्रादिके ज्ञवन्य श्रोर श्रज्ञचन्य श्रनुभागके बन्धक जीव श्रमन्त हैं।

३३४. त्रपगतवेदी, सनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और सूर्तमसाम्परायसंयत जीवोंका भक्क उत्कृष्टके समान है।

१. ता॰ प्रतौ -ियायोदाणं मसासाउ० ऋोघं इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ ज॰ ऋगांता इति पाठः ।

३३५. मदि-सुद् ं पंचणाणावरणादिदंडओ सादादिदंडओ पंचिदियदंडओ ओयं। णविर अरदि-सोग जि असंखेंजा। अजि अणंता। एवमसंजदा मिच्छा-दिष्टि ति । आभिण-सुद-ओधि ं पंचणा ०-छदंसणा०-बारसक ०-सत्तणोक ०-अप्प-सत्थ०४ – उप०-तित्थ०-पंचंत० जि के १ संखेंज्जा। अजि असंखेंज्जा। मणुसाउ०-आहार दुगं उकस्सभंगो। सेसाणं जि अजि असंखेंज्जा। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-खर्ग०-वेदग०-उवसम०। णविर खर्गे दोआउ०-आहार दुगं उकस्सभंगो। उवसम० तित्थ० उकस्सभंगो। संजदासंजदे तित्थ० मणुसि०भंगो। सेसाणं ओधिभंगो।

३३६. किण्ण०-णील०-काउ० तिरिक्लोघं । जबरि तित्थ० मणुसि०भंगो । काऊए णिरयभंगो । तेऊए पंचणा०-जबदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्प-सत्थ०४—उप०-पंचंत० ज० संखेँ० । अज० असंखेँ० । मणुसाउ०-आहारदुगं उक्कस्स-भंगो । सेसाणं ज० अज० असंखेँ० । एवं पम्माए । सुकाए खिवगाणं संजमपाओ-गाणं ज० संखेँ० । अज० असंखेँ । दोझाउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो । सेसाणं ज० अज० असंखेँ । दोझाउ०-आहारदुगं उक्कस्सभंगो । सेसाणं ज० अज० असंखेँ ।

३३५. मत्यद्वानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि दण्डक, सातावेदनीयदण्डक और पद्मे न्द्रियजातिदण्डकका भङ्ग श्रोयके समान है। इतनी विशेषता है कि श्ररति और शोकके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं श्रोर अजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीव असन्त हैं। इसी प्रकार असंयत और मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, अद दर्शनावरण, बारह कथाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण्च ज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, अद दर्शनावरण, बारह कथाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण्च ज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, अद दर्शनावरण, बारह कथाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्ण्च ज्ञान असंख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके वन्ध जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार श्रवधिद्वानी, सन्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसन्यग्दृष्टि, वेदकसन्यग्दृष्टि और उपशाससन्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसन्यग्दृष्टि जीवोंमें दो त्रायु और श्राहारकद्विकका मंग उरकृष्टके समान है। उपशाससन्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थं द्वर प्रकृतिका मंग उरकृष्टके समान है। उपशाससन्यग्दृष्टि जीवोंमें तीर्थं द्वर प्रकृतिका मंग अवधिक्वानी जीवोंके समान है। संयतासंयत जीवोंमें तीर्थं इर प्रकृतिका मंग मनुष्टियितयोंके समान है। श्रेष प्रकृतियोंका मंग अवधिक्वानी जीवोंके समान है।

३३६. कृष्ण, नील और कपोतलेश्यामें सामान्य तिर्यक्कों के समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि तीर्यक्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियों के समान है। मात्र कापोतलेश्यामें नारिकयों के समान मंग है। पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात और पाँच अन्तरायके ज्ञान्य अनुभागके वन्यक जीव संख्यात हैं। अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्याय और आहारकदिकका मंग उत्कृष्ट के समान है। शेष प्रकृतियों के ज्ञान्य और अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें चपक और संयमप्रायोग्य प्रकृतियों के ज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं। दो आख्य और आहारकदिकका भंग उत्कृष्टके समान है। शेष प्रकृतियों के ज्ञान्य और अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीय असंख्यात हैं। दो अख्य अनुभागके बन्धक जीय असंख्यात हैं।

३३७. अन्भवसि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-सिरिक्ख०-पंचिदियजादि--तिण्णसरीर--ओरा०श्रंगो०--पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४--आदाउज्जो०-तस०४--णिमि०-णीचा०-पंचंत० ज० ऋसंखे०। अज० ऋणंता। सेसाणं ओधं। एवमसिण्णे ति। सासणे मणुसाउ० देवभंगो। सेसाणं ज० ऋज० असंखे०। सम्मामि० सञ्चपग० ज० ऋज० असंखेज्जा। ऋणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं परिमाणं समतं ।

१६ खेत्तपरूवणा

३३८. खेतं दुविधं — जहण्णयं उक्कस्सयं च । उक्क० पगदं । दुवि० — ऋोघे० आदे० । ओघे० तिण्णिआउ० वेडिव्यिख्० - आहारदुग-तित्थ० उक्क० अणुक्क० अणु-भागबंघ० केविड खेते १ लोगस्स असंखेजिदिभागे । सेसाणं उ० अणुभा० केव० १ लोगस्स असंखेजि० । अणुक्क० सञ्बलोगे । पृत्रं ओघभंगो तिरिक्खोघो कायजोगि-ओरालि० -- ओरालियमि० -- कम्मइ० -- णवुंस० -- कोधादि०४ -- मदि० - सुद० -- असंज० -

३३७. श्रभव्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नी नोकषाय, तिर्यक्षगति, पञ्च न्द्रियजाति, तीन शरीर, श्रौदारिक श्राङ्गेपाङ्ग. प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी, त्रगुरुलशुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायके ज्ञधन्य अनुभागके बन्धक जीव असंस्थात हैं। श्रजधन्य अनुभागके बन्धक जीव अनन्त हैं। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। इसी प्रकार असंशी जीवोंके जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मनुष्यायुका भंग देवोंके समान है। श्रेष प्रकृतियोंके ज्ञधन्य और अज्ञधन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंके ज्ञधन्य और श्रज्जधन्य अनुभागके बन्धक जीव असंख्यात हैं। अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भंग है।

विशोषार्थ — स्रोघसे सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीव कितने हैं इसका स्पष्टीकरण किया ही है। उसी प्रकार अपने अपने स्वामित्वको ध्यानमें रखकर सब मार्ग-णाओं में स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे अलग अलग स्पष्टीकरण नहीं किया है।

इस प्रकार परिमाख समाप्त हुन्ना।

१६ क्षेत्रप्ररूपणा

३२८. चेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ज्योघ और आदेश । ज्योघसे तीन आयु, बैकियिक छह, आहारकिहिक और तीर्थं इरके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र हैं ? लोकका असंख्यातवाँ भाग चेत्र हैं । शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका कितना चेत्र हैं ? लोकका असंख्यातवां भाग चेत्र हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका सव लोक चेत्र हैं । इस प्रकार श्रीयके समान सामान्य तिर्युद्ध, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिककाययोगी, कार्मणकाययोगी, नार्मकवेदी,

रै. आ० प्रती एवं सण्णि चि इति पाठः । २. ता० प्रती एवं परिमाणं समर्च इति पाठो नास्ति ।

अचक्खु ०-तिण्णिले ०-भवसि ०-अब्भवसि ०-मिच्छा ०-असप्णि ०-आहार ०-अणाहारग ति ।

३३६. एइंदि० पंचणा०-णवदंस०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०--सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०--हुंड०--ऋप्पसत्थ०४ - तिरिक्खाणु०--उप०-थावरादि४--अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सन्वलोगे। दोआउ०-मणुस०--मणुसाणु०-उचा० ओधं। सेसाणं उ० लोग० संखें०, अणु० सन्वलोगे।

क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यक्कानी, श्रुताक्कानी, असंयत, श्रचलुदर्शन, तीन लेरयावाले, भव्य, अभव्य, मिध्यादृष्टि, असंक्री, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थं—नरकायु, देवायु श्रौर वैक्रियिक छहका असंज्ञी आदि, आहारकद्विकका अप्रमत्तस्यत और तीर्थंकरका सम्यन्दृष्टि जीव बन्ध करते हैं। इन जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेसे इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संज्ञी पम्चन्द्रिय तिर्थेक्ष और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनका चेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ही, परन्तु मनुष्यायुके अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंका भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है, क्योंकि एकेन्द्रियादि सभी जीव इसका बन्ध करनेवाले होते हुए भी वे स्वरूप हैं। उन जीवोंके चेत्रका योग लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है, क्योंकि एकेन्द्रियादि सभी जीव इसका बन्ध करनेवाले होते हुए भी वे स्वरूप हैं। उन जीवोंके चेत्रका योग लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, इसलिए मनुष्यायुकी अपेक्षा भी यह चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। अब रही शोध प्रकृतियाँ सो उनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध सामान्यतः संज्ञी पद्धोन्द्रिय जीव करते हैं और इनका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीवोंका चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। वथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका वन्ध एकेन्द्रियादि सभी जीव करते हैं, इसलिए यह सर्वलोक कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ कही हैं, उनमें यह प्रकृपणा बन जाती है, इसलिए उनको अोचके समान कहा है।

३३६. एकेन्द्रियोंमें पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भंग ओवके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है।

विशेषार्थ — पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध अन्यतर यथायोग्य संक्लेश युक्त एकेन्द्रिय जीव करते हैं और थे सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्व लोक चेत्र कहा है। दो आयु, मनुष्यगतिद्विक और दचगोत्रका भंग ओघके समान है यह स्पष्ट हो है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक बादर प्रथिवीकायिक, वादर जलकायिक और वादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव हैं और इनका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। ओवसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। ओवसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र उक्त प्रमाण ही कहा है। अब रहीं शेष प्रकृतियाँ सो उनमेंसे प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध बादर अग्निकायिक और वादर वायुकायिक जीव करते हैं और जो एकेन्द्रिय सम्बन्धी न होकर अन्य प्रकृतियाँ हैं, उनके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध अन्यतर करते हुए वे

१. ता० श्रा० प्रत्योः सन्वलोगो इति पाठः ।

३४०. बादरएइंदियपज्जतापज्जता० पंचणाणावरणादि याव अप्पसत्थाणं थावर-पगदीणं उक्क० अणु० सन्बल्लो० । सादावे०-ओरालि०-तेजा०--क०-पसत्थ०४-अगु०३--पज्ज०--पत्ते०-थिर--सुभ०-णिमि० उ० लोग० संखेँ०, अणु० सन्बल्लो० । इत्थि०-पुरिस०-चदुजादि-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो०-इस्संघ०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस०-बादर०-सुभग०-दोसर०-आदेज्ज०--जस० उ० अणु० लोग० संखेँ० । तिरि-क्लाउ० उ० लोग० असंखेँ०, अणु० लोग० संखेँ० । मणुसाउ०-मणुस०--मणुसाणु०-उद्या० उक्क० अणु० लोग० असंखेँ। सन्बसुहुमाणं तिरिक्ख०--मणुसाउ० ओर्घ। सेसाणं उ० अणु० सन्बलो०।

३४१. पुद्ववि०-आड०-तेउ० सर्व्वयावरपगदीणं उ० लो० असंखेँ०, अणु० सन्वलो० १ णवरि मणुसाउ० ओघं । बादरपुद्ववि०-आउ०-तेउ० पंचणा०--णवदंस०-सादासाद०-भिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-य्रोरालि०--तेजा०--क०-हुंद०-पसत्थापसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-

सब लोकमें नहीं पाये जाते, अतः उन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक कहा है। आगे अन्य मार्गणाओंमें जो चेत्र कहा है उसे इसी प्रकार स्वामित्वका विचार कर घटितकर लेना चाहिए। विचार करनेकी दिशाका ज्ञान इससे ही हो जाता है।

३४०. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त श्रीर श्रपर्याप्त जीवोंमें पाँच शानावरए से लेकर श्रप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रानुकृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, श्रुभ श्रीर तिर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यात मागप्रमाण है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। कीवेद, पुरुषवेद चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्रांगोपांग, छह संहनन, श्रातप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस. बादर, सुभग, दो स्वर, आदेय श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण चेत्र है। तिर्यक्षायुक्ते उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। सनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यायुक्त वन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यायुक्त क्रिक्त वन्धक जीवोंका लोकके समान है। श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है।

३४१. पृथिवीकायिक, जलकायिक श्रीर श्रिमिकायिक जीवोंमें सब स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें मागप्रमाण चेत्र है और श्रनुस्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग ओघके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक और वादर श्रिमिकायिक जीवोंमें पाँच झानावरण, नो दर्शानावरण, सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कथाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगित, एकेन्द्रियजाति, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

१. ऋा० प्रती जस० उ० ऋगुा० लोग० ऋसंखे० संबसुहु मार्गा इति पाठः । १. ता० ऋा० प्रत्योः तेउ बादरपत्ते० सन्द- इति पाठः ।

थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादेँ - अजस० - णिमि० - णीचा० - पंचेत० उ० लोगस्स असे खेँ ज्ञिदभागे। अणुकस्सं सञ्चलोगे । सेसाणं सञ्चतसपगदीणं बादर-जसगिति-सिहदाणं उ० अणु० लो० असंखेँ । बादरपुढ० - आउ० - तेउ० पक्ता पंचि० तिरि० अपज्ञ० भंगो। बादरपुढ० - आउ० - तेउ० अपज्जत० पंचणा० - णवदंसणा० - असादा० - मिच्छ० - सोलसक० - सत्तणोक० - तिरिक्ख० - - एइंदि० - शुंढ० - अप्पसत्थ० ४ - तिरिक्खाणु० - उप० - थावरादि ४ - अथिरादि पंच० - णीचा० - पंचेत० उ० अणु० सञ्चलो०। सादा० - ओरालि० - तेजा० - क० - पसत्थ० ४ - अगु० ३ - पज्जत्त - पत्ते ० - थिर० - सुभ० - णिमि० उ० लोग० असं०, अणु० सञ्चलो०। सेसाणं तसपगदीणं बादर - जसगित्तिसिहदाणं उ० अणु० लो० असंखेँ०। वाऊणं पि तेउभंगो। णविर यम्हि लोग० असंखेँ० तम्हि लोग० संखेँ० काद्वां। णविर बादरवाउ० आउ० वादरएइंदियभंगो।

३४२. वणप्फिदि-णियोद० थावरपगदीणं अप्पसत्थाणं उ० अणु० सव्वलो०। सेसाणं सादादीणं तस-थावरपगदीणं उ० लो० असंखें०, अणु० सव्वलो०। मणु-साउ० ओग्नं। बादरवणप्फिदि-बादरणियोद-पज्जत्तापज्जत्त० थावरपगदीणं अप्पसत्थाणं

अप्रशस्त वर्णीचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सूदम, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चैत्र सब लोक है। बाद्र श्रीर यशःकीर्ति सहित शेष सब जसप्रकृतियों के उरकृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमास है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त. बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें पद्धे न्द्रिय तिर्युख श्रपर्यापकों के समान भंग है। बादर प्रथिवीकायिक श्रपर्याप्त, बादर जल-कायिक अपर्याप्त और बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यक्क्षगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। साताबेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु-त्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, श्रम ख्रीर निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके अस-ख्यातर्वे भागप्रमाण चेत्र है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। बादर और यशाकीर्ति सहित शेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाख चेत्र है। वायुकायिक जीवोंका भी श्रग्तिकायिक जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहा है,वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कर्रना चाहिए। इतनी विशेषता है कि बारर वायुकायिक जीवों में आयुका भंग बादर एकेन्द्रियोंके समान है।

३४२. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें श्रप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र हैं। शेव सातावेदनीय श्रादि त्रस-स्थावर-प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है श्रौर अनु- त्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र हैं। ममुष्यायुका भंग श्रोधके समान है। बादर

१. ता॰ स्रा॰ प्रस्योः सञ्चलोगो इति पाठः । २. स्रा॰ प्रतौ तेउ० वाउ० पज्नता इति पाठः ।

ड० अणु० सच्चलो० । सादा०-ओरा०--तेजइगादीणं थावरपगदीणं पसत्थाणं ड० लो० असंखें, अणु० सच्चलो० । सेसाणं तसपगदीणं आदाउज्जो०-बादर-जसगिति-सिहदाणं ड० अणु० लो० असंखें । बादरपत्ते० बादरपुढिविभंगो । णेरइगादि याव सिण्णि ति उक्क० अणु० लोग० असंखेंज्जदि० ।

एवं उकस्सं समत्तं।

३४३, जहण्णए पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०--णवदंस०पिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-पंचिदि०-ओरालि०--तेजा०-क०-ओरालि०ग्रंगो०--पसत्यापसत्थ०४—तिरिक्खाणु०--ग्रगु०४—आदाउज्जो०--तस०४-णिपि०-णीचा०-पंचंत० ज० ग्रणुभागवंधगा केविड खेंते ? लोग० ग्रसंखेँ० । ग्रज० ग्रणु०
केव० ? सव्वलो० । सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुस०-चदुजादि-छस्संदा०-छस्संघ०पणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि४-थिरादिछयुग०-उचा० ज० ग्रज० सव्वलो० ।
तिण्णित्राउ०-वेउव्वियछ०-ग्राहारदुग-तित्थ० ज० अज० लो० असंखेँ० । एवं ग्रोघभंगो कायजोगि--णवुंस०-कोधादि४-मदि०-सुद०--ग्रसंज०-ग्रचवख०--किण्ण०-

वनस्पतिकायिक, वादर निगोद तथा इनके पर्याप्त श्रीर श्रवयांत्र जीवोंमें श्रप्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। सातावेदनीय, श्रीदा-रिकशरीर श्रीर तेजसशरीर श्रादि प्रशस्त स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। भातप, उद्योत, बादर श्रीर यशःकीर्ति सिहत शेष त्रसप्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है। बादर प्रत्येक बनस्पतिकायिक जीवोंका बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान भंग है। तथा नारिकयोंसे लेकर संज्ञी तक श्रन्य जितनी मार्गणाएँ शेष रही हैं, उनमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवों का चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट चेत्र समाप्त हुन्ना ।

३४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है— योघ और श्रादेश। श्रोधसे पाँच बानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, नौ नोकवाय, तिर्यञ्चगति, पञ्चोन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, त्रिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रमुस्तवुचतुष्क, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके अघन्य अनुसागके बन्धक जीवोंका कितना सेत्र है ? लोकके असंख्यातवें सागप्रमाण सेत्र है। श्रव्यवन्य अनुसागके बन्धक जीवोंका कितना सेत्र है ? सब लोक सेत्र है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर श्रादि छह युगत और उच्चगोत्रके जघन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक सेत्र है। तीन आयु, वैकिथिक छह, श्राहारकद्विक और तीर्यञ्चरके जघन्य और अजयन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका लोकके श्रसंख्यात्वें मागप्रमाण सेत्र है। इसी प्रकार श्रोधके समान काययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कवायवाले, मत्यक्वानी, श्रुताहानी, श्रसंयत, श्रचज्वदर्शनी, छष्णलेश्यावाले, भव्य, श्रमध्य, मिध्याहिष्ठ

चेत्रपरूवमा १४७

भवितः अब्भवितः - मिच्छा०-- स्राहारए ति । तिरिक्तोघं ओरा०-स्त्रोरास्त्रियमि०-णील०-काउ०-स्रसण्णीसु च ओघं। णविर तिरिक्त०-तिरिक्ताणु०-णीचा० ज० लो० संत्रे०, स्रज० सथ्वलो०।

३४४. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्ख०-श्रोरालि०झंगो०--अप्पसत्थ०४-तिरक्खाणु०--उप०-श्रादाउज्जो०--[ऋप्पसत्थवि०-] णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखेँ०, ऋज० सच्वलो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-

श्रीर आहारक जीवोंके जानना चाहिए। सामान्य तिर्यञ्च, श्रीदारिककाययोगी, श्रोदारिकमिश्र-काययोगी, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले श्रीर श्रसंज्ञी जीवोंमें भी श्रोवके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यातुपूर्वी श्रीर नीचगोत्रके जवन्य श्रतुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है श्रीर श्रजवदन्य श्रतुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई पाँच ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जधन्य अनुभाग-वन्ध या तो गुणस्थानप्रतिपन्न जीव करते हैं और जिन स्त्यानगृद्धि तीन आदिका मिध्यादृष्टि जीव करते हैं वे सब संज्ञी पद्मीन्द्रय ही होते हैं और ऐसे जीवोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाए है, स्रतः यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागबन्धका चेत्र उक्त प्रमाण कहा है। तथा इनका श्रजधन्य अनुभागवन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, अतः इनके अजधन्य अनुभाग के बम्धक जीवोंका सब लोक चेत्र कहा है। दूसरे दण्डकमें कही गई सातावेदनीय श्रादिका जघन्य श्रीर त्राज्यन्य त्रानुभागबन्ध एकेन्द्रिय त्रादि चारों गतिके जीव करते हैं, त्रातः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक कहा है। शेष रही तीसरे दण्डकमें कही गई तीन आय श्रादि प्रकृतियाँ सो इनमेंसे मनुष्यायुके सिया शोप प्रकृतियोंका बन्ध यथायोग्य पश्चीन्द्रिय जीव हीं करते हैं और मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात होनेसे मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीव स्वरूप हैं, इसलिए इनके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ काययोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह श्रोध-प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती हैं, इसलिए उनके कथनको ओधके समान कहा है। यदापि सामान्य तिर्यञ्च त्यादि मार्गणा शोंमें भी यह श्रोधप्ररूपणा घटित हो जाती हैं श्रीर इसलिए उनकी प्ररूपणाको भी ऋोघके समान जाननेकी सूचना की है पर उनमें तिर्यऋगति आदि तीन प्रकृतियोंकी अपेना कुछ विशेषता है। बात यह हैं कि ओघमें और काययोगी आदि मार्गेणाओंमें तो तिर्यञ्जगति आदिका जघन्य श्रनुभागवन्य सम्यक्तवके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी जीव करता है और सामान्य तिर्यक्क आदि मार्गणाओं में बादर अग्निकायिक और बादर वायु-कायिक जीव इन प्रकृतियोंका जवन्य अनुभागवन्ध करता है और बादर वायुकायिक जीवोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिए इन मार्गणाश्चोंमें उक्त तीन प्रकृतियोंके जघन्य श्रनु-भागके बन्धक जीवोंका दोत्र लोकके संख्यातर्वे भागप्रमाण श्रीर अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक कहा है।

२४४. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नो नोकषाय, तिर्यक्रमति, ज्ञोदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येक्कमत्यानुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगिति, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके ज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक

१. तः प्रतौ तिरिक्खोधं श्रोगलियमि० इति पाठः ।

मणुस०-पंचजादि--ओरालि०--तेजा०--क०-छस्संठा०-छस्संघ०--पसत्थ०४-मणुसाणु०-ऋगु०३-[पसत्थवि०-] तसथावरादिदसयुग०-णिमि०-उद्या० ज० अज० सञ्बलो०। मणुसाउ० ज० अज० ओघं।

३४४. बादरपज्जत- अपज्जतः विष्णा०-णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्त०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०-उप०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संत्वे०, श्रज० सम्बलो० । सादासाद०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंद०-पसत्थ-वण्ण४-अगु०३-थावर-मुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-धिराधिर-सुभासुभ-दूभग-अणादेँ०-अजस०-णिमि० ज० अज० सम्बलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिरिक्ताड०-चदुजादि--पंचसंठा०--ओरा०अंगो०-अस्संघ०-आदाउज्जो०-दोविहा०-तस०-बादर०-

है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्षायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मेणशरीर, अह संस्थान, अह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरु-लघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल, निर्माण और उचगोत्रके जघन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। मनुष्यायुके जघन्य और अजयन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंका चेत्र ओवके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियों सं सब प्रकृतियों का जघन्य अनुभागवन्ध बादर जीव करते हैं और इनका स्वस्थानकी अपेक्षा त्रेत्र लोकका संख्यातवां भागप्रमाण है और समुद्धातकी अपेक्षा सर्व लोक त्रेत्र है। इसी विशेषताको ध्यानमें रखकर यहाँ त्रेत्र कहा है। जिन प्रकृतियों का सर्वविशुद्ध और तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभागवन्ध होता है। या तात्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामों से जघन्य अनुभागवन्ध होकर भी जो प्रतिपत्त प्रकृतियों से रहित हैं उनका जघन्य अनुभागवन्ध स्वस्थानमें होता है, इसिलए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का त्रेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवों का त्रेत्र सब लोक कहा है। मात्र परधात और उच्छ्वास इस नियमकी अपवाद प्रकृतियों हैं, क्यों कि उपधात अपशस्त प्रकृति है और ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसिलए इनका प्रहृण सातावेदनीय आदिके साथ होता है। अब रहीं शेष सातावेदनीय आदि उत्कृष्ट संक्लिष्ट या तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामों से बँधनेवाली प्रकृतियाँ सो इनके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक त्रेत्र कहा है, क्यों कि इनका मारणान्तिक समुद्धातके समय भी जघन्य अनुभागकन्ध हो सकता है। मात्र दो आयुद्धां के विषय में स्वतन्त्रक्रपसे विचार करना चाहिए। कारण स्पष्ट है। इसी प्रकार आगे भी स्वामित्वका विचार कर त्रेत्र घटित कर लेना चाहिए।

६४५. बाद्र तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों में पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकषाय, तियेक्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तियेक्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें आगप्रमाण हैं और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र स्व लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, औदारिकरारीर, तैजसरारीर, कार्मण्यारीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्ण चतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूद्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अथराःकीर्ति और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सब लोक है। स्थिवंद, पुरुषवेद, तिर्यक्चआयु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आक्षोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर, आदेय

सुभग०-दोसर०-आदेँ०-जस० ज० ऋजै० लोग० संखेँ० । मणुसाउ०-मणुसग०-मणु-साणु०-उचा० ज० झज० लो० असंखे० । सव्वस्रहुमाणं सव्वपगदीणं ज० अज• सव्वलो० । णवरि मणुसाउ० ओघं ।

३४६. पुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरालि० झंगो०-पसत्थापसत्थ०४ ---आउ०४ --आदाचज्जो०-णिमि०-पंचंत० ज० लो० असंखेँ०, अज० सव्वलो०। सादासाद०--तिरिक्खाड०-दोगदि-पंचजादि-अस्संद्य०-दोआणु०-दोविहो०-तसादिदसयुगल-दोगो० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाड० [ज० अज० ओघं।] वादरपुढ०--आड० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०--ओरा०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४ --अग्र०--णिमि०-पंचंत० ज० लो० असंखेँ०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्ख०--एइंदि०-हुंढ०-तिरिक्खाणु०--थावर--मुहुम०--पज्ज०--अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर--मुभासुभ--दूभग-अणादेँ०-अजला०-णीचागो० ज० अज० सव्वलो०। सेसाणं ज० अज० लो० असंखेँ०। बादरपुढ०-आउ०पज्ज० मणुसअपज्जतभंगो । वादरपुढ०-आउ०अपज्ज० पंचणा०-

भीर यशःकीर्तिके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उद्यगीत्रके जघन्य और अजघन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सब सूदम जीवोंमें सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लाक क्षेत्र है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका मंग भोषके समान है।

३४६. पृथिवीकायिक स्रोर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्य, सोलह कषाय, नी नोकषाय, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्युचतुष्क, आतप, उद्योत, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवाँका चेत्र लोकके श्रासंख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, निर्युद्धायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनत, दो आनुपूर्वी, दो विहायीगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके जवन्य और अजबन्य ऋनुम।गके बन्धक जीवोंका सब लोक क्षेत्र है। मनुष्यायुके अधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र स्रोघके समान है। यादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकवाय, श्रीदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधु, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके श्रमंख्यातवें भागप्रमाण है श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र सव लोक है। सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूदम, पर्याप्त, ऋपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, ऋस्थिर, श्रुम, ऋशुम, दुर्मग, ऋनादेय, अयरा:कीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य और अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र सब लोक है। शेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। यादर पृथिवीकायिक पर्याप्त ऋौर वादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंमें मनुष्य

१ इमा∘ प्रसौ जस० इपज्र ० इति पाठः।

णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-ग्रप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० लो० असं०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४[तिरिक्खाणु०-]अगुं०३-थावर-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभा-सुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआड०--मणुस०--चदुजा०-पंचसंटा०--ओरालि०ग्रंगो०-ल्रस्संघ०--मणुसाणु०--आदा-खज्जो०--दोविहा०--तस--बादर-सुभग--दोसर-आदे०-जस०-उच्चा० ज० अज० लो० असंखे०। एवं वादरवणप्पदिका०-बादरणियोद-पज्जतापज्जत-बादरपत्तेयअपज्जताणं-च। तेउ० पुढविभंगो। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० आभिणि०भंगो। एवं चेव वाउका०। णवरि यम्हि लोग० असंखेँ० तम्ह० लोग० संखेँजो कादव्यो।

३४७. वणप्पदि--णियोदेसु पंचणा०--णवदंसणा०--मिच्छ०-सोस्रसक०-णव-णोक०-ओरास्त्रि०त्रांगो०-अप्पसत्थ०४--उप०-आदाउज्जो०-पंचंत० ज० लो० असंखे०, अज० सव्वलो०। सादासाद०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजादि-ओरास्त्रि०-तेजा०-क०-इस्संठा०-इस्संघ०-पसत्थव०४-दोआणु०-अगु०३--दोविहा०-तस०-थावरादिदसयुग०-

श्रपर्याप्तकोंके समान भङ्ग हैं। बादर प्रथिवीकायिक श्रपर्याप्त श्रीर बादर जलकायिक श्रपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकवाय, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके श्रसंख्यातर्वे भागप्रमाण है श्रीर अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका च्रेत्र सब लोक है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यश्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूदम. पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुम्न, अशुम्न, दुर्भग, अनादेय, अयराःकार्ति, निर्माण और नीचगात्रके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, ऋदिारिक आङ्गोपाङ्ग. छह सहत्तन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दो स्वर, त्रादेय, यशःकीर्ति और उचगोत्रङे जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है। इसी प्रकार बादर बनस्पतिकायिक और बादर निगोद तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त श्रौर वाद्र प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। अभिनकायिक जीवोंमें प्रथिवीकायिक जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यख्यगति, तिर्यख्यगत्यानुपूर्वी स्रोर नीचगोत्रका भङ्ग स्राभिनिबोधिकज्ञानी जीवो के समान है। इसी प्रकार वायुकायिक जीवा में जानना चाहिए। इसनी विशेषता है कि बहाँ लोकके असंख्यातचें भागामाण चेत्र कहा है वहाँ पर लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्र कहना चाहिए।

३४७. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कथाय, नौ नोकपाय, श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपयात, आतप, उद्योत श्रीर पाँच अन्तरायके जधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका चेत्र लोक है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्जाय, दो गति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह

१. ता० श्रा० प्रत्योः ऋष्पसस्य४ ऋगु३ इति पाठः।

णिमि०-दोगो० ज० अज० सञ्बलो० | [मणुसाउ० ज० अज० ओघं |] पत्तेय० बादरपुढविभंगो | कम्मइ० अणाहारए ति मृलोघं | सेसाण णिरयादीणं याव सण्णि ति ज० अज० लोगस्स० असंसें० |

एवं खेत्तं समत्तं ।

३४८. फोसणं दुविहं-जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०-स्रोघे० स्रादे०। ओघे० पंचणा०--णवदंस०-असादा०--मिच्छ०--सोल्लसक०--पंचणोक्क०-तिरिक्ख०-हुंड०-अप्प-सत्थ०४- तिरिक्खाणु०--उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणुभागवंधगेहि केविड खेत्तं फोसिदं १ लोगस्स असंखें०, अह-तेरह चोइसभागा वा देस्रणा। अणुक्क० अणुभागवंध० के० फोसिदं० १ सन्वलोगो। सादा०-तिरिक्खाउ०-चढुजा०-तेजा०-[क०-] समचढु०--पसत्थ०४-अगु०३--उज्जो०-पसत्थ०--तस०४-थिरादिछ०--णिमि०-उच्चा० उ० लो० असंखें०। अणु० सन्वलो०। इत्थि०-पुरिस०--चढुसंठा०-पंचसंघ०--स्रप्प-सत्थव०-दुस्सर० उक्क० अणुभा० अह-वारह चोइ०। अणु० सन्वलो०। इस्स-रदि

संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, दो विहायोगित, त्रस-स्थावरादि दस युगल, निर्माण और दो गोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। सनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। प्रत्येक बनस्पतिकायिक जीवोंका भक्क वादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। दार्मणकाययोगी और आनाहारक जीवोंका भक्क मूलोधके समान है। नरकगितसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र लोकके असंख्यातवें साग-प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणार्षे कही हैं उन सबमें अपने अपने चेत्र और स्वामित्वका विचारकर अपनी अपनी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्र ले आना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्र समाप्त हुआ।

३४८. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—जोघ जीर आदेश । जोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकपाय, तिर्यञ्चाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चतत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्वर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकका स्पर्शन किया है । सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, चार जाति, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, समचतुरक्संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उद्योतिक, उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद, पुरुष्वेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगिति और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रसुष्वेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट प्रसुष्वेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतौ प्रषं खेत्तं समत्तं इति पाठो नास्ति । 飞 ता॰ श्रा॰ प्रत्योः पंचसंठा॰ इति पाठः ।

उक्कः अहुचों स्वालों । अणुः सञ्चलोः । णिरय-देवाउ०-आहारदुगं उक्कः अणुः लोः असंखें । मणुसाउ० उ० लोः असंखें । अणुः लोः असंखें अहु चों । सञ्चलोगो वा । णिरयगदि--णिरयाणुः उ० अणुः लोः असंखें । अच्यलोगो वा । णिरयगदि--णिरयाणुः उ० अणुः लोः असंखें । अचुः असंखें । अणुः उ० खें त्रभंगोः । अणुः अखें। । एइंदिः -थावरः उ० अह-णवचोः । अणुः सव्वलोः । वेडिच्चः -वेडिच्चः असंखें । अणुः सव्वलोः । अणुः सव्वलोः । वेडिच्चः -वेडिच्चः असंखें । अणुः सव्वलोः । असंखें अहं चोदः ।

अनुभागके बन्धक जीयोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राज् श्रीर सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक न्नेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु श्रीर त्राहारकद्विकके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके उत्क्रष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और अनुस्कृष्ट ब्रानुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ वटे चौदह राज् और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति श्रीर नरकगत्य।तुपूर्वीके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रन-भागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर कुछ कम छह बटे चौदह राजू जोनका स्पर्जन किया है। मनुष्यगति, धौदारिकशरीर, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्क, वश्रर्षभनाराचसंहनन् मनुष्यगत्यातुपूर्वी स्त्रीर स्नातपके उत्कृष्ट स्रतुभागके बन्धक जीवोंने लोकके स्रसंख्यातवें भागप्रमाण् त्रीर कुछ कम त्राठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा त्रनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति श्रौर स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्परान किया है। बैकियिकशारीर श्रीर वैक्रियिक अञ्जोपाङ्गके उत्दृष्ट अनुभागके बन्धक जोबोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूच्म, ऋपर्याप्त चौर साधारएके उस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके ऋसंख्यातवें भागप्रमाए श्रीर सत्र लोक चेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाए चेत्रका स्पर्शन किया है और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट अनुभाग है बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर त्रतुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके त्रसंख्यातवें भाग श्रीर कुछ कम श्राठ बटे चौदह राज्यसेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध चारों गतिके मिध्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट संक्लेश परिणायोंसे करते हैं। इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है श्रीर वैक्रियिककाययोगमें विहारवत्स्वस्थान श्रादिकी श्रपेक्षा कुछ कम श्राठ वटे चौदह राज़ू श्रीर

मारणान्तिक समुद्धातकी त्रावेचा कुछ कम तेरह वटे चौदह राजू है। इन सब श्रवस्थात्रोंमें इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सम्भव होनेसे इस श्रपेदा उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इन प्रकृतियोंके अनुरक्ष्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है। दूसरे **दण्डकमें कही गई** सातावेदनीय श्रादिका क्षपकश्रेणिमें, तिर्य**श्चायु श्रौर** चार जातिका मिथ्यादृष्टि तिर्यक्व श्रौर मनुष्यके तथा उद्योतका सातवें नरकके नारकीके उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव हैं । यतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागभमाण है अतः यह उक्त प्रमाण कहा है । इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक है यह स्पष्ट ही है । श्रागे जिन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका श्रातीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक कहा है वहाँ भी उनका एकेन्द्रियादि चारों गतियोंमें बन्ध होता है इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है ऐसा समफना चाहिए) स्त्रीवेद श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध मिथ्यादृष्टि संज्ञी पख्रोन्द्रिय करते हैं, इसलिए वर्तमान स्पर्शन लोकके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। श्रतीत स्पर्शन कुछ कम अ।ठ बटे चौदह राजू कहनेका कारण आभिनियोधिक ज्ञानावरणके ही समान है। कुछ कम बारह बढे चौदह राजु स्पर्शन कहनेका कारण यह है कि इन प्रश्वतियोंका बन्ध उन्हीं जीवोंके होता है जो त्रससम्बन्धी प्रकृतियोंका ही बन्ध करते हैं। अतएव इनके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाले जीव ऊपर श्रीर नीचे कुछ कप्र छह छह राजु चेत्रका ही स्पर्शन कर सकते हैं जो कुछ कम बारह बटे चौद्द राज् होता है। हास्य श्रीर रतिके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवो के वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रभाएका और अतीत कालीन स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुका स्पष्टीकरण पहलेके ही समान है। हास्य और रितका उत्कृष्ट अनुभागक्य चारों गतिके संज्ञी जीव करते हुए भी ऐसे मनुष्य और तिर्युख भी करते हैं जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्रुवात कर रहे हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका श्रातीत कालीन स्पर्शन सर्व लोक भी कहा है। श्रायुबन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता श्रीर संज्ञी पक्कोन्द्रिय तिर्येख व मनुष्योंका शेष स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिए नरकायु खादिके उत्कृष्ट खौर श्र<u>नुत्कृष्</u>ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इसी प्रकार मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभाग-बन्धके स्पर्शनका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। तथा इनका श्रनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध वैक्रियिक-काययोगके समय भी सम्भव है श्रौर मारणान्तिक समुद्वातको छोड़कर विहारादिके समय इसका स्पर्शन मुख्य कम आठ बटे चौदह राजु है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण और अतीत स्परान कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है। जो मनुष्य नारिकयोंसे मारशान्तिक संमुद्धात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक कीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रातीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है। इनका बन्ध ऋसंज्ञी आदि ही करते हैं और नरकगतिके योग्य प्रकृतियोंका बन्ध होते समय ही होता है, अत: इनके अनुस्टुष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका भी वही स्पर्शन कहा है। मनुष्यगति चादिका देव और नारकी तथा खातपका नारकियोंके सिवा शेव तीन गतिके जीव उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करते हैं। उसमें भी मनुष्यों में मारणान्तिक समुद्र्यात करनेवाले देव श्रीर नारिकयोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता। इनके विहारादि शेष पदोंका स्पर्शन इतना ही है। हाँ जो देव विहारादि शेष पदोंसे युक्त हैं और इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागयन्य कर रहे हैं उनके कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन पाया जाता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके चत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके ऋसंख्यातचें भागप्रमाण स्रौर अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहा है। एकेन्द्रिय जाति और स्थायरका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध देव करते हैं और देवोंका श्रतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु है, इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। वैक्रियिकदिकका उत्कृष्ट

३४६. णेरइएसु साद०-पंचि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०--ओरा०श्वंगो०-वज्जरि०-पसत्थवण्ण०४-अगु०२-उज्जो०-पसत्थ०--तस०४-थिर।दिछ०-णिमि० उ० खेँतं०। अणु० छचो६०। दोआउ०-मणुसगदिदुग-तित्थ-उचा० उ० अणु० खेत्त-भंगो। सेसाणं उ० अणु० छचो०। एवं सञ्वणेरइगाणं अप्पप्पणो फोसणं णेद्द्वं।

३५०. तिरिक्खेसु पंचणा०--णवदंस०-सादासाद०--मिच्छ०-सोलसक०-पंच-

अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान और अतीत स्पर्शन लोकके असंस्थातें भागप्रमाण कहा है और वैक्रियिकद्विकका वन्ध करनेवाले मनुष्य और तियंश्च उत्पर व नीचे कुछ कम छह छह राजुका स्पर्शन करते हैं, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजुकहा है। सूदम, अपर्यात और साधारणका देव और नारकी बन्ध नहीं करते। साथ ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले मनुष्य और तिर्यञ्चोंके भी इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातें भाग प्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। तीर्थञ्चर प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध क्षपक्षिणेमें होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान और अतीत स्पर्शन लोकके असंख्यातें भागप्रमाण कहा है। तथा देवोंमें भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजु कहा है। प्रथमादि नरकोंमें और मारणान्तिक समुद्धातके समय इसका बन्ध होनेसे उक्त स्पर्शनमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

३४६. नारिकयोंमें सातावेदनीय, पञ्च न्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण्शरीर, समचतुरह्मसंस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, वश्चर्षमनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रामुरुत्वचुत्रिक, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह श्रोर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है। दो श्रायु, मनुष्यगतिद्विक, तीर्थेंद्वर श्रोर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रोर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू है। इसी प्रकार सब नारिकयोंके श्रपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ— उद्योतके सिया प्रथम दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यन्दिष्ट नारकी और उद्योतका सम्यन्दवके अभिमुख हुआ सातवें नरकका नारकी उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन तेत्रके समान लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छह वटे चौदह राजू है यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगितिद्वक, तीर्थक्कर और उच्चगोत्रके बन्धक जीव मनुष्य लोकमें ही मारणान्तिक समुद्धात कर सकते हैं और दो आयुका मारणान्तिक समुद्धातके समय बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन के समय बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन के समय भी होता है, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू वन जाता है।

३५०. तियँक्कोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, मिथ्यात्य,

णोक ०-पंचि ०-तेजा ०-क ०-समचदु०-हुं ड०-पसत्थापसत्थ ०४-अगु०४ -दोविहा ०-तस०४-थिरादि छयु०-णिमि०-दोगो०-पंचंत० ७० छचीँ ६०। अणु० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-तिण्णिआ ७०-मणुसग० - तिण्णिजा० - ओरा० - चहुसंग्ठा० - ओरालि० अंगो० - छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाउक्जो० ७० अणु० खेत्रभंगो। हस्स-रिद-तिरिक्स०-एइंदि०-तिरि-क्खाणु ०-थावरादि०४ ७० लो० असं० सव्वलो०। अणुक्क० सव्वलो०। मणुसाउ० ७० खेत्रं। अणु० लो० असंखें० सव्वलोगो वा। णिरयगदि०-[-देवगदि०-] दोआणु० उ० अणु० छचों०। वेउव्वि०-वेउव्वि० अंगो० ७० छचों०। अणु० वारस०।

सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, पश्चे न्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, दो विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि छह युगल, निर्माण, दो गोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तीन आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उद्योतके स्त्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। हास्य, रति, तिर्यद्भगति, एकेन्द्रियजाति, तियंद्भगत्यानुपूर्वी और स्थावर त्रादि चारके उत्सृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है तथा त्रजुत्क्रष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातर्वे भागन्नमाण और सब लोक क्षेत्रका स्पराँन किया है। नरकगति, देवगति स्रोर दो स्नानुपूर्वीके उत्कृष्ट स्रोर स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीधोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर ख्रौर वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके उस्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट श्चनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राज् क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — प्रथमदण्डकमें कही गई प्रकृतियों में से पाँच ज्ञानावरणादिका संज्ञी पद्धे न्द्रिय मिध्यादृष्टि जीव और सातावेदनीय आदिका संयत।संयत उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करते हैं, इस लिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है। मात्र मिध्यादृष्टियोंका मारणान्तिक समुद्धात् द्वारा नीचे छह राजू स्वांन कराके यह स्पर्शन लाना चाहिए। इनका बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक स्परान कहा है। स्त्रीवेद आदि सब प्रकृतियों त्रस और मनुष्यों सम्बन्धी हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन केन्द्रियों अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन केन्द्रियों मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके भी होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट हो है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट हो है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट हो है। मनुष्यायुका उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेन्द्रिय हो करते हैं, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेन्द्रिय आदि सब जीव बन्ध करते हैं, इसलिए

१. ता० प्रतौ तिरिक्ख० एइंदि० तिरिक्ख० तिरिक्खासु०, श्रा० प्रतौ तिरिक्ख० तिरिक्खासु० इति पाठः।

३५१. पंचिदिय०तिरिक्तव०३ पंचणा०---णवदंस०--सादासाद०---मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तेजा०-क०-हुंडसंडा०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०४--पज्जत्त-'पत्ते०थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०--अजस०--णिमि०-णीचा०-पंचत० उ० छ०। अणु०
लो० असं० सञ्चलो०। इत्थि० उ० खेंत्तभंगो। अणु० दिवहुचों०। पुरिस० उ०
खेंत०। अणु० छचों०। इस्स-रदि-तिरि०-एइंदि०-तिरिक्त्वाणु०-थावरादि०४ उ०
अणु० लो० असं० सञ्चलो०। चदुआउ०-मणुसग०-तिण्णिजादि-चदुसंडा०-ओरालि०अंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० उ० अणु० खेंत्तभंगो। दोगदि-समचदु०-दोआणु०दोविहा०-सुभग-दोसर-आदे०-उचा० उ० अणु० छ०। पंचि०-वेउव्वि०-वेउव्व० अंगो०तस० उ० छ०। अणु० वारस०। ओरालि० उ० खेंत्त०। अणु० लो० असं० सव्वलो०।

इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। जो नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं, उनके नरकगतिद्विकका और जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं, उनके देवगतिद्विकका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागक वन्यक जीवोंका कुछ कम छहबटे चौदह सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीवोंका कुछ कम छहबटे चौदह राजु स्पर्शन कहा है। वैकियिकदिकका उत्कृष्ट अनुभागकथ संयतासंयतके होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छहबटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्य करनेवाले जीव मारणान्तिक समुद्धातके समय नीचे और उपर कुछ कम छह राजुका स्पर्शन करते हैं, इसलिए यह कुछ कम बारह राजु कहा है।

अर्र १. पद्धो न्द्रिय तिर्यद्धविकमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, सातःवेदनीय, श्रसाता-वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलद्द कषाय, पाँच नोकषाय, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्रुम, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छहवटे चौदह राजुशमाण चेत्रका स्वर्शन किया है और अनुतकृष्ट अनु-भागके बन्धक जीवोंने लोकके व्यसंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्वर्शन किया है। स्त्रीवेदके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़बटे चौदह राजु चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छहबटे चौरह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य, रति, तिर्यक्रागित, एकेन्द्रिय-जाति, तिर्यस्त्रगत्यानुपूर्वी और स्थावर खादि चारके उत्कृष्ट घोर अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहतन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर चातपके बत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। दो गति. समचतुरक्रसंस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, सुभग, दो स्वर, आदेय और उबगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। पक्क न्द्रियजाति, वैक्रियिकशारीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग और असके उत्हृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू तेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू तेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके उत्कृष्ट

१. आ॰ मती अगु॰ पज्जस इति पाठ: । २. आ॰ प्रती सन्वलो० । उज्जो० उ० खेस॰, अगु॰ छुचो० इति पाठ: ।

उज्जो ० उ॰ सेर्ने । अणु० लो० असंसें ० सत्तचों ० । बादर० उ० छचों ० । अणु० तेरह० । जस० उ० र्ड० । अणु० सत्तचों ० ।

अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातमें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातमें भाग प्रमाण और कुछ कम सात बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। बादर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। बादर प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम हाह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। अपर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम तरह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सह बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-पाँच झानावरणादिके स्पर्शनका स्पष्टीकरण जिस प्रकार सामान्य तियेक्न्रोंके कर अ।ये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। भात्र इनके अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्व लोक प्रमाण स्पर्शन एकेन्द्रियोंमें समुद्वात कराके लाना चाहिए। स्त्रीवेद और पुरुषवेद तिर्येश्वादि तीन गति सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुसागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। तथा इन प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले जीवोंका मारगान्तिक समुद्घातकी ऋपेक्षा कुछ कम डेढ़ राजू और कुछ कम छह राजू स्पर्शन देखा जाता है, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यद्यपि मारणान्तिक समुद्रवातके समय भी इनका उत्कृष्ट ऋनुभागवन्ध होता है, पर देवोंमें मारखान्तिक समुद्धात करते सभय यह नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्परीन इस अपेक्षासे नहीं कहा है। हास्य और रति आदिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी होता है, इसलिए इनका दोनों प्रकारका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक कहा है। चार आयुओंका मारणान्तिक समुद्धातके समय बन्ध नहीं होता. श्रीर शेष प्रकृतियाँ मनुष्यों श्रीर अस तिर्यक्रों सम्बन्धी हैं। एक श्रातप इसकी अपवाद है सो वह भी बादर पृथिवीकाय सम्बन्धी होकर भी प्रशस्त प्रकृति है, अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। देवोंमें श्रीर नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्रुघात करने वाले तियेक्बोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू होता है, इसलिए दो गति आदिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि यथायोग्य ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका दोनों प्रकारका बन्ध सम्भव है। जो संयतासंयत तिर्येख देवों में मारणा-न्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके पक्चोन्द्रियजाति। त्रादिका उत्कृष्ट ऋनुभाग बन्ध सम्भव है स्रौर जो देवों और नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं। उनके इनका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजू और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम बारह बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रीदारिकशरीरका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध संज्ञी पञ्चोद्रिय तिर्यञ्च करते हैं श्रीर ये एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा इसका अनुस्कृष्ट श्रानुभागवन्य उन जीवोंके भी होता है जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्वात करते हैं. इसलिए इसके अनुस्कृष्ट अनुभागके अन्धक जीवोंका स्परीन लोकके श्रासंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक कहा है। उद्योतका

३. ता० प्रती छुषो० ऋगु० जस० उ० खेश्वं तेरह० जस० उ० छ०, ऋग० प्रती छुषो० ऋगु० तेरा० । जस० छ० इति पाठः ।

३५२. पंचि ०तिरि० अप०पंचणा०-णवदंस०--असादा०--भिच्छ०--सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४-अथि-रादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उक्क० अणु० छो० असंखेँ० सव्वछो०। सादा०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ•४--अगु०३--पज्जत्त-पत्ते०-थिर--मुभ--णिभि० उ० खेँतं०। अणु० छो० असं० सव्वछो०। उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेँतं०। अणु० सत्तचोँ६०। सेसाणं उ० अणु० खेँतभंगो। एवं सव्यअपज्ज०-सव्वविगिछिदि०--बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०--बादरवणप्फदिपत्ते०पज्ज०। णवरि बादरवाउ०पज्जत्त० जम्हि लोग० असं० तम्हि छोग० संखेँ० कादव्वा। णवरि आउ० वहमाणखेँतं०।

उत्कृष्ट अनुभागवन्य सर्विवशुद्ध तियंक्षके होता है, इसिलए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तथा प्रकृतिबन्धमें इसके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू कहा है, वह ही यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके बन जाता है। बादर व यशका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध संयतासंयतके होता है, अतः इन दोनोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू कहा है तथा इनके बन्धक जीवोंका स्पर्शन प्रकृतिबन्धमें कमशः कुछ कम तेरह राजू व सात राजू कहा है, वह ही यहाँ अनुतकृष्ट अनुभागवन्धक जीवोंका स्पर्शन बतलाया है।

३५२. पद्धीन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्येश्वगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ट संस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क. तिर्यञ्चगत्यासुपूर्वी, उपवात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, तीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रीदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, ह्युस स्वीर निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर श्रीर यशःकीतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्परांन किया है। शेष प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार सब श्रपर्यात, सब विकलेन्द्रिय, बादर प्रथिवीकाविक पर्याप्त, बादर जलकाविकपर्याप्त, बादर श्रमि-कायिक पर्याप्त, बादर बायुकाविकपर्याप्त ख्रौर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें जहाँ लोकका श्रासंख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आयु का स्पर्शन वर्तमान चेत्रके समान है।

विशेषार्थ —प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध मारणान्तिक समु-द्धातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन लोकने असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। उद्योत, वादर और यशस्कीर्ति प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनका मारणान्तिक समुद्धातके समय उत्कृष्ट अनुभागवन्य नहीं होता। यही कारण है कि इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है।

१. ऋा ॰ प्रतौ तिरिक्खायु ॰ यावरादि४ इति पाठः ।

३५२, मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-त्रोरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पज्ज०-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-त्र्रणादें०-अजस०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० उ० खेंत्त०। अणु० लो० असं० सव्वलो०। हस्स-रदि-तिरिक्ख०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ उ० अणु० लो० असं० सव्वलो०। उज्जो०-बादर-जस० उ० खेंत्तं०। अणु० सत्त चों०। सेसाणं उ० अणु० खेंत्रभं०।

३५४. देवेसु पंचणा०--णवदंस०-असादा०--मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०--हुंड०--अप्पसत्थ०़४--तिरिक्खाणु०--उप०--थावर--अथिरादिपंच०-

३५३. मनुष्यित्रिकमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिध्यात्य, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड संस्थान, प्रशस्त वर्णाचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णाचतुष्क, श्रप्रशस्त्र वर्णाचतुष्क, श्रप्रशस्त्र वर्णाचतुष्क, श्रप्रशस्त्र वर्णाच अति, निर्माण, नीचगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके वर्णाव श्रीर स्थावर श्रीद वर्णात किया है। हास्य, रित, निर्मञ्जगित, एकेन्द्रियज्ञाति, निर्मञ्जगत्यानुपूर्वी श्रीर स्थावर श्राद चारके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके वर्णक जीवोंने लोकके श्रसंख्यान वर्षे भागप्रमाण श्रीर सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। इद्योत, बादर श्रीर यशःकीर्तिके उत्कृष्ट श्रनुभागके वर्णक जीवोंना स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वर्णक जीवोंना स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रेष प्रश्नियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वर्णक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रेष प्रश्नतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वर्णक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्यित्रक उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों समय एकेन्द्रियों मारणानितक समुद्धात नहीं करते, अन्यत्र यह स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए प्रथम दण्डक में कही गई अप्रशस्त प्रकृतियों उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि मारणानितक समुद्धातकी अपेता मनुष्योंका उक्त प्रमाण स्पर्शन उपलब्ध होता है। जो मनुष्य एकेन्द्रियों मारणानितक समुद्धात करते हैं, उनके भी हास्यादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। ज्योत आदि तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। मारणान्तिक समुद्धातके समय इनका ऐसे मनुष्य भी बन्ध करते हैं जो एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, पर ये एकेन्द्रिय जीव उत्पर सात राजूके भीतरके होने चाहिए, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू कहा है। शेष जितनी प्रकृतियाँ बचती हैं वे सब अससम्बन्धी हैं, इसलिए उनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है।

३५४. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चमति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चमत्वापूर्वी,

१. भ्रा० प्रतौ खेत० श्रागु० खेत्तभंगो श्रागु० इति पाटः ।

णीचा०-पंचंत० उ० त्राणु० लो० असंखें अद्द-णव० । सादा०-ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अग्र०३—उज्जो०-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिर-सुभ--जस०-णिमि० उ० अद्द० । त्राणुक० अद्द-णव० । इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचि०-पंचसंटा०-ओरालि०-श्रंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु०-आदी०-दोविहा०--तस०-सुभग-दोसर-श्रादें०-तित्थ०-उचा० उ० अणु० अद्दचों० । एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं ।

३५५. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०--असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०--एइंदि०-हुंड०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावरादि०४--अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्यत्तो० । तिरिक्खाउ० स्रोघं । मणुसाउँ० तिरि-

उपचात, स्थावर, श्रास्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रोर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रोर श्रानुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू श्रोर कुछ कम नो बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रोदारिकशरीर, तेजस-शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रागुरुलचुन्निक, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, श्रुम, यशःकीर्ति श्रोर निर्माणके उत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है तथा श्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू श्रोर कुछ कम नो बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। स्रीवेद, पुरुषवेद, दो श्रायु, मनुष्यगति, पश्चोद्देयजाति, पाँच संस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर, श्रादेय, तीर्थङ्कर श्रोर उश्वगोन्नके उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके श्रपना-श्रपना स्पर्शन करना चाहिए।

विशेषार्थ — जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी पृष्य झानावरणा-दिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम आठ व नो बटे चौदह राजूपमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्यग्दृष्टि देव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंका स्पर्शन कुछ कम आठ घटे चौदह राजू कहा है और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंका स्पर्शन कुछ कम आठ घटे चौदह राजू और कुछ कम नो बटे चौदह राजू कहनेका कारण स्पष्ट ही हैं, क्योंकि देवोंके इससे अधिक स्पर्शन नहीं उपलब्ध होता। स्वीवेद आदि कुछ प्रसम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे कुछका सम्यग्दृष्टि देव बन्ध करते हैं, आयुका मारणान्तिक समुद्धातके समय बन्ध नहीं होता और एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके आतपका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण कहा है। इन विशेषताआंके साथ सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन ले आना चाहिए।

३५५. एकेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह् कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चमति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुसागके वन्धक जीवोंने सब लोक चैत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यञ्चायुका

१. श्रा॰ प्रतौ छुरसंघ० श्रादा० इति पाठः । २_. तर० श्रा० प्रत्योः मग्रुसास्रु० ति पाठः ।

क्खोघं । मणुस०-मणुसाणु०--उचा० ड० श्रणु० खेँत्त० । सेसाणं ड० लो० संखेँज्ञ०, अणु० सन्बलो० ।

३५६. बादरपज्जतापज्ज० पंचणाणावरणादिथावरदंडओ एइंदियभंगो । एवं [अ] साददंडओ वि। दोआउ०-मणुस०३ उ० अणु० खेंत्त० । णविर तिरिक्खाउ० उ० अतीतं लोग० संखें० । उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेंत्त०, श्रणु० छो० संखें० सत्तचोंह० । सेसाणं तसपगदीणं उ० अणु० लो० संखें० । सादादीणं उ० छो० संखेंज्ज०, अणु० सञ्बछो० ।

भक्त श्रोधके समान है। मनुष्यायुका भक्त सामान्य तिर्यख्नोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी श्रोर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय सब लोकमें हैं, इसलिए पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। तिर्यक्षायुका भक्त अधिके समान है और मनुष्यायुका भक्त सामान्य तिर्यक्षोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यातिद्विक और उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध बादर पृथियीकायिकपर्याप्त आदि जीव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका पर्याप्त जीव भी करते हैं, अतः उनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है।

३१६. बादर एकेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीनोंमें पाँच ज्ञानावरणादि स्थावर दण्डकका भक्क एकेन्द्रियों के समान है। इसी प्रकार असातावेदनीयदण्डकका भक्क भी जानना चाहिए। दो आयु और मनुष्यगतित्रिकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंका भक्क चित्रके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्यंक्षायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंका अतीत कालीन स्पर्शन लोकके संख्यातनें भागप्रमाण है। उद्योत, बादर और यशकांतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने लोकके संख्यातनें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने लोकके संख्यातनें भागप्रमाण और कुछ कम सात बटे चौदह राज्य प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने लोकके संख्यातनें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने लोकके संख्यातनें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने लोकके संख्यातनें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय सादिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने लोकके संख्यातनें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय अतिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीनोंने सन्धक लोकोंने सन्धल लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—श्रायुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और बादर एकेन्द्रिय तथा उनके भेदोंका चेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इनके तिर्यक्रायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका श्रातीत कालीन स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। उद्योत श्रादिका श्रातुत्कृष्ट श्रानुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, पर ऐसे जीव उत्पर सात राजूके भीतर ही मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, इसलिए इनके श्रातुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और श्रातीत स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। श्रेष त्रस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रातुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है, क्योंकि जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक

३५७. सव्वसुहुमाणं मणुसाउँ० उ० अणु ० लो० असं० सव्वलो० । तिरि-क्लाउ० उ० लो० असंखेँ० सञ्वलो०, अणुक्ष० सव्वलो० । सेसाणं उ० अणु० सम्बलो० ।

३५८. पंचिदि०२ पंचणा०-णवदंस० [असादा०-] मिच्छ०-सोत्तसक०-पंच-णोक०-तिरि०-हुंड०-अप्पसत्य०४-तिरिक्खाणु०-उप०--अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उ० श्रष्ठ--तेरह०, अणु० अह चोँ६० सव्वत्तो०। सादा०-तेजा०-क०-पसत्य०४--अगु०३-पज्ज०-पर्चे०-थिर-सुभ-णिमि० उक० खेँत्त०, अणु० अह चोँ० सव्बस्नो०। इत्थि०-पुरिस०-चदुसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्य०-दुस्सर० उक० अणु० श्रष्ठ-बारह०।

समुद्घात करते हैं, उनके इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। सातावेदनीय आदिका मारणान्तिक समुद्घातके समय भी श्रमुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका स्परान सब लोक कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३५७. सब सूच्म जीवोंमें मनुष्यायुके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। तियंक्रायुके उत्कृष्ट अनुमागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। येव प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सूदम जीवोंका सब लोक आवास है, इसलिए दो आयुओं के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों के स्पर्शनको छोड़कर शेष सब स्पर्शन सर्वलोक है, यह स्पष्ट ही है। रहीं दो आयु सो इनका उत्कृष्ट अनुभागवन्य तत्यायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है, और ऐसे परिणाम बहुत ही कम जीवों के होते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोक कहा है। तथा मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले जीव थोड़े ही होते हैं, क्यों कि मनुष्यों का प्रमाण भी स्वल्प है, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अवीत स्पर्शन सब लोक कहा है। परन्तु तिर्यद्धायुका बन्ध करनेवाले अनन्त जीव होते हैं और ये वर्तमानमें भी सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का दोनों प्रकारका स्पर्शन सब लोक कहा है।

३५८. पञ्चोन्द्रयद्विकमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रासातावेदनीय, मिध्यात्व सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चात्यानु-पूर्वी, उपधात, श्रास्थर श्रादि पाँच नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठवटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम तेरह वटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू श्रीर सख लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुक्तप्रवृत्कि, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, श्रुभ श्रीर निर्माणके चत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजू श्रीर सब लोक है। स्रीवेद, पुरुषवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, श्रश्रशस्त विहायो-

१. श्रा॰ प्रतौ मसुभाउ॰ श्रसु॰ इति पाठः।

हस्स-रिद उ० अणु० श्रष्ट चो० सन्बलो० | दोआउ०-तिण्णिजा०-आहारदु० उ० अणु० खेत्त० | दोआउ०-तित्थ० उ० खेत्त०, [अणु०] अह चो० | णिरय० णिर्-याणु० उ० अणु० छचो० | मणुस०--मणुसाणु०--आदाव०--उचा० [उ०] अणु ० अह० । देवग०--देवाणु० ओघं । एइंदि०--थावर० उ० अह--णव०, अणु० अह० सन्बलो० | पंचिदि०-समचदु०-पसत्थवि०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे० उ० खेत्त०, अणु० श्रष्ट-वारह० | ओरा० उ० अह, अणु० श्रष्ट० सन्बलो० | वेचन्वि०-वेजन्बि०- श्रंगो० ओघं | ओरालि० श्रंगो०-क्जिरि० उ० अह०, अणु० श्रष्ट--वारह० | उज्जो०-वादर०-जस० उ० खेत०, अणु० अह--तेरह० | सुहुम-अपज्जत्त--साधार० उ० अणु० लो० श्रसंखेज्वदि० सन्बलो० | एवं पंचिदियभंगो तस०--तसपज्जत्त०--पंचमण०--पंचविव०-चक्खु०-सिण्णि ति |

गति स्रोर दुःस्वरके उत्कृष्ट स्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम अाठ बटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम बारह बटे चौदह राजू त्रेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य श्रीर रतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रतुत्कृष्ट श्रतुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और आहारकद्विकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। दो आयु और तीर्थंद्वरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवॉक। स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति छोर नरकगत्यानुपूर्वीके उत्क्रष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुशमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, आतप और उचगोत्रके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुशमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति श्रीर देवगत्यातुपूर्वीका भङ्ग श्रोघके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्राठ बटे चौदह राजु त्र्योर इंड कम नौ वटे चौदह राज़ूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्चोन्द्रिय-जाति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस, सुभग, सुस्थर और आदेयके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम बारह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रीदारिक-शरीरके उत्कृष्ट त्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम त्राठ बटे चीदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुस्कृष्ट अनुसामके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशारीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गका भङ्ग ओयके समान है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग भीर वजर्षभनाराचसंहननके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है स्त्रीर स्रमुत्कृष्ट स्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर श्रीर यशःकंतिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आट वटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूचम, अपर्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवो ने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पक्कोन्द्रिय जीवो के समान त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचो मनोयोगी, पाँचो वचन-

रे. ता॰ ऋा॰ प्रत्योः स्वादाउजो॰ ऋग्नु० इति पाठः ।

योगी, चज्जदर्शनी और संझी जीवों के जानना चाहिए।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन जिस प्रकार श्रोधमें स्पष्ट कर श्राये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए । तथा पक्कोन्द्रयद्विकका वेदनादि की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिककी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है. इसलिए इन प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार सातावेदनीय श्रीदिके त्रानुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ! मात्र यहाँ सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन उपपादपदकी अपेक्षा कहना चाहिए। स्नीवेद आदिके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका श्रोघसे जैसा स्पष्टीकरण किया है, उसी प्रकार यहाँ पर उत्कृष्ट श्रौर श्रमुत्ऋष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंकी अपेक्षा कर लेना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारगान्तिक समुद्र्वात करते हैं उनके भी हास्यद्विकका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सर्व लोकप्रमाण कहा है। तिर्यंख्रायु, मनुष्यायु और तीर्थंद्वर प्रकृतिके अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध देवोंके कुछ कम श्राठ बटे चौदह राज़ूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करते समय भी सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इनके श्र<u>ानुस्तृष्</u>ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ बटे चौद्ह राजूपमाए कहा है। जो नीचे नारिकयोंमें मारिए।न्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विक्ते उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुभागका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। देवोंके विहासदिके समय मनुष्यमति आदिका उत्हृष्ट अनुभागदन्य भी सम्भव है इसलिए इनके उत्कृष्ट ऋौर ऋनुत्कृष्ट ऋनुभागके बन्धक जीवें।का स्पर्शन कुछ कम ऋाठ बढे चौहह राजुप्रमाण कहा है। जो देव ऊपर त्रसनालीके भीतर एक्केन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्रुधात करते हैं उनके भी एकेन्द्रियजाति और स्थावरका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवेंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौद्द राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु कहा है। तथा सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवो के भी इनका बन्ध सम्भव है, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवेंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोक कहा है। देवेांके विहारादिके समय और नीचे व ऊपर कुछ कम छह छह राजू प्रमाण चेत्रके भीतर समचतुरस्र श्रादिका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके श्रनुतकृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है। विहारादिके समय देवेंकि श्रोदारिक शरीरका उत्कृष्ट ऋनुमागबन्ध सम्भव है. इसलिए इसके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवेका कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजूपमाण स्पर्शन कहा है। तथा इसका सब एकेन्द्रियोंमें समुद्र्यात करनेवाले जीव भी बन्ध करते हैं, अतः इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवेका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौरह राजू और सब लोकप्रमाण कहा है। विहार।दिके समय देवें के श्रीदारिक आङ्गोपाङ्ग श्रीर वश्रर्वभनाराच संहननका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सन्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवेंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवेंका स्पष्टीकरण स्वीवेदके समान कर लेना चाहिए। उद्योत आदिका देवें के विहारादिके समय और ऊपर सात राजु व नीचे छह राजूके भीतर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू-प्रमाण कहा है। पद्धान्द्रियद्विकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और मारणान्तिक समुद्घात की अपेत्रा सब लोक प्रमाण स्पर्शन सम्भव है तथा ऐसी अवस्थामें सूदमादि प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभाग*ान*ध हो सकता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रौर श्रनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके श्रसंच्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है।

३५६. पुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस-ग्रसादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंदसंठा०--अप्पसत्य०४-तिरिक्खाणु०--उप०-थावरादि०४-अथिरादि-पंच०-णीचा०-पंचंत० उ० लो० असं० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। सेसाणं उ० लो० असं०, अणु० सव्वलो०। णवरि मणुसाउ० तिरिक्खोघं।

्रेह्०. बादरपुढ०--आउ० पंचणाणावरणादीणं थावरपगदीणं पुढविभंगो । सादा०--ओरा०--तेजा०-क०-पसत्थ०४--अगु०३-पज्जत्त-पत्ते०-थिर--सुभ-णिमि० उ० खेत्त०, अणु० सव्वत्तो०। उज्जो०-बादर०-जस० उ० खेत्त०, अणु० सत्त चोँ६०। सेसाणं उ० अणु० खेत्तभंगो।

श्चागे त्रस श्चादि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें पश्चोन्द्रियोंकी ही प्रधानता है, श्रतएव उनकी प्ररूपणा पश्चोन्द्रियद्विक्रके समान जाननेकी सूचना की है।

३५६. प्रिथवीकायिक ख्रीर जलकायिक जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, ख्रसाता-वेदनीय, मिण्यात्व, सोलह क्याय, सात नोकवाय, तिर्यक्चगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अय-रास्त वर्णंचतुष्क, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र क्यार पाँच कारतरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भक्न सामान्य तिर्यक्षोंके समान है।

विशेषार्थ —यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध बादर पर्याप्त जीव करते हैं, किन्तु इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातर्थ भागप्रमाण और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेला सर्व लोक है। इन दोनों अवस्थाओं में पाँच ज्ञानावरणादि का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इस अपेलासे लोकके असंख्यातर्वे भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सर्वत्र सम्भव है, क्योंकि पृथिबीकायिक और जलकायिक जीव सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध एक तो मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता, जिनका होता भी है वे द्वीन्द्रियादि तिर्यक्ष और मनुष्य सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ मनुष्याय का भक्त सामान्य तिर्यक्षोंके समान कहनेका कारण यह है कि इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। सामान्य तिर्यक्षोंके यह इतना ही बतलाया है।

३६०. बाद्र पृथिवीकायिक और वाद्र जलकायिक जीवोंमें पाँच झानावरण आदि और स्थावर प्रकृतियों का भक्क पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके सर्वतोकका स्पर्शन किया है। उद्योत, बाद्र और यशःकीर्ति के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके

१. ता॰ प्रतौ सासावरसादोर्स पुदविभंगो इति पाठः।

३६१. बादरपुढ०-आउ०अपज्जत्तएसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०--मिच्छ०सोलसक०-सत्तणोक०--तिरि०--एइंदि०--हुंड०संठा०--अपस०४-तिरिक्खाणु०-उप०श्वावरादि०४-अधिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० उ० अणु० सव्वलो० । सादा०-ओरा०तेजा०--क०--पसत्थव०४--अगु०३---पज्जत्त--पत्ते०--धिर--सुभ--णिमि० उ० खेत्त०,
अणु० सव्वलो० । उज्जो०-वादर०-जस० उ० खेत्त०, अणु० सत्त चो० । सेसाणं उ०
अणु० खेत्तभंगो । एवं वादरवणप्पदि-पज्जत्तापज्जत-बादरणियोदपज्जत्तापज्जत-बादरपत्ते०अपज्जत्तगाणं च । तेउ० पुढवि०भंगो । वाऊणं पि तं चेव । णविर जिम्ह लोग०
असंखे० तिम्ह लोग० संखेंज्जं कादव्वं । वणप्पदि-णियोद० णाणावरणादीणं थावरपगदीणं उ० अणु० सव्वलो० । सेसाणं उ० खेत्त०, अणु० सव्वलो० । मणुसाउ०
एइंदियभंगो ।

स्पर्शन चेत्रके समान तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजु है। रोष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुरकृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

३६१. बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त और बादर जलकायिक अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञाना-बरण, नी दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकवाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियज्ञाति, हण्डसंस्थान, ऋप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्जगत्यातुपूर्वी, उपघात, स्थावर ऋादि चार, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, ऋगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ ऋौर निर्माणके उत्कृष्ट श्चनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है श्रौर श्रमुख्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । उग्रोत, बादर श्रीर यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार बादर वनस्पतिकाथिक श्रौर उनके पर्याप्त श्रीर अपर्यात, बादर निगीद श्रीर उनके पर्यात श्रीर अपर्यात तथा बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक श्चपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। अग्निकायिक जीवोंका भङ्ग पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। वायुकायिक जीवोंका भी इसी प्रकार भन्न है। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, वहाँ पर लोकके संख्यातचें भागप्रमाण करना चाहिए। वनस्पतिकायिक खौर निगोद जीवोंमें ज्ञानावरणादि स्थावर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा शेष प्रकृतियोंके उस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मात्र मनुष्यायका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—पहले एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें स्पर्शनका स्पष्टीकरण किया है। उसे देखकर यहाँ भी उसे घटित कर लेना चाहिए। मात्र यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन एक मात्र सर्व लोक कहा है सो वर्तमान स्पर्शनकी अविवसासे ही ऐसा कहा है, इसना यहाँ विशेष जानना चाहिए। तथा इन जीवोंमें उद्योत, बादर और यशस्कीर्तिका बन्ध करनेवाले जीव त्रसनालीके भीतर उत्तर सात राजू तक ही मारणान्तिक

१. ता • प्रतौ सासावरसादीसं उ॰ इति पाठः ।

३६२, कायजोगि०-कोधादि०४—अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ओघभंगो।
ओरालि० खड्गाणं उ० मणुसभंगो। श्रणु० सेसाणं च उ० श्रणु० तिरिक्खोधं।
ओरालियमि० पंचणा०-णवदंसणा०-श्रमादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-एइंदि०हुंद्द०-अप्पसत्य०४-तिरिक्खाणु०--उप०-धावरादि४-अधिरादिपंच०--णीचा०-पंचंत०
उ० लो० श्रसंखें० सव्वलो०, अणु० सव्वलो०। सेसाणं उ० खेंत०, श्रणु० सव्वलो०।
मणुसाउ० तिरिक्खोधं।

३६३. वेडब्बि० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरि०-हुंदै०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० ७० अणु० अद्व-तेरह० । सादा०--श्रोरा०--तेजा०--क०-पसत्थ०४- अग्रु०३--बादर-पज्जत--पत्ते०-थिरादितिण्णि-णिमि० उ० अद्वचेरॅ०, श्रणु० अद्व-तेरह० । इत्थि०--पुरिस०--चदुसंठा०

समुद्घात करते हैं, इसलिए इनके श्रतुःख्रष्ट श्रतुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६२. काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, श्रचलुदरीनी, भव्य श्रीर श्राहारक जीवोंमें श्रोघके समान मङ्ग है। श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें लायिक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका मङ्ग मनुष्योंके समान है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक श्रीर शेप प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग सामान्य तिर्यश्रोंके समान है। श्रीदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच श्रानावरण, नी दर्शनावरण, श्रासाववेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कथाय, सात नोकषाय, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचनुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर श्रादि चार, श्रस्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन के सन्धन जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन के सन्धन जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यपुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्षोंके समान है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य संज्ञी पश्चोन्द्रिय तिर्येश्च और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और ये जीव सब लोकमें मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाये जाते हैं, इसलिए यह स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३६३. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रमातावेदनीय, मिण्यात्व, सोलह क्षाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, श्रस्थिर धादि पाँच, नीचगोत्र श्रौर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रौर श्रमुख्य अनुस्माण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रौदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर श्रादि तीन श्रौर निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रौर अनुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रौर अनुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रौर

१. ऋा॰ प्रतौ लो॰ ऋसंखे॰ सब्बलो॰ सेसाग् इति पाठः । २. ता॰ ऋा॰ प्रत्योः तिरि॰ एइंदि॰ हुंड॰ इति पाठः ।

पंचसंघ०--अप्पसत्थ०--दुस्सर० उ० अणु० श्रह-बारह० | दोश्राउ०--मणुस०३--आदा०-तित्थ० उ० श्रणु० अह० | एइंदि०-धावर० उ० अणु० अह-णव० | पंचि०-समचदु०-त्रोरालि०श्रंगो०-वज्जरिस०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदे० उ० अह०, श्रणु० अह-बारह० | उज्जो० उ० खेंत्तभंगो, अणु० अह तेरह० ।

३६४. वेडव्वियमि०-आहार०-आहारमि० खेँत्तभंगो । कम्मइय० पंचणा०-

चौदह राज्यभाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरके वर्छ्छ और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगतित्रिक, आतप और तीर्थङ्करके उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरके उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। एखेन्द्रियजाति, समचनुरस्त्रसंस्थान, औदारिक शरीर आङ्गोपाङ्ग, वर्ञ्चभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगित, त्रस, सुभग, सुस्वर और आदियके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन कुछ कम त्राह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्क्रष्ट श्चनुभागबन्ध मारणान्तिकके समय सम्भव न होनेसे इनके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु कहा है। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए। स्त्रीवेद आदि एकेन्द्रियजाति सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छ।ठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजू कहा है। कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन तिर्यक्रोंमें देवों श्रीर नारिकयोंका समुद्धात कराके ले स्राना चाहिए। दो स्रायु स्रोदिके उत्कृष्ट स्रौर स्रनुत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण है, यह स्पष्ट ही है। जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनका स्पर्शन कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण उपलब्ध होता है स्त्रौर एकेन्द्रियज्ञाति तथा स्थावरका मारणान्तिक समुद्धातके समय उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए यहाँ इनके उत्कृष्ट श्रीर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ बटे बोदह राजु श्रोर कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पक्रोन्द्रियजाति श्रादिका श्रोर सब विचार स्त्रीवेददण्डकके समान है। मात्र मारणान्तिक समुद्घातके समय इनका उत्कृष्ट श्रानुभागबन्ध नहीं होता, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन मात्र कुछ कम ष्टाठ बटे चौदह राज्यमाण कहा है। उद्योतका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध सातर्वे नरकके नारकीके सम्यक्तके अभिमुख होने पर होता है, इसलिए इसके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुशमाण कहा है।

३६४. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, श्राहारककाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें

णवदंस०-असादाँ०-मिच्छ०-सोलसक०--णवणोक०--तिरिक्ख०-पंचसंठा०-चदुरैसंघ०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०--अधिरादिपंचै०-णीचा०-पंचंत० उ० बारह०, अणु० सब्बलो० । सादा०-पंचि०-तेजा०--क०-समचदु०--पसत्थव०४-अगु०३-पसत्थव०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उचा० उ० छ०, अणु० सब्बलो०। मणुसगदिपंचग० उ० अणु० तं चेव । देवगदिपंचग० खेंत्तभंगो। [एइंदिय०-थावर० उ० दिवहृचोंद्दस०, अणु० सब्बलो०। असंप०-श्रप्पसत्थ०-दुस्सर० उ० प्कारस०, अणु० सब्बलो०।] तिण्णिजादि-आदाउज्जो०-सुद्धम-अपज्ञ०-साधार० उ० खेंन्मभं०, अणु० सब्बलो०।

चेत्रके समान भक्क है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यक्रमाति, पाँच संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, उपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजू चेत्रका स्परीन किया है स्रोर अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, पञ्चोन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उचगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है खौर अनुस्कृष्ट अनुभागके बम्धक जीवोंने सब लोक प्रमास चेत्रको स्पर्शन किया है। मनुष्यगतिपञ्चकके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पूर्वोक्त ही है। देवगतिपञ्चकका सङ्ग चेत्रके समान है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने डेढ् बटे चौदह राजुप्रमाण् चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है । श्रसम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, श्रवशस्त विहायोगति श्रौर दुःस्वरके स्टकुष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम म्यारह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तीन जाति, आतप, उद्योत, सूर्म, श्रपर्याप्त और साधारएके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रतभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाए चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी बीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भग्गप्रमाण हैं, इसलिए इन मार्गणाओं में सब स्पर्शन लेकके समान कहा है। जो चारों गित के संझी पख्ने न्ट्रिय जीव कार्मणकाययोगी होते हैं, उनके पाँच झानावरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है और कार्मणकाययोगका स्पर्शन सब लोक हैं, इसलिए इनके अनुत्रुष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। सम्यग्दृष्टि कार्मणकाययोगी जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण होनेसे सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। इनके अनुत्रुष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। मनुष्यगतिपञ्चक का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्यग्दृष्टि देव और नारकी करते हैं, इसलिए इनका मङ्ग सातावेदनीयके समान ही कहा है। देवगतिचतुष्कका सम्यग्दृष्टि तिर्येक्च और मनुष्य तथा तीर्येक्टर का तीन गतिके सम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं। तथा देवगतिचतुष्कका बन्ध असंझी आदि और तीर्थक्टर प्रकृतिका तीन गतिके संझी जीव बन्ध करते हैं। ऐसे जीवोंका यह

१. ता॰ त्रतौ पंचया॰ त्रसादा॰ इति पाठः। २. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः पंचरंघ॰ इति पाठः। १. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः उप॰ ऋष्यस्य॰ ऋथिरादिपंच॰ इति पाठः।

३६५. इत्थिवे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०हुंड०-अप्पसत्थ०४-उप०-अधिरादिपंच०--णीचा०-पंचंत० उ० अह-तेरह०, अणु०
अहचाँ० सव्वलो०। सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--पज्ज०-पन्ते०-धिर-सुभणिमि० उ० खेँनभंगो, अणु० अह० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-मणुस०-चहुसंठा०ओरा०अंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु ०-आदाव० उ० अणु० अह०। हस्स-रिद उ० अणु०
अह० सव्वलो०। दोआउ०-तिण्णिजादि-आहारहुग-तित्थय० उक्क० अणु० खेँनभंगो। दोआउ०-समचदु०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उक्चा० उ० खेँनभंगो, अणु०
अह०। णिरयगदिदुग० उ० अणु० इक्वाँ०। तिरि०-एइंदि०-तिरिक्खाणु०-थावर०
उ० अह-णव०, अणु० अह० सव्वलो०। देवगदिदुग० उ० खेँन०, अणु० इक्वाँ०।

स्पर्शनका विचार करते हैं तो वह सब चेत्रके समान ही प्राप्त होता है, इसलिए इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। एकेन्द्रियजाति और स्थावरका उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है, यह स्पष्ट ही है। अम्प्राप्तास्पाटिकासंहनन आदि तीन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध नारकी और सहस्रार करूप तकके देव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सारकी और सहस्रार करूप तकके देव करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन नीचे छह और उत्पर पाँच इस प्रकार कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूपमाण कहा है और इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पूर्ववत् सब लोक कहा है। तीन जाति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका को स्पर्शन कहा है। तीन जाति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका ले कहा है। तीन जाति आदिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका ले स्पर्शन कहा है। ही।

३६५. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसासावेदनीय, मिथ्यास्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुक्क, डपघात, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र ऋौर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुपवेद, मनुष्यगति, चार संस्थान, श्रौदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर श्रातपके उत्कृष्ट स्रीर अनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रतिके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम स्राठ बटे चौदह राजू स्रोर सब लीकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो ऋायु, तीन जाति, आहारकद्विक श्रीर तीर्थङ्करके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्तेत्रके समान है। दो त्रायु, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय स्रोर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है स्त्रीर अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगतिद्विकके उत्कृष्ट खौर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यक्रगति, एकेन्द्रियजाति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी श्रौर स्थावरके डस्कृष्ट श्रौर श्रनुस्कृष्ट

१. गा॰ प्रती भगुसाउ॰ इति पाठः ।

पंचिं ०-तस० उ० खेँ त०, अणु० अह-बारह० । श्रोरालि० उ० अह०, अणु० अहचोँ० सम्बलो०। वेडिव्बि०-वेडिव्बि० श्रंगो० उ० खेँ त०, अणु० बारह० । उद्धो०-जस० उ० खेँ त०, अणु० अह-णव० । णविर उद्धो० उ० अह० । अप्पस०-दुस्सर० उ० छ०, अणु० अह-बारह० । बादर० उ० खेँ त०, अणु० अह-तेरह० । सहुम०-अपद्धा०-साधार० उ० अणु० लो० असं० सम्बलो० । एवं पुरिसेस । णविर तित्थ० उ० अणु० ओगं।

श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूपमाए वेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुमागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजु श्रीर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्परान किया है। देवगतिद्विकके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और ऋतुत्कृष्ट ऋतुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्जोन्द्रयजाति श्रीर त्रसके उत्कृष्ट श्रनुभाग के बन्धक जीवोंका स्पर्शन चैत्रके समान है। ऋतुरुष्ठष्ट ऋनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ऋाठ बटे चौदह राजू ऋौर कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्परीन किया है। औदारिकशरीरके उत्कृष्ट अनुभाग के बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ घटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर श्रीर वैकियिकश्राङ्गोप।ङ्गके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन त्रेत्रके समान है ऋौर श्रमुत्कष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम वारह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशस्कीर्तिके उत्कृष्ट ऋनुभागके बत्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि उद्योतके उत्कृष्ट ऋतु-भागके बन्धक जीवोंने कुछ कम अ।ठ वटे चौदह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रशस्त विहायोगति स्रोर दुःस्वरके उत्कृष्ट स्रतुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाए। चेत्रका स्पर्शन किया है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजू श्रीर कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वादरके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूक्म, अप-र्याप्त और साधारणके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तीर्थंद्धर प्रकृतिके उत्कृष्ट और श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन श्रोघके समान है ।

विशेषार्थ—देवियाँ विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाए चेत्रका स्पर्शन करती हैं। यद्यपि पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी और मनुष्यिनी मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सब लोक चेत्रका स्पर्शन करती हैं, परन्तु पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट वन्धके समय यदि मारणान्तिक समुद्घात होता है,तो वह अस नालीके भोतर नीचे छह राजु और उत्पर सात राजु इस प्रकार छछ कम तेरह बटे चौदह राजु प्रमाण ही होता है। यही सब देखकर यहाँ इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। स्पर्शनका उक्त विधिसे निर्देश मूलमें ही किया है। सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिकं अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिकं अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन को तिर्यञ्चगति आदि तीनमें उत्पन्न होते हैं, उन्हींके खीवेद आदिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग बन्ध सम्भव है और ऐसे खीवेदी जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण होता है,

इसलिए स्त्रीवेद आदिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोका स्पर्शन कुछ कम साठ बटे चौदह र।जूपमाण कहा है। जो सर्वत्र एकेन्द्रियोंमें भी उत्पन्न होते हैं, उनके भी हास्य स्रौर रतिका बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रीर श्रतुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्धन कुछ कम अ।ठ बटे चौदह राजुप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं उनके दो त्रायु और समचतुरस्त्र संस्थान ब्रादि प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बढे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं उनके भी नरकगतिद्विकका दोनों प्रकार का श्रमुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका स्परांन कुछ कम छह राजुशमाण कहा है। यद्यपि स्त्रियौँ छठे नरक तक ही जाती हैं,ऐसा श्रागम-वचन है, पर यह नियम योनि-कुचवाली स्त्रियों के लिए ही है। जिनके स्त्रीवेदका उदय है स्त्रीर जो योनि-कुचवाली नहीं हैं अर्थात् जो स्त्रीवेदके उदयके साथ द्रव्यसे पुरुष हैं, उनका गमन सातवें नरक तक सम्भव है,यह इस स्पर्शन नियमसे सिद्ध होता है। इतना ही नहीं, इससे द्रव्यवेद और भाववेदका जो वैषम्य माना जाता है, उसकी भी सिद्धि होती है। जो त्रसनालीके भीतर उपर एकेन्द्रियोंमें समुद्धात करते हैं, उनके भी तिर्यञ्जगति ऋषिका उत्कृष्ट ऋनुभागवन्य सम्भव है; इसलिए इनके उत्क्रष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौरह राजू और कुछ कम नौ वटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। तथा इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्बक जीवोंके स्पर्शनका स्पष्टीकरण पाँच ज्ञानावरण आदिके समान कर लेना चाहिए। जो तिर्यक्क और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात कर रहे हैं, उनके भी देवगतिष्ठिकका अनुस्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। जो नीचे छह ऋौर उत्पर छह इस प्रकार छुछ कम बारह राजूप्रमाण चेत्रका मारणान्तिक समुद्धातके समय स्पर्धन कर रहे हैं, उनके भी पञ्चीन्द्रियजाति और त्रसप्रकृतिका श्रमुत्कृष्ट श्रमु-भागबन्ध होता है, इसलिए इनके अर्नुऋष्ट अनुभागक बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम वारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके श्रीदारिकशारीरका उत्कृष्ट श्रीतुभागवन्ध नहीं होता, इसजिए इसके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण कहा है। परन्तु एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय इसका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान कहा है। जो देवों श्रीर नारिकयोंमें मारग्गान्तिक समुद्**घात करते हैं उन मनुष्य श्रीर तिर्य**क्कोंके वैकियिकद्विकका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्परीन किया है। जो एकेन्द्रियोंमें त्रसनालीके भीतर समुद्धात करते हैं, उनके उद्योत और यशस्कीर्तिका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके अनु-त्कुष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र उद्योतका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध तत्यायोग्य तियँक्क स्नादि तीन गतिके जीव करते हैं, इसलिए इसके उत्कृष्ट ऋनुमागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जो नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्यात करते हैं, उनके भी श्रप्रशस्त विहायोगति श्रौर दुःस्वरका उत्कृष्ट श्रतुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रतुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। तथा इनके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन पश्चीन्द्रियजातिके समान घटित कर लेना चाहिए। जो नीचे छह श्रीर ऊपर सात इस प्रकार कुछ कम तेरह राजुका मारणान्तिक समुद्वातके समय स्वर्शन करते हैं उनके भी धादर प्रकृति का बन्ध होता है, इसलिए इसके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ ३६६. णबुंसग० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोकै०तिरिक्ख०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अधिरादिछ०-णीचाँ०-पंचंत० उ० छचोँ०, अणु० सन्वलो०। सादा०-तिरिक्खाजग०-मणुस०
चढुजा०-ओरा०-तेजा०-क०-समचढु०-द्योरा०द्यंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०अगु०३-आदाउ०-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०--उचा० उ० खेँत०, अणु०
सन्वलो०।[इस्स-रदि० उ० छचोँ० सन्वलो०,अणु० सन्वलो०।] दोआउ०-वेजन्वियछ०-आहारदुगं ओघं। मणुसाउ० तिरिक्खोघो। [एइंदिय-थावरादि४ तिरिक्खोघं।]
तित्थय० इत्थिभंगो।

कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तरह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो तिर्विश्व और मनुष्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी सूदमादिका उत्कृष्ट ख्रोर अनुत्कृष्ट अनुभागकन होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकने असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। पुरुषवेदी जीवोंमें भी यह स्पर्शन प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनमें खीवेदी जीवोंके समान कहा है। मात्र तीर्थं दूर प्रकृतिकी अपेका कुछ विशेषता है। बात यह है कि पुरुषवेदी देव भी तीर्थं दूर प्रकृतिका बन्ध करते हैं और इनका विद्यादिकी अपेका स्पर्शन इछ कम आठ बटे चौदह राजू होनेसे पुरुषवेदी जीवोंके तीर्थं दूर प्रकृतिका अपेका यह स्पर्शन भी पाया जाता है। इसलिए यह स्पर्शन कोघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ह्यानावरण, नौ दर्शनावरण, ऋसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कथाय, सात नोकषाय, तियञ्चगित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्धाचतुष्क, तियंक्वगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने छछ कम छह घटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, औदारिकशारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्ससंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वअर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगरायानुपूर्वी, अगुरुज्ञघुत्रिक, श्रातप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। हास्य और रितके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, वैकियिक छह और आहारकदिकका भङ्ग ओधके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्वोंके समान है। एकेन्द्रियजाति और स्थावर आदि चारका भङ्ग सामान्य तिर्यक्वोंके समान है। तिर्यक्वोंके समान है। स्वत्वांवदी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—नपुंसककोंमें तीन गतिके संज्ञी पश्चोन्द्रिय जीव प्रथम दण्टकमें कही गईं प्रकृतियोंका उत्ऋष्ट अनुभागबन्ध करते हैं। इनका अतीत स्पर्शन उत्ऋष्ट या तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट परिणामोंके समय कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके उत्ऋष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा नपुंसकवेदी सब लोकमें पाये जाते

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः सोलसकः पंचणीकः इति पाठः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः अधिगदिपंच ग्रीचुचा॰ इति पाठः ।

३६७. मदि०--सुद० ओघं। णवरि देवगदिदुगंड० खेँत०, अणु० पंच चोँद०। वेउव्वि०-वेउव्वि०द्यंगो० उ० खेँत्तभंगो, अणु० ऍक्कारह०। विभैंगे० पंचिदियमंगो। णवरि देवगदिचदुक्क० मदि०भंगो।

३६८. श्राभिणि-सुद०-ओधि० पंचणा०--छदंसणा०-असादा०-वारसक०-सत्त-णोक०-मणुसगदिपंच०-अप्पसत्थ०४-उप०-अधिर-असुभ--अजस०-पंचंत० उ० अणु० अह० । एवं मणुसाउ० । सादा०-पंचि०--तेजा०-क०-समचहु०-पसत्थ०४-अगु०३--

हैं, इसलिए इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके अनुस्कृष्टके समान सातावेदनीय आदि, हास्य, रित और एकेन्द्रियजाित आदिके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक प्रमाण स्पर्शन जान लेना चाहिए। सातावेदनीय आदिके उस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान हैं, यह स्पष्ट ही है। हास्य और रितका उस्कृष्ट अनुभागक बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान हैं, यह स्पष्ट ही है। हास्य और रितका उस्कृष्ट अनुभागक नारिकयोंके तिर्यक्कों और मनुष्योंके एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करने के समय भी होता है। इसी प्रकार तिर्यक्कों और मनुष्योंके नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी जानना चाहिए, इसलिए इन प्रकृतियोंके उस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। एकेन्द्रिय जाति आदिका उस्कृष्ट अनुभागकच संज्ञी पक्कोन्द्रिय तिर्यक्क और मनुष्य तो करते ही हैं, साथ ही ये जब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं तब भी होता है, इसलिए इनके उस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यक्कोंके समान कहा है। रोष कथन सुगम है।

३६७. मत्यज्ञानी स्रोर श्रुताज्ञानी जीवोंमें स्रोघके समान स्पर्शन है। इतनी विशेषता है कि देवगतिद्धिक के उत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेन्नके समान है। तथा श्रनुत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूरमाण है। बैकियिकशरीर स्रोर चैकियिकश्राङ्गीपाङ्गके उत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेन्नके समान है स्रोर श्रनुत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूरमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। विभङ्गज्ञानी जीवोंमें पश्चोन्द्रियोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिचतुष्कका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—जो मिण्यादृष्टि तिर्यक्ष और मनुष्य बारहवें करूप तक समुद्घात करते हैं उनके देवगतिद्विकका बन्ध होता है। यद्यपि मनुष्य मिण्यादृष्टि नौवें मैनेयक तक उत्पन्न होते हैं पर उससे इस स्पर्शनमें अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उनका प्रमाण संख्यात है और ऐसे जीवोंका कुल स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए यहाँ देवगतिद्विकके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा विकियिकिद्विकका नीचे छह राजू और उत्पर पाँच राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके बन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६८. श्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर श्रवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, श्रमतावेदनीय, बारह कषाय, सात नोकपाय, सनुष्यगति पञ्चक, श्रप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, उपधात, श्रस्थिर, श्रशुम, अयशाःकीर्ति श्रीर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्यायुकी अपेक्षासे स्पर्शन जानना चाहिए। सातावेदनीय, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, तेजसशरीर, कार्मण-

पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उ० खेँत्तभं०, अणु० ब्रह०। देवाउ०-आहारदुगं खोघं। देवगदि०४ उ० खेँत्त०, अणु० छ०। एवं ओधिदंस०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णविर खइग०-उवसम०-सम्मामिच्छा० देवग०४ खेँतभंगो। उवसम० तित्थय० खेँतभंगो।

३६६. अवगद०-मणपज्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसंप० खेँत-भंगो । संजदासंज० हस्स-रिद० ड० अणु० छ० । देवाउ० तित्थय० उ० अणु० खेँत० । सेसाणं ड० खेँत्त०, अणु० छचोँ० । असंजद० ओघं ।

शारीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्ण्यतुष्क, अगुरुलघुन्निक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंह्वर और उचगोत्रका भङ्ग चेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने छुछ कम आठ बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकिहिकका भङ्ग ओवके समान है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने छुछ कम छह घटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मध्यादृष्टि जीवोंके क्षत्रके समान है।

विशेषार्थं—पाँच ज्ञानायरणादिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भिध्यात्वके अभिमुख हुए चारों गितके जीन करते हैं। उसमें भी हास्य और रितका तरप्रायोग्य संक्लेश परिणामोंसे स्वस्थानमें और मनुष्यगिपञ्चकका देव और नारकी जीव उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करते हैं। इनमेंसे तीन गित के जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और देवोंका कुछ कम आठ वटे चौदह राजू-प्रमाण होता है। सब मिलाकर यह स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण हो है, इसलिए यहाँ इतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है और इसी कारणसे इनके तथा सातावेदनीय आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। सम्यन्दृष्टि तिर्यं अभेर मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्धानके समय कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन करते हैं। इसलिए देवगित चतुष्कके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्तप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है। यहाँ अवधिद्शीनी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्रस्त्तणा अविकत घटित हो जाती हैं, इसलिए उनके कथनको आमिनिशोधिकज्ञानी आदिके समान कहा है। मात्र चायिकसम्यग्दृष्टि आदि तीन मार्गणाओंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता हैं, इसलिए इनमें देवगित चतुष्कका भङ्ग चेत्रके समान कहा है। उपशासम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। उपशासम्यग्दृष्टियोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका स्पर्शन चेत्रके समान कहाने भा यही कारण है।

३६६. अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत और सूरमसाम्परायसंयत जीवोंमें चेत्रके समान भङ्ग है। संयतासंयत जीवोंमें हास्य और रितके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देव।युके उत्कृष्ट और अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुतकृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। असंयत जीवोंमें ओधके समान मङ्ग है। ३७०. किण्णै०-णील०--काउ० पंचणा०--णवदंस०--श्रसादा०-भिच्छ०-सोलस-क०--सत्तणोक०--तिरिक्ख०--पंचसंठा०--पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०-अप्पसत्थ०-श्रथरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उ० छचौँ० चतारि-वेचौँ६०, अणु० सञ्चलो०। सादा०-तिरिक्खाउ०-मणुसग०--चढुजा०-ओरा०-तेजा०--क०-समचदु०-ओरा०श्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४--मणुसाणु०--अगु० ३--आदाउ०--पसत्थ०--तस०४-थिरादिछ०--णिभि०-उचा० उ० खेँत्रमंगो। अणु० सञ्चलो०। हस्स-रदि-एइंदि०-थावरादि०४ उ० लो० असंखे० सञ्चलो०, अणु० सञ्चलो०। णवरि-णील-काऊणं हस्स-रदि० श्रसादभंगो। [णिरयाउ-] देवाउ०-देवगदि० [२-] तित्थ० खेँत्रमंगो। मणुसाउ० णवुं-सगभंगो। णिरय०-णिरयाणु० उ० अणु० झ-चत्तारि-वेचौँ६०। वेजिव्ब०-वेजिव०- श्रंगो० उ० खेँत्रभंगो। अणु० झ-चत्तारि-वेचौँ६०।

विशेषार्थ—संयतासंयत जीवोंका मारणान्तिक समुद्घातकी श्रपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन होता है। हास्यद्विकका उत्कृष्ट श्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य तथा देवायु श्रोर तीर्थंद्भर प्रकृतिके सिवा शेप प्रकृतियोंका श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्य ऐसी श्रवस्थामें सम्भव है, श्रतः हास्यद्विकके दोनों प्रकारके अनुभागके श्रोर शेष प्रकृतियोंके श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगंम है।

३७०. कृष्ण, नील और कापोतलेश्योमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्य, सोलह कवाय, सात नोकवाय, तिर्येख्वगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रवशास्त वर्णाचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपचात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्त-रायके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजु श्रीर इक कम दो वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रको स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तिर्यक्कायु,मनुष्यगति,चार जाति,श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर,कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रोदारिकश्राङ्गोपाझ, क्यार्पभ-नाराचंसंहनन, प्रशस्त वर्णाचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगित, असचतुष्क, स्थिर स्त्रादि छह, निर्माण और उच्चगान्नके उत्कृष्ट स्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक है। हास्य, रति, एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावर आदि चारके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोंकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि नील स्त्रीर कापीत लेश्यामें हास्य और रतिका भङ्ग असातावेदनीयके समान है। नरकाय, देवायु, देवगतिद्विक और तीर्थद्वर प्रकृतिका भङ्ग क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकश्रारीर और वैक्रियिकश्राङ्गोपाङ्गके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है ज्यौर अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ ाम दो बटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः असंबद् श्रोधं । चक्खु ॰ तसमंगो । किण्या ॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती इस्सर्गद ४ असादमंगो इति पाठः ।

३७१. तेऊए पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४- तिरिक्ख०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णीचा०पंचंत० उ० अणु० अह-णव० । सादा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जतपत्ते०-थिर-सुभ-जस०-णिमि० उ० खेँत्त०, अणु० अह-णव०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०मणुस०२-चदुसंठा ०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-आदा०-अप्पसत्थ०-दुस्सर्र० उ० अणु०

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागवन्धके स्वामीको देखनेसे बिदित होता है कि इन लेश्यास्त्रोंमें परस्पर तीन गतिके संज्ञी जीवोंमें मारणान्तिक समुद्रुपात करनेवाले जीवोंके यथायोग्य उक्त प्रकृष्ट अनुभागवन्य होता है और इस दृष्टिसे इन लेश्याओंका कमसे स्पर्शन कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो बटे चौदह राजूप्रमाण है, अतः यह स्परीन उक्त प्रमाण कहा है। तथा एकेन्द्रियोंके भी तीनों लेश्याएँ होती हैं, श्रतः इनके अनुत्कृष्ट श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है। सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट श्रानुभाग बन्ध सम्यम्दृष्टि जीवोंके होता है। मात्र तिर्यञ्चाय, त्रातप और उद्योत इसके अपवाद हैं सो इनका माराणान्तिक समुद्धातके समय बन्ध नहीं होता, श्रतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवींका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन ब्रानावरणादिके समान समक्ष लेवा चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी हास्य आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्य होता है, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण कहा है। इनके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ इतनी विशेषता है कि नील और कापोतलेश्यामें मारणान्तिक समुद्रवातके समय भी द्दास्य और रतिका नारकी जीव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इन दो प्रकृतियोंकी अपेचा असाता-वेदनीयके समान स्पर्शन बन जाता है। बैसे सामान्य नारिकयोंमें इन दो प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू बतला आये हैं।पर यहाँ कृष्ण लेह्यामें वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों रहने दिया गया है,यह अवश्य ही विचारणीय हैं। जो तिर्यंख्न स्त्रौर मनुष्य नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं, उनके नरकगतिद्विकका उत्कृष्ट ऋौर अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध सम्भव है,इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीबोंका स्पर्शन कुछ कम छह, कुछ कम चार श्रीर कुछ कम दो बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार चैक्रियिकद्विकके ऋतुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन भी घटित कर लेना चाहिए । शेष कथन सगम है।

३७१. पीत लेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रमातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह-कषाय, सात नोकषाय, तिर्यद्भगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, श्रमशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्भगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, श्रास्थिर श्रादि पाँच, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीयोंने कुछ कम बाठ बढे चौदह राजू श्रीर कुछ कम नौ बढे चौदह राजूशमाण चित्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुक्तवृत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, श्रुम, यशःकीर्ति श्रीर निर्माणके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बढे चौदह राजूश्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्रीवेद, पुरुष्वेद, दो श्रायु, मनुष्यगतिद्विक, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, श्रप्रशस्त हो श्रायु, मनुष्यगतिद्विक, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, श्रप्रशस्त

१. श्रा॰ प्रती छु-चत्तारि तेउए इति पाठः । २ ता॰ श्रा॰ प्रत्योः मसुस॰ ४ चतुसंठा॰ इति पाठः । ३ ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रप्यस्थ४ दुस्सर॰ इति पाठः ।

अहचोँ । देवाउ०-माहारदुर्ग ओघं । देवगदि०४ उ० खेँस०, ऋणु० दिवहृचोँह० । पंचि०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-तित्थप०-उचा० उ० खेँसभंगो । अणु० अणुभा० अह० । ओरा०--उज्जो० उ० अह चोँ०, अणु० अह-णर्व० । एवं पम्माए वि । णवरि ऋह चोँ० । देवगदि०४ अणु० पंच चोँ० ।

विद्दाबोगित और दुःस्वरके उत्कृष्ट और अनुक्तृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका मङ्ग श्रोधके समान है। देवगितचतुष्कके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। तथा अनुक्तृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पख्नोन्द्रिय जाति, समचतुरक्तसंस्थान, प्रशस्त विद्दायोगिति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थक्कर और उच्चगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है कौर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है कि इसमें कुछ कम आठ घढे चौद्द राजूपमाण स्पर्शन कदना चाहिए। तथा देवगितचतुक्कके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बढे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरणादि का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध ऐशान कस्पतकके देव करते हैं भौर मारणान्तिक समुद्घातके समय भी इनका बन्ध होता है, श्रतः इनके उत्कृष्ट श्रौर अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु कहा है। सातावेदनीय श्रादिका उत्कृष्ट श्रनुभागवन्ध श्रप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, श्रतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका चेत्रके समान स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार अन्य प्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट ऋतुभागवन्धके विषयमें जानना चाहिए। इनके अनुत्कृष्ट ऋनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान है,यह स्पष्ट ही है। जो देव एकेन्द्रियोंमें भारणान्तिक समु-द्वात करते हैं, उनके स्विवेद आदिका बन्ध नहीं होता, अतः इनके उत्क्रष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवायु और आहारकद्विक का भङ्ग श्रोधके समान है, यह स्पष्ट ही है। जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी देवगतिचतुष्कका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध होता है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुव्रमाण कहा है। जो देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं उनके पञ्चोन्द्रियजाति ऋादिका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनके स्रमुत्कृष्ट ऋनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौरह राज्यमाण कहा है। अौदारिकशरीरका सम्यग्दिध देव भौर उद्योतका तस्प्रायोग्य विशुद्ध देव उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इनके उत्कृष्ट अनु-भागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है और इनका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्ध मारगान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुमागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राज्य कहा है। पद्मलेश्यामें मरकर देव एछेन्द्रिय नहीं होता, इसलिए इसमें कुछ कम आठ बटे व नो बेटे चौदह राजूके स्थानमें केवल कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण स्पर्शन कहा है।

१. ऋा॰ मतौ॰ उचा॰ खेत्रमंगो इति पाठः। २. ता॰ प्रती ऋहचो॰ ऋहु-गाव॰ इति पाठः।

३७२. सुकाए पढमदंडओ उ० अणु० ब्रची०। खिवगाणं उक्क० खेत्त०, अणु० ब्रची०। देवाउ०-आहारदुग० खेत्त०।

३७३. अब्भवसि० पढमदंडओ मदि०भंगो । सादा०-पंचिंदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०--ओरा०श्चंगो०--वर्जारि०-पसत्थ०४-अगु०२-पसत्थ०-तस०४-थिरादि-छ०-णिमि० उ० अद्व-बारह०, अणु० सच्वल्लो० । मणुस०--मणुसाणु०--आदाउज्जो०

मात्र पद्मलेश्यामें मारणान्तिक समुद्घालद्वारा तिर्येख्व श्रौर मतुष्य कुछ कम पाँच बटे चौदह राज़ूशमाण केत्रका स्पर्शन करते हैं, इसलिए इस लेश्यामें देवगतिचतुष्कके श्रातुक्कृष्ट श्रातुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इस लेश्यामें शेष सब प्ररूपणा पीतलेश्याके समान है। मात्र यहाँ श्रपनी प्रकृतियाँ कहनी चाहिए।

३७२. शुक्तलेश्यामें प्रथम दण्डकके उत्कृष्ट श्रीर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अपक प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रके समान है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु श्रीर श्राहारकद्विकका भक्त चेत्रके समान है।

विशेषार्थ — शुक्रलेश्यामें कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाए स्पर्शन है, क्योंकि आनतादि-देवोंका मेरुके मूलसे नीचे गमन नहीं होता। यहाँ पर प्रथम दण्डकमें ये प्रकृतियाँ ली गई हैं— पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्त्र, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, श्रीदारिकशरीर,पाँच संस्थान,श्रीदारिक त्याङ्गोपाङ्ग, छह संहनन,त्रप्रशस्त वर्णाचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उपघात,श्रप्रशस्त विहायोगति,श्रस्थिर,श्रशुभ, दुर्भग,दुःस्वर, श्रनादेय, श्रयशः-कीर्ति नीचगोत्र और पाँच अन्तराय । चपक प्रकृतियाँ ये हैं—सातावेदनीय, देवगति, पंक्रान्द्रिय-जाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थंकर श्रीर उच्चगोत्र। यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभाग-बन्ध देवोंके होता है,इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य चपकश्रीशमें होता है, इसलिए इनके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन देखके समान कहा है स्वीर इनका श्रनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध देव भी करते हैं। मात्र देवगतिचतुष्कका बन्ध तिर्यक्र और मनुष्य करते हैं, सो देवोंमें मरणान्तिक समुद्धात करनेवाले इनका भी स्पर्शत कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण उपलब्ध होता है। देवोंका तो इतना है ही, इसलिए इन सब क्षपक प्रकृतियोंके अनुस्कृष्ट अनुभाग के बम्धक जीवोंका उक्त प्रमास स्पर्शन कहा है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग चेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है।

३७३. श्रभव्योंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मत्यद्वानी जीयोंके समान है। सातावेदनीय, पद्धोन्द्रियजाति, श्रीदारिकशारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, श्रीदारिकशाङ्गोपाङ्ग, वश्चर्यभनार।चसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलधुत्रिक, प्रशस्त विद्यायोगिति, त्रसम्बद्धक, स्थिर श्रादि छह श्रीर निर्माण्के उत्कृष्ट श्रमुभागके वन्यक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजूपमाण् चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण् चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्यक जीवोंने सब लोकप्रमाण् चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी,

उचा० उ० अह¹०, अणु० सन्वलो० । देवगदिदुग० उक्क० अणु० पंचर्चोँ० । वेउव्वि०-वेउव्वि० अंगो० उ० पंचर्चोँ०, अणु० ऍकारह० । णिरयगदिदुगं ओघं । अथवा सन्वाणं मदिअण्णाणिभंगो कादन्वो ।

२७४. सासणे पंचणा०--णवदंसणा०--श्रसादा०--सोलसक०-अहणोक०--तिरिक्ख०-चदुसंठा०-चदुसंघ०--श्रप्यसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०--अप्पसत्थ०--अथि-रादिछ०-णीचा०-पंचंत० ड०[अणु०] अह-बारह०। सादा०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०--ओरा०श्रंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४--श्रगु०३--पसत्थिव०-तस०४--थिरादिछ०-णिमि० ड० अह०, अणु० अह-बारह०। देवाउ० ओघं। दोआड० ड० खेंत्त०, अणु०

श्रातप, उद्योत श्रीर उद्यगोत्रके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिद्विकके उत्कृष्ट श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकश्रिर श्रीर वैकियिकश्राङ्गोपाङ्ग के उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौद्द राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तरकगतिद्विकका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रथवा सब प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान करना चाहिए।

विशेषार्थ—जो उत्पर छह और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम बारह बटे चोदह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, ऐसे जीवोंके भी साताबेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागक घर्षाता है। देखोंके विहारादिके समय तो हो ही सकता है, इसिलए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परांन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र मनुष्यगति आदिका उत्कृष्ट अनुभागक कई कारणोंसे कुछ कम बारह बटे चौदह राजु नहीं प्राप्त होता, इसिलए यह कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इन साताबेदनीय आदि और मनुष्यगति आदिके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परांन सब लोक प्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। जो तिर्यक्ष और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके देवगति-द्विकका उत्कृष्ट अनुभागकन्य सम्भव है; इसिलए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परांन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण कड़ा है। इसी प्रकार वैकियिकद्विकके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परांन कुछ कम ग्यारहबटे चौदह राजुप्रमाण स्परांन वैकियिकद्विकके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३७४. सासादनमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, सोलह क्याय, आठ नोक्षाय, तिर्यञ्चगति, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उप-घात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुमागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम वारह बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, पञ्चोन्द्रियज्ञाति, औदारिकशरीर, तेजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरक्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, यज्ञवभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वज्ञिक, प्रशस्त विहायोगिति, असचतुष्क, स्थिर आदि छह और निर्माणके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन दिया है और

१. सा॰ प्रती ब्रादा॰ उचा॰ उ॰ ब्राह, श्रा॰ प्रती॰ ब्रादाउज्जो॰ उ॰ ब्राह॰ इति पाठः ।

अह०। मणुस०-मणुसाणु०-उचा० रे० अणु० अहचीँ०। देवगदि०४ उ० अणु० पंचचीँ०। उज्जो० उ० खेर्त्त०, अणु० अह-बारह०। मिच्छादिही० मदि०भंगो।

३७५. असण्णीसु पंचणा०-णवदंस०-दोवेदणी०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्लाड०-मणुस०-चदुजा०-ओरा०-तेजा०--क०-झस्संठा०-ओरा०झंगो०--झस्संघ०-पसत्थापसत्थ०४-मणुसाणु०--अगु०४-आदाउज्जो०--दोविहा०--तस०४-थिरादिछ०-णिमि०--दोगो०--पंचंत० ड० लो० असंखेँ०, अणु० सव्वलो० । हस्स-रदि०-

अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भङ्ग ओघके समान है। दो आयुओं के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंके कुछ कम आठ वटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उचगोत्रके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन चेत्रके समान है और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मिध्यादृष्टि वीवोंमें मत्यज्ञानी अविवेंके समान भक्न है।

विशेषार्थ—सासादनसम्यक्तका विहार भादिकी अपेजा कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्वातकी अपेजा कुछ कम बारह वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन है। प्रथम रण्डकी प्रकृतियोंके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका यह दोनों प्रकारका स्पर्शन सम्भव है और सातावेदनीय आदिके उत्कृष्ट अनुभागबन्धके समय कुछ कम बारह वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है, इसलिए इन बातोंको ध्यानमें रखकर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका अनुत्कृष्ट अनुभागक्य विहारादिके समय सर्वत्र सम्भव है, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुपमाण कहा है। इसी प्रकार मनुष्यगति आदि तीनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कका बन्ध तिर्यञ्च और मनुष्य करते हैं, अत: इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुपमाण कहा है। उद्योतका अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुपमाण कहा है। उद्योतका अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुपमाण कहा है। उद्योतका अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवेदह राजुप्रमाण कहा है। शेव कथन सुगम है।

३७५. श्रसंज्ञी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यगति, चार जाति, श्रीदारिकशारीर, तेजसरारीर, कार्मण-शारीर, छह संस्थान, श्रोदारिकशाङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचनुष्क, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर श्रादि छह, निर्माण, दो गोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके

१. म्रा॰ प्रतौ मसुसासु॰ उ॰ इति पाठः । २. ता॰ म्रा॰ प्रत्योः मदि०भंगो । सण्णी पंचदियः भंगो । म्रास्ण्णीसु इति पाठः ।

तिरिक्ख०--एइंदि०--तिरिक्खाणु०--थावरादि०४-[अधिरादिञ्च०] उ० स्रो० असं० सव्वस्रो०, अणु० सव्वस्रो०। दोआउ०-वेउन्वियञ्च० उ० अणु० खेँत्तमंगो। मणुसाउ० तिरिक्खोर्घ। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं उकस्सफोसणं समत्तं।

३७६. जहण्णए पगदं। दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोत्तसक०-सत्तणोक० तिरिक्त ०--अप्पसत्थ०४-तिरिक्त्वाणु०--उप०-णीचा०--पंचंत० जहण्णं अणुभागं वंधगेहि केवडियं खेँत्तं फोसिदं १ लोग० असंखेँ०, अज० सञ्बलो०। सादासाद०-तिरिक्त्वाड०-मणुस०--चदुजा०--छस्संदा०--छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-

श्चसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है श्रोर श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक चेत्रका स्वर्शन किया है। हास्य, रित, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियज्ञाति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर श्चादि चार श्रीर श्वस्थिर श्वादि छहके उत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रामु श्रीर वैक्रियिक छहके उत्कृष्ट और श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। मनुष्यायुका भन्न सामान्य तिर्यश्चोंके समान है। श्रमाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान भन्न है।

विशेषार्थ — यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका व अन्य सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य अपने-अपने योग्य परिणामोंके साथ असंज्ञी पक्कोन्द्रिय जीव करते हैं। उसमें भी प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागवन्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता, अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें माग प्रमाण और अतीत कालीन स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। इन सबका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। इन सबका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, अतः इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और वैक्रियिकछहका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागकय असंज्ञी पञ्चीन्द्रय ही करते हैं और ऐसे जीवोंका उनका बन्ध करते समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं हीता, इसलिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। मतुष्यायुका मङ्ग स्पष्ट ही है। संसारी जीवोंके अनाहारक अवस्था कार्मणकाययोगके समय होती है, इसलिए अनाहारकोंकी प्रकृपणा कार्मणक काययोगी जीवोंके समान कही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शन समाप्त हुन्ना ।

३७६, जघन्यका प्रकरण हैं। निर्देश दो प्रकारका है—स्त्रोघ स्त्रौर स्त्रादेश। श्रोधसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकत्राय, तिर्यद्भगित, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्भगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगोन्न श्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके घन्धक जीवोंने कितने चेन्नका स्पर्शन किया हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेन्नका स्पर्शन किया हैं । सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यद्भायु, मनुष्यगति, चार जाति, स्नह संस्थान, स्नह संहनन,

यावर०४—ियरादिवयुगै०-उच्चा० ज० श्रज० सम्बहो० | इत्थि-णवुंस० ज० अह-बारह०, अज० सम्बहो० | दोआउ०-आहारदुग० ज० अज० खेर्चभंगो | मणुसाउ० ज० हो० श्रसंखेँ० सम्बह्णो०, अज० अह० सम्बत्तो० | णिरय०-णिरयाणु० ज० अज० बच्चोँ० | देवग०-देवाणु० जह० दिवहृचोद्द०, अथवा पंचचोँ०, अज० बच्चोँ० | पंचि०-ओरा०-द्यंगी०-तस० जह० अह-वारह०, अज० सम्बत्तो० | ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४—अगु०३—उज्जो०बादर-पज्जत्त-पन्ते०-णिमि० ज० अह-तेरह०, अज० सम्बत्तो० | वेउन्वि०-वेउन्वि०श्रंगो० [ज०] बच्चोँ६०, श्रज० बारहचोँ० | आदाव० ज० श्रह०, अज० सम्बत्तो० | तित्थ० ज० खेंत्रं०, अज० श्रह० |

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगिति, स्थावरचतुष्क, स्थिर आदि छह युगल श्रीर उचगोत्रके जघन्य भीर श्राजधन्य श्रानुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद श्रीर नपुंसकवेदके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कन बारह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अजधन्य अनुभागके बन्धक क्रीवोंने सबलोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और आहारकद्विकके जघन्य स्रीर अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग चेत्रके समान है। मनुष्यायुके जघन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुमागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्परान किया है । नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीबोंने कुछ कम छह बटे चौदह राज़्यूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति स्रोर देवगत्यानुपूर्वीके जधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेट बटे चौदह राज् श्रथवा कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पछ्छोन्द्रियजाति, ऋौदारिक आङ्गोपाङ्ग और त्रसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रीदारिकशरीर, तैजसवारीर, कार्मण-शरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलचुत्रिरु, उद्योत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम तेरह घटे चौदह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकशारीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चीदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। आतपके जवन्य अनुभागके बम्धक जीवोंने कुछ कम आठबटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है खौर खजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने ऋछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ वैक्रियिक छह, आहारकद्विक, नरकायु व देवायु और तीर्थंद्वर प्रकृतिका बन्ध एकेन्द्रिय जीव नहीं करते । इनके सिवा सब प्रकृतियोंका बन्ध एकेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए उन सब प्रकृतियोंके श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सर्व लोक कहा है । इसके सिवा

१. ग्रा॰ प्रतौ थावर॰ थिरादिछुयुग॰ इति पाठः ।

जहाँ जो विशेषता होगी, वह उस उस प्रकृतिके निरूपणुके समय कहेंगे । श्रव रहा जघन्य अनुभाग-बन्धका विचार, सो प्रथंक दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध जिनके होता है. उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। सातावेदनीय श्रादिका जघन्य अनुसागबन्ध यथासम्भव चार, तीन या दो गतिके जीव मध्यम परिणामोंसे करते हैं। इनका स्पर्शन सर्व लोक होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जधन्य अनुमागबन्य चारों गतिके संज्ञी पञ्चीन्द्रय जीव करते हैं, किन्तु यह बन्ध करते समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं होता।यथासम्भव अन्यत्र भी नहीं होता, इसलिए इनके ज्ञधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकका भंक्न चेत्रके समान है,यह स्पष्ट ही है । मनुष्यायुका जबन्य अनुसागवन्य तिर्यञ्च और मनुष्य करते हुए भी एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं, इसलिए इसके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और खतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। तथा देव भी विद्वारादिके समय इसका त्राजधन्य त्रानुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इसके त्राजधन्य त्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण अलगसे बतलाया है। तिर्यक्त और मनुष्य मारणान्तिक समुद्धातके समय भी नरकगतिद्विकका जधन्य और अजधन्य अनुभागबन्ध करते हैं, इसलिए इनके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। ऐशान कल्प तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यक्क श्रीर मनुष्यके देवगतिद्विकका जधन्य अनुभागबन्ध सम्भव है; ऐसा मानने पर इनके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेद बटे चौदह राजु प्रमाण प्राप्त होता है और सहस्त्रार करूप तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके भी यह जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है, ऐसा मानने पर इनके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमास कहा है। इतका अजघन्य अनुभागबन्ध करनेवाले जीव सर्वार्थसिद्धि तक माराणान्तिक समुद्रघात करते हैं और इनका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूसे ऋधिक नहीं है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। जो पुञ्चोन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी पुञ्चोन्द्रियजाति आदिका जघन्य श्रनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। जो देव बादर एकेन्द्रियोंमें ऊपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी श्रीदारिकशरीर श्रादिका जघन्य श्रानुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। जो तिर्य**ख और** मनुष्य नारिकयोंमें मारेणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी वैक्रियिकद्विकका जधन्य अनुभागवन्य होता है। तथा देव श्रीर नारिकयोंमें समुद्धात करते समय इनका श्रजधन्य श्रनुभागवन्य भी होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह वटे चौदह राजुश्माण श्रीर अजधम्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम बारह बटे बौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। ेशान तकके देवोंके विहारादिके समय भी ऋातपका जवन्य ऋनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य ऋनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम ऋाठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका जधन्य अनुभागवन्ध मिध्यात्वके अभिमुख हुए मनुष्य असंयत सम्यग्दष्टि करते हैं, इसलिए इसके जधन्य अनुमागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है और तिर्यञ्चोंके सिवा तीनों गतिके जीवोंके यथायोग्य इसका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है।

३७७. णिरएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्स०अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०--उप०--णीचा०--पंचंत० ज० खेंत्त०, अज० छचोँ०।
दोवेदणी०-इत्थि०-णवुंस-पंचि०-ओरालि०-तेजा०-क०-छस्संढा०-ओरा०भ्रांगो०-छस्संघ०
पसत्थ०४ --अगु०३--[उज्जो०-] दोविहा०-तस०४-थिरादिछयु०-णिर्मि० ज० अज०
छ०। दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-तित्थ०-उच्चा० ज० अज० खेंत्त०। एवं सत्तमाए
पुढवीए। छसु उवरिमासु एसेव भंगो। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० सादभंगो। एवं अप्पप्पणो रङ्जु भाणिद्व्यं। इत्थि०-णवुंस० ज० खेंत्त०।

३७≈. तिरिक्खेसु पंचणा०-छदंस०-अद्वक०--सत्तणोक०--पंचि०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४—[अगुरू०४—]तस०४—णिमि०-पंचंत० ज० छ०, अज० सञ्चलो०।

३७७. नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह कपाय, सात नोकपाय, तिर्यञ्चनित, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चनत्यानुपूर्वी, उपघात, नीचगात्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्परांन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राज्यभाण चेत्रका स्परांन किया है। दो वेदनीय, स्वीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चोन्द्रयजाति, अौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणअरीर, छह संस्थान, औदारिक आक्षोपाङ्ग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुत्रिक, उद्योत, दो विहायोगति, अस चतुष्क, स्थिर आदि छह युगल और निर्माणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राज्यभाण चेत्रका स्परांन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तीर्थकुर और उद्यगति अधन्य और अजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथियोमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिवियों में यही स्पर्शन जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्चगति, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भक्न सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार अपनी-अपनी रज्जु कहना चाहिए। तथा इनमें स्वीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ—सामान्य नारिकयोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण है, इसलिए यहाँ कुछ प्रकृतियोंके सिवा शेव सब प्रकृतियोंके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है और सातावेदनीय आदिका जधन्य अनुभागक मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है, इसलिए इनके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भी उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र पाँच झानावरणादिके जधन्य अनुभागवन्धके स्वामीको तथा दो आयु आदिके जधन्य और अजधन्य अनुभागवन्धके स्वामीको देखते हुए यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए यह चेत्रके समान कहा है। प्रथमादि पृथिवियोंमें अपना-अपना स्पर्शन समभ कर सब प्रकृपणा इसी प्रकार कहनी चाहिए। केवल तिर्यक्रगतित्रिकका जधन्य अनुभागवन्ध इन पृथिवियोंमें मिण्याहिष्ट नारकी परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे करते हैं। अतः यहाँ इनका भङ्ग सातावेदनीयके समान कहा है।

३७=. तिर्यख्नोंमें पाँच ज्ञानावरण, छहं दर्शनावरण, ऋाठ कषाय, सात नोकषाय, पक्चे न्द्रिय-जाति, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरूलघुचतुष्क, त्रस-चतुष्क, निर्माण और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह

१. ता॰ प्रती तेजाक॰ छस्संठा॰ तेजाक॰ छस्संठा॰ (१) आ॰ प्रती तेजाक॰ पंचसंठा॰ इति पाठः। २. ता॰आ॰प्रत्योः अप्यसत्य॰४ इति पाठः। ३. ता॰आ॰प्रेत्योः थिरादिछ॰ सिमि॰ इति पाठः।

थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अद्दक्ष०--णवुंस०--ओरा०श्रंगो०--आदार्व० क० खेंत्तभंगो। अज० सव्वलो०। साददंदओ ओघो। इत्थि० ज० दिवहु०, अज० सव्वलो०। दोआउ०-वेचिव्यञ्च० ओघं। मणुसाउ० ज० अज० लो० असंखें० सव्वलो०। ओरा० ज० लो० असंखें० सव्वलो०। आरा० ज० लो० असंखें० सव्वलो०, अज० सव्वलो०। तिरिक्लै०-तिरिक्लाणु०-णीचा० खेंत्तभंगो। उ० ज० सत्त्वोंद०, अज० सव्वलो०।

राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीयोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, आठ क्याय, नपुंसकवेद, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और आतपके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। कीवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छेद बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वायु और वैकियिकछहका भङ्ग श्रोघके समान है। मनुष्यायुके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्वज्यात्वें अग्राप्त के बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। त्यांद्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तिर्यद्वोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण होनेसे यहाँ एकेन्द्रियोंमें वेंधनेवाली प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। जहाँ विशेषता होगी उसे अलगसे कहेंगे। नारिकयोंमें और देवोंमें मारिणान्तिक समुद्वात करनेवाले जीवोंके भी स्वामित्वके श्रतुसार पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रतुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य **बातुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन कहा है। स्त्यानगृद्धि** त्रादिका जधन्य अनुभागबन्ध पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्चोंके स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। स्नीवेरका जधन्य अनुभागवन्ध करनेवाले तिर्यक्रोंके ऐशान करूप तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करना सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम डेट बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका जघन्य अनुभागवन्ध एकेन्द्रिय जीव भी करते हैं। किन्तु इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके श्रसंख्यातर्वे भागप्रमाण ही है श्रौर श्रतीत स्पर्शन सब लोक प्रमाण है। इसके श्रजघन्य ऋतुभागबन्धकी अपेक्षा भी यही स्पर्शन जानना चाहिए। जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी श्रीदारिकशरीरका जघन्य श्रनुभागवन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य श्रनुभाग के बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्यक्क गतित्रिकका जघन्य श्रानुभागवन्य बाद्र श्राग्निकायिक श्रीर वाद्र वायुकायिक जीव करते हैं, इसलिए इनके जघम्य श्रानुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान लोकके संख्यातवें भामप्रमाण प्राप्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। जो ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी उद्योतका जघन्य श्रानुभागबन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य श्रानुभागके बन्धक जीवों का कुछ कम सात बटे चौद्द राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

श्रा॰प्रतौ श्रादाउ॰ इति पाठः । २. ग्रा॰ प्रतौ श्रमंखे॰ सम्बलो॰ तिरिक्ख॰ इति पाठः ।

३७६. पंचिदि०तिरिक्ल०३ पंचणा०-छदंसणा०--अहक०-छण्णोक०-तेजा०-क०--पसत्थापस०४-अग्रं०४--पज्ञ०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० छ०, अज० लो० असं० सब्बलो०। थीणगिद्धि०३-मिच्छ०-अहक०-णवुंस० ज० खेंत्त०, अज० लो० असं० सब्बलो०। सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०--हुंड०-तिरिक्खाणु०-थाव-रादि४-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग०-अणादें०-अजस०-णीचा० ज० अज० लो० असं० सब्बलो०। इत्थि० ज० अज० दिवहु०। पुरिस०-णिरय०--णिरयाणु०-अप्प-सत्थ०-हुस्सर० ज० अज० ह्योंह०। चदुआउ०-मणुस०--तिष्णिजा०--[चदुसंठा०-] ओरा०अंगो ०--छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० ज० अज० खेंत्त०। देवग०--समचहु०-देवाणु०-पसत्थ०-सुभग०--सुस्सर्-आदें०--उचा० ज० पंच चो०, अज० छचों०। पंचिदि०-वेडिब्ब०-वेडिब्ब०आंगो०-तस० ज० छ०, अज० वारह०। उज्जो०-जसगि० ज० अज० सत्त्वो०। बादर० ज० छ०, अज० तेरह०।

३७६. पद्धी न्द्रिय तिर्यद्धित्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बाठ कषाय, छह नोक-षाय, तैजसरारीर, कार्मग्रहारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णंचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच भ्रन्तरायके जघन्य स्त्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाख और सब लोक चेत्रका स्वर्शन किया है। स्त्यानगृद्धितीन, मिध्यात्व, आठ कवाय और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परीन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय, तिर्घञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रौदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्घञ्च-गत्यानुपूर्वी, स्थावर आदि चार, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ, अश्रुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेदके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, नरकगति, नरक-गत्यानुपूर्वी, श्रप्रशस्त विद्वायोगति श्रीर दुःस्वरके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। चार आयु, मनुष्यगति, तीन जाति, चार संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर श्रातपके जघन्य श्रोर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्परीन चेत्रके समान है। देवगति, समचतुरहा-संस्थान, देवगत्यातुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, स्नादेय और उच्चगोत्रके जधन्य अतु-भागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौद्ह राजुपमाण सेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाए चेत्रका स्परांन किया है। पञ्चोन्द्रिय-जाति, वैंकियिकशरीर, वैंकियिकस्राङ्गोपाङ्ग स्रौर त्रसके जघन्य स्रतुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजू श्रौर श्रजवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशःकीर्तिके जबन्य और श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके जवन्य अनुभावके वन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्परांन कियो है।

१. ता०श्रा(०प्रत्योः श्रमु०३ इति पाठः । २. ता०श्रा०प्रत्योः चतुःबादि श्रोधःश्रीगो० इति पाठः । ३. श्रा०प्रतौ पस्तयः सुस्सरः इति पाठः ।

३८०. पंचि०तिरिक्खअपज्जत्तएसु पंचणा०--णवदंसणा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ०४--छप०-पंचंत० ज० खेँत०, अज० लो० श्रसं० सव्बलो०। सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदि०--श्रोरा०-तेजा०-क०--हुंड०--पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-श्रगु०३-थावर-सुहुम-पज्जतापज्जत्त-पत्ते०-साधार०-थिराथिर०-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० लो० असं० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआड०-

विशेषार्थ-प्रथम दण्डककी प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन जिस प्रकार सामान्य तिर्युक्वोंके घटित करके बतला आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए। पक्कोन्द्रिय तिर्यक्कित्रिकका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है स्रौर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करने पर सब लोक प्रमाण है। पाँच ज्ञानावरणादिके श्रज्ञधन्य श्रनुभाग-बन्धके समय उक्त स्पर्शन सम्भव है, इसलिए यह उक्त प्रमाण यहा है। आगे भी जिन प्रकृतियोंका जवन्य या अजधन्य यह स्पर्शन कहा हो, उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्त्यानगृद्धि तीन त्रादिक। जघन्य अनुभागवन्ध स्वस्थानमें ही सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य ऋनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। ऐशान कल्पतककी देवियोंमें मारणान्तिक समुद्घात-के समय भी स्त्रीवेदका जघन्य श्रीर अजघन्य श्रनुभागबन्ध होता है, इसलिए इसके जघन्य श्रीर श्रजधन्य श्रतुमागके बन्धक जीवोंका कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजूप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्र्यात करनेवाले तिर्यञ्जोंके पुरुषवेदका और नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्र्यात करनेवाले तिर्येख्वोंके नरकगति श्रादिका दोनों प्रकारका अनुभागवन्य सम्भव है, इसलिए इनके जवन्य श्रीर श्रजधन्य श्रतुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण स्वर्शन कदा है। सदस्रारकरपतकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्रुयात करनेवाले तिर्यञ्जोंके देवगति आदिका जघन्य अनुभागबन्ध श्रीर श्रागे तकके देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले तिर्यक्र्वोंके देवगति श्रादिका श्रजधन्य अनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जवन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक तिर्यक्वोंके कमसे फुछ कम पाँच श्रीर कुछ कम छह बटे चौदह राज़ूप्रमाण स्पर्शन कहा है। देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले पञ्चोन्द्रियजाति श्रादिका जघन्य तथा नारिकयों श्रीर देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके इनका अजधन्य ऋनुमागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जधन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम छह बटे चै।दह राजु व कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। उपरके बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्र्यात करनेवालेके उद्योत और यशःकीर्तिक। जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात् बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। नार-कियोंमें और नारक व देवोंके साथ ऊपरके बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले तिर्यक्कोंके कमसे बादर प्रकृतिका जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागवन्ध सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य श्रीर अजघन्य अनुभागके बन्धक तिर्यञ्जोंका स्पर्शन कमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजू व तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३८० पञ्चे न्द्रियतिर्येञ्च अपर्याप्तकों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह-कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात्वें भागभमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्येञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क तिञ्चयंगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, स्थावर, सूद्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अश्चम, दुर्मग, अनादेय, अयशाकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जधन्य

मणुस०-चरुनी०-पंचसंठा०-श्रोसिल श्रंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव०-दोविहा०-तस०-सुभगं-दोसर०-आदे०--उच्चा० ज० अज० लो० असं० । उज्जो०--बादर-जस० जह० अज० सत्तचो०। एवं सञ्बद्धपञ्जतगाणं सञ्बविगर्लिदियाणं बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-पत्ते०पज्जताणं च । णवरि बादरवाऊणं यम्हि लो० असंखेँ० तम्हि लो० असंखेँज्ज० कादन्वो ।

३८१. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०-सत्तणोक०--तेजा०-क०-पसत्थापसत्थ०४-अगु०४-पज्जत्त-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० ज० खेँत०, अज० लो० असं० सब्बलो० । सादासाददंडस्रो पंचिदियतिरिक्खभंगो । उज्जो० ज० अर्जै० सत्त

श्रीर श्रज्ञचन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्नीवेद, पुरुषवेद, दो श्रायु, मनुष्यगित, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, श्रादेय श्रीर खनागित्रके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर श्रीर यशःकीर्तिके जघन्य श्रीर श्रज्ञघन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब श्रपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर श्राप्तकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है,वहाँ बायुकायिक जीवोंके लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहना चाहिए।

विशेषार्थ — प्रथम दण्डकमें कही गईँ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध संशी जीव सर्वविशुद्र या तत्मायोग्य विशुद्ध परिणामोंसे करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। पश्चिन्द्रिय तिर्येख्व अपर्याप्तकोंका स्वस्थान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और मारणान्तिक समुद्धातकी अपेचा स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण है। पाँच बानावरणादिका अजवन्य अनुभागवन्ध इनके हो सकता है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके जघन्य या अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है, वहाँ भी ऐसा ही जानना चाहिए। स्नीवेद आदि ऐसी प्रकृतियों हैं जो अधिकतर त्रसादिसम्बन्धी हैं, आयुक्ता वन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय होता नहीं और आतप एकेन्द्रियसम्बन्धी होकर भी उसका उदय बादर पर्याप्त प्रथिवीकायिक जीवोंमें होता है, इसलिए इन सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। जो ऊपर सात राजूके भीतर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके भी उद्योत आदिका जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। होष कथन स्पष्ट ही है।

३८१. मनुष्यित्रिक्में पाँच ज्ञानावरण, नौ द्र्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकवाय, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन तेत्रके समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय और असातावेदनीयदृष्टकका भङ्ग पञ्चीद्रिय

१. ता॰ऋा॰पत्योः मसुष्ठ॰३ चदुना॰ इति पाठः । २. ता॰ऋा॰प्रत्योः तस४ सुभग इति पाठः । ३. ता॰ प्रती न॰ न॰ ऋन॰ इति पाठः ।

चों । बादरजहण्णं खेंत्रभंगो । अजि सत्तचों । सेसाणं जि अजि खेंत्रभंगो ।

३८२. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-अप्पसत्थ४— डपे०-पंचंत० ज० अह०, अज० अह-णव० | सादासाद०-तिरिक्ख०-एइंदिय०-ओरा०-तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४ —तिरिक्खाणु०-अगु०३—उज्जो०-थावर-बादर-पज्जत्त-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-अणादे०-जस०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० श्रद्ध-णव०। इत्थि०-पुरिस०--दोआड०-मणुस०--पंचि०-पंचसंठा०--ओरालि० श्रंगो०-- छस्संघ०-मणु-साणु०-आदाव०-दोविहा०--तस०--सुभग-दोसर०-अ।दे०--तित्थ०-उचा० ज० श्रज० अह० | एवं सव्यदेवाणं अप्यप्पणो फोसणं णेदव्वं |

तिर्यक्कोंके समान है। उद्योतके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राज्यमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन का स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राज्यमाण चेत्र-का स्पर्शन किया है। शेव प्रकृतियोंके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके तमान है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गईँ प्रकृतियोंका जघन्य सनुभागबन्ध जो जीव करते हैं, उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा उक्त मनुष्योंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण होनेसे उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है। जो उत्तर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके उद्योतके जघन्य और अजघन्य अनुभागका बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागक बन्ध सम्भव है, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम सात बटे चौदह राज्यप्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३८२. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकपाय, अप्रशस्त वर्णचतुरक, उपवात और पाँच अन्तरायके ज्ञच्य अनुभागके वन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण केत्रका स्पर्शन किया है। अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण केत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, श्रीदारिकशरीर, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्ड-संस्थान,प्रशस्त वर्णचतुर्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, यशकीति, अथशकीति, निर्माण और नीचगोत्रके ज्ञचन्य और अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण केत्रका स्पर्शन किया है। स्निवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रय जाति, पाँच संस्थान, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर और उच्चगेत्रके ज्ञचन्य और अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण केत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ-एकेन्द्रियोंमं समुद्धात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य श्रनुभाग

१. ऋा० प्रती ऋष्यसस्य० उप० इति पाटः ।

३८३. एइंदिएसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्त०-श्रोरा०-श्रंगो ०-श्रप्पसत्थ०४-तिरिक्ताणु०-उप०-आदा०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखें०, अज० सञ्चलो०। दोवेदणीय०-तिरिक्ताउ०-मणुस०-पंचजा०-श्रोरा०-तेजा०-क०--द्यस्तंठा०---द्यस्तंघ०--पसत्थ०४-मणुसाणु०--अगु०३-दोविद्दा०-तस०थावरादि-दसयुग०- [णिमि०-] उच्चा० ज० श्रज० सञ्चलो०। मणुसाउ० तिरिक्तोघं। उज्जो० जं० सत्तचोंद्द०, अज० सञ्चलो०।

३८४, बादरपज्जत्तापज्जत्त० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४--तिरिक्खाणु०-उप०-णीचा०-पंचंत० ज० लो० संखें०, अज० सञ्बलो० । सादासाद०--एइंदि०--ओरा०--तेजा०--क०--हुंड०--पसत्थ०४—अग्रु०३—

बन्ध, और स्नीवेद सादिका दोनों प्रकारका बन्ध नहीं होता, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन कहा है। तथा एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी पाँच झानावरणादिका अजधन्य अनुभागवन्ध और सातावेदनीय आदिका दोनों प्रकारका अनुभागवन्य सन्भव है, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और कुछ कम नी बटे चौदह राजुपमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३८३. एकेन्द्रियोंमें पाँच क्रानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह क्षाय, नी नोकपाय, तिर्यक्रगति, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रशस्त वर्ण्चतुष्क, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी, धपघात,
स्रातप, नीचगोत्र श्रोर पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातचें भाग
प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण
चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, तिर्यक्रायु, मनुष्यगति, पाँच जाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचनुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रगुक्लधुश्रिक, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर श्रादि दस युगल, निर्माण श्रोर उन्दर्गात्रके जघन्य श्रीर श्रजपन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग
सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। उद्योतके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण
सेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ - एकेन्द्रियोमें पाँच झानावरणादिका जघन्य खनुभागबन्ध बादर एकेन्द्रिय जीव सर्वविद्युद्ध परिणामोंसे करते हैं, इसलिए इनके जधन्य खनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहा है। एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। दो वेदनीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सबके होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

३८४. बादर पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रियोंमें पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, नीच-गोत्र और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कामंणशरीर, हुण्ड-

१. ग्रा॰ प्रतौ तिरिक्ख॰ श्रोगोलि॰ श्रोरा०श्रंगो॰ इति पाठः । २. ता०श्रा॰प्रत्योः उज्जो॰ बस० ब॰ इति पाठः ।

थावर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्ते ०-साधार०--थिराथिर-सुभासुभ--द्भग-अणादे०-अजस०-णिमि० ज० अज० सञ्बलो० | इत्थि०--पुरिस०--तिरिक्खाउ०--चदुजा०--पंचसंग्रा०-ओरा०भ्रांगो०-इस्संघ०-म्रादाव०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदे० ज० अज० लो० संखे० | मणुसाउ०-मणुस०३ ज० अज० लो० असं० | [उज्जो०-बादर-जस० ज० अज० सत्त्वो० |] सञ्बसुहुमाणं सञ्चपगदीणं ज० अज० सञ्बलो० | मणुसाउ० ज० अज० लो असं० सञ्बलो० |

३८५. पंचि०२ पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोस्रसक०-छण्णोक०--तिरिक्ख०-अप्यसत्थ०४--तिरिक्खाणु०--उप०--णीचा०--पंचंत० [ज०] खेँस०, ऋज० अड० सब्बस्रो०। सादासाद०--एइंदि०-हुंड०-थावर०--थिराथिर--सुभासुभ-दूभग--अणादेँ०-

संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुनिक, स्थावर, सूर्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अग्रुम, दुर्मग, अनादेय, अध्याःकीर्ति और निर्माणके ज्ञवन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। कीवेद, पुरुषवेद, तिर्येक्षायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आलप, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके ज्ञधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु और मनुष्यगतिन्निकके ज्ञधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशाकीर्तिके ज्ञधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राज्यमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सब सूद्म एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके ज्ञधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके ज्ञधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सव लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके ज्ञधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—इन जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। इसलिए इस स्पर्शन और स्वामित्वको ध्यानमें रखकर यहाँ सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा गया है। विशेषताका स्पष्टीकरण अनेक बार कर आये हैं। इन जीवोंके उचगोत्रका बन्ध मनुष्यगित आदिके साथ ही सम्भव है, और मनुष्यायु आदिके बन्धक जीवोंका स्पर्शन हर अवस्थामें लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। उद्योत आदिका बन्ध या तो स्वस्थानमें होता है या अपर सात राज्को भीतर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राज्यभाण कहा है। सूदम जीव सर्वत्र होते हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कहा है। मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले सूदम जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका बन्ध करनेवाले सूदम जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत स्पर्शन सब लोक-प्रमाण है, इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है।

३८५. पद्धोनिद्रय और पद्धोनिद्रय पर्याप्त जीवोंसे पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, छह नोकषाय, तिर्यद्भगति, अधरास्त वर्णचतुष्क, तिर्यद्भगत्यातुपूर्वी, उपघात, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परीन चेत्रके समान है। अजदान्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बंदे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण केत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, स्थावर,

अजस० ज० अज० अहं ० सव्वलो० । इत्थि०--पंचिदि०--पंचसंग्रा०--ओरा०श्रंगो०इस्संघ०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदे० ज० अज० अह-बारह० । पुरिस०
ज० खेंत्त०, अज० अह-बारह०। णवुंस० ज० अह-बारह०, अज० अह० सव्वलो० ।
दोआड०-तिण्णिजादि-आहारदु० ज० अज० खेंत्त० । दोआड०-तित्थ० ज० खेंत्त०,
अज० अह० । णिरय०-णिरयाणु० ज० अज० छ० । मणुसग०-मणुसाणु०-आदाव०[उचा०] ज० अज० अह० । देवग०-देवाणु० ज० पंचचों०, अज० छचों० ।
ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थव०४-अगु०३-पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अह-तेरह०, अज० अह० सव्वलो० । [वेडव्वि०-वेडव्वि०आंगो० ओघं ।] उज्जो०-बादर०-जस० ज० अज० अह-तेरह० । सुदुम-अपज्ज०-साधार० जे० अज० लो० असंखें० सव्वलो० ।
प्वं तस०२-पंचमण०-पंचवि०-चक्ख०-सण्णि ति ।

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्तिके जवन्य और अजघन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंने कुछ कम ऋाठ बटे चौदह राजू श्रीर सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्नीवेद, पद्धोन्द्रियजाति, पाँच संस्थान,श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगति,त्रस, सुभग,दो स्वर ऋौर श्रादेयके जघन्य श्रौर अजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवो'ने कुछ कम श्राठ बटे चौद्द राजु श्रीर कुछ कम बारह बटे चौद्द राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषनेद्के जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसक-वेदके जघन्य श्रानुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु श्रौर कुछ कम बारह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्दे राज़ू और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति और श्राहारकद्विकके जघन्य श्रीर अजघन्य श्रानुभावके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। दो श्राय और तीर्थद्वर प्रकृतिके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। श्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीवो ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाए चेत्रका स्पर्शन किया है। नरक-गति और तरकात्यानुपूर्वीके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौद्द राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रातप स्रौर उच्चगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवो ने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुपमाए चेत्रका स्पर्शन किया है। देवगति श्रीर देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवो ने कुंछ कम पाँच षटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्रौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्तवुत्रिक, पयित, प्रत्येक और निर्माण्के जघन्य अनुभागके बन्धक जीवेंनि कुछ कम आठ बटे चौदह राज़ू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राज़ू प्रमाश चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकशारीर और वैकियिक आङ्गोपाङ्गका मङ्ग स्रोचके समान है। उद्योत, बादर भौर यश:कीर्तिके जघन्य श्रीर श्रजचन्य श्रनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सूदम, अपर्याप्त श्रीर साधारणके जवन्य श्रीर श्रजघन्य अनुभागके वन्धक जीवों ने लोकके श्रसंख्यातवें भाग श्रीर सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार त्रसद्विक, पाँचों भनोयोगी, पाँचों वचन-योगी, पचुदर्शनी श्रीर संज्ञी जीवो के जानना चाहिए।

१. ता॰ प्रती च॰ श्रद्ध इति पाठः । २. ता॰ प्रती श्रपञ्च॰ खादा॰ च॰ इति पाठः ।

३८६. पुढवि ॰--श्राउ० पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--णवणोक०-श्रोरा०श्रंगो०-अप्पसत्थ०४-उप०-आदाव०-पंचंत० ज० लो० श्रसं०, अज० सन्वस्रो०।

विशेषार्थ—जो पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुमागवन्य करते हैं, उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातर्वे भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिए यह चेत्रके समान कहा है। तथा इनका स्वस्थान विहारादिके समय श्रीर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय श्रजधन्य श्रनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके अज्ञघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राज़ू श्रीर सब लोकप्रमाण कहा है। श्रागे जहाँ भी कुछ कम ब्राठ बटे चौदह राजू श्रीर सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है, वह इस प्रकार घटित कर लेना चाहिए। स्रीवेद आदिका स्वस्थान विहारादिके समय तथा नोचे छह व ऊपर छह इस प्रकार मारणान्तिक समुद्धात द्वारा छछ कम बारह राजुका स्पर्शन करते समय जघन्य व अजघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जचन्य व अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवो का कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुममाण स्पर्शन कहा है। पुरुषवेदका जधन्य अनुभागवन्ध भपकश्रेणिमें होता है, इसलिए इसके जघन्य अनुभागके वन्यक जीवो का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इसके अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवों के स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुका खुलासा पहले कर आये हैं। उसी प्रकार यहाँ भी व आगे भी जानना चाहिए। तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु व तीर्यद्वर प्रकृतिका अजधन्य अनुभागबन्ध स्वस्थान विहारादिके समय सम्भव है, इसलिए इनके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौद्द राजुप्रमाण कहा है। यद्यपि तीर्थक्कर प्रकृतिका श्राजधन्य श्रानुभागवन्य मारणान्तिक समु-द्वातके समय भी होता है,पर इस कारण स्पर्शनमें अन्तर नहीं पड़ता। मनुष्यगति आदिके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। नारिकयोंमें मारिणान्तिक समुद्धात करते समय भी नरक-गतिद्विकका जघन्य व अजधन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य व अजघन्य अनुभागके बन्धक जीधोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। जो सहस्रार करपतक देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी देवगतिद्विकका जघन्य अनुभागवन्थ होता है श्रीर इनमें व इनसे अपरको देवोंमें भी मारणान्तिक समुद्धात करनेवालोंके इनका श्रजधन्य अनुभागवन्ध होता है, श्रतः इनके जघन्य व त्रजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे कुछ कम पाँच बटे चौदह राजु और कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्रमाण कहा है। विहारादिके समय तथा नीचे छह राजु और ऊपर सात राजु कुल कुछ कम तेरह राजुके भीतर मारगान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके स्त्रीदारिकशरीर स्त्रादिका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है, इसलिये इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम तेरह बटे राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उद्योत आदिके जघन्य और अजधन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंका उक्ते प्रमाण स्वर्शन घटित कर लेना चाहिए। स्वस्थानमें व एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी सूदम आदिका दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध सम्भव है, अतः इनके जवस्य श्रीर अञ्जवस्य अनुभागके बस्बक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण कहा है। क्षेत्र जो स्पर्शन स्पष्ट नहीं किया है, उसे पूर्वापर देखकर व स्वामित्व देखकर समभ लेना चाहिए । यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं, उनमें यह स्पर्शन अविकल घटित हो जाता है, इसलिए उनमें पद्धोन्द्रियद्विकके समान कहा है।

३८६. पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, औरारिक आङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, आतप और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन सादासाद०-तिरिक्ताड०-दोगदि०-पंचजा०--झस्संटा०-झस्संघ०--दोआणु०--दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगो० ज० अज० सव्वलो० । मणुसाड० तिरिक्त्वोघं । ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४--श्रगु०३--णिमि० ज० लो० असं० सव्वलो० , अज० सव्वलो० । उज्जो ० ज० सत्त्वो०, अज० सव्वलो० ।

३८७. बादरपुढ०-आउ० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोत्तसक०--सत्तगोक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचेत० ज० खेँत्त०, अज० सव्वलो० । सादासाद०--तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-सुहुम०-पज्ज०-अपज्ज०-पत्ते०-साधार०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग--त्र्रणादेॅ०--अजस०--णीचा० ज० अज० सव्वलो० । इत्थि०-पुरिस०-

किया है और अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। साता-वेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगिति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल और दो गोत्रके जवन्य और अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्येख्योंके समान है। औदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचनुष्क, अगुरुलधुत्रिक और निर्माणके जवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योतके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है और अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — उक्त बादर जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और ये जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्ध करते नहीं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिका सब पृथिवी और जलकायिक जीव जघन्य अनुभागवन्ध करते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रीदारिकशरीर आदिका अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। श्रीदारिकशरीर आदिका अजघन्य अनुभागवन्ध करते हुए भी एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, इसलिए इनके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। जो उपर सात राज्यके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके उद्योतका जघन्य अनुभागवन्ध सम्भव है; अतः इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राज्यप्रमाण कहा है। पृथिवीकायिक और जलकायिक जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनमें पाँच ज्ञानावरणादि सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। मनुष्यायुक्त भङ्ग स्पष्ट ही है।

३८७. बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणा, नौ दर्शनावरणा, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात और पाँच अन्तरायके जयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यक्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, सूदम, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, श्रुम, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशाकीर्ति और नीचगोत्रके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्रीवेद, पुरुषवेद,

१. ता० प्रतौ श्रमं सन्वलो० डज्ञो० इति पाठ: ।

दोआउ०-मणुसग०-चढुजा०--पंचसंडा०-ब्रोरा०श्चंगो०--ब्रस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०--सुभग-दोसर०-आदेँ०-उचा० ज० अज० छो० असं। ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३--णिमि० ज० छो० असं० सञ्बलो०, अज० सञ्बलो०। उज्जो०-बादर-जस० ज० अर्जे० सत्तचोँ०।

३८८. बादरपुढ०-[आड०] अपज्ज० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०--अप्पसत्थ०४- उप०-पंचंत० ज० खेँत०, अज० सव्वलो०। दोवेद०--तिरिक्ख०-एइंदि०--ओरा०-तेजा०-क०-हुंढ०-पसत्थ०४-[तिरिक्खाणु०-] अगु०३-

दो आयु, मनुष्यगित, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगित्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उद्यगीत्रके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके आसंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुत्रिक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके आसंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक अमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, वादर और यशःकीर्तिके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-बादर प्रथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागबन्ध नहीं करते, मात्र श्रजवन्य अनु-भागवन्धके होनेमें कोई बाधा नहीं है। अतः इनके जयन्य श्रीर अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्रमसे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। सातावेद-नीय आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है। अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। स्त्रीवेद त्रादि प्रायः त्रस सम्बन्धी प्रकृतियाँ हैं। दो त्रायुका मारणान्तिक समुद्धातके समय बन्ध नहीं होता श्रीर बादर पृथिवीकायिक जीवोंमें उत्पन्न हं।नेवाले जीवोंके ही मारणान्तिक समुद्घातके समय आतपका बन्ध होता है। इसलिए इन स्नीवेद आदि प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अतु-भागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। ख्रौदारिकशरीर खादिका स्वस्थानमें ऋौर मारणान्तिक समुद्घातके समय दोनों अवस्थाओं में जवन्य अनुभागबन्ध सम्भव है। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण श्रौर सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवींका स्पर्शन सब लोकप्रमाण हैं,यह स्पष्ट ही हैं । उद्योत स्रादिका स्वस्थान स्रादिमें स्रीर ऊपर सात राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्घात करनेकी अवस्थामें भी दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध सम्भव है। अतः इनके जधन्य श्रीर श्रवचन्य श्रवभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है।

३८८. बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त श्रोर बादर जलकायिक अपर्यातं जीवोंमें पाँच ज्ञाना-वरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, सात नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपवात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चैत्रके समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेद, तिर्येश्चगति, एकेन्द्रिय जाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येश्चगत्यानु-

१. ता० प्रती अस० ऋज० इति पाटः ।

थावरादि०४-पज्ज०-पत्ते०-थिराथिर-सुभासुभ-दूभग०-अणादेँ०-अजस०-णिमि०-णीचा० ज० अज० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-चदुजा०-पंचसंठी०-ओरालि० ग्रंगो०--छस्संघ०-मणुसाणु०-श्रादा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदेँ०-उच्चा० ज० अज० लो० असं०। उज्जो०-बादर०-जस० मणुस० अपज्ज०भंगो। एवं तेउ०-वाऊणं पि। णवरि वाऊणं बादर्र एइंदियभंगो कादव्वो।

३८६. वणप्पदि-णियोद० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-अप्पसत्थ०४--उप०-पंचंत० ज० खेँत०, अज० सन्वलो० । मणुसाउ० तिरिक्खोघं । सेसाणं ज० अज० सञ्चलो० । बादरणियोद--पज्जत्तापज्जत्त--बादरपत्ते०अपज्जताणं च बादरपुढविअपज्जतभंगो । बादरपत्तेय० बादरपुढविभंगो ।

३६०. कायजोगि०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति स्रोघभंगी ।

पूर्वी, अगुरूलघुत्रिक, स्थावर आदि चार, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशाःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्रके जधन्य और अजधन्य अतुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्विवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उचगात्रके जधन्य और अजधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत, बादर और यशाःकीर्तिका भङ्ग मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके समान स्पर्शन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वायुकायिक जीवोंके बादर एकेन्द्रियोंके समान स्पर्शन करना चाहिए।

विशेषार्थ-बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त श्रीर बादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंके जिस प्रकार स्पष्टीकरण कर आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। जो विशेषता कही है, उसे समक्ष लेना चाहिए।

३८६. वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नो नोकषाय, अप्रवास्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुका भक्त सामान्य तिर्यक्कोंके समान है। श्रेष प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त और बादर प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंक। भक्त बादर प्रथिवीकायिक अपर्याप्त जीवोंके समान है, तथा बादर प्रत्येकशरीर जीवोंका भक्त बादर प्रथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें बादर जीव पाँच झानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्य करते हुए भी सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्र्यात करते समय नहीं करते। श्रतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६०. काययोगी, क्रोधादि चार कपायवाले, अचलुद्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें

१. ता॰ प्रतौ मग्नुस॰ पंचसंठा॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ ग्रावरि वाऊणं पि ग्रावरि (१) बादर, ज्ञा॰ प्रतौ ग्रावरि वाऊणं पि बादर इति पाठः ।

ओरालियका० तिरिक्खोघं। ओरालियमि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-[ओरा०अंगो०-] अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेँत०, अज० सव्वलो०। एवं आदा०। दोवेद--तिरिक्खाउ०--मणुस०-पंचजा०--छस्संठा०--छस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-उचा० ज० अज० सव्वलो०। मणुसाउ०--तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-उज्जो०-णीचा० तिरिक्खोघं। खोरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-णिमि० ज० लो० असं० सव्वलो०, अज० सव्वलो०। देवगदिपंच० खेँतभंगो।

३६१. वेडिव्यका० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०-ग्राप-सत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० ग्रह०, अज० अह-तेरह० । दोवेद०-ग्रोरा०--तेजा०-क०-हुंड०-पसत्थ०४-अगु०--पर०-उस्सा०-उद्धो०-थिराथिर--मुभामुभ--दूभग-ग्रणादे०-

श्रीषके समान भंग है। श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यक्रोंके समान भन्न है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह क्षाय, नो नोकषाय, औदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रमुभागके बन्धक जीवोंने सद लोकप्रमाण केश्रका स्पर्शन केश्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सद लोकप्रमाण केश्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार आतप प्रकृतिका भन्न जानना चाहिए। दो वेद, तिर्यक्राय, मनुष्यगति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगरयानुपूर्वी, दो विहायोगिति, त्रस-स्थावर श्रादि दस युगल श्रीर उद्योत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत और नीच-गोन्नका भन्न सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकरारीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रगुरुलघुत्रिक श्रीर निर्माणके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण श्रीर सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। श्राचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है। स्वाचनिय श्राचनिय अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेश्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थं—स्वामित्वको देखते हुए प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के व आत्य प्रकृतिके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, अतः इनके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। दो वेद आदिका कोई भी मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य अनुभागवन्ध करते हैं, अतः इनके जघन्य और अजधन्य अनुभागवन्ध करते हैं, अतः इनके जघन्य और अजधन्य अनुभागवन्ध करते हैं, अतः इनके जघन्य और अजधन्य अनुभागवन्ध संज्ञी पश्चोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। ब्रोदारिकशरीर आदिका जधन्य अनुभागवन्ध संज्ञी पश्चोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। ब्रोदारिकशरीर आदिका जधन्य अनुभागवन्ध संज्ञी पश्चोंका स्पर्शन सारणान्तिक समुद्धातके समय होता है। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। इनके अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सार्थका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। देवगतिपञ्चकका बन्ध सम्यग्दृष्टि करते हैं, अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होनेसे वह हेनके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

३६१. वैकियिककाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, छह नोकवाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। आजघन्य अनुभाग के बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुभँग,

जस०-अजस०--णिमि० ज० अज० अह-तेरह० | इत्थि०-पंचि०-पंचसंठा०--ओरा०-श्रंगो०--छस्संघ०-दोविहा०-तस०४-सुभर्ग-दोसर०-आदेँ० जै० अज० अह-बारह० | पुरिस० ज० अह०, अज० अह-बारह० | णवुंस० ज० अह-बारह०, अज० अह-तेरह० | दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदा०-तित्थ०-उचा० ज० अज० अह० | तिरिक्ख०२-णीचा० ज० खेँस०, अज० अह-तेरह० | एइंदि०-थावर० ज० अज० अह-णवै० | वेउव्व० [मिस्स०-] आहार०-आहारमि० खेँसभंगो |

अनादेय, यशाकीर्ति, अयशाकीर्ति और निर्माणके जवन्य और अजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छ।ठ बटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाण नेत्रका स्वर्शन किया है। स्रीवेद, पक्कोन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक ब्राङ्गोपाङ्ग, छह् संहनन, दो विद्वायो-गति, त्रसचतुष्क, सुभग, दो स्वर श्रीर आदेयके जधन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेदके जधन्य अनुसार्गके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ और कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकदेदके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धके जीयोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप तीर्थद्वर और उच्चगोत्रके जघन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यक्रगतिद्विक श्रीर नीचगोत्रके जघन्य स्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु ख्रीर कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। एकेन्द्रियजाति श्रीर स्थावरके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ श्रीर कुछ कम नी बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें चेत्रके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—पाँच ज्ञानावरणादिका जघन्य अनुभागवन्ध सम्यन्दिष्ठ देव श्रीर नारकी करते हैं। इसमें भी स्त्यानगृद्धि तीन, निध्यात्व श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारका सम्यक्त्वके श्रिममुख मिध्यादृष्टि करते हैं। इनका स्पर्शन कुछ कम श्राठ वटे चौद्ह राजुप्रमाण होनेसे पाँच ज्ञानावरणादिके अघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। तथा तिर्यक्षों, मनुष्यों और एकेन्द्रियोंमें भारणान्तिक समुद्धात करनेवाले नारिकयों और देवोंके भी इनका अज्ञयन्य अनुभागवन्ध होता है; स्वस्थान श्रादिके समय तो होता ही है, इसलिए इनके अज्ञयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम श्राठ व दुछ कम तेरह बटे चौद्ह राजुप्रमाण कहा है। श्रागे जिन प्रकृतियोंके जघन्य, अज्ञवन्य या दोनों प्रकारके श्रनुभागके वन्धक जीवोंका छुछ कम श्राठ बटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है, उसे इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। जिनका कुछ कम बारह बटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहीं नीचे छह श्रीर उपर छह इस प्रकार कुछ कम बारह बटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहीं नीचे छह श्रीर उपर छह इस प्रकार कुछ कम बारह बटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन केना चाहिए। जिनका कुछ कम बारह बटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन केना चाहिए। जिनका दुछ कम नौ बटे चौद्ह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है, वहीं एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात कराके वह स्पर्शन लाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि इन विशेषताश्रोंको ध्यानमें रखकर श्रीर

१. ता॰ त्रा॰ प्रत्योः तस॰ सुभग॰ इति पाठः। २. ऋा॰ प्रतौ दोसर॰ ज॰ इति पाठः। ३. आ॰ प्रतौ ज॰ ऋडणुव॰ इति पाठः।

३६२. कम्मइ० पंचणा०-छदंस०--गरसक०-सत्तणोक०--अप्पसत्य०४-उप०-पंचंत० ज० छ०, अज० सच्चलो० । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०--अणंताणुवं०४-इत्यि०-णवुंस०-पंचि०-ग्रोरा०-तेजा०-क०--पसत्य०४-अग्र०३--जज्जो०-तस०४-णिमि० ज० पॅकारह०, अज० सव्वलो० । साददंडओ ओघो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ग्रोधं । देवगदिपंचगं खेंत्रभंगो । सेसं ओरालिय०भंगो । आदा० ज० खेंत्त०, अज० सव्वलो० ।

३६३. इत्थिवेदेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० खेत्त०, अज० सव्यलो० । एवं छण्णोक० । सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-थिराथिर--सुभासुभ-दूभग-अणादे०-अजस०-णीचा० ज० अज० अह० सव्यलो० । इत्थि०-मणुस०-पंचसंठा०-स्रोरा०स्रंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०

स्वामित्वका विचारकर स्पर्शन का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

३६२. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कपाय, सात नोकवाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने छुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, जीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चोन्द्रियजाति, ओदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलग्रुत्रिक, उद्योत, त्रसचतुष्क और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने छुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूपमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेन्नका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिपक्रकका भङ्ग चेन्नके समान है। शेष भङ्ग औदारिककाययोगी जीवोंके समान है। आतपके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका भङ्ग चेन्नके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेन्नका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है। यहाँ जिन प्रकृतियों के श्रज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है, वह इसी दृष्टिसे कहा है। पाँच ज्ञाना- वरणादिका ज्ञचन्य श्रनुभागवन्य सन्यादृष्टि जीव करते हैं, इसलिए इनके ज्ञचन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। कार्मणकाययोगमें नीचे छह और उपर पाँच राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके स्त्यानगृद्धि तीन श्रादिका ज्ञचन्य श्रनुभाग- बन्ध होता है, इसलिए इनके ज्ञचन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू- प्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष प्रकृतियोंका स्पर्शन निर्दिष्ट स्थानोंको देखकर घटित कर लेना चाहिए।

३६३. स्रोवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात और पाँच अन्तरायके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार छह नोकपायोंका भक्त है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्कगित, एकेन्द्रिजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयराः-कीर्ति और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्नीवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान,

श्रादाव-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-उच्चा० ज० अज० अह०। पुरिस०-दोआउ० ज० खेँत्त०, अज० श्रह०। णवुंस० ज० अह०, अज० श्रह० सम्बल्तो०। णिरय-देवाउ०-तिण्णिजा०-आहारदुग-तित्थ० खेँत्तभंगो। णिरय०--णिरयाणु० ज० अज० झचोँ०। देवग०-देवाणु० ज० पंचचो०, श्रज० झचोँ०। पंचिं०-तस० ज० छचोँ०, अज० श्रह०-वारह०। ओरा० ज० अह-णव०, श्रज० अह० सम्बल्लो०। तेजा०- [क०-] पसत्थ०४—अगु०३—पज्ज०-पत्ते०-णिमि० ज० अह-तेरह०, श्रज० अह० सम्बल्लो०। वेउन्वि०-वेउन्वि०श्रंगो० ज० छ०, श्रज० बारह०। उज्जो०-जस० ज० अज० अह-णव०। श्रप्णसत्थ०-दुस्सर० ज० अह०, अजै० अह-बारह०। वादर० ज० अज०

श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, मुस्वर, ऋादेय और उच्चगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राज़ूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद श्रीर दो श्रायुके जघन्य श्रानुभागके बन्धक जीवोंका रेपर्शन चेत्रके समान है। श्रजवन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ **षटे चौदह राजूप्रमाण सेत्रका स्पर्शन किया है।** नपुंसकवेदके जवन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राज़्रुप्रमास चेत्रका स्पर्शन किया है। श्राजयन्य श्रानुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदर राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु, तीन जाति, श्राहारकद्विक श्रोर तीर्थंकुर प्रकृतिका भक्न चेत्रके समान है। नरकगति श्रीर नरकगत्यानुपूर्वीके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राज़ुशमाण चेत्रका स्परीन किया है। देवगति और देवगत्यानुपूर्वीके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पञ्जोन्द्रियजाति और त्रसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण सेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण जेत्रका स्पर्शन किया है। स्रीवारिकशारीरके जघन्य स्रानुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूपमाए चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धके जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राज़ू और सब लोक-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रमुरुलघुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक स्रौर निर्माणके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम स्राठ बटे चौद्ह राजु भीर कुछ कम तेरह वटे चौदह राज़ुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिक-शरीर भीर वैक्रियिक श्राङ्गोपाङ्गके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवो ने कुछ कम छह बटे चौदह राज़ूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्राजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और श्रयशःकीर्तिके जघन्य श्रीर श्रजघन्य चनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू श्रौर कुछ कम नौ बटे चौदह राजू-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीयों ने कुछ कम बाठ बटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है श्रीर अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बंटे जीवह

Jain Education International

र. ता० च॰ ग्रज्ज० इति पाठः ।

अइ-तेरह० । सुहुम०-अपज्ज०-साधार० ज० अज० लो० असं० सव्वलो० ।

राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सूदम, भ्रवर्शन भ्रौर साधारणके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवो ने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके व छह नोकषार्योंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग है, अतः यह चेत्रके समान कहा है, तथा इनका अजधन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है। अतः इनके श्रजधन्य अनुभागके बन्धक जीबोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है। स्त्रीवेदी जीबोंका स्व-स्थानविहार आदिकी अपेचा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौरह राजु और एकेन्द्रियोंमें मारखान्तिक समुद्घातकी अपेका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। इन दोनों अवस्थाओं में सातावेदनीय आदिका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध सम्भव है, अतः यह स्पर्शन एकप्रमाण कहा है। स्त्रीवेद आदिका जघन्य और अजघन्य अनुभागबन्ध एकेन्द्रियों श्रीर नारकियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं हो सकता । मात्र आतप इसका अपवाद है। वह भी मारखान्तिक समुद्धातके समय यदि हो, तो बादर प्रथिवीकायिकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय ही सम्भव है। इसलिए इनके जघन्य भौर अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पुरुषवेदका जघन्य श्रानुभागबन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है। तथा तिर्यक्कायु श्रीर मनुख्यायुका जघन्य अनुभागबन्ध मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता व तिर्यक्र और मनुष्य करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। इनके अजघन्य अनुभाग-बन्धका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण है,यह स्पष्ट ही है। नारकियों और एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्घातके समय नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागवन्ध नहीं होता, इसलिए इसके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बंदे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा स्वस्थान विहारादिके समय व नपुंसकों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इसका बन्ध होता है, इसलिए इसके ऋजवन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजू व सब लोकप्रमाण कहा है । नरकायु अःदिके जघन्य श्रौर अजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवेांका स्पर्शन चेत्रके समान है,यह स्पष्ट ही है। जो नारिकयों में मारिणान्तिक समुद्घात करते हैं,उनके भी नरकगतिद्विकका दोनों प्रकारका अनुभागबन्ध होता है। अतः इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। देवों में सहस्रार फल्पतक मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवों के देवगतिद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध और सब देवों में मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवों के इनका खजद्यन्य खनुभागदन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका क्रमसे कुछ कम पाँच श्रौर कुछ कम छह बटे चौदह राजूममाण स्पर्शन कहा है। तिर्यक्रों और मनुष्यों के देवों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पञ्चोन्द्रियजाति और त्रसका जघन्य अनुमागबन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य श्रातुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमा**ए कहा है । तथा स्वस्थान**-विहार आदिके समय व नीचे और ऊपर कुछ कम छह-छह राजुप्रमाण चेत्रके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी इनका व्यक्तघन्य ऋनुभागबन्ध होता है, इसलिये इनके श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम वारह बटे चौदह राजू-प्रमाण कहा है। श्रीदारिकशरीरका जघन्य अनुभागबन्ध देव करते हैं, इसलिए इसके जघन्य अनु-भागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम नौ बटे चौदह राजुपमाण कहा है। इसी प्रकार उद्योत व यशःकीर्तिके जघन्य ऋौर ऋजघन्य अनुसागके बन्धक जीवो का यह स्पर्शन

३६४. पुरिसेसु पढमदंडओ विदियदंडओ इत्थिभंगो । इत्थि०--मणुस०-पंच-संठा०-ओरा०त्रंगो०-इस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर--आदे०-उचा० ज० अज० अहचोँ६० । पुरिस०--दोआउ०-तित्थ० ज० खेँत्त०, खज० ऋड० । णवुंस० ज० खंड०, अजह० अहचोँ६स० सव्यलो० । दोआउ०-तिण्णिजा०-आहार-दुगं ज० अज० खेँत० । वेउव्वियद्ध० खोघं । पंचि०-अप्पसत्थ०-तस-दुस्सर० ज०

घटित कर लेना चाहिए। औदारिकशरीरके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम त्राठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है। तैजसशरीर आदिका जधन्य त्रानुभागबन्ध स्वस्थान-विद्वारादिके समय तो होता ही है,पर नीचे छह राजु श्रीर ऊपर सात राजु कुल कुल कम तेरह राजुके भीतर माराए।न्तिक समुद्घातके समय भी होता है, इसलिए इनके जघन्य ऋनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम ऋाठ व कुछ कम तेरह बटे चौदह राज़ूपमाए कहा है। जो नीचे नारिकयों में मारिणान्तिक समुद्धात करते हैं उन तिर्यक्त चौर मतुष्योंके भी वैक्रियिकद्विकका जघन्य अनुभागबन्ध होता है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूशमाण कहा है स्त्रीर इनका अजघन्य अनुभागबन्ध देवों व नारिकयों में मारणान्तिक समुद्घातके समय भी सम्भव है। इसलिए इनके अजघन्य श्रमुमागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। अप्रशस्त विहायोगति श्रीर दुःस्वरका जवन्य अनुमागवन्य नारिकयों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय नहीं होता। इसलिए इनके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम त्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण यहा है। तथा इनका अजयन्य अनुभागबन्ध स्वस्थान विहारादिके समय तो होता ही है,पर नीचे व ऊपर कुछ कम बारह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धातके समय भी होता है, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ व कुछ कम बारह बटे चौदह राजू-प्रमाण भी कहा है। बादर प्रकृतिका जघन्य श्रीर अजयन्य अनुभागबन्य स्वस्थान विहारादिके समय भी होता है और नीचे छ व ऊपर सात राजुके भीतर भारणान्तिक समुद्धात करते समय भी होता है। इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन कुछ कम श्राठ व कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाख कहा है। तिर्यश्च श्रीर मनुष्य स्वस्थानमें व एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय सूदम आदिका दोनों प्रकारका श्रमुभागवन्य करते हैं, इस-लिए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है।

३६४. पुरुषोंमं प्रथम दण्डक और दूसरे दण्डकका भक्क स्रीवेदी जीयोंके समान है। स्निवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रातप, प्रशस्त विहायोगिति, सुभग, सुस्वर, श्रादेय श्रोर उचगोत्रके जधन्य श्रोर श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुषवेद, दो श्रायु श्रीर तीर्थङ्करके जधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेदके जधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रो श्रायु, तीन जाति श्रीर श्राहारकद्विकके जधन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। बैक्रियिकशारीर श्रादि छहका भङ्ग श्रोपके समान है। पद्मीन्द्रयज्ञाति, श्रप्रशस्त चिहायोगिति, त्रस श्रीर दु।स्वरके जधन्य श्रीर श्रजधन्य श्रनुभागके

अजि ब्रह्व-बा॰ । तेजा०-[क०-] पसत्य०४—अगु०३—पज्ज०-पत्ते०--णिमि० ज० अहतेरह०, अजि० श्रह चोँदह० सञ्चलो० । ओरा० ज० अह--णवचोँ०, अजि० श्रह० सञ्चलो० । उज्जो०-जस० ज० श्रज० ब्रह-णव० । बादर० ज० श्रज० अह-तेरह० । सुदुम०-श्रपज्ज०-साधार० ज० अजि० लो० असं सञ्चलो० ।

३६५. णबुंसगे पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-म्रादा०-णीची०-पंचंत० ज० खेँत्त०, म्रज० सव्वलो०। सादादिदंडओ ओघं। इत्थि०-णवुंस०-पंचिं०--ओरा०--तेजा०--क०--ओरा०म्रंगो०-

बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। तेजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वचुत्रिक, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम काठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नो बटे चौदह राजु भाग चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। उद्योत और यशाकीर्तिक जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। चादरके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्पर्क, अपर्याप्त और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और साधारणके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात भागप्रमाण और साधारणके जघनन्य भागप्त स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — पुरुषवेदी जीवोंमें स्पर्शन प्रायः कविदी जीवोंके समान है। जहाँ योड़ा-बहुत अन्तर है भी, उसे स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिए। उदाहरणार्थ-क्षिवेदी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध केवल मनुष्यिनियाँ हो करती हैं, इसलिए वहाँ इसकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारका स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। किन्तु पुरुषोंमें देव भी इसका बन्ध करते हैं, इसलिए यहाँ इसके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहकर भी अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान कहकर भी अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुपमाण कहा है। इसी प्रकार क्षिवेदी जीवोंसे यहाँ पद्धिनिद्रयज्ञाति और अस प्रकृतिके स्पर्शनमें भी अन्तर घटित कर लेना चाहिए।

३६५. तपुंसकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कपाय, सात नोक-षाय, तिर्यञ्चगति, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपधात, आतप, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेन्नके समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण सेन्नका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भक्त ओधके समान है। कीवेद, नपुंसकवेद, पञ्चोन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधुन्निक, ज्योत, त्रसचतुष्क और निर्माण

र_ु ता० श्रा॰ प्रत्योः स्नादा० उप० गाँचा०इति पाठः ।

पसत्य०४-अगु०३-उज्जो०-तस४-णिमि० ज० छ०, अज० सव्वलो० । दोआउ०-वेजन्वियछ०-आहारदुग-तित्थ० इत्थिभंगो । मणुसाउ० तिरिक्खोघं ।

३८६, अवगद०-मणपज्जव०--संज०--सामाइ०--छेदो०-परिहा०--सुहुम० ज० भ्रज० खेॅत्त०। मदि-सुद० ओघं। विभंगे पंचिदियभंगो ।

३६७. आभिणि०-सुद्०-ओधि० पंचणा०-छ्दंस०-बारसक०-सत्तणोक०-अप्प-सत्य०४-उप०-तित्थ०-पंचंत० ज० खेँत्त०, अज० श्रद्धचोँ०। दोवेदणी०-मणुसाउ०-मणुसगदिपंचग०-पंचि०-तेजा०-क०-समचदु०--पसत्थ०४-त्रगु०३-पसत्थ०-तस०४-

के जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राज्यमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, वैकियिक छह, आहारकरारीरद्विक और तीर्यक्कर प्रकृतिका भक्त स्वीवेदी जीवोंके समान है। मनुष्यायु-का भक्त सामान्य तिर्यक्कोंके समान है।

विशेषार्थ — यहाँ आतपके सिवा पाँच ज्ञानावरणादिके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व ज्ञोचके समान है और आतपके जघन्य अनुभागवन्धका स्वामित्व सामान्य तिर्यक्कों के समान है। यतः ओघसे पाँच ज्ञानावरणापि और सामान्य तिर्यक्कों के आतपके जघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन स्त्रेत्रके समान कहा है। तथा नपुंसक सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनके अज्ञघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनके अज्ञघन्य अनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन सब लोक प्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदि वण्डकका भङ्ग ओघके समान, नरकायु, देवायु और वैकियिक छह आदिका भङ्ग संत्रेत्रके समान और मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य तिर्यक्कोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। अब रहा स्त्रेवेदवण्डक सो स्पर्शनकी दृष्टिसे संज्ञी पक्कोंन्द्रिय नपुंसकों में नारिकयों की मुख्यता है, इसलिए इनके जवन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजूपमाण कहा है। तथा इनके अज्ञघन्य अनुभागका वन्ध एकेन्द्रियादि जीवों के सम्भव है, अतः इनके अज्ञचन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन सहा है।

३६६. ऋपगतवेदी, मनःपर्ययञ्चानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परि-हारविशुद्धिसंयत और सूच्मसाम्परायसंयत जीवो में जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवो में ओघके समान है। तथा विभक्तज्ञानियों में पद्धोन्द्रयों के समान है।

विशेषार्थ—अपगतवेदी आदि जीवों का स्पर्शन सेत्रके समान है, इसलिए इन मार्गणाओं में अपनी-अपनी प्रकृतियों के जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों में स्वामित्व सम्बन्धी विशेषताके होने पर भी स्पर्शन ओघके समान बन जाता है, इसलिए वह ओघके समान कहा है। तथा चारों गतिके पक्षोन्द्रिय जीव विभक्षज्ञानी हो सकते हैं, इसलिए विभक्षज्ञानी जीवों में स्पर्शन पक्षोन्द्रयों के समान बन जानेसे वह पक्षोन्द्रयों के समान कहा है।

३६७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवो में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कवाय, सात नोकवाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात, तीर्थक्कर और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवो का स्पर्शन चेत्रके समान है। अजघन्य अनु-भागके बन्धक जीवो ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो वेद-नीय, मनुष्यायु, मनुष्यगतिपञ्चक, पञ्चे न्द्रियंजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्नसंस्थान, थिराधिर-सुभासुभ-सुभग--सुस्सर-आर्दे०-जस०-अजस०-णिमि०-उद्या० ज० अज० अह०। देवाउ०--आहारदुगं ज० अज० खेँत्त०। देवगदि०४ ज० खेँत०, अज० इद्यों०। एवं श्रोधिदंस०-सम्मादि०--खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णवरि खइग०-उवसम० किंचि० विसेसो णादव्वो।

३६८. संजदासंजि० सादासाद० अरदि-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस० अजस० जि० अजि० इचोँ० | सेसाणं जि० खेँत्त०, अजि० इचोँ० | देवाउ०-तित्थ० जि० अजि० खेँत्त० | असंजदेसु ओर्घ |

प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलचुनिक, प्रशस्त विद्यागाति, त्रसचतुष्क, स्थिर, श्रस्थिर, श्रुम, अशुम, सुमग, सुस्वर, श्रादेय, यशकीर्ति श्रयशकीर्ति, निर्माण श्रीर उचगोत्रके जवन्य श्रीर श्रजपन्य श्रानुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजूप्रमाण चैत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकके जवन्य श्रीर अजवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। देवगतिचतुष्कके जवन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रजपन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रजपन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रजपन्य श्रनुभागके वन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सन्यग्टिष्ठ, श्रायिकसन्यग्टिष्ठ, वेदकसन्यग्टिष्ठ, उपशमसन्यग्टिष्ठ श्रीर सन्यग्रहिष्ठ जीवों के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रायिकसन्यग्टिष्ठ श्रीर उपशमसन्यग्रहिष्ठ जीवों में कुछ विशेषता जाननी चाहिए।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्ध श्रोपके समान है श्रीर श्रोधसे इन प्रकृतियों के जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान घटित करके बतला आये हैं, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है। तथा आभिनिवोधिकज्ञानी आदिका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण है, इसलिए इनके अजघन्य व दूसरे दण्डकमें कही गई सब प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवायुका जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध तिर्यक्र और मनुष्य तथा आहारकद्विकका दोनों प्रकारका अनुभागवन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं। यतः इन जीवों का स्पर्शन लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण है, अतः इन प्रकृतियों के दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवगतिचतुष्कका जघन्य अनुभागक्य मिण्यात्वके अभिमुख तिर्यक्ष और मनुष्य करते हैं, अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन के समान कहा है। तथा इन जीवों के मारणान्तिक समुद्धातके समय भी इनका बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन के अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन के समान कहा है। तथा इन जीवों के मारणान्तिक समुद्धातके समय भी इनका बन्ध होता है, अतः इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। श्रेष कथन सुगम है।

३६८. संयतासंयत जीनोंमें सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, श्ररति, शोक, स्थिर, श्रस्यिर, श्रम, श्रशुभ, यशःकीतिं श्रीर श्रयशःकीतिंके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीनों ने कुछ कम छह बटे चौदह राज्यभाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियों के जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीनों का स्पर्शन चेश्रके समान है श्रीर श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीनों ने कुछ कम छह बटे चौदह राज्यभाग चेश्रका स्पर्शन किया है। देवायु श्रीर तीर्थंद्वर प्रकृतिके जघन्य और श्रजघन्य श्रनुभागके बन्धक जीनों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रसंयतों में श्रोधके समान भक्त है।

विशेषार्थं -संयतासंयतो में सातावेदनीय श्रादिका जघन्य अनुभागवन्ध मारणान्तिक ससु-

३६६. किण्णाए पंचणा०-णवर्दस०--भिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्खगिदितग-अप्यसत्थ०४-उप०-द्यादा०-पंचंत० ज० खेँत्त०, द्रज० सन्बळो०। सादादिदंढग्रो ओघो। इत्थि०-णवुंस०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-ओरा०श्रंगो०-पसत्थ०४अगु०३-उज्जो०--तस०४-णिमि० ज० छ०, अज० सन्बळो०। दोआउ०--देवगिददुग०--तित्थ० ज० अज० खेँत्त०। मणुसाउ० णवुंसगभंगो। णिरयगिददुग-वेउव्वि०वेउव्वि०श्रंगो० ज० अज० छच्चो०। एवं णील-काऊणं। णवरि अप्यप्पणो रज्ज्ञ् भाणिदव्वा। तिरिक्ख०३ एइंदियभंगो।

द्घातके समय भी सम्भव है। इनका तथा देवायु और तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा शेष प्रकृतियों का श्रज्ज्ञचन्य श्रनुभागवन्य तो मारणान्तिक समुद्घातके समय सम्भव है ही। इसलिए यह सब स्पर्न कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण कहा है तथा सातावेदनीयदण्डक सिवा शेष प्रकृतियों का ज्ञचन्य और देवायु व तीर्थङ्कर प्रकृतिका ज्ञचन्य और श्रज्ज्ञचन्य श्राप्त सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मात्र तीर्थङ्कर प्रकृतिका श्रज्ज्ञचन्य श्राप्ता के समय भी होता है, पर उससे स्पर्शनमें कोई विशेषता नहीं श्राती। शेष कथन सुगम है।

३९६. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सिध्यात्य, सोलह कृषाय, सात नोक्षाय, तिर्यक्वयतित्रिक, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, रप्पात, अप्रतप और पाँच अन्तरायके ज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है और अज्ञान्य अनुभागके वन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग ओघ के समान है। स्त्रीवेद, नपुंसरकेद, पद्धोन्द्रियज्ञाति, औदारिकश्रारीर, तेजसश्रीर, कार्मणश्रीर, औदारिक आङ्गोन्पाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुत्वपुत्रिक, उद्योत, असचतुष्क और निर्माण्के ज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूश्माण चेत्रका स्पर्शन किया है। अज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, देवगतिद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके ज्ञान्य और अज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। नरकगतिद्विक, वैक्षियकश्रीर और वैक्षियक आङ्गोपाङक ज्ञान्य और अज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंने इछ कम छह बटे चौदह राजूश्माण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार नील और कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी राजू कहनी चाहिए। तथा तिर्येद्धगतित्रिकका भङ्ग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके स्वामियोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे यहाँ इन प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेत्रके समान कहा है। तथा कृष्ण लेश्याका स्पर्शन सब लोक होनेसे यहाँ इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सब लोक कहा है। आगे भी सब लोक प्रमाण स्पर्शनका इसी प्रकार स्पष्टीकरण करना चाहिए। सातावेदनीय दण्डकके स्पर्शनका स्पष्टीकरण आघके समान कर लेना चाहिए। नीचे छह राजू प्रमाण यथायोग्य स्पर्शन करनेवाले जीवोंके भी स्वीवेदका जघन्य अनुभागबन्ध सम्भव है। अतः इनके जबन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन छुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नरकायु, देवायु और देवगतिद्धिकका जघन्य अनुभागवन्ध तियंख्र और मनुष्य तथा तीथंदुर प्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्ध समुक्य तथा तीथंदुर प्रकृतिका जघन्य अनुभागवन्ध स्पर्शन कहा को समुक्य स्थानावन्ध स्थान जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नपुंसकोंमें मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। नपुंसकोंमें मनुष्यायुका भङ्ग सामान्य

४००. तेऊष् पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-छण्णोक०-भ्रणसत्थ०४उप०- पंचंत० क० खेँत०, अज० अट्ट-णव० । सादासाद०-तिरि०-एइंदि०-ओरा०तेजा०-[क०-] हुंड०--पसत्थव०४-तिरिक्खाणु०-अगु०३-उज्जो०-थावर०-बादर-पज्जत०-पत्ते०-थिरादितिण्णियु०-दूभग--श्रणादेँ०-णिमि०--णीचा० ज० अज० अट्ट-णव० । इत्थि०-दोआउ०-मणुस०-पंचि०-पंचसंठा०-श्रोरा०श्रंगो०-झस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०--आदेँ०--तित्थ०-उच्चा० ज० अज० अट्टचोँ० । पुरिस० ज० खेँत०, अज० अट्ट० । णवुंसगे सोधम्मभंगो । देवाउ०-आहारदुगं खेँत० । देवगदि०४ ज० श्रज० दिवहृचोँ६० । एवं पम्माए वि । णवरि सञ्चाणं रज्ज्व० अट्टचोँ० । देवगदि०४ पंचचोँ० ।

तिर्यक्वींके समान कहा है। वह स्पर्शन यहाँ भी प्राप्त होता है, इसिलए मनुष्यायुका भक्त नपुंसकोंके समान कहा है। जो तिर्यक्व और मनुष्य नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी नरकगतिद्विक और वैक्रियिकद्विकका जयन्य अनुभागवन्य सम्भव है, इसिलए इनके जयन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण कहा है। नील और कापोत लेश्यामें तिर्यक्वगतित्रिकका स्वामी बदल जानेसे स्पर्शन बदल जाता है। शेष सब स्पर्शन कृष्यालेश्याके ही समान है। मात्र नील लेश्या पाँचवें नरक तक और कापोत लेश्या तीसरे नरक तक होती है, इसिलए जहाँ इछ कम छह राजू स्पर्शन कहा है, वहाँ कुछ कम चार और कुछ कम दो राजू स्पर्शन कहना चाद्दिए।

४००. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यास्व, सोलह कषाय, छह नोक-षाय. अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपचात और पाँच अन्तरायके ज्ञाचन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ और कुछ कम नौ राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, तिर्यश्चराति, एकेन्द्रियजाति, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, उद्योत, स्थावर, बादर पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर आदि तीन युगल, दुर्भंग, अनादेय, निर्माण और नीचगोत्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु श्रीर कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, अह संहनन, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी, आतप, दो विहायोगित, त्रसं, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्थङ्कर श्रीर उचगोत्रके जघन्य श्रीर श्रजघन्य श्रतुमागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ वटे चौदह राज़ूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पुरुष्वेदके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सेत्रके समान है। अजधन्य अनु-भागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राज्यमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसक वेदका भक्क सौधर्मकरूपके समान है। देवायु श्रौर आहारकेद्विकका भक्क सेत्रके समान है। देवगति-... चतुष्कके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बंदे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सबके कुछ कम आठ बटे चौदह राजू कहने चाहिए। तथा देवगतिचतुष्कके कुछ कम पाँच घटे चौदह राजू कहने चाहिए।

विशेषार्थ-यहाँ जिन प्रकृतियोंका एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय जवन्य,

४०१. सुकाए खिवगाणं ज० खेंत्त०, अज० छ०। साददंडओ इत्थि०-णवुंस०-मणुसाउ०-मणुस०-पंचिदियादि याव णीचुचा० देवगदि०४—तित्थ० ज० अज० छचोँ०। देवाउ०-आहारदुगं खेंत्तं०।

४०२, अब्भवसि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचि०-ओरा०ऋंगो०-अप्पसत्थ०४-डप०-पंचंत० ज० ऋद्व-बारह०, अज० सव्वलो० ।

मजधन्य या दोनों अनुभागवन्ध सम्भव है, उनके बन्धक जीवोंका कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्रोर कुछ कम नौ बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है। जिनका जयन्य या अजधन्य अनुभाग-बन्ध एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और स्वस्थान-विहारादिके समय सम्भव है, उनके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण कहा है। प्रथम रण्डक की प्रकृतियों, पुरुषवेद, देवायु और आहारकि हिक्के जधन्य अनुभागके वन्धक जीवोंका तथा देवायु और आहारकि हिक्के अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है, यह स्पष्ट ही है। देवोंमें नपुंसकवेदका जधन्य अनुभागवन्ध तथायोग्य विद्युद्ध अन्यतर देव करता है। यही स्वामित्व यहाँ पीतलेश्यामें भी कहा है, इसिक्त यहाँ नपुंसकवेदका भङ्ग सौधर्मकल्पके समान कहा है। तियंद्ध और मनुष्य अपर डेढ़ राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी देवगतिचतुष्कका जधन्य और अजधन्य अनुभागवन्ध करते हैं, इसिलए इनके दोनों प्रकारके अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पद्मलेश्यामें देवगतिचतुष्कका यह स्पर्शन कुछ कम पाँच राजू है, क्योंकि पद्मलेश्याके साथ तियंद्ध और मनुष्यांका स्पर्शन बारहवें कल्प तक देखा जाता है। शेष सब कथन पीतलेश्याके समान है। मात्र पद्मलेश्यामें कुछ कम नौ वटे चौदह राजू नहीं कहने चाहिए, क्योंकि इस लेश्यावाले एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते।

४०१ शुक्ललेश्यामें श्रपक प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्परांत श्लेत्रके समात है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सालावेदनीयदण्डक, खीवेद, नपुंसकवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति व पञ्चोन्द्रिय जातिसे लेकर नीच व उचगोत्र तक तथा देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्करके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम छहबटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकद्विकका भङ्ग चेत्रके समान है।

विशेषार्थ — यहाँ क्ष्पक प्रकृतियोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। तथा यहाँ शुक्ल लेश्याका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाण होनेसे इनके अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यहाँ पद्मन्त्रियजातिसे नीचगोत्रके मध्यकी प्रकृतियाँ, अर्थात् चपकप्रकृतियाँ, आहारकद्विक, देवगतिचतुष्क व तीर्थङ्कर प्रकृतिके सिवा नामकर्मकी शुक्ललेश्यामें वेंधनेवाली सब प्रकृतियाँ ली गई हैं। इनका यथा सम्भव जयन्य और अजघन्य अनुभागवन्ध देवोंमें व देवों और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय होता है। अतः इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौरह राजुपमाण कहा है। इसी प्रकार देवगतिचतुष्क और तीर्थङ्कर प्रकृतिकी अपेना भी स्पर्शन जान लेना चाहिए। शेष कथन सगम है।

४०२. अभवयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, नी नोकवाय पक्कोन्द्रियजाति, ब्रोदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात श्रीर पाँच अन्तरायके जघन्य श्रतुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम श्राठ बटे चौदह राजू श्रीर कुछ कम बारह बटे चौदह राजू-प्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। श्रज्ञचन्य श्रतुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण चेत्रका

श्रोरा०--तेजा०--क०--पसत्य०४--अगु०३--उज्जो०--बादर-पज्ज०--पत्ते०--णिमि० ज० अह-तेरह०, अज० सव्बद्धो० । सेसाणं मदि०मंगो ।

४०३. सासणे सव्विवसुद्धाणं ज० अद्व०, ऋज० अद्व-बारह०। दोश्राज०-मणुसगिददुगं ज० अज० अद्वचों०। देवाच० खेत्त०। देवगिद०४ ज० अज० पंचचों०। तिरिक्खगिदितिगं ज० खेत्त०, अज० अद्व-बारह०। सेसाणं ज० अज० अद्व-बारह०। मिच्छादिद्वि० मिद०भंगो।

स्परान किया है। खोदारिकशारीर, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, धरोत, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक खोर निर्माणके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम खाठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सज्ज्ञान्य अनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रभाण चेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंका भंग मत्यक्षानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—स्रभव्योंमें चारों गतिके संझी जीव पाँच झानावरखादिका जघन्य अनुभागवन्ध करते हैं। यह बन्ध नीचे छह व उत्पर छह राजूके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सन्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम स्नाट बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। स्रोदारिकशरीर स्नादिका नीचे छह स्रोर उत्पर सात राजूके भीतर यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धातके समय भी जघन्य अनुभाग- बन्ध सम्भव है, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम स्नाट बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

४०३. सासादनसम्यन्दृष्टि जीवोंमें सर्व विशुद्ध प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और मनुष्यगतिद्विकके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका मंग चेत्रके समान है। देव-गतिचतुष्कके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यक्षगतित्रकके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तिर्यक्षगतित्रकके जधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र के समान है। अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष प्रकृतियोंके जधन्य और अजधन्य अनुभागके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सिष्याहिष्ट जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान मङ्ग है।

विशेषार्थ— सर्व विशुद्ध परिणामों से जवन्य बँधनेवाली प्रकृतियाँ ज्ञानावरणादि हैं। यहाँ वारों गतिके संज्ञी जीव इनका जधन्य अनुमागवन्य करते हैं। मारणान्तिक समुद्धातके बिना इनका स्पर्शन कुछ कम बाठ बटे चौदह राजूपमाण है, इसलिए इनके जघन्य अनुमागके बन्धक जीयोंका स्पर्शन कुछ कम बाठ बटे चौदह राजूपमाण कहा है। इनके अजघन्य तथा जिन प्रकृतियोंका यहाँ नामोबारके साथ स्पर्शन नहीं कहा गया है, उनके जघन्य और अजघन्य अनुमागके बन्धक जीयों का स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूपमाण है, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि उनका यह दोनों प्रकारका अनुमागवन्य नीचे पाँच और उपर सात इस प्रकार कुल बारह राजूके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करनेवालोंके भी होता है। आयुकर्मका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और मनुष्यगतिद्विकका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और मनुष्यगतिद्विकका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता और मनुष्यगतिद्विकका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समुद्धातके समुद्धात करनेवालोंके ही सम्भव है,

४०४. असण्णीसु पंचणा०--णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-पंचि०-तेजा०- [क०-] श्रोरा०श्रंगो०-पसत्थापसत्य०४-अग्र०४-आदाव-तस४-णिमि०-पंचंत० ज० खेँत्त०, अज० सञ्बलो० | दोआड०-बेडिव्यिडक्कं ज० अज० खेँत० ! साददंडओ ओघो । मणुसाड० किण्णभंगो । तिरिक्खगदितिग-औरा०-डज्जो० तिरि-क्खोघं । अणाहार० कम्मइगभंगो ।

एवं फोसणं समत्तं।

२१ कालपरूवणा

४०५. कालं दुविधं---जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०--ओघे० आदे० । ओघे०

अतः स्वस्थान विद्वारादिककी अपेक्षा इनके जघन्य और अजयन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन प्रधान होनेसे यह कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवोंमें सहस्रार करण तक मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले सासादन जीवोंके भी देवगतिचतुष्कका जघन्य और अजघन्य अनुभागकन्य होता है, इसलिए इनके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवायुका जघन्य अनुभागवन्ध तिर्यक्ष और मनुष्य करते हैं, इसलिए इसके जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। तिर्यक्षगतित्रिकका जघन्य अनुभागवन्ध सातवें नरकके नारकी करते हैं। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन अनुभागवन्ध सातवें नरकके नारकी करते हैं। अतः इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन होने के समान कहा है। तथा इनका अजघन्य अनुभागवन्ध नीचे पाँच व अपर सात कुल बारह राजुके भीतर मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीव भी करते हैं। इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजु अगेर कहा है। शेष कथन स्पष्ट है।

४०४. श्रसंक्रियों में पाँच क्रानावरण, तो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, तो नोक-षाय, पख्ने न्द्रियज्ञाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, श्रोदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, श्रानुरुलघुचतुष्क, श्रातप, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रोर पाँच श्रन्तरायके जघन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो श्रायु श्रोर वैकियिक छहके जघन्य श्रोर श्रजधन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग श्रोपके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। तिर्यक्रगितित्रक, श्रीदारिकशरीर श्रीर उद्योतका भङ्ग सामान्य तिर्यक्षोंके समान है। श्रनाहारक जीवोंका भङ्ग कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागवन्य पद्धोन्द्रिय असंशी करते हैं, इसलिए इनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेन्नके समान कहा है। एकेन्द्रिय सब लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इनके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ।

२१. कालम्बरूपणा

४०५. काल दो प्रकारका है-जयन्य स्रीर उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका

पंचणा०-णबदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोल्लसक०-णवणोक०-तिण्णिगं०-चदुजा०-ओरा० पंचसंठा०-ओरा० छंगो०- इस्संघ०- छप्पसत्थ०४ – तिण्णिआणु०- उप०-आदा०-- उज्जो०- झप्पसत्थ०- थावर४ -- अधिरादिछ०--णीचा०-- पंचंत० उक्कस्सअणुभागवंधगा केवचिरं कालादो होंति १ जहण्णेणं एगसमयं । उक्कस्सेण आविल्याए असंखेंज्जिदिभागो । अणुक० अणुभाग० सञ्बद्धा । सादा०-तिरिक्खाउ०-- देवगदि०-- पंचि०-चदुसरीर-समचदु०-- दोश्रंगो०-- पसत्थ०४ -- देवाणु०-- अगु०३ -- पसत्थव०-- तस०४ -- थिरादिछ०-- णिमि०-तित्थ०- उच्चा० उ० ज० एग०, उ० संखेंज्जस० । अणुक० सञ्बद्धा । णिरयाउ० उ० ज० ए०, उ० आविल् असंखें० । अणु० ज० ए०, उ० पिल् असंखें० । दोश्राउ० उ० ज० ए०, उ० संखेंज्जस० । अणु० ज० ए०, उ० पिल् असंखें० । एवं ओघभंगो पंचिदिय-तस०२ -- पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-छोरा०- इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोघादि०४ -- मिद०-सुद०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०- मिच्छा०-सण्णि०-आहारए ति । णविर चदुण्णं आउगाणं अणुक० बंधगा असंखेंज '- रासीणं अप्यप्पणो पगदिकालो कादच्यो ।

है--श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, श्रसातावेदनीय, मिध्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तीन गति, चार जाति, श्रीदारिकशरीर, पाँच संस्थानं, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छंद संदनन, श्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन श्रानुपूर्वी, उपघात, आतप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके छत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलिके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। सातावेदनीय, तिर्यञ्चायु, देवगति, पञ्चोन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त-वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर श्रीर उच्चगोत्रके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। नर-कायुके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवित्तिके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्रमुत्कृष्ट श्रमुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल परुयके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है। दो आयुर्ख्योके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इस प्रकार श्रोधके समान पञ्चोद्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रता-ज्ञानी, असंयत, चज्जदर्शनी, अचजुदर्शनी, भव्य, भिध्यादृष्टि, संज्ञी ख्रीर आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रसंख्यात संख्यावाली राशियोंमें चार श्रायुओं अनुत्कृष्ट अनु-भागके बन्धक जीवोंका अपनी-अपनी प्रकृतियोंका जो बन्धकाल हो,वह कहना चाहिए।

विशेषार्थ--यहाँ नाना जीवोंकी ऋपेचा प्रत्येक प्रकृतिका बन्ध-काल कितना है,इसका विचार

१. ता॰ प्रतौ पंचणा॰ श्रसादा॰ मिच्छु॰ सोलसक । तिण्याग॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ होति होति (१) सहण्योग इति पाठः । ३. ता॰ प्रतौ सञ्चक्षा (द्वा) इति पाठः । ४. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः नंधगा लो॰ श्रसंखेज्ज॰ इति पाठः ।

४०६. एइंदिएसु तिरिक्खाउ०-उज्जो० उ० ज० ए०, उ० श्रावत्ति० असंखेँ०। अणु० सञ्बद्धी । मणुसाउ० ओघो । सेसाणं दोपदा सञ्बद्धा । एवं बादरतिगाणं ।

किया गया है। उसमें भी श्रोघसे प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट बन्धकाल कितना है, इसका सर्वप्रथम निर्देश किया गया है। कुल बन्ध प्रकृतियाँ १२० हैं। उनमेंसे पाँच ज्ञानावरणादिके उत्कृष्ट धानुभागवन्यका एक जीवकी श्रपेक्षा जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल किसीका एक समय श्रीर किसीका दो समय बतलाया है। श्रव यदि नाना जीव निरन्तर इन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करें तो कितने काल तक करेंगे, इसीप्र इनका यहाँ उत्तर दिया गया है। जैसा कि बन्धस्वामित्वके देखनेसे विदित होता है कि इन प्रकृतियों के **बत्हृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संज्ञी पञ्चोन्द्रिय मिध्यादृष्टि होते हैं** और वे असंख्यात **हैं,** अतः यह भी सम्भव है कि नाना जीव एक समय तक इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट श्रनुभागबन्ध करें और यह भी सम्भव है कि लगातार एकके बाद दूसरा निरन्तर उनका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते रहें। इस प्रकार निरन्तर यदि बन्ध करें भी तो वह सब काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं हो सकता। यही कारण है कि यहाँ इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रभाण कहा है। इनके अनु-त्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका काल सर्वदा है,यह स्पष्ट ही है; क्योंकि ऐसा कोई समय नहीं है जब इन प्रकृतियोंके बन्धक जीव न हों अर्थात् वे सर्वदा पाये जाते हैं। दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृ-तियोंके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं, अतः उत्तके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जयन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय और अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा कहा है। नरकायुके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल तो झानावरखके समान ही है। इसके अनुस्कृष्ट अनुभागके वन्धकके कालमें अन्तर है। बात यह है कि एक आयुका बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त हैं। उसमें भी अनुत्कृष्ट अनुभागका बन्धकाल कमसे कम एक समय हैं। यह सम्भव है कि नाना जीव एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्य करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनु-भागवन्ध करने लगें श्रीर उस दूसरे समयमें एक भी जीव श्रानुत्रृष्ट श्रानुभागवन्ध न करे, इसलिए तो नरकायुके अनुत्कृष्टं अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय कहा है और निरन्तर भन्तमुं हूर्त अन्तमुं हूर्तके क्रमसे यदि नाना जीव नरकायुका बन्ध करते रहें, तो इस सब कालका योग परुवके असंख्यातवें भागप्रमाण होगा। इसीलिए नरकायुके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका उत्कृष्ट काल परुयके असंख्यातवें भागप्रमाख कहा है। अब रहीं मनुष्यायु श्रीर देवायु सो इनके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रमंख्यात है। इसलिए इनके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्यक जीवोंका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल परुषके ऋसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ ऋन्य जितनी मार्गण।एँ गिनाई हैं उनमें यह प्ररूपणा बन जाती है, इसलिए उनके कथनको अपेघके समान कहा है। मात्र असंख्यात संख्यावाली राशियोंमें चार आयुर्वोंके अनुस्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंके कालके आवसे अन्तर है। श्रतः उसे प्रकृतिबन्धके समान जानने की सूचना की है। सो प्रकृतिबन्धके श्रनुसार उसे समफ लेना चाहिए।

४०६. एकेन्द्रियोंमें तिर्यक्कायु और उद्योतके उत्कृष्ट अनुभागके बन्धकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागके बन्ध-कोंका काल सर्वदा है। मनुष्यायुका भङ्ग श्रोधके समान है। शेष प्रकृतियोंके दोनों पदोंके बन्धक

ता॰ प्रतौ सळ्वहा॰ (का) इति पाठः । ता॰ प्रतौऽप्येऽप्येवमेव बहुलतया पाठो निवदः ।

सञ्बस्रहुमाणं दोआउ० एइंदियभंगो । सेसाणं दोपदा सञ्बद्धा ।

४०७. अवगद०-सुहुमसं० सव्वपग० उ० ज० ए०, उ० संखें जा० अणु० ज० ए०, उ० अंतो ०। सेसाणं णिरयगदीणं याव सण्णि ति एसिं परिमाणेण संखें जा० तेसिं उ० ज० ए०, उ० संखें जास०। एसिं परिमाणेण असंखें जा० तेसिं उक्त० तेसिं उ० ज० ए०, उ० संखें जास०। णवि वादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरवण प्रतिपत्ते यञ्चपज्ञता० आउगवज्जाणं सव्वासिं पगदीणं दोपदा सव्वद्धा ति। तिरिक्खाउ० उक्त० णिरयाउभंगो। अणुक्त० सव्वद्धा। मणुसाउ० आधो। एसिं परिमाणे अणंता तेसिं सव्वद्धा। अणुक्त० अणुभागवंधो सव्वेसिं अप्पप्पणो पगदि-कालो एदेण बीजेण याव अणाहारए ति णेद्व्यं।

एवं उकस्सकालो समतो।

४०८. जह० पगदं । दुवि० श्रोधे० — श्रादे०। श्रोधे० पंचणा०-णवदंस०-भिच्छ०-सोलसक०--सत्तणोक०-आहारदुग०--अप्पसत्थ०४-उप०-तित्थ० पंचंत० ज० ज० ए०,

जीव सर्वदा हैं। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त खीर बादर एकेन्द्रिय श्रापर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। सब सूदम जीवोंमें दो खायुओंका भक्त एकेन्द्रियोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंके दो पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ — यहाँ एकेन्द्रियों में तिर्यक्षायु श्रीर उद्योतके उत्कृष्ट श्रनुभागके बन्धक जीव श्रसं-ख्यात होनेसे उनके उत्कृष्ट अनुभागके वन्धक जीवोंका जवन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावलिके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। इसी प्रकार सब काल घटित कर लेना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट काल समाप्त हुन्ना ।

४०८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ श्रीर श्रादेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कवाय, सात नोकवाय, श्राहारकद्विक, श्राप्रशस्त

१ ता॰ प्रती ऋगु॰ उ॰ ज॰ ए॰ संखेज्ज॰ ऋगु॰ ज॰ ए॰ उ॰ [एतचिन्हान्तर्गतः पाठोऽ धिकः प्रतीयते] ऋतो॰, ऋा॰ प्रती ऋगु॰ ज॰ ए॰,उ॰ संखेज्ज॰,ऋगु॰ ज॰ ए॰,उ॰ ऋंतो॰ इति पाठः। उ० संखेंजा० | अज० सव्बद्धा | सादासाद०-तिरिक्खाड०-मणुस०-चदुजा०-झस्संठा०-इस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि०४-थिरादिझयुग०-उचा०ज० अजह० सव्बद्धा | इत्थि०--णवुंस०--तिण्णिगदि--पंचि०--चदुसरीर--दोश्रंगो०--पसत्थ०४ -तिण्णिआणु०--अगु०३-आदाडजो०--तस०४-णिमि०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० आवत्ति० असं० | अजह० सव्बद्धा | तिण्णिआउ० ज० ज० ए०, उ० आवत्ति० असं० | अजह० ज० ए०, उ० पत्तिदो० असंखेँ० | एवं ओघभंगो कायजोगि-ग्रोरास्ठि०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-आहारए ति |

४०६. णिरयादि याव श्रणाहारए ति एसिं संखेंज्जनीविगा तैसि न० न० ए०, उ० संखेंज्ज० । अन० सव्बद्धा । एसिं असंखेंज्जनीविगा तेसिं न० न० ए०, उ० आविति० श्रसंखें० । अन० सव्बद्धा । एसिं अणंतरासी० तेसिं न० सव्बद्धा । सव्वाणं अनहण्णं० अणुभागवंधकाले अप्पप्पणो पगदिकालो कादव्यो । एदेण बीजेण णेदव्यं नहण्णुक० काले० पुढवि०-श्राड०-तेउ०-वाड०-बादरवणप्कदिपत्तेयाणं च किंचि

वर्णचतुष्क, उपघात, तीर्थक्कर श्रीर पाँच श्रान्तरायके जयन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। श्राज्यग्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, तिर्थक्षायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगित, स्थावर आदि चार, स्थिर श्रादि छह युगल श्रीर उद्याप्तके जघन्य श्रीर श्राज्यन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। स्नीवेद, नपुंसकवेद, तीन गति, पञ्चोन्द्रयजाति, चार शरीर, दो श्राङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन श्रानुपूर्वी, श्रागुरुलधुत्रिक, श्रातप, उद्योत, त्रसचतुष्क, निर्माण श्रीर नीचगोत्रके जघन्य श्रनुभागके वन्धक जीवोंका अधन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावितके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्राज्यन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावितके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्राज्यन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल श्रावितके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। श्राज्यन्य श्रनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है श्रीर उत्कृष्ट काल पत्यके श्रसंख्यातवें भागप्रमाण है। उसी प्रकार श्रोचके समान काययोगी, श्रीदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कपायवाले, मत्यझानी, श्रुताझानी, श्रसंयत, श्राचनुदर्शनी, भव्य मिण्यादि श्रीर श्राहारक जीवोंके जानना चाहिए।

४०६. नरकगितसे लेकर अनाहारक मार्गणा तक जिनके संख्यात संख्यावाले स्वामी हैं, उनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। जिनके असंख्यात जीव स्वामी हैं, उनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का जघंन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। जिनके अनन्त जीव स्वामी हैं, उनके जघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तथा सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवोंका काल अपने-अपने प्रकृतिवन्धके कालके समान करना चाहिए। इस बीजपदके अनुसार जघन्य और उत्कृष्ट काल जान लेना चाहिए। किन्तु पृथिवी-कोयिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और बाहर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंमें

१. ता॰ प्रती एसं (सिं) इति पाठः ।

विसेसो साधेदव्वं । वादरअपज्जतपम्च ज० अज० सव्वद्धा । एवं कालो समत्तो ।

२२ अंतरपरूवणा

४१०. श्रंतरं दुविधं—जह० उक्क०। उक्क० पगदं। दुवि०--ओघे० आदे०। ओघे० सादा०-जस०-उचा० उ० अणुभागबंधंतरं जै० ए०, उ० अम्मासं०। अणु० णित्य श्रंतरं। सेसाणं सन्वेसिं उ० ज० ए०, उ० असंखेंज्ञा लोगा। श्रणुक्क० णित्य श्रंतरं। णविरि तिण्णं श्राउगाणं अणुक्क० ज० ए०, उ० चदुवीसं ग्रहुतं।

४११. एइंदिएसु सञ्चपगदीणं उ० अणु० णित्य अंतरं । दोत्राउ०-उज्जो० ओघं । एवं बादरपज्जत्तापज्जत्त० । सञ्बस्रहुम--सञ्बवणप्फदि--णियोद०-बादरपुढ०-

कुछ विशेष साथ लेना चाहिए। बादर अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागके बन्धक जीवों का काल सर्वदा है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

२२ अंतरप्ररूपणा

४१०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—अघ और आदेश । आघसे सातावेदनीय, यशकीर्ति और उद्योत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्यका अन्तर काल नहीं है । शेष सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है कि तीन आयुओं अनुत्कृष्ट अनुभागवन्यका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहूर्त है ।

विशेषार्थ — सातावेदनीय आदिका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चपकश्रीणमें होता हैं। अतः इनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। यद्यपि देयगित आदि अन्य प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट अनुभागवन्ध क्षपकश्रेणिमें होता है, पर सातावेदनीय आदिके समान सब जीवोंके उनका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध हो ही ऐसा कोई नियम नहीं है; इसलिए उनके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका उत्कृष्ट अन्तर परिणामोंके अनुसार कहा है। अनुभागवन्धके योग्य कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। जिनमेंसे उत्कृष्ट अनुभागवन्धके योग्य परिणाम एक समय के अन्तरसे भी हो सकते हैं और कमसे सब परिणामोंका अन्तर देकर भी हो सकते हैं। इसलिए यहाँ शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायु इन तीन आयुओंका अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक समान निरन्तर नहीं होता। उस-उस गतिमें उत्पन्न होनेका जो अन्तर है, वही यहाँ इन आयुओंके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धक अनुतकृष्ट अनुता विश्वस सहित कहा है।

४११. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट श्रीर श्रनुत्कृष्ट श्रनुभागबन्धका श्रन्तरकाल नहीं है। दो श्रायु श्रीर उद्योक्तका भङ्ग श्रोधके समान है। इसी प्रकार बादर, बादर पर्याप्त श्रीर बादर श्रप-

१. ता० प्रतौ ऋशाभागं तं ५० इति पाठः ।

आउ०-तेउ०-वाउ०-वादरपत्ते०अपज्जतगाणं च दोआउ० ओघं । सेसाणं णस्थि श्रंतरं । पुढवियादिचदुण्णं तेसिं बादर०--बादरपत्तेय० दोआउ० ओघं । दोपदा ओघं आभिणि०भंगो । एवमेदेसि बादरपज्जत्तगाणं च । णवरि तिरिक्खाड० अणुक् पगदिश्रंतरं । एवं ओघभंगो णेरडग-तिरिक्ख-मणुस-देव--विगर्लिटि०-पंचि०-तस०२-पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि-श्रोरालि०-ओरालियमि०-वेउव्वि०-वेउ०मि०-आहार ०-आहारमि०-कम्पइ०--इत्यि०-पुरिस०--णवुंस०-अवगद०--कोधादि०४--पदि०-स्रद०-विभंग०-आभिणि०-सुद०--ओधि०-मण्पज्ज०--संजद-सामाइ०छेदो०--परिहार०-मुहुमसं०-संजदासंजद०-असंज०-चक्खु^¹०-अचक्खु०-झोधिदं०-छल्लेस्स०-भवसि०-श्रब्भवसि ०-सम्मादि ०--खइग०--वेदग०--उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छा-सण्णि-श्रसिएए-त्राहार०-अणाहारए ति। णवरि सञ्चाणं अणुक्क०अणुभागबंधंतरं अणुक्कस्स-हिदिबंधंतरं अणुकस्सहिदिबंधभंगो। णवरि अवगद०-मुहुमसं०-[सादा०-]जस०-उचा० **उ० अणु० अणुभाग० ज० ए०,उ० छम्मासं०। सेसाणं उ० ज० ए०,उ० वासपुप्रत्तं। अणु०** ज० ए०, उ० द्रम्पासं० । उबसम० सादा०-जस०-उञ्चा० उ० ज० ए०,उ० बासपुषत्ते ।

एवसकस्समंतरं समसंै।

र्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। सब सूद्म, सब वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर पृथिवीकायिक अप-र्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक ऋपर्याप्त जीवोंमें दो आयुर्जोंका मुक्क श्रोचके समान है। तथा शेष प्रकृत तियोंके उत्कृष्ट और अनुस्कृष्ट अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। पृथिवी आदि चार, उनके बादर भौर बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवोंमें दो आयुओंका भङ्ग श्रोचके समान है। शेष प्रकृतियोंके दो पर्दोका भङ्ग श्रोधसे कहे गये श्रामिनियोधिकज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार इनके बावर पर्याप्तकों के भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें तिर्यक्कायुके अनुत्कृष्ट अनुभागबन्धका अन्तरकाल प्रकृतिबन्धके अन्तरकालके समान है। इस प्रकार खोघके समान नारकी, तिर्येख्न, मनुष्य, देव, विक्लेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों भनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, त्रीदा-रिककाययोगी, खौदारिकमिश्रकाययोगी, वैकियिककाययोगी, वैकियिकमिश्रकाययोगी, आहारक-काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणुकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, तपुंसकवेदी, त्रपंगतवेदी, कोधादि चार कषायवाले,मत्यज्ञानी, श्रुताझानी,विभक्तझानी, श्रामिनियोधिकझानी,श्रुतझानी, अवधि-हानी, मनःपर्ययक्षानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूच्म-साम्परायसंयत, संयतासंयत, असंयत, चज्जदर्शनी, अचज्जदर्शनी, अवधिदर्शनी, छह लेश्यावाले, भन्य, श्रभव्य, सम्यग्दष्टि, क्षायिकसम्यग्दष्टि, वेदकसम्यग्दष्टि, उपश्रमसम्यग्दष्टि, सासादनसन्यग्दष्टि, सम्य-ग्निध्यादृष्टि, मिध्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सबके अनुत्कृष्ट अनुभागवन्धके अन्तरका भङ्ग अनुत्कृष्ट स्थितवन्धके अन्तरके समान है। इतनी और विशेषता है कि अपगतवेदी, और सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें साता-वेदनीय, यशःकीर्ति स्रोर उचगोत्रके उत्कृष्ट स्रोर अनुत्कृष्ट श्रनुभागवन्थका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। शेष प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षापृथकत्वप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागक्ष्यका

१. ता० प्रती संबदासंबद० चक्खु० इति पाठ:। २. ता० प्रती उचा० उ०वासपुचर्न इति पाठ:। ता • प्रतौ ऐवं उकस्यमंतरं समत्तं इति पाठो नास्ति ।

४१२. जह॰ पगदं । दुवि०-श्रोघे० श्रादे० । ओघे॰ पंचणा०-चदुदंसणा०-चदु-संज०-पुरिस०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० झम्मासं० । अज० णत्थि श्रंतरं । पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-अद्दणोक०-तिण्णिआउ०-तिण्णिगिदि-पंचि०-पंचसरीर-तिण्णिश्रंगो०-पसत्यापसत्थ०४—तिण्णिआणु०-अगु०४—आदाउज्जोव-तस०४—णिमि०-तित्थ०-णीचा० ज० ज० ए०, उ० असंखेंज्जा लोगा । अज० णत्थि श्रंतरं । णवरि तिण्णिआऊणं अज० श्रणु०भंगो । सादासाद०-तिरिक्खाउ०-मणुसग०-चदुजा०-झस्संठा०-झस्संघ०-मणुसाणु०-दोविहा०-थावरादि०४—थिरादिछयुग०-उचा० ज० अज० णत्थि श्रंतरं । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि०--णवुंस०-कोधादि०४—अचक्खु०--भवसि०--

४१३. मणुस०३--पंचि०-तस०४-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-आभि०-

जचन्य स्मन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। उपशमसन्यग्द्दि जीवोंमें साता-वेदनीय, यशकीर्ति स्नौर स्मगोत्रके उत्कृष्ट अनुभागवन्थका जधन्य स्नन्तर एक समय है स्नौर उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तव प्रमाण है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर समाप्त हुन्या ।

४१२. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है— कोघ और आदेश। कोघसे पाँच कानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्यलन, पुरुषवेद और पाँच अन्तरायके जघन्य अनुभागवन्धका ज्ञान्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। पाँच दर्शनावरण, मिध्यात्व, बारह कषाय, आठ नोकषाय, तीन आयु, तीन गति, पश्चे न्द्रियजाति, पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अप्रशस्त वर्ण-चतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, आतप, उद्योत, असचतुष्क, निर्माण, तीर्यक्कर और नीचगोश्रके जघन्य अनुभागवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि तीन आयुर्शोंके अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल अनुत्कृष्टके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, तिर्यक्कायु, मनुष्यगति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहारोगति, स्थावर आदि चार, स्थिर आदि छह युगल और उचगोश्रके जघन्य और अजघन्य अनुभागवन्धका अन्तरकाल नहीं है। इस प्रकार अधिक समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुं-सक्वेदी, कोधादि चार कथायाले, अच्छुर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिए।

विशेषार्थं—पाँच झानाजरणादिका जघन्य श्रमुमागवन्य चपकश्रेणिमें होता है। श्रतः जघन्य श्रमुमागवन्य चपकश्रेणिमें होता है। श्रतः जघन्य श्रमुमागवन्यका जघन्य श्रम्तर एक समय और उत्कृष्ट श्रम्तर छह महीना कहा है। चार दर्शनावरण श्रादिके जघन्य श्रमुभागवन्यका जघन्य श्रम्तर एक समय, जघन्य श्रमुभागवन्य एक समयके श्रम्तरसे सम्भव है, इसलिए कहा है श्रीर परिणामोंकी दृष्टिसे उत्कृष्ट श्रम्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तीन श्रायुश्रोंके श्रजवन्य श्रमुभागवन्यकी विशेषता श्रमुत्कृष्टके समान है। कारण कि नरकगति श्रादिमें उत्पत्तिका जो श्रम्तर है,वही इन श्रायुश्रोंके श्रजवन्य श्रमुभागवन्यका श्रम्तर जानना चाहिए। तथा सातावेदनीय श्रादिका जघन्य और श्रजघन्य श्रमुभागवन्य किसी न किसीके निरम्तर होता रहता है, इसलिए इनके जघन्य और श्रजघन्य श्रमुभागवन्यके श्रम्तर कालका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है। श्रागे भी इसी प्रकार श्रम्तर घटित कर लेना चाहिए।

मुद्द०-ओधि०-मणपज्ज०-संजद--सामाइ०-छेदोव०-चक्खु०-ओधिदं०-मुक्कले०-सम्मादि०-खइय०-उवसम०-सण्णीमु पंचणा०-चढुदंस०-चढुसंज०-पुरिसं०-पंचंत० ज० ज० ए०, उ० छम्मासं०। अज० णित्थ श्रंतरं। सेसाणं पगदीणं उक्कस्सभंगो। अवगद०-मुहुमसं० पंचणा०--चढुदंस०--चढुसंज०-पुरिसवेद--पंचंतं० ज० श्रज० ज० ए०, उ० छम्मासं०। [णवरि मुहुमसं० चढुसंज०-पुरिसवे० वज्ज०।] सादा०-जस०- उद्या० ज० ज० ए०, उ० वासपुध०। अज० ज० ए०, उ० छम्मासं०।

४१४. एइंदिएसु मणुसाउ०-तिरिक्ख०३ ओघं | सेसाणं ज० अज० णित्य अंतरं | बादरएइंदिय-पज्जतापज्जत्त-सव्वसुहुमाणं मणुसाउ० ओघं | सेसाणं ज० अज० णित्थ अंतरं | एवं पंचण्णं कायाणं अप्पज्जत्तगाणं वणप्पदि-णियोदाणं च | अवसेसाणं णिरय-तिरिक्खादीणं जासि दोण्हं पदा सव्वद्धा तासि णित्थ अंतरं | एसि ण सव्वद्धा तेसि उक्कस्सभंगो | एदेण बीजेण णेदव्वं याव अणाहारए ति | णवरि ओधिणा०-इत्थि०-णवुंस०-ओधिदं०-उवसम० वासपुधत्तं |

एवं श्रंतरं समत्तं ।

पुरुषवेदी, श्राभिनिबोधिक शानी, श्रुत शानी, श्रवधिश्वानी, भनः पर्ययक्वानी, संयत, सामायिक संयत, हेदोपस्थापनासंयत, बच्च दर्शनी, श्रवधिद्वानी, श्रुवल लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, सायिक सम्यग्दृष्टि, सपशमसम्यग्दृष्टि श्रीर संश्ची जीवोंमें पाँच श्चानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद श्रीर पाँच श्वन्य श्रम्भागवन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है श्रीर उत्सृष्ट श्रम्तर छह महीना है। श्रावचन्य श्रमुभागवन्धका श्रम्तरकाल नहीं है। श्रेष प्रश्वितयोंका भक्ष उत्सृष्ट के समान है। श्रावणतवेदी श्रीर सूच मसाम्परायसंयत जीवोंमें पाँच श्वानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद श्रीर पाँच श्रम्तरायके जघन्य श्रीर श्रावचन्य श्रमुभागवन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है श्रीर उत्सृष्ट श्रम्तर छह महीना है। इतनी विशेषता है कि सूच मसाम्परायसंयत जीवोंमें चार संज्वलन श्रीर पुरुषवेदको छोड़कर कहना चाहिए। सातावेदनीय, यशाकीर्ति श्रीर उत्सृष्ट श्रम्तर वर्षपृथकत्य प्रमाण है। श्राचचन्य श्रमुभागवन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है श्रीर उत्सृष्ट श्रम्तर छह महीना है।

४१४. एकेन्द्रियोंमें मनुष्यायु और तिर्यक्कमितित्रिकका भक्त श्रीविक समान है। शेष प्रकृतियोंके ज्ञान्य श्रीर अजवन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं हैं। बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त व श्राप्त्रीर श्रीर सब सूक्त जीवोंमें मनुष्यायुका भक्त श्रीविक समान हैं। शेष प्रकृतियोंके ज्ञान्य श्रीर श्राप्तवन्य श्रनुभागवन्धका श्रन्तरकाल नहीं हैं। इसी प्रकार पाँच स्थावरकाय, उनके अप-याप्त, बनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिए। श्रवशेष नरक श्रीर तिर्यक्रगति श्रादिमें जिनके दोनों पदोंका काल सर्वदा है, उनका श्रन्तर काल नहीं है और जिनका सर्वदा काल नहीं है, उनका उत्कृष्टके समान भक्त है। इस प्रकार इस बीजपदके श्रनुसार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रवधिक्वानी, क्वीवेदी, नपुंसकवेदी, श्रवधिदर्शनी

१. श्रा॰ प्रती चतुरंग्न॰ पुरिस॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती चतुरंश्व॰ पुरितवेद॰ चतुर्वेद॰ [१] चतुरंश्न॰ पंचंत॰, श्रा॰ प्रती चतुरंग्न॰ पुरिसवेद॰ चतुरवेद॰ चतुर्वेद० पंचंत॰ इति पाठः । ३. ता॰ प्रती एवं श्रंतरं समर्च इति पाठो नास्ति ।

२३ भावपरूवणा

४१५. भावं दुवि०—जि० उठा उक्कि पगदं । दुवि०—आघे०आदे०। स्रोघे० सञ्चपगदीणं उक्कस्साणुक्कस्सअणुभागबंधए ति को भावो ? ओदश्गो भावो । एवं याव अणाहारए ति ।

४१६. जह० दुवि० — ऋोघे० आदे० । ऋोघे० सञ्चपगदीणं ज० अज० अणु-भागबंघए ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारए ति ।

एवं भावं समत्तं ।

२४ अप्पाबहुअपरूवणा

४१७. ऋष्पाबहुगं दुवि०—सत्थाणअष्पाबहुगं चेव परत्थाणेअष्पाबहुगं चेव। सत्थाणऋष्पाबहुगं दुविथं—जह० उक्क० च। उक्क० पगदं। दुवि०-श्रोघे० आदे०। ओघे० सन्वतिन्वाणुभागं केवल्रणाणावरणीयं। आभिणि० अर्णतगुणहीणं। सुद० अर्णतगु०। ओधि० अर्णतगु०। मणपज्जव० अर्णतगुणहीणं।

श्रीर उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें वर्षपृथक्तवप्रमाण श्रन्तर है।

इस प्रकार अन्तर काल समाप्त हुआ।

२३ भावमरूपणा

४१५. भाव दो प्रकारका है—जघन्य और उटकृष्ट । उटकृष्टका प्रकरण हैं । निर्देश दो प्रकारका है—स्रोघ स्रोर खादेश । स्रोघसे सब प्रकृतियोंके उटकृष्ट स्रीर स्रमुटकृष्ट स्रमुभागके बन्धक जीवोंका कौन भाव हैं ? स्रोदियक भाव हैं । इसी प्रकार स्रमाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

४१६. जघन्य दो प्रकारका है—जोव श्रीर श्रादेश । श्रोघसे सब प्रकृतियोंके जघन्य श्रीर श्रजचन्य श्रमुभागके बन्धकोंका कौन भाव है १ श्रीदयिक भाव है । इसी प्रकार श्रनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जीवके श्रीपरामिक श्रादि अनेक भाव हैं। उनमें बन्धका प्रयोजक एकमात्र श्रीद्यिक भाव हैं; श्रन्य सब नहीं, यही इससे सिद्ध होता है।

इस प्रकार भाव समाप्त हुन्ना ।

२४ अल्पबहुत्वमरूपणा

४१७. श्रम्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान श्रम्पबहुत्व और परस्थान श्रम्पबहुत्व।स्वस्थान श्रम्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—श्रोच श्रोच श्रोच श्रोच केवलज्ञानावरण सबसे तीव श्रमुभागवाला है । इससे श्राभिनि-बोधिक ज्ञानावरणका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा हीन है । इससे श्रमुभाग श्रमन्तगुणा हीन है । इससे अवधिज्ञानावरणका श्रमुभाग श्रम्तगुणा हीन है । इससे सनःपर्ययज्ञानावरणका श्रमुभाग श्रम्तगुणा हीन है । इससे सनःपर्ययज्ञानावरणका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा हीन है ।

१, ता ॰ प्रतौ एवं मार्थं समर्च इति पाठो नास्ति । २. ता ॰ प्रतौ -बहुगे (गं) चेति परस्याय-इति पाठः ।

४१८. सन्वतिव्वाणुभागं केवल्रदंस७ । चक्खु० अणंतग्र० । अचक्खु० अणंतग्र० । अचक्खु० अणंतग्र० । अचक्खु० अणंतग्र० । अचक्खु० अणंतग्र० । अचक्खा-पचला० अणंतग्र० । णिद्दा० अणंतग्र० । पचला० अणंतग्र० ।

३१६. सव्वतिव्वाणुभागं साद०। ऋसाद० भ्रणंतग्र०।

४२०. सव्वतिव्वाणु० मिच्छ०। अणंताणुवंधिलो० अणंतगु०। माया० विसेसा०। कोधे विसे० । माणो विसे० । संजलणाए लोभो अणंतगु० । माया० विसे० । कोधे विसे० । माणो विसे० । एवं पश्चक्लाण०४—अपश्चक्लाण०४ । णवुंस० अणंतगु० । अरिद० अणंतगु० । सोग० अणंतगु० । भय० अणंतगु० । दुगुंच्छ० अणंतगु० । इत्यि० अणंतगु० । पुरिस० अणंतगु० । रदि० अणंतगु० । हस्स० अणंतगु० ।

४२१. सञ्वतिञ्वाणुभागं देवाउ० । णिरयाउ० अणंतगु० । मणुसाउ० ऋणंतगु० । तिरिक्ताउ० अणंतगु० ।

४२२. सब्बतिब्बाणुभागं देवगदि० । मणुस० अणंतगु० । णिरय० अणंतगु० ।

४१८. केवलदर्शनावरण सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे चज्जदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अच्छिन्दर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अवधि-दर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाविका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाविका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाविका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

४१६. सातावेदनीय सबसे तीव्र श्रमुभागवाला है। इससे श्रसातावेदनीयका श्रमुभाग श्रामन्तगुणा हीन है।

४२०. मिथ्यात्व सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग अनन्तानुबन्धी होन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी कोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी कोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन कोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अन्यवहुत्व कहना चाहिए। इससे नपुंसक-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अर्थका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अर्थका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्सा-का अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्त्रीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुष-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे एक्ष-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे इससे एक्ष-वेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है।

४२१. देवायु सबसे तीत्र श्चनुभागवाला है। इससे नरकायुका श्चनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका श्रनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्वश्चायुका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। ४२२. देवगति सबसे तीत्र श्रनुभागवाला है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग श्रनन्तगुणा

रे. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः श्रयांतगु॰ योचा॰ श्रचक्खु॰ इति पठः । २ ता॰ प्रती थि (थी) य॰ इति पठः ।

तिरिक्ति अणंतगु० । सन्वतिन्वाणुभागं पंचिदियः । एइंदि० अणंतगुणही० । वेइंदि० अणंतगु० । तेइंदि० अणंतगु० । चदुरिंदि० अणंतगु० । सन्वतिन्वाणुभागं कम्मइ० । तेजा० अणंतगु० । आहार० अणंतगु० । वेडिन्ति० अणंतगु० । ओरालि० अणंतगु० । सन्वतिन्वाणुभागं समचदु० । हुंद० अणंतगु० । णग्गोद० अणंतगु० । सादि० अणंतगु० । खुळा० अणंतगु० । वामण० अणंतगु० । सन्वतिन्वाणुभागं आहार- अंगो० । वेडिन्ति० अणंतगु० । ओरालि० श्रंगो० अणंतगु० । संघदणं संद्राणभंगो । सन्वतिन्वाणुभागं पसत्थवण्ण० । अरेपालि० श्रंगो० अणंतगु० । संघदणं संद्राणभंगो । सन्वतिन्वाणुभागं पसत्थवण्ण० । अप्पसत्थ० । अप्पात्थ० । पर्धाद० अणंतगुणही० । उप० अणंतगुणही० । उपनि सन्वयुगलाणं सन्वतिन्वाणि पसत्थाणि । अप्पसत्थाणि पदिपक्ताणि अणंतगुणही० ।

४२३, सव्वतिव्वाणुभागं विरियंत०। हेहा दाणंतरी० अणंतगु०।

४२४. णिरएसु यत्तियाओं पगदीओ अत्थि तत्तियाओ मुलोघो । एवं सत्तसु

हीन हैं। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्येख्रगतिका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है। पक्षीन्द्रयजातिका ऋनुभाग सबसे तीत्र है। इससे एकेन्द्रियजातिका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे द्वीन्द्रियजातिका अनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे त्रीन्द्रिय जातिका अनुभाग त्रानन्तगुर्णा हीन है। इससे चतुरिन्द्रियजातिका अनुभाग त्रानन्तगुर्णा हीन है। कार्मणशरीर सबसे तीत्र अनुभागवाला है । इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे आहारकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्त-गुणा हीन है । इससे श्रौदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । समचतुरस्रसंस्थान सबसे तीव्र अनुभागवाला है। इससे हुण्डकसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुए। हीन है। इससे न्यपोध-परिमण्डल संस्थानका ऋनुभाग ऋनन्तगुणा द्दीन है। इससे स्वातिसंस्थानका ऋनुभाग अनन्त-गुणा हीन है । इससे कुन्जकसंस्थानका श्रनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे वासन-संस्थानका अनुभाग अनन्तगुए। हीन है। आहारकआङ्गोपाङ्ग सबसे तीत्र अनुभागवाला है। इससे वैक्रियिकशारीर श्राङ्गोपाङ्गका श्रानुभाग श्रानन्तगुणा हीन है। इससे श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। छह सहनतोंका अल्पबहुत्व छह संस्थानोंके समान है। प्रशस्त वर्षचतुष्क सबसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे अप्रशस्त वर्षचतुष्कका श्रनुभाग अनन्त-गुणा हीन है। चार त्रानुपूर्वियोंके व्यनुभागका त्राल्पबहुत्व चार गतियोंके समान है। व्यगुरुलघु सबसे तीव अनुभागवाला है । इससे उच्छ्वासका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे परघातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे उपघातका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। यहाँ सब युगलोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग सबसे तीत्र है। इससे अप्रशस्त प्रतिपत्त प्रकृतियोंका अनुभाग श्चनन्तगुर्णा हीन है।

४२३. वीर्यान्तराय सबसे तीव अनुमागवाला है। इससे पूर्व दानान्तरायतक कमसे प्रत्येकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन, अनन्तगुणा हीन है।

४२४. नारिकयोंमें जितनी प्रकृतियाँ हैं, उनका अल्पबहुत्व मूलोघके समान है। इसी प्रकार

१. ता॰ प्रतौ॰ पगदि इति पाठः । २. ता॰ पतौ हेडाहु दंडाणं (दाणां) तरा, ऋा॰ प्रतौ हेडा हंडं दार्गंतरा इति पाठः । ३. ऋा॰ प्रतौ प्रतियाको इति पाठः ।

पुढवीस् । तिरिक्लेस् सञ्वतिञ्वाणुभागं णिरयाउ० | देवाउ० अर्णतरहु० । मणुसाउ० अणंतग्रु० । तिरिक्काउ० ऋणंतग्रु० । सञ्वतिव्वाणुभागं देवग० । णिरयग० अणं-तिरिक्खग० अर्णतगु०। मणुसग० ऋर्णतगु०। सेसं मूलोघं । एवं सञ्बतिरिक्स्वाणं । पंचिं० तिरि०अपज्ज० णेरहगर्भगो । एवं गाणं सञ्चएइंदि० सञ्चविगल्लिदिय-सञ्चपंचकायाणं चै । मणुस०३ तिरिक्लभंगो । सेसं मृलोघं । देवाणं मूलोघं । पंचि ०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजो०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोघादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-चक्ख०-श्चचक्तु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-सिएए०-आहारए ति मुलोघं। णवरि मदि०--सुद०विभंग०--असंज०-किएएाले ०--अब्भवसि०--भिच्छा०-सएए।सि तिरिक्लभंगो । औरालि० मणुसि०भंगो । औरालियमि० तिरिक्लोघं । वेडव्वि०-वेडच्यि॰मि॰ देवगदिभंगो । आहार०-आहारमि॰ सच्वह०भंगो । कम्मइ० स्रोरालिय-मिस्स०भंगो। एवं अणाहार०। अवगद० ओघं। एवं सुहुमसंप०। आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०--संजद-सामाइ०-खेदो०-ओधिदं '०--सुक्तते०--सम्मादि०-खइग०-उव--सम् सातों प्रथिवियोंमें जानना चाहिए। तिर्यख्रोंमें नरकायु सबसे तीव्र अनुभागवाली है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यक्रायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। देवगति सबसे तीत्र अनुभागवाली है। इससे नरक-गतिका अनुभाग अनन्तगुणा होन हैं। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन हैं। इससे मनुष्यगतिका श्रानुभाग अनन्तगुणा दीन है। शेष भङ्ग मृलोधके समान है। इसी प्रकार सब तिर्यक्कोंमें जानना चाहिए। पञ्चीन्द्रियतिर्यञ्जश्रपर्याप्तकोंमें नारिकयोंके समान भक्क है। इसी प्रकार सब श्रपर्याप्त,सब एकेन्द्रिय,सब विकलेन्द्रिय श्रीर सब पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए । मनुष्यत्रिकमें चार गतियोंका भङ्ग तिर्यक्क्षोंके समान है। शेष भङ्ग मूलोबके समान है। देवोंमें मूलोधके समान भक्त है। पद्धोन्द्रियद्विक, त्रसद्दिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी. स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभन्नज्ञानी. असंयत, चल्लदर्शनी, अचल्लदर्शनी, तीन लेश्याबाले, भव्य, अभव्य, मिर्ध्यादृष्टि, संझी श्रीर आहा-रक जीवोंमें मूलोबके समान भक्न है। इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभक्नज्ञानी, श्रसंयत, कृष्णोलेश्यावाले, अभव्य, मिध्यादृष्टि श्रीर संज्ञी जीवोंमें तिर्यक्रोंके समान श्ररूपबहुत्व है। श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भङ्ग है। श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य तिर्यक्चोंके समान भक्त हैं। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भक्त है। ब्राहारककाययोगी और ब्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थ-सिद्धिके समान भन्न है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें श्रीदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भक्क है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें आधिके समान भक्त है। इसी प्रकार सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। आमिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, त्रविधदर्शनी, शुक्ललेरथावाले, सम्यग्रहष्टि, क्षायिकसम्यग्रहिष्ट**्रत्यो**र उपश्रमसम्यग्रहिष्ट जीवोंमें

१. ग्रा॰ प्रतौ सन्त्रएइंदि॰ विगलिदिय-पंचकायायं च इति पाठः । २. ग्रा॰ प्रतौ सेसं मूलोधं पंचि॰ इति पाठः । ३. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः तिष्णिले॰ इति पाठः । ४. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः श्रमण्यीमु इति पाठः । ५. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः श्रमण्यीमु इति पाठः । ५. ता॰ ग्रा॰ प्रत्योः खड्ग॰ बेदग॰ उपस्म॰ इति पाठः ।

ओघं। णवरि अप्यप्पणो पगदीओ णादच्वाओ ।

४२५. परिहार०-संजदासंज०-वेदग० सव्वद्वभंगो । णील-काऊणं सव्वतिव्वाणु-भागं देवग० । मणुसग० अणंतग्र० । तिरिक्ख० अणंतग्र० । णिरय० अणंतग्र० । एवं आणु० । सेसाणं किएणा०भंगो । तेउ० देवभंगो । एवं पम्भाए वि । सासणे णिर्यभंगो । सम्मामि० वेदग०भंगो । असएखी० तिरिक्खभंगो ।

एवं उकस्ससत्याणअप्पाबदुगं समतं ।

४२६, जह० पग० | दुवि०-ओंधे० आदे० | ओधे सव्वमंदाणुभागं मणपज्ज० | ओधिणा० ऋणंतगुणव्भिहियं | सुद० अणंतगुणव्भ० | आभिर्णि० अणंत०व्भिहि० | केवल० अणंतगु० |

४२७. सन्त्रमंदाणुभागं श्रोधिदं । अचक्खु अणंतगु । चक्खु अणंतगु । केवलदं अणंतगु । पचला अणंतगु । णिद्दा अणंतगु । पचलापचला अणंतगु । णिद्दाणिद्दा अणंतगु । पिद्दाणिद्दा अणंतगु ।

४२८. सव्वमंदाणुभागं असादा० । सादा० अणंतगुणब्भहि० ।

श्रीघके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

४२५. परिहारिचिशु दिसंयत, संयतासंयत और वेदकसन्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्वार्थिसिद्धिके समान भक्क हैं। नील और कापोत लेश्यामें देवगतिका अनुभाग सबसे तील हैं। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यद्धगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार चार आनुपूर्वियोंका अन्यबहुत्व जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भक्क छुप्णलेश्याके समान है। पीतलेश्यामें देवगतिके समान भक्क है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। सासादनमें नारिकयोंके समान भक्क है। सन्यग्मध्यादृष्टि जीवोंमें वेदकसन्यग्दृष्टि जीवोंके समान भक्क है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्वस्थान अन्यदृत्य समाप्त हुआ।

४२६. जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—श्रोघ और आदेश। श्रोघसे मनःपर्ययक्तानावरण सबसे अन्द अनुभागवाला है। इससे अवधिक्तानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आभिनि-बोधिकक्तानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलक्कानावरणका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है।

४२७ श्रवधिदर्शनावरण सबसे मन्द श्रनुभागवाला है। इससे श्रवजुदर्शनावरणका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा अधिक है। इससे वजुदर्शनावरणका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे केवलदर्शनावरणका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे प्रचलाका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे प्रचलाका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे प्रचलाप्रचलाका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे प्रचलाप्रचलाका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे निद्रानिद्राका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है।

४२८ स्रसातावेदनीय सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

१. ता० ह्या॰ प्रत्योः श्रयांतगुण्नभिदयं इति पाठः । २. ह्या॰ प्रतौ सुद० स्रयांतगुण्नभ० दुर्गः स्रयांतगुण्नभ० स्राभिण् ।

४२६, सन्वमंदाणुभागं लोभसंजळ०। मायासंज० श्रणंतग्र०। माणसंज० अणंतग्र०। कोधसंज० अणंतग्र०। पुरिस० अणंतग्र०। हस्स० अणंतग्र०। रदि० अणंतग्र०। दुगुं० अणंतग्र०। भय० अणंतग्र०। सोग० अणंतग्र०। अरदि० अणंतग्र०। इत्यि० अणंतग्र०। णवुंस० अणंतग्र०। पचक्ताणमाण० अणंतग्र०। कोधे विसे०। माया विसे०। लोभो विसे०। एवं अपचक्ताणचदुक्क-अणंताणु ०४। मिच्छ० अणंतग्र०।

४२०, सञ्चमंदाणुभागं तिरिक्खाउ० । मणुसाउ० ऋणंतग्रु७ । णिरयाउ० स्रणंतग्रु० । देवाउ० अणंतग्रु० ।

४३१. सन्वमंदाणुभागं तिरिक्ख०। णिरय० अणंतग्र०। मणुस० अणंतग्र०। देव० अणंतग्र०। सन्वमंदाणुभागं चदुरिं०। तीईदि० अणंतग्र०। बेइदि० अणंतग्र०। एईदि० अणंतग्र०। पंचि० अणंतग्र०। सन्वमंदाणुभागं ओरालि०। वेउन्वि० अणंतग्र०। तेज० अणंतग्रुण०। कम्मइ० अणंतग्र०। आहार० अणंतग्र०। सन्वमंदाणुभागं

४२६. लोभ संज्वलन सबसे मन्द् अनुभागवाला है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोध-संज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोध-संज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे बारेका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अरिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यानमानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यान क्रोधमें व्यक्ति करना चाहिए। अनन्तानुवन्धी लोभके अनुभागसे मिध्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३० तिर्यक्रायुका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४३१. तिर्येख्वगतिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जीन्द्रियजातिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे जीन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे छीन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे एकेन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे एकेन्द्रियजातिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मन्द अनुभागवाला है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नेजस्थारीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नेजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नेजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नामिणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नामिणशरीरका

१. आ॰ मती स्रपन्नस्थायाचतुन्तं स्रयांतगु॰ इति पाटः।

णम्गोदः । सादिः अणंतगुः । सुज्जः अणंतगुणःभः । वामणः अणंतगुः । हुंदः अणंतगुः । सम्बदः अणंतगुः । सम्बमंदाणुभागं ओराः अगंतगः । वेडिन्निः अगंतगः । अणंतगः । सम्बमंदाणुभागं ओराः अगंतगः । वेडिन्निः अगंतगः । सम्बमंदाणुभागं अप्प-सत्यः । पसत्यवणाः अभंतगः । यथा गदी तथा आणुषः । सन्वमंदाणुः उपः । परः [अणंतगः ।] उस्सासः अणंतगः । अग्रुः अणंतगः । सन्वमंदाणः अप्पसत्यविः । पसत्यविः अणंतगः । तसादिदसयुगः सादासादभंगो ।

४३२. सव्वमंदाणु० णीचा० । उचा० अर्णतगु० । सव्वमंदाणु० दाणंतरा० । एवं परिवाडीए उवरिमाणं अर्णतगुणब्भहियं ।

४३३. णिरएसु सन्वमंदाणु०पचला०। णिद्दा० अणंतग्रु०। ओधिदं अणंतग्रु०। अचक्खु० [अणंतग्रु०]। चक्खु० अग्रांतग्रु०। केवलदंस० [अप्रांतग्रु०।] पचलापचला० अग्रंतग्रु०। णिद्दाणिद्दा अणंतग्रु०। थीणगि० अग्रंतग्रु०। सन्वमंदाणु० इस्स०। रदि० ऋग्रंतग्रु०। सु०।दुग्रुं० अग्रंतग्रु०। भय० अग्रंतग्रु०। पुरिस० अग्रंतग्रु०। संजलणकोष० अग्रंतग्रु०। माणो विसे०। माया० विसे०। लोभो विसे०। सोगो अग्रंतग्रु०। अरदि० अग्रंतग्रु०।

परिमण्डल संस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे स्वातिसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कुठनक संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वामनसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वामनसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हुण्डक संस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे सम्वतुरक्षसंस्थानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अौदारिक आङ्गोपाङ्ग सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे वैक्षियक आङ्गोपाङ्गका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। संहननोंका मङ्ग संस्थानोंके समान है। अन्नशस्त वर्णावतुष्क सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे प्रशस्त वर्णावतुष्कका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। चार गतियोंके समान चार आनुपूर्वी जाननी चाहिए। उपघात सबसे मन्द अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे परघातका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे परघातका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अगुरुल कुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अन्नशस्त विहायोगितिका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे प्रशस्त विहायोगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अगुरुल कुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। अन्नशस्त विहायोगितका अनुभाग सबसे मन्द है। इससे प्रशस्त विहायोगितका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। तस आदि दस युगलोंका मङ्ग सातावेदनीय-असातावेदनीयके समान है।

४३२. नीचगोत्र सबसे मन्द अनुभागवाला है । इससे उद्यगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । दानान्तराय सबसे मन्द अनुभागवाला है । इस प्रकार कमसे आगेकी प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है ।

४३३. नारिकयों में प्रचला सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अवज्ञदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अवज्ञदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अवज्ञदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्थानगुद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्थानगुद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे उनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मायासंव्यलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मायासंव्यलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मायासंव्यलनका अनुभाग

इत्थि अर्णातगुरु। णनुंस व अर्णातगुरु! अपचक्खाण व ४ -प्रचक्खाण व ४ - अर्णाताणु बं व ४ सजलणाए भंगो । मिच्छ व अर्णातगुरु। सन्त्रमंदाणु व तिरिक्खा छ व । मणुसा छ व अर्णातगुरु। सन्त्रमंदाणु व तिरिक्खा व । मणुसा छ व अर्णातगुरु। सन्त्रमंदाणु व तिरिक्खा व । मणुसा व अर्णातगुरु। सेसार्ण पगदीर्ण मूलोघं। एवं सत्तसु पुढवीसुरु।

४३४. सञ्वतिरिक्खा णेरइयभंगो । णवरि मोहस्स पचक्वाण०४ पुर्व्व काद्व्वं । सञ्वञ्जपज्जत्तवाणं देवाणं सव्वण्इंदिय-सव्वविगस्टिंदिय-पंचकायाणं च णेरइग-भंगो । किंचि विसेसो साधेदव्वो ।

४३५, मणुस०३-पंचि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०इत्थि०-पुरिस०-णवुंस० ओघं ! अवगर्द०-कोघादि०४-आभिण०-सुद०-ओघि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-सुहुमसं०-चक्खु०-अचक्खु०-ओघिदं०-सुक्ले०-भवसि०सम्मादि०-खइग०-उवसम०-सण्ण-आहारण् ति मूळोघं । ओरालियमि०-कम्मइ०मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-तिण्णिले०--अब्भवसि०--मिच्छा०-अणाहारएसु दंसणावरणीयं मोहणीयं णेरइगभंगो।सेसाणं मूलोघं।वेउन्वि०-वेउन्वियमि० देवभंगो।आहार०आहारमि०-परिहार०-संजदासंज०-सम्मामिच्छादि० सन्बद्दभंगो। तेउले०-पम्मले०

विशेष श्रधिक है। इससे लोमसंज्वलनका श्रनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे शोकका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा अधिक है। इससे श्ररिका श्रनुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रिके त्र । इससे श्रिके त्र । इससे श्रिके त्र । इससे त्रपुंसकवेदका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। श्रप्रत्याख्यानावरण चार श्रीर श्रमन्तानुवन्धी चारका भङ्ग संव्वलनके समान है। श्रमन्तानुवन्धी लोभके श्रनुभागसे मिध्यात्वका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। तिर्यक्रायुका श्रनुभाग स्रमन्तगुणा श्रधिक है। तिर्यक्रायुका श्रनुभाग स्रमन्तगुणा श्रधिक है। तिर्यक्रायिका श्रनुभाग स्रमन्तगुणा श्रधिक है। शेष प्रश्रतियोंका भङ्ग मूलोचके समान है। इससे प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए।

४३४. सब तिर्यक्रोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मोहनीयमें प्रत्याख्यानाषरण चारको पहले करना चाहिए। सब अपर्याप्त, देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। कुछ विशेषता साध लेनी चाहिए।

४३५. मनुष्यत्रिक, पञ्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काय-योगी, श्रौदारिककाययोगी, क्षीवेदी, पुरुषवेदी श्रौर नपुं सकवेदी जीवोंमें श्रोषक समान भन्न है। अपगतवदी, क्षोथादि चार कषायवाले, श्राभिनिबोधिकहानी, श्रुतहानी, श्रवधिहानी, मनः-पर्ययहानी, संयत, सामायिकसंयत, ह्रेदोपस्थापनासंयत, सूद्मसाम्परायसंयत, च् दुदर्शनी, श्रच्छु-दर्शनी, अवधिदर्शनी, श्रुकललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी श्रौर श्राहारक जीवोंमें मूलोघके समान मङ्ग है। औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यक्षानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, श्रभव्य, मिथ्यादृष्टि श्रौर श्रना-हारकोंमें दर्शनावरणीय और मोहनीयका भङ्ग नारिकयोंके समान है। श्रेष प्रकृतियोंका भङ्ग मूलोघके समान है। वैकिथिककाययोगी श्रौर वैक्रिथिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें देवोंके समान मङ्ग है। श्राहारककाययोगी,श्राहारकमिश्रकाययोगी, परिहारिक्युद्धिसंयत, संयतासंयत और सम्यग्निध्यादृष्टि

१. ता॰ प्रतौ पुरिस॰ गावृंस॰। श्रावगद॰, ऋा॰ प्रतौ पुरिस॰ ऋोघं। ऋवगद॰ इति पाठः ।

दंसणा०-मोह० तिरिक्त०भंगो । सेसं देवभंगो । वेदग० दंसणा०-मोह० तिरिक्त-गदिभंगो । सेसार्ण सञ्चद्वभंगो । सासणे णिरयभंगो । असण्णीसु सत्तरणं कम्माणं णिरयभंगो । णामाणं तिरिक्तभंगो ।

एवं जहण्णसत्थाणश्चप्पाबहुगं समत्तं ।

४३६. एतो परत्याणश्रप्पाबहुगं पगदं । दुविधं — ज० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि० — श्रोघे० आदे० । ओघे० उक्कस्तश्रो चदुस्सिट्टिपिदिददंडओ काद्व्यो भवदि । तं जहा — सव्वित्व्याणुभागं सादा० । जस०-उच्चा० दो वि तु० श्रणंतगुणहीणा । देव-गदि० अणंतगु० । कम्मइ० अणंतगुण०। तेज० अणंतगु० । [आहार० श्रणंतगुणही० ।] वेउव्व० श्रणंतगु० । मणुस० श्रणंत०। ओरालि० श्रणंत०। भिच्छ० श्रणंतगु केवलणा०-केवलदं०-असाद०-विरियंतरा० चत्तारि वि तुल्ला० श्रणंतगु० । अणंताणु०लोभ० श्रणंतगु० । माया विसे०। कोघो विसे० । माणो विसे० । संजलणाए लोभ० श्रणंतगु०। माया विसे० । कोघो विसे० । माणो विसे० । एवं पचक्लाण०४ — [अपचक्लाण०४ —] । आभिण०-परिभो० दो वि तु० अणंतगु० । चक्खु० श्रणंतगु० । सुद०-अचक्खु०-

जीवोंमें सर्वार्थीसिद्धके समान भन्न है। पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें दर्शनावरण और मोहनीयका भन्न तिर्यक्रगतिके समान है। शेष भन्न देवोंके समान है। वेदकसम्यग्दष्टि जीवोंमें दर्शनावरण और मोहनीयका भन्न तिर्यक्रोंके समान है। शेष कर्मोंका भन्न सर्वार्थसिद्धिके समान है। सासादनमें नारिकयोंके समान भन्न है। असंज्ञियोंमें सात कर्मोंका भन्न नारिकयोंके समान है। नामकर्मकी प्रश्वतियोंका भन्न तिर्यक्रोंके समान है।

इस प्रकार जधन्य स्वस्थान ऋल्पबहुत्व समाप्त हुन्या ।

४३६. इससे द्यागे परस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है। वह दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है-श्रोघ और बादेश । श्रोघसे उत्कृष्ट चौंसठ-वदवाला दण्डक करना चाहिए। यथा—सातवेदनीयका अनुभाग सबसे तीत्र है। इससे यशाकीर्ति और उद्यगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरे हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तागुणा हीन है । इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है । इससे तैजसशारीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे आहारकशरीरका अनुभाग श्रमन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्य-गतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शना-वर्षः, श्रसातावेदनीय और वीर्थान्तरायके श्रनुभाग चारों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुरो हीन हैं। इनसे श्रनन्तानुबन्धी लोभका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा दीन है। इससे श्रनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष दीन है। इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्ता-तुबन्धी मानका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशोष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका अनुभाग विशेष हीन है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण श्रीर अप्रत्याख्यानावरण चारका अरुपबहुत्व है। अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागसे आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों हो तुल्य होकर अनन्तगुखे हीन हैं। इनसे

४३७. णिरयगदीए सञ्बतिन्वाणुभागं सादा०। जस०-उच्चा० अणंतगु०। मणुस० अणंत०। कम्म० ग्रणंत०। तेज० अणंत०। ओरालि० अणंत०। मिच्छ० अणंत०। केवलणा०-केवलदं०-आसादा०-विरियंत० चत्तारि वि दुल्ला० अणंतगु०।

चचुद्रानावरणका अनुभाग अनन्तगुणा धीन है। इससे श्रुतज्ञानावर्ण, अचचुद्र्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुस्य होकर अनन्तगुर्णे हीन हैं। इनसे अविधिक्कानावरण, अवधिवरानावरण और लामान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्यंग्रहानावरण्, स्त्यानगृद्धि श्रीर दानान्तरायके श्रनुभाग तीनों ही तुल्य होकर श्रनन्त-गुणे दीन हैं। इनसे न्युंसकवेदका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुसाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुसाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्साका अनुसाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निद्रानिद्राका अनुसाग अनन्त्रगुणा होन है। इससे भचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्त्रगुणा हीन है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इससे अयशः-कीर्ति और नीचगोत्रका अनुभाग दोनों ही तुस्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्येख्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे स्नीवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे रतिका अनुसाग अनन्तगुणा दीन है। इससे दास्यका अनुसाग अनन्तगुणा दीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा होन है। इससे तिर्यक्कायुका अनुभाग अनन्तगुणा होन है। इस प्रकार भोघके समान पद्धेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोधोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यझानी, श्रुताझानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, चलुदर्शनी, अचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भन्य, अभन्य, मिध्यादृष्टि, संज्ञी और आहा-रक जीवोंके जानना चाहिए।

४३७ नरकगितमें सातावेदनीय सबसे तीत्र अनुभागवाला है। इससे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगितका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भिष्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भिष्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे

अणंताणु०लोभो अणंतगु० | माया विसे० | कोघो विसे० | माणो विसे० | संजलणलोभो अणंतगु० ! माया विसे० | कोघो विसे० | माणो विसे० | एवं पचक्वाण०४-अपचक्वाण०४ ! आभिण०-पिरभोग० दो वि तुल्ला० अणंतगु० | चक्खु० अणंतगु० । सुद०-अचक्खु०-भोग० तिण्णि वि तुल्ला० अणंत० । ओघिणा०-ओघिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तुल्ला० अगंतगु० ! मणपज्जव०-थीणिग०-दाणंतरा० तिण्णि वि तुल्ला० अणंत० । अपदि० अणंत० । सोग० अणंत० ! भय० अणंत० । णुस्त० अणंत० । अरदि० अणंत० । सोग० अणंत० ! भय० अणंत० । दुगुं० अणंत० । णिद्दाणिद्दा० अणंत० । पचलापचला० अणंतगु० हि० । णिद्दा० अणंत० । पचलां अणंत० । णीचा०-अजस० दो वि तु० अणंतगु० । तिरिक्ख० अणंतगु० । इत्थि० अणंत० । पुरिस० अणंत० । राद० अणंत० । इस्स० अणंत० । मणुसाउ० अणंत० । तिरिक्खाउ० अणंतगु० । एवं सत्तमुं पुढवीसु । णवरि [सत्तमीए] मणुसाउ० णित्यं० ।

४३⊏. तिरिक्लेसु सन्वतिव्वाणु० सादा० | जस०-उचा० अर्णतगु० | देव-

वेदनीय और वीर्थान्तरायके ऋनुभाग चारों ही तुस्य होकर श्रानन्तगुरो हीन हैं। इनसे श्रानन्तानु-धन्धी लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका अनुभाग विशेष हीत है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग विशेष दीन है। इससे संज्वलन लोभका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन कोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन मानका श्रानुभाग विशेष हीन है। इसी प्रकार क्रमसे प्रत्याख्यानावरण चार और अप्रस्वा-ख्यातावरण चारका ब्राह्मबहुत्व है। ब्राप्ट्याच्यानावरण मानके ब्राह्मभागसे श्राभिनिवोधिक ज्ञाताः वरण श्रीर परिभोगान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुणे हीन हैं। इनसे चन्नुदर्श-नावरणका ऋतुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे श्रुतझानावरण, अचलुदराँनावरण और भोगान्त-रायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इनसे अवधिक्कानावरए, अवधिदर्शना वरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्यय-ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धि और दानान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदका अनुमाग अनन्तगुणा हीन हैं। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निदानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुए। हीन है। इससे नीचगोत्र और अयशःकीर्तिके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं। इससे तिर्यक्रगतिका अनुभाग अनन्तगुरा हीन है। इससे स्त्री-वेंदकाअनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुर्णा द्वीन है । इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुर्णा द्वीन है । इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार सातों पूर्थिवयोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें मनुष्याय नहीं है।

४३८. तिर्येक्टोंमें सातावेदनीय सबसे तीव्र अनुभागवाला है । इससे यशःकीर्ति ऋौर उच्चगोत्र

१. त्रा॰ प्रतौ खिद्दासिद्दा॰ ऋषांत० पचला॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ सत्तसेसु (सत्तसु) इति पाठः । ३. ऋा॰ प्रतौ मसुक्षाउ० इतिय॰ इति पाठः ।

गदि० अणंत० | कम्मइ० अणंत० | तेज० अणंत० | वेडव्वि० अखंत० | मिच्छ० अणंत० | सेसं ओधं याव णिरयम० अणंतग्र० | मणुसम० अखंतग्र० | ओराहि० अखंतग्र० ! तिरिक्ख० अणंतग्र० | सेसं ओधं याव हस्स० अणंतग्र० | णिरयाउ० अणंतग्र० | देवाड० अणंतग्र० | मणुसाउ० अणंतग्र० ! तिरिक्खाउ० अणंतग्र० ! प्रं पंचिंदियतिरिक्ख०३—मणुस०३ !

४३६, पंचिं०तिरि०अपज्जत्तगेसु सन्वतिन्वाणुभागं मिच्छ० । सादा० अणंतगु० ! जस०-उच्चा० दो वि तु० अणंतगु० । मणुसग० अणंत० । कम्मइ अणंत० ।
तेज० अणंत० । ओरा० अणंत० । केवलणा०-केवलदं०-असादा०-विरयंत० चत्तारि वि
तु० अणंतगु० । उवरि ओधं याव मणुसाउ० अणंतगु० । तिरिक्ताउ० अणंत० । एवं
सन्वअपज्जत्तगाणं सन्वएइंदि०-सन्वविगिलिदि०-पंचकायाणं च ।

४४०, देवाणं णिरयभंगो । ओरास्त्रि० मणुसभंगो । ओरा०मि० सव्वतिव्वाणु-भा० साद० । जस०-उच्चा० दो वि० झणंत० । देवग० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तेज० अणंत० । वेउव्वि० अणंत० । मिच्छ० अणंत० । सेसं पंचिंदि०तिरि०भंगो ।

के अनुभाग दोनों ही तुस्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैकियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे वैकियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मिध्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेष भङ्ग नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदा-रिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे औदा-रिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेष भङ्ग, हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। शेष भङ्ग, हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे मतुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्च।युका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे तिर्यञ्च।युका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे प्रकार पञ्चोन्द्रियतिर्यञ्चिक और मनुष्यतिकके जानना चाहिए।

४३६. पञ्चोन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकों में भिष्यात्व सबसे तीत्र अनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन हैं। इससे यशाकीर्ति और उचगोत्रके अनुभाग दानों ही दुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मण्यारिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अमेण्यारिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अमेण्यारिका रिकारिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अमेण्यारिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अमेण्यारिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अमेण्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इस स्थानके प्राप्त होनेतक अमेषके समान भन्न है। इससे विर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विक्लेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

४४०. देवोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। स्रोदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भङ्ग है। स्रोदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीय सबसे तीत्र स्रनुभागवाला है। इससे यशा-कीर्ति स्रोर ध्वयोत्रका स्रनुभाग दोनों ही तुल्य होकर स्रनन्तगुर्ण हीन हैं। इनसे देवगतिका स्रनुभाग स्रनन्तगुर्ण हीन है। इससे कार्मणशरीरका स्रनुभाग स्रनन्तगुर्ण हीन है। इससे कार्मणशरीरका स्रनुभाग स्रनन्तगुर्ण हीन है। इससे तैजस-

अस्थि ।

४४१. वेडिव्व ॰ णेरइगमंगो । एवं वेडिव्वयमि० । आहार०-आहारमि० सव्वतिव्वाणु० साद० । जस०-उचा० अणंत० । देव० अखंत० । कम्म० अणंत० । तेज०
अणंत० । वेडिव्व ॰ अणंत० । केवलणा०--केवलदंस०-असाद०-विरियंत० चतारि वि
अणंतगु० । संजलणलोभो अणंत० । माया विसे० । कोघो विसे० । माणो विसे० ।
आभिणि०--परिभोग० दो वि तु० अखंत० । चक्खु० अणंत० । सुद०--अचक्खु०भोगंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । ओघिणा०-ओघिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु०
अणंत० । मणपज्ज०--दाणंत० दो वि तु० अणंत० । पुरिस० अणंत० । अरिद०
अणंत० । सोग० अणंत० । भय० अणंत० । दुगुं० अणंत० । णिहा० अणंत० ।
पचला० अणंत० । अजस० अणंत० । रिद० अणंत० । इस्स० अणंत० । देवाउ०
अणंत० । एवं मणपज्ज०-संज०-सामाइय-च्छेदो०-परिहार०। एदेसु आहारसरीरं अत्थ ।
संजदासंजद० परिहारभंगो । णवरि पचक्खाण०४ अत्थि ।

शरीरका ऋतुभाग ऋनन्तगुणा हीन है। इससे वैक्रियिकशरीरका ऋतुभाग ऋनन्तगुणा हीन है। इससे मिध्यात्वका ऋतुभाग खनन्तगुणा हीन है। शेष भङ्ग पक्कोन्द्रियतिर्यक्रोंके समान है। इस मार्गणामें इतना ही खल्पबहुत्व है।

४४१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें नारिकयोंके समान भक्क है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें साता-वेदनीय सबसे तीव अनुभागवाला है। इससे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुरो हीन हैं। इनसे देवगतिका श्रनुभाग श्रनन्तगुरा हीन है। इससे कार्मएशरीरका श्रनुभाग श्चनन्तगुणाहीन है । इससे तैजसशरीरका श्रनुमाग श्चनन्तगुणा हीन है । इससे वैक्रियिकशरीरका श्<u>च</u>नु-भाग अनेन्त्रगुर्णा हीन है। इससे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, श्रसातावेदनीय श्रीर वीर्यान्तरायके श्चनुभाग चारों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभका **अनुभाग अनन्तगुर्णा हीत** है | इससे संज्वलन मायाका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संज्वलन क्रोधका अनुभाग विशेष हीन है। इससे संब्वलन मानका श्रानुभाग विशोष हीन है। इससे आभिनिबोधिक झानावरण और परि-भोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इससे चत्तुदर्शनावरणका अनु-भाग ऋनन्तगुर्णा हीन हैं । इससे श्रुतज्ञानावरण,अचलुदर्शनावरए श्रौर भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण,अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे दीन हैं। इनसे मनःपर्ययक्षानावरण श्र<mark>ीर दानान्त</mark>रायके श्चनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इससे निद्राका ऋनुभाग अनन्तगुर्णा दीन है। इससे प्रचलाका अनुसाग अनन्तगुर्णा दीन है। इससे अयशः-कीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे रितका अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुणा दीन है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदीपस्थापनासंयत और परिहारिनशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इनमें आहारकशरीर है। संयतासंयत जीवोंका भन्न परिदारविशुद्धिसंयत जीबोंके समान है। इतनी विशोपता है कि इनमें प्रत्याख्यानावरण चार हैं।

४४२, कम्मइ० ओघं। णविर चढुआउ० णिरयगिददुगं आहारसरीरं बज्ज सेसं कादव्वं। एवं अणाहार०। आभिणि०-सुद०-श्रोधि०-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सासण०--सम्मामिच्छादिष्ठि ति ओघं। णविर अपप्पणो पगिदिविसेसो णादव्वो। तेउ० ओघं। णविर णिरयगिदिदुगं वज्ज। एवं पम्माए। सुकाए ओघं। णविर दोआउ० णिरयगिदिदुगं तिरिक्खगिदितिगं च वज्ज। असण्णीसु सञ्चितव्वाणु-भागं मिच्छ०। साद० अणंत०। जस०-उच्चा० अणंत०। देव० अणंत०। कम्म० अएंत०। तेज० अणंत०। वेडव्वि० अणंत०। उविर तिरिक्खोघं।

एवं उकस्सपरत्थाणअप्पाबहुगं समतं।

४४३. जहण्णए पगदं। दुवि०--- ओघे० आदे०। ओघे० सब्बमंदाणु० लोभ-संज०। [मायासंजल्ल०] अणंतगुणब्भिह्यं। माणसंज० अणंतगु०। कोथसंज० अणंतगु०। मणपज्ज०-दाणंत० दो वि दु० अग्गंतगु०। ओघिणा०-ओघिदं०-स्त्रभंत० तिण्णि वि दु० ऋणंतगु०। सुद्गा०-अचक्खु०-भोगंतरा० तिण्णि वि दु० अणंतगु०। चक्खु० अणंत०। आभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंतगु०। विरियंत० अणंत०।

४४२. कार्मणकाययोगी जीवोंका भक्त श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें चार श्रायु, नरकगतिद्विक श्रोर श्राहारकद्विकको छोड़कर रोपका श्रल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। श्राभिनिवोधिकहानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिक्षानी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशामसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि श्रोर सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रपनी-श्रपनी प्रकृतिविशेष जान लेना चाहिए।पीतलेश्यामें श्रोधके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि नरकगतिद्विकको छोड़कर कहना चाहिए। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें जानना चाहिए। श्रुक्ललेश्यामें श्रोधके समान है। इतनी विशेषता है कि दो श्रायु, नरकगतिद्विक श्रोर तिर्यञ्चगतित्रिकको छोड़कर कहना चाहिए। श्रमंश्री जीवोंमें मिध्यात्व सबसे तीव्र श्रनुभागवाला है। इससे सातावेदनीयका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे सातावेदनीयका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे देवातिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे कार्मणकारिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे तेजसरारिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे तेजसरारिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे वेक्रियककारीरका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे तेजसरारिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे वेक्रियककारीरका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है। इससे तेजसरारिका श्रनुभाग श्रनन्तगुणा हीन है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थान श्ररूपबहुत्व समाप्त हुश्रा ।

४४३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है — स्रोघ और आदेश। स्रोघसे लोभ-संज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्रोधसंज्वलनका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययक्षानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुस्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अवधिक्षानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुस्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे अनुक्षानावरण, अच्छदर्शनावरण, और भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुस्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इनसे च्छदर्शनावरणका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे आभिनियोधिकक्षानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुस्य होकर अनन्तगुणा अधिक हैं। इनसे च्छत्रानावरणका पुरिस व अणंत । इस्स व अणंत । रिदि व अणंत । दुगुं व अणंत । भय व अणंत । सोग व अणंत । अरिद व अणंत । इत्थि अणंत । णवुंस व अणंत । केवलणा व केवलणा व केवल दं व वि तु व अणंत । पयला व अणंत । णिहा व अणंत । पष्ट क्लाणमाणो अणंत । कोधो विसे । माया विसे । लोधो विसे । एवं अपष्ट क्लाण । पचलापचला अणंतगु । णिहाणिहा अणंतगु । थीणिग अणंत । अणंत । अणंत । अणंत । कोधो विसे । माया विसे । लोधो विसे । मिच्छ व अणंत । ओरा व अणंत । वेडव्वि अणंत । तिरिक्ताड व अणंत । मणुसाड व अणंत । तेजा व अणंत । कम्मइ व अणंत । तिरिक्ताड अणंत । णिरय व अणंत । मणुसाड अणंत । तेजा व अणंत । कम्मइ व अणंत । तिरिक्ताड व अणंत । णिरय व अणंत । मणुसाड अणंत । क्ला व अणंत । वेववि तु व अणंत । साद व अणंत । णिरयाड व अणंत । वेववि क्ला व माद व अणंत । पिरयाड व अणंत । क्ला व व माह व अणंत । साद व अणंत । णिरयाड व अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । साद व अणंत । णिरयाड व अणंत । वेववि क्ला व व माह व अणंत । साद व अणंत । पिरयाड व अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । साद व अणंत । पिरयाड व अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । पिरयाड व अणंत । विव क्ला व माह व अणंत । पिरयाड अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । पिरयाड अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । पिरयाड अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । पिरयाड अणंत । वेववि क्ला व माह व अणंत । पिरयाड अणंत । व क्ला व माह व क्ला व माह व अणंत । पिरयाड अणंत । व क्ला व माह व क्ला व माह व अणंत । व क्ला व माह व क्ला व क्ला व माह व क्ला व क्ल

अधिक है। इससे पुरुष्वेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे हास्यका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे रतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्रीवेदका श्रानुभागं श्रानत्तगुणा श्रधिक है । इससे नपुंसक्वेदका श्रानुभाग श्रानन्तगुणा श्रधिक है । इससे केवलज्ञानावरण द्यौर केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे श्रधिक हैं। इनसे प्रचलाका श्रमुमाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है । इससे निद्राका श्रमुमाग श्रमन्तगुँणा श्रधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे प्रत्याख्यानावरण कोधका श्रानुभाग विशेष श्रिधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका श्रानुभाग विशेष श्रिधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इसी प्रकार अपत्याख्यानावरण चारके र्बेनुभागका अल्पबहुत्व है। आगे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्रानिद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक हैं। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग अनन्तगुला अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी कोधका श्रानुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी माथाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वका अनुभाग अनन्तगृणा श्रधिक है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुण। अधिक है। इससे वैक्रियिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशारीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मण्शरीरका ऋनुभाग अनन्तगृषा अधिक है। इससे तिर्यक्रगतिका ऋनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे नरकगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनु-भाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नीचगोत्र का अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इससे सातावेदनीयका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे नरकायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवायुका अनुभाग अनन्तगुर्धा अधिक है। इससे आहारकशरीरका अनुभाग अनन्तगुर्धा अधिक है।

४४४. णिरएसु सञ्चमंदाणु० हस्स० । रिद० अणंत० । दुगुं० अणंत० । भय० अणंत० । पुरिस० अणंत० । माणसंज० अणंत० । कोधसंज० विसे० । माणसंज० विसे० । सोग० अणंत० । अरिद० अणंत० । इत्थि० अणंत० । णवुंस० अणंत० । पचला० अणंत० । णिद्दा० अणंत० । मणपज्जव०-दाणंत० दो वि० तु० अणंत० । ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० तिण्णि वि तु० अणंत० । सुद०-अचक्खु०-भोगंत० तिण्णि वि तु० आणंत० । चक्खु० अणंत० । आभिणि०-परिभोग० दो वि तु० आणंत० । अपचक्खाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे०। लोभो विसे० । एवं पचक्खाणा०४ । विरियंत० आणंत० । केवलणा०-केवलदंस० दो वि तु० अणंत० । पचला-पचला अणंत० । णिद्दाणिद्दा० आणंत० । थीणिग० अणंत० । अणंताणु०माणो अणंत० । कोधो विसे०। माया विसे०। लोभो विसे०। मचला अणंत० । कोधो विसे०। माया विसे०। लोभो विसे०। मण्यला अणंत० । कोधो विसे०। माया विसे०। लोभो विसे०। मण्यला अणंत० । कोधो विसे०। माया विसे०। लोभो विसे०। मण्यला अणंत० । तेज० अणंत० । कम्मइ० अणंत० । तिरिक्ख० आणंत० । मणुस० आखंत० ।

४४४. नारिकयोंमें हास्य सबसे मन्द श्रमुभागवाला है। इससे रितका श्रमुभाग श्रमन्त-गुणा अधिक है। इससे जुगुप्साका अनुभाग अनग्तगुणा अधिक है। इससे भयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे पुरुषवेदका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है । इससे मानसंज्वलनका अनुभाग अनन्तगुए। अधिक है। इससे कोधसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे माया संज्वलनका अनुसाग विशेष अधिक हैं। इससे लोभसंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक हैं। इससे शोकका अनुभाग अनन्तगुषा। अधिक है। इससे अरतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्रीवेदका ऋनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नपुंसकवेदका ऋनुभाग अनन्तगुणा ऋधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनःपर्ययज्ञानावरण श्रीर दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुरो अधिक हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर श्रनन्तगुर्णे अधिक हैं । इनसे श्रुतझानावरण, श्रचज्जुदर्शनावरण श्रीर भोगान्तरायके अनुभाग तीनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो अधिक हैं । इनसे चलुदर्शनावरएका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुस्य होकर ब्रानन्तगुरो अधिक हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरस मानका ब्रानुभाग ब्रानन्तगुरा। ब्राधिक हैं । इससे श्रप्रत्याख्यानावरण कोचका श्रनुभाग विशेष श्रधिक हैं ।इससे श्रप्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण्चतुष्कका ऋरूपबहुत्व है । प्रत्याख्यानावरण् लोभके अनुभागसे वीर्यान्तरायका श्रनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो अधिक हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाका अनुभाग अनन्तगुरा। अधिक है। इससे निद्रानिहाका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे स्त्यानगृद्धिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी कोधका श्रनुभाग विशेष अधिक है। इससे श्रमन्तानुबन्धी मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी लोभ का अनुभाग विशेष अधिक है । इससे मिध्यात्वका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे औदारिकशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तैजसशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यक्षगतिक। अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा

णीचा० अर्णात० । अजस० अर्णात० । असाद० अर्णात० । जस०-उचा० दो वि तु० अर्णात० । साद० अर्णात० । तिरिक्त्वाड० अर्णात० । मणुसाउ० अर्णत० । एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि इसु उवरिमासु णीचा अजस० ऍक्कदो भाणिदव्वं ।

४४५. तिरिक्लेस पढमपुढिवभंगो याव आभिणि०-परिभोगंतरा० दो वि तु० अणंत० । पचक्लाणमाणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । विरियंत० अणंत० । केवल्ला०-केवल्लदं० दो वि तु० अणंत० । अपचक्लाण०माणो अणंत० । कोधो विसे० । माया विसे० । लोभो विसे० । उविर ओधं । एवं पंचिं०-तिरि०३ । णवरि एदेसु णीचा० अजस० ऍकदो भाणिदव्वा ।

४४६. पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्जत-विगत्तिदि०-पंचिदि०-तस०स्रपज्ज० तिण्हं कायाणं च पढमपुढविभंगो । णवरि दोआड० स्रोघं । एवं एइंदियाणं पि । णवरि तिरिक्खोधं णीचा० अणंत०। अजस० अणंत०। एवं तेउ-वाउर्णं पि । णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्ज । देवाणं णेरइगभंगो । मणुस०३--पंचिदि०--तस०२--पंचमण०-

श्रीक है। इससे नीचगोत्रका अनुभाग धनन्तगुणा श्रीक है। इससे श्रयशःकीर्तिका अनुभाग धनन्तगुणा श्रीक है। इससे श्रसातावेदनीयका श्रमुभाग अनन्तगुणा श्रीक है। इससे यशःकीर्ति और उद्यगोत्रके श्रमुभाग दोनों ही तुल्य हो कर श्रमन्तगुणे श्रीक हैं। इनसे सातावेदनीयका अनुभाग श्रमन्तगुणा श्रीक है। इससे तिर्यद्धायुका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा श्रीक है। इससे ममुख्यायुका श्रमन्तगुणा श्रीक है। इससे ममुख्यायुका श्रमुभाग श्रमन्तगुणा श्रीक है। इससे प्रकार सातों प्रथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पहलेकी छह प्रथिवियोंमें नीचगोत्र और श्रयशःकीर्ति को एकसाथ कहना चाहिए।

४४५. तिर्यंद्वों में श्राभिनिवोधिक हानावरण श्रीर परिभोगान्तराय के अनुभाग दोनों ही तुरुय होकर श्रनन्तगुणे श्रधिक हैं। इस स्थानके प्राप्त होने तक पहली पृथिवीके समान भंग हैं। इससे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग श्रान्ततगुणा श्रधिक हैं। इससे प्रत्याख्यानावरण मायका अनुभाग विशेष श्रधिक हैं। इससे प्रत्याख्यानावरण मायका श्रानुभाग विशेष श्रधिक हैं। इससे प्रत्याख्यानावरण लोभका श्रानुभाग विशेष श्रधिक हैं। इससे वीर्यान्तरायका श्रानुभाग श्रान्ततगुणा श्रधिक हैं। इससे केवलहानावरण श्रोर केवलदर्शनावरणके श्रानुभाग दोनों ही तुत्य होकर श्रान्ततगुणा श्रधिक हैं। इससे श्रप्तराख्यानावरण मानका श्रानुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रप्तराख्यानावरण मानका श्रानुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। इससे श्रप्तराख्यानावरण कोधक है। इससे श्रप्तराख्यानावरण लोभका श्रानुभाग विशेष श्रधिक है। इससे श्रप्त श्रोषके समान भंग है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चित्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें नीचगोत्र श्रीर श्रयशाकीर्ति एकसाथ कहने चाहिए।

४४६. पद्मोन्द्रयतिर्यद्धवापर्याप्त, मनुष्यवापर्याप्त, विकलेन्द्रिय, पद्मोन्द्रियश्रपर्याप्त, त्रस-अपर्याप्त और तीन स्थावर कायिक जीवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनमें दो आयुत्रोंका भक्त श्रोघके समान है। इसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें सामान्य तिर्यक्लोंके समान नीचगोत्रका श्रानुभाग श्रानन्तगुणा श्रधिक है। इससे अयशःकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा श्रधिक है। इसी प्रकार श्रानिकायिक और बायुकायिक जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर कहना चाहिए। देवोंमें नारकियोंके समान भक्त है। मनुष्यत्रिक, पद्मोन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों

१. ता∙ ऋा॰ प्रत्योः चतुण्हं इति पाटः ।

पंचवचि॰--कायजोगि--जोरालि॰ सोघं। णवरि मणुसेसु णीचा०--अजस॰ ऍक्दो भाणिदव्वं।

४४७. श्रोरालियमि० णेरइगभंगो याव ओरा० श्रागंत०। तिरिक्ताउ० अगांत०। मणुसाउ० अगंत०। तेजा० अगंत० । कम्म० अगंत०। तिरिक्ता० अगंत०। मणुस० अगंत०। णीचा० श्रागंत०। अजस० अगंत०। असाद० अगंत०। जस०-उचा० दो वि तु० अगंत०। साद० श्रागंत०। वेउध्वि० अगंत०। देव० अगंत०।

४४८, वेजव्वि०-वेजव्वियमि० णिरयोघं | ब्राहार०-आहारमि० सव्बद्धभंगो | णविर अद्वक्त० णित्य | कम्मइ० ओरालियमिस्सभंगो | इत्थि०-पुरिस० सव्बमंदाणु० कोधसंज० | माणसंज० [विसे०] | मायासंज० विसे० | लोभसंज० विसे० | मणपज्ज०-दाणंत० दो वि तु० ब्रणंत० | उविर ओघं | णवुंसगे ओघं | णविर संजलणाए इत्थि०भंगो | अवगद० ओघं | साद० अणंत० |

४४६. कोथ० [सव्य०-] मंदाणु० कोधसंज०। माणो विसे०। माया

मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी स्त्रीर औदारिककाययोगी जीवोंमें स्त्रोधके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें नीचगोत्र स्त्रीर स्त्रयशःकीर्ति एकसाथ कहने चाहिए।

४४७. ब्रीदारिकिमिश्रकाययोगी जीवोंमें ब्रीदारिकशारीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इस स्थानके प्राप्त होने तक नारिकयोंके समान भक्त है। इससे तिर्यञ्चायुका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यायुका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्त-गुणा अधिक है। इससे कार्मणशरीरका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे तिर्यञ्चगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे मनुष्यगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे नीचगोत्रका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अयश्चकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अयश्चकीर्तिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे असातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे वित्रविका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे देवगतिका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है।

४४८. वैकियिककाययोगी और वैकियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सामान्य नारिकयोंके समान भक्त है। साहारककाययोगी और आहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थिसिद्धिके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनमें साठ कपाय नहीं हैं। कार्मण्काययोगी जीवोंमें श्रौदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान भक्त है। खीवेदी और पुरुषवेदी जीवों कोधसंख्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मानसंख्वलनका अनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे मायासंख्वलनका अनुभाग विशेष श्रधिक है। इससे मायासंख्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मानःपर्ययक्षानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। श्रागे श्रोधके समान भक्त है। नपुंसकवेदी जीवोंमें श्रोधके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि चार संख्वलनोंका भक्त खीवेदीके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें श्रोधके समान भक्त है। मात्र सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है, यहाँ तक कहना चाहिए।

४४६. कोधकषायमें कोधसंज्वलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मानसंज्वलनका

विसे । लोभो विसे । मणपज्ज ॰ दाणंत ० दो वि तु ० अणंत ० । उविर ओघं । माणे सन्वमंदाणु ॰ माणसंज ० । मायासंज ० विसे ० । लोभसं ० विसे ० । कोधसं ० अणंत गुण ० । मणपज्ज ॰ दाणंत ० दो वि तु ० अणंत ० । उविर ओघं । मायाए सन्वमंदाणु ० मायासंज ० । लोभसंज ० वि० । माणसंज ० अणंत ० । कोधसंज ० अणंत ० । मणपज्ज ० दाणंत ० दो वि तु ० अणंत ० । उविर ओघं । लोभे ओघं । मदि ० मुद ० णेरइयभंगो याव मिच्छनं । उविर ओघं । एवं विभंग ० मायासंज ० किण्ण णील का उ ० अध्व सि ० मिच्छा ० मायासंज ० संज व सामाइ ० छेदो ० मोधिदं ० सम्मादि ० स्वइंग ० मायासंज ० ओघभंगो । णविर सम्मत्तपाओं गाओं संज मायाओं च पगदीओं णाद व्याओं। परिहार ० आहार ० भंगो । णविर आहार सरीर ० सन्वविर आयंत ० । सुदुमसंप ० अवगद ० भंगो । संज दासंज ० णेरइ गभंगो याव आभिणि ० परिभो ० दो वि तु ० अणंत ० । प्रमुक्त लागों । संज दासंज ० णेरइ गभंगो याव आभिणि ० परिभो ० दो वि तु ० अणंत ० । प्रमुक्त लागों । च क्लंत ० । उविर ओघं । च क्लंव ० अचक्लंव ० मुक्त ० भविर ० भविर नि स्व अघं ।

४५०. तेउ० देवभंगो याव त्राभिणि०-परिभो० दो वि तु० अणंत०। पश्च-

अनुभाग विशेष अधिक हैं। इससे मायासंज्वलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्व-लनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे मनःपर्ययञ्चानावरण और दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो अधिक हैं। आगे ओघके समान है। मानकषायमें मानसंज्यलन सबसे मन्द अनुभागवाला है। इससे मायासंज्यलनका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे लोभसंज्यलन-का अनुसाग विशेष अधिक है। इससे काधसंज्वलनका अनुसाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे क्षतः पर्ययज्ञानावरण स्त्रीर दानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुरो श्रधिक हैं। क्यामे स्त्रीयके समान सङ्ग है। मायाकषायमें मायासंज्वलन सबसे मन्द ऋनुभागवाला है। इससे लोभसंब्वलनका अनुभाग विरोष अधिक है । इससे मानसंब्वलनका अनुभाग अनन्तगुए। अधिक है। इससे क्रोधसंब्वलनका श्रनुभाग श्रमन्तगुणा श्रधिक है। इससे मनःपर्ययक्कानावरण श्रीर टानान्तरायके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुर्ण अधिक हैं। आगे ओवके समान है। लोभकषायमें खोघके समान है। मत्यज्ञानी ख्रीर श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिध्यात्वके स्थानके प्राप्त होने तक नारिकधोंके समान भङ्ग है। आगे श्रोचके समान है। इसी प्रकार विभन्नहानी, श्रसंयत: कृष्ण-लेह्या, नीललेह्या, कापोतलेह्या, अभव्य, भिध्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिए। आभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोः पस्थापनासंयत, अवधिदशैनी, सम्यादृष्टि, चायिकसम्यादृष्टि श्रीर उपशमसम्यादृष्टि जीवोंमें श्रोघके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वप्रायोग्य और संयमप्रायोग्य प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। परिहारविश्वद्धिसंयत जीवोंमें स्त्राहारककाययोगी जीवोंके समान भक्न हैं। इतनी विशेषता है कि इनमें ब्राहारकरारीरके अनुभागको सबके ऊपर अनन्तगुणा अधिक कहना चाहिए। सदमसाम्परायसंयत जीवोंमें ऋपगतवेदी जीवोंके समान भङ्ग है। संवतासंयत जीवोंमें ऋाभिति-कोधिकज्ञानावरण श्रीर परिभोगान्तरायके श्रनुभाग दोनों ही तुस्य होकर श्रनन्तग्रो अधिक हैं। इस स्थानके प्राप्त होने तक नारिकयोंके समान भन्न है। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तग्रा अधिक है। श्रागे श्रोधके समान भङ्ग है। चहुदर्शनी, अचहुदर्शनी, शुक्सलेरया-बाले. भेट्य, संज्ञी श्रीर आहारक जीवोंमें श्रीघके समान भक्त है।

४५०, पीतलेश्यामें आभिनित्रोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरावक अनुभाग दोनों ही

क्खाणमाणो अणंत०। कोघो विसे०। माया० विसे०। छोभो विसे०। विरियंत० अणंत०। केवलाणा०-केवछदं० दो वि तु० अणंत०। अपचक्खाणमाणो अणंत०। कोघो विसे०। माया विसे०। छोभो विसे०। पचळा अणंत०। णिहा अणंत०। उनिरि ओघं। एवं पम्माए। वेदग० तेउ०भंगो। एवं सम्मामि०। सासणे जेरइगभंगो। असण्णीसु तिरिक्खोघं। अणाहार० कम्मइगभंगो।

एवं अप्पाबहुगं समत्तं। एवं चदुवीसमणियोगदारं समत्तं।

भुजगारबंधो

४५१. एतो भुजगारवंधे ति तत्य इमं श्रद्धपदं — जाणि एण्हि अणुभागफद्धगाणि वंधदि अर्णातरोसकाविद्विदिवकंते समए अप्पदरादो बहुदरं वंधदि ति एसो भुजगारवंधो णाम । अप्पदरवंधे ति तत्य इमं अद्वपदं — जाणि एण्हि अणुभागफद्धगाणि वंधदि अणंतर उस्सकाविद्विदिवकंते समए बहुदरादो अप्पदरं वंधदि ति एस अप्पदरवंधो

तुस्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं। इस स्थानके प्राप्त होने तक देवोंके समान भक्त है। इनसे प्रत्यास्थानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण कोधका अनुभाग विशेष
अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रत्याख्यानावरण
लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे वीयन्तिरायका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे
केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभाग दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे अधिक हैं।
इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण
कोधका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका अनुभाग विशेष अधिक
है। इससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अनुभाग विशेष अधिक है। इससे प्रचलाका अनुभाग
अनन्तगुणा अधिक है। इससे निद्राका अनुभाग अनन्तगुणा अधिक है। आगे ओघके समान
भक्त है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। वेदकसम्यक्त्यमें पीतलेश्याके समान भक्त है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वमें जानना चाहिए। सासादनसम्यक्त्यमें नारिकयोंके समान भक्त है।
असंक्रियोंमें सामान्य तियंक्रोंके समान भक्त है। अनाहारकोंमें कामणकाययोगी जीवोंके समान
भक्त है।

इस प्रकार श्राल्पबहुत्व समाप्त हुआ। इस प्रकार चौबीस श्रातुयोगद्वार समाप्त हुए।

भुजगारवन्ध

४५१. इससे आगे भुजगारबन्धका प्रकरण है। उसमें यह अर्थपद हैं—जो इनके अनुभागस्पर्धकोंको बांधता है,वह जब अनन्तर व्यतिकान्त समयमें वेंधनेवाले अरूपतरसे इस समयमें बहुतरको बाँधता है,तब वह भुजगारबन्ध कहलाता है। अरूपतरबन्धके विषयमें यह अर्थपद हैं—इनके जो अनुभागस्पर्धक बाँधता है,वह जब अनन्तर पिछले समयमें वेंधनेवाले बहुतरसे

१. ता॰ प्रती स्त्रयांत॰ । केवलदं॰ इति पाडः ।

णामः । अविद्विदंधे सि तत्य इमं अद्वपदं — जाणि एण्डि अणुभागफद्धगाणि वंधित अणंतरओसकाविद-- उस्सकाविद्विदिक्षते समए तित्तयाणि वेव वंधिद् ति एसो अविद्विदंधो णामः । अवत्तव्ववंधे ति तत्य इमं अद्वपदं — अवंधादो वंधिद् ति एसो अवत्तव्ववंधो णामः । एदेण अद्वपदेण तत्य इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति । तं जहा — सम्रुक्तितणा याव अप्याबहुगे ति ।

समुक्कित्तणाणुगमो

४५२. सम्रुक्तित्तणाए दुविधो णिइ सो--ओघेण आदेसेण य । ओघेण सब्वपगदीणं अत्थि भुजगारबंधो अप्पद० अवद्विद० अवत्तव्वबंधो य । एवं ओघभंगो मणुस०३--पंचि०-तस०२-पंचमण०--पंचवचि०-कायजोगि०--ओरा०-आमिणि०-सुद०-श्रोधि०--मणपज्ज०--संजद०--चक्खु०-अचक्खु०-ओधिदं०--सुक्क ले०-भवसि०--सम्मा०-खइग०-जवसम०-सरिख-आहारए ति ।

४५३. णेरेइएसु धुविगाणं अस्थि भुज० अप्पद० अविद्ये । सेसाणं ओघ-भंगो । ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु धुवियाणं देवगदि०४-तित्थ० अवत्तव्व० णत्थि । वेडव्वि०-वेडव्वियमि० तित्थर्ये० अवत्तव्वया णत्थि धुवियाणं च । इत्यि०-पुरिस०-णवुंस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० अवत्तव्वगा वज्ज० तिणिपदा,

इस समयमें श्रह्मतरको बाँधता है, तब अल्पतरबन्ध कहलाता है। अवस्थितबन्धके विषयमें यह अर्थपद है—इनके जो अनुसाग स्पर्धक बाँधता है,वह जब अनन्तर पिछले और अगले समयमें उतने ही बाँधता है,तब वह अवस्थितबन्ध कहलाता है। अवक्तव्यवन्धके विषयमें यह अर्थपद है— जो अवन्धसे बन्ध करता है, वह अवक्तव्यवन्ध कहलाता है। इस अर्थपदके अनुसार यहाँ ये तेरह अनुयोगद्वार झातव्य हैं। यथा—समुत्कीतनासे लेकर अल्पबहुत्व तक।

समुत्कीर्तनानुगम

४५२. समुत्कीतंनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और खादेश। श्रोघसे सब प्रकृतियोंका अजगरबन्ध है, अल्पतरबन्ध है, अल्पतरबन्ध है अवस्थितबन्ध है और अल्पतरबन्ध है। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चोन्द्रयिक, असिक्रक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों बचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आमिनिबोधिक हानी, श्रुतहानी, अल्घि हानी, मनः-पर्ययहानी, संयत, चलुदर्शनी, अचलुदर्शनी, अविधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भन्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, हपशमसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

४५३. नारिकयों में भ्रुव प्रकृतियोंका मुजगारबन्ध, ऋत्पतरबन्ध और ऋवस्थितबन्ध है। तथा शेव प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोधके समान है। श्रोदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी श्रोर अनाहारक जीवोंमें भ्रुवबन्धवाली देवगतिचतुरक श्रोर तीर्थक्कर प्रकृतियोंका श्रवक्तव्यबन्ध नहीं है। वैक्रियिककाययोगी श्रीर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके श्रवक्तव्यबन्धक जीव नहीं हैं। तथा भ्रुवप्रकृतियोंके भी श्रवक्तव्यवन्धक जीव नहीं हैं। तथा भ्रवस्थित स्वाप्त स्वाप्त

ता० प्रतो वेडिव्यिमि० वेडिव्यमि० (१) तित्यय॰ इति पाढः।

सैसार्णं चत्तारिपदा । अवगद० सव्वाणं अत्यि भुज०-अप्पद०-अवत्तव्ववंधगा य । कोधे इत्थि०भंगो । माणे पंचणा०-चढुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत० अत्थि तिण्णि पदा । एवं मायाए । णविर दोसंज० । सेसं ओघं । लोभे पंचणा०-चढुदंस०-पंचंत० अत्थि तिण्णिपदा । सेसं ओघं । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चढुदंस०-लोभसंज०-उचा०-पंचत० अत्थि तिण्णिपदा । सेसं ओघं । सुहुमसं० सव्वाणं अत्थि भुज०-अप्पद० । सेसाणं णिरयभंगो । किंचि विसेसो णादव्यो ।

एवं सम्रुक्तित्तणा समर्ता ।

सामिचाणुगमो

४५४. सामित्ताणुगमेण दुवि०-ओघे० श्चादे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चहु-संज०-भय-हु०--तेजा०--क०--पसत्थापसत्थ०४--अगु०-छप०--णिमि०--पंचंत० भुज०-अप्पद०-अवद्वि० कस्स० १ अण्ण० । अवत्तव्यवंधो कस्स १ अण्ण० उनसामणादो पहि-पदमाणस्स मणुस्सस्स वा मणुसिणीए वा पढमसमयदेवस्स वा । थीणगिद्धि०३--मिच्छ०-श्चणंताणु०४--तिरिग्रापदा णाणोवरणभंगो । अवत्तव्व० कस्स १ श्चण्ण० असंजमसम्म-

नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच श्रम्तरायके अवक्तव्यवन्धको छोड़कर तीन पद हैं तथा सेप प्रकृतियोंके चार पद हैं। श्रपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगारवन्धक, श्रम्तरावन्धक श्रीर श्रवक्तव्यवन्धक जीव हैं। क्रोधकषायमें खीवेदी जीवोंके समान भक्त है। मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन श्रीर पाँच श्रम्तरायके तीन पद हैं। हमी प्रकार मायाकषायमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ दो संज्वलन कहने चाहिए। शेष भक्त ओधके समान है। लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण श्रीर पाँच श्रम्तरायके तीन पद हैं। शेष भक्त श्रोधके समान है। सामायिकसंयत श्रीर छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, लोभ संज्वलन, श्रम्यांत्र श्रीर पाँच श्रम्तरायके तीन पद हैं। शेष भक्त श्रोधके समान है। सूद्रमसाम्परायसंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार श्रीर श्रम्पतरपद हैं। शेष माग्रीणाश्रोंका भक्त नारिकयोंके समान है। किञ्चित् विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्वाञ्चगम

४५४. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—स्रोघ स्रोर स्रादेश। स्रोघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसरारीर, कार्मण्रारीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, स्रप्रशस्त वर्णचतुष्क, स्राप्त्रज्ञच, उपघात, निर्माण स्रोर पाँच स्रन्तरायके सुजगार, अल्पतर स्रोर स्वस्थितवन्धका स्वामी कीन है १ स्रन्यतर जीव स्वामी है। स्रवक्तव्य बन्धका स्वामी कौन है १ उपशामश्रीणसे गिरनेवाला स्रन्यतर मनुष्य, मनुष्यनी या प्रथम समयवर्ती देव स्वामी है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व स्रोर स्नन्तानुबन्धी चारके तीन पदोंका भङ्ग झाना- बरणके समान है। इनके स्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कौन है १ जो सन्यतर जीव स्रसंयतसम्यक्तवे,

१. ता॰ प्रतौ एवं समुक्तियाः समत्ता इति पाठो नास्ति ।

तादो संजमादो संजमासंजमादो सम्मामिच्छतादो वा परिवदमाणयस्स पढमसमयमिच्छादिहिस्स वा सासणसम्मा० वा । णवरि मिच्छा॰ असंजमादो संजमासंजमादो संजमादो वा सासण० सम्मामि० वा परिवदमा० पढमसमयमिच्छादि० । सादासाद०सत्तणोक०--चढुगदि--पंचजादि--दोसरीर-छस्संठा०--दोश्रंगो०--छस्संघ०--चढुआणु०दोविहा०-तसथावरादिदसयुग०-दोगो० तिण्णिपदा णाणावरणभंगो। अवत्तव्व० कस्स०?
अण्ण० परियत्तमाणयस्स पढमसमयबंधमाणबस्स । अपश्वक्खाण०४ तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० १ श्रण्ण० संजमादो वा संजामासंज० परिवद० पढमसम०
मिच्छादि० सासण० सम्मामि० असंजदसम्मा०। पचक्खाण०४ तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० १ अण्ण० संजमादो परिवद० पढमस० मिच्छा० सासण०
सम्मामि० असंजद० संजदासंजदस्स वा । चढुआउ०-आहारदुग-पर०-उस्सा०-उज्जो०तित्थय० तिरिग्णपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० १ अण्ण० पढमसमयबंधगस्स ।
एवं ओघभंगो मणुस०३-पंचिदि०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-छोरालि०लोभक०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सिर्ग्ण-आहारए ति। णवरि मणुस०-मण०-विच०-

संयमसे. संयमासंयमसे ऋौर सम्यग्मिध्यात्वसे गिरकर प्रथम समयवर्ती मिध्यादृष्टि सासादन-सम्यग्दष्टि जीव है, वह उक्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? ऋसंयमसे, संयमासंयमसे, संयमसे, सासादनसे ऋौर सम्यग्मिध्यात्वसे गिरकर जो प्रथम समयवर्ती मिध्यादृष्टि है,वह मिध्यात्वके त्रावक्तव्यबन्धका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, छह सहनन, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर आदि दस युगल श्रीर दो गोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रवक्तव्यवन्धका स्वामी कीन हैं ? जो परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला प्रथम समयमें इनका वन्ध करता है, वह इनके अवक्तव्यवन्धका स्वामी हैं। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंका भङ्ग झानावरणके समान है। इनके अवक्रव्यवन्थका स्वामी कीन है ? संयम या संयमासंयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिध्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिण्यादृष्टि श्रौर श्रासंयतसम्यग्दृष्टि श्रान्यतर जीव इनके अवक्तव्य-बन्धका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके श्रवक्तव्यवन्थका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती मिध्यादृष्टि, सासादृत-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिश्यादृष्टि, श्रासंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत ऋन्यतर जीव इनके अवक्तव्य-बन्धका स्वामी है। चार ऋायु, ऋाहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत ऋौर तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंका भक्त ज्ञानावरणके समान है। इनके अवक्तव्यबन्धका स्वामी कौन है ? प्रथम समयमें बन्ध करनेवाला श्रान्यतर जीव इनके श्रावक्तव्यबन्धका स्वामी है। इसीप्रकार श्रोघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चोन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, श्रौदारिक-काययोगी, लोभकवायी, चजुदर्शनी, श्रवजुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और श्राहारक जीवोंके जानना चिह्ये। इतनी विशेषता है कि मनुष्य, मनोयोगी, वचनयोगी और श्रीदारिककाययोगी जीवोंमें

१. ता॰ त्रा॰ भत्योः सम्मा॰ वा मिन्छा॰ स्वारि श्रसंजमादो इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ श्रसंज-मादो संजमादो इति पाठः ।

औरालि० पढमदंड० अवत्त० कस्स० १ अएए।० उवसमणादो परिवद० पढमस० मणुसस्स वा मणुसणीए वा ।

४५५. णेरइएसु धुनिगाणं भुज०-अप्पद०-अविडि० कस्स० १ अण्ण० । थीणगिद्धि०-मिच्छ०-अर्णाताखु०४ तिण्णिपदा द्रोघं । अवत्त० कस्स० १ अण्ण० सम्मत्त०
सम्मामि० परिवद० पढमसम० मिच्छा० सासण०। णविर मिच्छा० अवत्त० कस्स०१
अण्ण० सम्म० सासण० सम्मामि० वा परिवद० पढमस० मिच्छा० । सेसा० स्रोघं ।
एवं सञ्चणेरइगाणं । णविर सत्तमाए तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु०--णीचा० थीणिग०भंगो । मणुस०-मणुसाणु०-उच्चा० तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० कस्स० १
अण्ण० पढम० स्रसंज० सम्मामि० ।

४५६. तिरिक्लेसु धुविगाणं णेरइगभंगो । सेसं ऋोघं। णविर संजमो णित्थ। सेसाणं सव्वाणं ऋणाहारए ति ऋोघं। कायाणं साधेदव्यं। णविर तेउलेस्साए इत्थि०-पुरिस० भुज०-ऋष्प०--ऋविह०-ऋवत्त० कस्स० ? ऋण्णद० तिगदियस्स०। णवुंस० तिण्णिपदा ऋवत्त० कस्स० ? अण्ण० देवस्स । तिरिक्लगदि-मणुसगदि० तासि ऋणु० तिषिणपदा देवस्स०। ऋवत्त० क० ? ऋण्ण० देवस्स परियत्तमाणयस्स । ओरालि०

प्रथम दण्डकके श्रावक्तत्रव्यवन्धका स्वामी कौन हैं ? उपशमश्रीणीसे गिरनेवाला प्रथम समयवर्ती श्रान्यतर मनुष्य स्रोर मनुष्यिनी प्रथम दण्डकके अवक्तव्यवन्धका स्वामी हैं।

४५५. नारिकयोंमें धुवबन्धवाली प्रकृतियोंके मुजगार, श्रह्मतर श्रीर श्रवस्थित बन्धका स्वामी कीन है ? श्रम्यतर नारकी स्वामी हैं। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रीर श्रन्तानुनन्धी वारके तीन पदोंका भंग श्रोधके समान है। श्रवक्तन्यवन्धका स्वामी कीन है ? सम्यक्त्व सौर सम्यिमध्यात्वसे गिरनेवाला श्रम्यतर प्रथम समयवर्ती मिध्यादृष्टि श्रीर सासादृनसम्यगृदृष्टि जीव इनके श्रवक्तन्यवन्धका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके श्रवक्तन्यवन्धका स्वामी कीन है ? सम्यक्त्व, सासादृनसम्यक्त्व श्रीर सम्यिमध्यात्वसे गिरनेवाला श्रम्यतर प्रथमसमयवर्ती मिध्यादृष्टि नारकी मिध्यात्वके श्रवक्तन्यवन्धका स्वामी है। शेव प्रकृतियोंका भङ्ग ओपके समान है। इसी प्रकार सब नारिकयोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें तिर्यञ्चनित, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगति, विशेष्ट्यानुपूर्वी श्रीर उद्योग्नके जीन पदोंका भङ्ग झानावरणके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति, कीन है ? श्रन्यतर प्रथम समयवर्ती श्रसंयतसम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यिग्ध्यादृष्टि नारकी इनके श्रवक्तन्यवन्धका स्वामी कीन है ? श्रन्यतर प्रथम समयवर्ती श्रसंयतसम्यग्दृष्टि श्रीर सम्यिग्ध्यादृष्टि नारकी इनके श्रवक्तन्यवन्धका स्वामी है।

अपद. तिर्यक्रोंमें धुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग नारिक्योंके समान हैं। क्षेत्र भङ्ग त्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके संयम नहीं हैं। त्रनाहारक मार्गिणा तक शेष सबका भङ्ग खोषके समान है। पाँच स्थावरकायवालोंका साथ लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पीत-लेश्यामें खीवेद और पुरुषवेदके भुजगार, अल्पतर, श्रवस्थित और श्रवक्तव्यवस्थका स्वामी कौन है। अन्यतर तीन गतिका जीव स्वामी है। नपुंसक्वेदके तीन पदोंका और अवक्तव्यपदका स्वामी कौन है श्रव्यतर देव स्वामी है। तिर्यक्रगित, मनुष्यगित और उनकी आनुपूर्वियोंके तीन पदोंका स्वामी देव है। अवक्तव्यवस्थका स्वामी कौन है श्रव्यतर तीन पर्याम

तिरिखापदा अरुरादर । अवत्त ० कस्स ० १ अरुरा ० पढमस ० देवस्स । एवं पम्माए वि । सुकलेस्साए तिरिखावेदाणं अवत्त ० कस्स ० १ अरुप ० देवस्स ।

एवं सामित्तं समतं।

कालाणुगमो

४५७. कालाणु० दुवि० — ओघे० आदे०। ओघे० सच्चपगदीणं भुज०-म्रप्प०-वंधगा केवचिरं कालादो होदि ? जह एगसम०, उ० म्रंतो०। अविद्वि० केव० ? ज० ए०, उ० सत्तद्व सम०। णवरि चदुआउ० अविद्वि० ज० ए०, उ० सत्त सम०। म्रवत्त० सच्चपगदीणं एग०, एवं अणाहारए ति णेद्व्यं। एवं णिर्यादिसु अविद्वि-कालो अद्दसमया भवंति। कम्मइ०-अणाहारएसु तिएिश समया भवंति।

एवं कालं समत्तं ।

अन्यतर देव अवक्तव्यवन्धका स्वामी है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदोंका अन्यतर देव स्वामी है। अवक्तव्यवन्धका स्वामी कोन है ? अन्यतर प्रथम समयवर्ती देव स्वामी है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। शुक्ललेश्यामें तीन वेदोंके अवक्तव्यवन्धका स्वामी कोन है ? अन्यतर देव स्वामी है।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुन्छ।।

कालानुगम

४५७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके भुजगार और अस्पतर पदके बन्धक जीवका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मु हूर्त है । अवस्थित पदके बन्धक जीवका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात व आठ समय है। इतनी विशेषता है कि चार आयुके अवस्थित पदके बन्धक जीवका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात समय है। सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इसी प्रकार नरकादिमें अवस्थितवन्धका काल आठ समय होता है। मात्र कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें तीन समय होता है।

विशेषार्थ — अनुभागबन्धमें वृद्धि और हानिके छह - छह स्थान हैं। उनमेंसे यद्यपि पाँच वृद्धियों और पाँच हानियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यात भागप्रमाण है। पर अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भु हूर्त है। इसीसे यहाँ सब प्रकृतियों के भुजगार और अस्पतर अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्भु हूर्त कहा है। अवस्थित अनुभागबन्धके कारणभूत परिणाम कम से कम एक समय तक और अधिकसे अधिक सात-आठ समय तक होते हैं, इसलिए अवस्थित अनुभागबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय कहा है। पर आयु कर्मके अवस्थित अनुभागबन्धका उत्कृष्ट काल सात समय ही है, क्योंकि आयु-कर्मके अवस्थित अनुभागबन्धके योग्य परिणाम इतने कालसे अधिक समय तक नहीं होते। सब

१. ता० प्रतौ एवं कालं उमत्तं इति पाठो नास्ति।

अंतराणुगमो

४४८. श्रंतराणु० दुवि० — ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प० वंधंतरं केव०
होदि १ ज० ए०, उ० श्रंतो० । श्रविष्ठि ज० ए०, उ० असंखेंज्ञा लोगा । अवत्त०
ज० श्रंतो०, उ० अद्ध्यो० । थीणिग०--मिच्छ०--अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ज० ए०,
उ० बेह्याविह० देस्० । अविह०-अवत्त० णाणा०भंगो । सादासाद०-हस्स-रिद-श्ररिदसोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० तिष्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ०
श्रंतो० । अहक० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पुट्यकोडी दे० । अविह०-अवत्त०
णाणा०भंगो । इत्थि० अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० बेह्याविह० दे० । सेसाणं पदाणं थीणगिद्धिभंगो । णवुंस०-पंचसंद्रा०-पंचसंद्र०-अप्पत्थवि०-दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्प०
ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिएहं पि बेह्याविहसाग० सादि० तिष्णि पित्र० देस्० । अविह० णाणा०भंगो । पुरिस० भुज०--अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविह० णाणा०भंगो । श्रवस० ज० श्रंतो०, उ० बेह्याविह० सादि० । तिष्णिश्राज ०-

प्रकृतियोंके अवक्तव्य अनुभागवन्यका जयन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, यह स्पष्ट ही है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

अन्तरानुगम

४५८. अन्तरानुगम दो प्रकारका है---छोघ और आदेश। स्रोघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णंचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण श्रीर पाँच अन्तरायके भूजगार और अरुपतरबन्धका श्रन्तरकाल कितना है ? जवन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्यानमृद्धि तीन, मिध्यात्व, श्रीर अनन्तानुबन्धी चारके भुजगार श्रीर श्रन्यतरबन्धका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, ग्रुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और श्रयशःकीर्तिके तीन पर्दोका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इनके श्रयक्तव्यवन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके भुजगार श्रीर अल्पतरबन्धका जघन्य त्रान्तर एक समय है **ऋौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वको**टिप्रमाण है। अवस्थित ऋौर अवक्तव्यवस्थका भक्त ज्ञानावरणके समान है। जीवेद्के श्रवक्तव्यवस्थका जवन्य श्रन्तर अन्तर्मु हूर्त श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छित्रासठ सागरप्रमाण है। शेष पदोंका भक्त स्त्यानगृद्धिके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगित, दुःस्वर और अनादेखके भुजगार और अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर मुंहूर्त है और तीनों ही का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक दो छियासठ सागरप्रमाण है। अवस्थितवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेदके भुजगार और अल्पतरवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। अवस्थितवन्धका भक्त झानावरण

रै. ता० म्रा॰ प्रत्योः सादि० तिणिन्नाउ० **इ**ति पाठः ।

वेउन्वियद्य० भुज०-अप्प० अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० चदुग्णं पि अणंतकालं । तिरिक्खाड० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० सागरो-वमसदपुष्य० । अविह० णाणा०भंगो । तिरिक्ख०--तिरिक्खाणु० भुज०--अप्प० ज० ए०, उ० तेविह०सा०सदं० । अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० असंखें ज्ञा लोगा । मणुस०--मणुसाणु०--उचा० भुज०-अप्प० -अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० सन्त्राणं असंखें ज्ञा लोगा । चदुजा०--आदाव०-थावरादि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं । अविह० णाणा०-भंगो । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो ० । श्रविह० णाणा०भंगो । श्रवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० पंचासीदिसागरोवमसदं । ओरा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिरिण्ण पिठ० सादि० । अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० अणंतका० । आहार०२ भुज०-अप्प०-अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो ०, उ० अद्येगेगत० । समचदु०-पसत्थिव०-सुभग-सुस्सर-आदे ० तिरिण्ण पदा

के समान है। अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त हे श्रीर उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छित्रासठ सागरप्रमाण है। तीन त्रायु और वैकियिक बहुके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यबन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और चारों ही पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रनन्त काल है। तिर्यक्रायुके मुजगार श्रीर अल्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवस्थका जघन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और तीनों ही पदोंका उत्क्रष्ट अन्तर सी सागरप्रथक्तवप्रमाण है। अवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्जगति श्रीर तिर्यश्चगत्यानुपूर्वीके भुजगार और ऋल्पतरवन्धका जधन्य श्रम्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्चन्तर एकसौ श्रेसठ सागरप्रमाण है। अवस्थितवन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य-बन्धका ज्ञघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, श्रीर उचगोत्रके भुजगार, श्रहपतर श्रीर श्रवस्थितबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुर्त है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। चार जाति, ब्रातप और स्थावर ब्रादि चारके मुजगार और श्रन्पतरबन्धका जवन्य अन्तर एक समय है, अवक्तत्रयका जघन्य अन्तर अन्तमु हुते है और सब पदोंका उत्क्रश्च त्रान्तर एकसौ पचासी सागर है । श्रवस्थितबन्धका भक्क ज्ञानावरणके समान है । पक्के न्द्रियजाति, परवात, उच्छ्वास श्रीर त्रसचतुष्कके भूजगार श्रीर श्राल्पतरबन्धका जवन्य श्रान्तर एक समय है भौर उत्कृष्ट **ऋन्तर ऋन्तर्मुहूर्त है । ऋवस्थितवन्धका** भङ्गज्ञानावरणके समान है । ऋवक्तन्यवन्धका ज्ञधन्य ऋन्तर श्रन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट श्रन्तर एकसौ पचासी सागर है। श्रौदारिकशरीरके भूजपार झौर ऋल्पतरबन्धका जधन्य ऋन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ऋन्तर साधिक तीन परुप हैं। अवस्थितवरधका भक्त झानावरएके समान है । अवक्तत्र्यवस्थका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। आहारकदिकके भुजगार, अन्यतर और अवस्थितवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब पदोंका व्यक्त अनुतर कुन कम् अर्धुपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विद्वायोगति, सुभग सुस्बर भौर अपरेपके तीन पदोंका भङ्ग पश्चोन्द्रियजातिके समान है। अवक्तव्यवन्धका

१. ता॰ प्रती श्रवत्तः श्रंतोः इति पाठः ।

पंचिंदियजादिभंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० बेळाविहसा० सादि० तिरिण पित्त० देसू० । ओरालि०श्रंगो०-वज्जरि० भुज०-अप्प०-अविह० ओरालि०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेंनीसं सा० सादि० । उज्जो० तिरिण पदा तिरिक्लगिदभंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेविह०सदं । तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेंनीसं सा० सादि० दो पुत्र्यकोडीश्रो दोहि वासपुधत्तेहि ऊणियाओ सादिरेगं। णीचा० भुज०--अप्प०-अविह० णवुंसग-भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० असंखेंज्जा लोगा ।

जयन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक दो छियासठ सागरश्रमाण है। योदारिक आङ्गोपाङ और वजर्षमनाराचसंहननके मुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका भङ्ग औदारिकशरीरके समान है। अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और
उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। उद्योतके तीन पदोंका भङ्ग तिर्यञ्चगतिके समान है।
अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसौ श्रेमठ सागर है। तीर्थङ्कर
प्रकृतिके मुजगार और अन्पतरबन्धका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है
। अवस्थितवन्धका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है
और उत्कृष्ट अन्तर दोनों पदोंका दो वर्षपृथकत्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। नीचगोत्रके मुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। अवक्तव्यवन्धका
जयन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकशमाण है।

विशेषार्थ-स्रोधसे सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका जधन्य काल एक समय श्रीर उत्कृष्ट काल श्रान्तर्मु हूर्त कह श्राये हैं, इसलिए यहाँ पाँच ज्ञानावरणादिके भुजगार श्रीर श्चरुपतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। आगे जिन प्रकृतियोंके इन पदोंका यह अन्तर कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यतः भूजगार और अल्पतरबन्धका जवन्य काल और जवन्य अन्तर एक समय कहा है।अतः अवस्थितबन्धका जघन्य श्रन्तर एक समय बन जाता है तथा श्रनुभागवन्धके योग्य कुल परिग्राम असंख्यात लोकप्रमाण है। स्रतः श्रवस्थितबन्धका उत्कृष्ट अन्तर श्रसंख्यात लोकप्रमाण कहा है; क्योंकि सब परिएमोंके होनेके बाद अवस्थितवन्धके योग्य परिएम अवश्य प्राप्त होते हैं, ऐसा नियम है। आगे जिन प्रकृतियोंके इस पदका यह अपन्तर कहा है, वह इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। जो दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़कर दो बार इन प्रकृतियोंका अयन्धक होकर पुनः बन्ध करता है, उसके इन प्रकृतियोंके श्रावक्तव्यबन्धका अन्तर प्राप्त होता है। किन्तु उपशमश्रेणि पर श्रारोहण अन्तर्मुहुर्तके अन्तरसे भी सम्भव है और कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे भी सम्भव है। अप्तः इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुकूर्त श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। स्त्यानमृद्धि तीन आदिका प्रकृतिबन्धसम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छिवासठ सागरप्रमाण है। इसलिए इन प्रकृतियों के मुजगार और अरूपतरबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है, क्योंकि इतने काल तक इन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे मुजगार आदि पद कैसे सम्भव हो सकते हैं १ तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यवन्धका सन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है सो यहाँ अवकत्यवन्यका अन्तर अन्तर्मु हुर्त और कुछ कम अर्थपुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे दो बार सम्यक्त्त्रपूर्वक मिध्यात्वमें ले जाकर लाना चाहिए। सातावेदनीय आदि सब परावर्तमान प्रकृतियाँ हैं और इनके प्रकृतियन्धका जघन्य अन्तर एक समय श्रोर उत्कृष्ट अन्तर अपन्तर्मुहूर्त है। फिर भी यहाँ इनके अवक्तव्यवन्धका जधन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर

अन्तम हर्त कहनेका कारण यह प्रतीत होता है कि इनमेंसे किसी एक प्रकृतिका दो बार अबन्ध-पर्वक बन्ध अन्तम् हर्तके अन्तरसे ही होता है। आठ कषायोंके प्रकृतिबन्धका उत्कृष्ट अन्तर इख कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है, इसलिए यहाँ इनके भुजगार और अल्पतरवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। इनके अवस्थित और अवक्तव्यवन्यका अन्तर ज्ञानावरणके समान कहा है सो अवक्तव्यबन्धका अन्तर लाते समय वह अन्तर्मुहूर्त और अर्धपुद्गल परावर्तन कालके अन्तरसे दो बार संयमासंयम श्रीर संयमपूर्वक असंयममें ले जाकर लाना चाहिए। स्त्रीवेदके श्चवक्तव्यबन्धके जघन्य श्वन्तरका खुलासा सातावेदनीयके समान कर लेना चाहिए तथा किसी जीवने स्त्रीवेदका अवक्तव्यवन्ध करके कुछ कम दो छियासठ सागर काल तक उसका बन्ध नहीं। किया । पुनः मिध्यात्वमें आकर उसका अवक्तव्यवन्ध किया यह सम्भव है, इसलिए इसके अवक्तव्य-बन्धका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियासठ सागर प्रमाण कहा है। नपुंसकवेद आदिका बन्ध कुछ कम तीन परुष अधिक दो जियासठ सागर काल तक नहीं होता, इसलिए इनके भूजगार, अरुपतर ब्रीर अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट ब्यन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। पुरुषवेदका यदि निरन्तर बन्ध हो तो साधिक दो द्वियासठ सागर काल तक होता है। इसके बाद ऐसे जीवके मिध्यादृष्टि होने पर अन्य वेटोंका भी बन्ध सम्भव है, श्रतः इसके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट श्रम्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। यहाँ प्रारम्भमें श्रौर अन्तमें अवक्तव्यवन्ध कराकर यह अन्तर लाना चाहिए। जो निरन्तर एकेन्द्रिय वर्यायमें रहता है, उसके अनन्तकाल तक तीन आयु और वैक्रियकषट्कका बन्ध नहीं होता, अतः इनके चारों पर्दोका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल प्रमाण कहा है । तिर्यंख्वायुका बग्ध अधिकसे अधिक सौ सागर पृथकत्व काल तक नहीं होता, श्रातः इसके भुजगार, श्राल्पतर श्रीर श्रावक्तव्यवन्यका उत्कृष्ट अन्तर सी सागर पृथक्त्व काल तक कहा है। तिर्येश्वगतिद्विकका बन्ध १६३ सागर तक नहीं होता, इसलिए इनके भुजगार ख्रौर खल्पतरबन्धका उत्कृष्ट खन्तर एक सौ त्रेसठ सागर प्रमाण कहा है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके निरन्तर इन दो प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है और इनकी कायस्थिति असंस्थात लोक प्रमाण है, अतः इनके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। मनुष्यगतिद्विक और उचगोत्रका बन्ध अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके नहीं होता, अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाख कहा है। चार जाति आदिका बन्ध अधिकसे अधिक एक सौ पचासी सागर तक नहीं होता, अतः इनके मुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सौ पचासी सागर प्रमाण कहा है। पञ्चीन्द्रयजाति आदिका निरन्तर बन्ध एक सौ पचासी सागर तक होता रहता है, श्रत: इनके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर एक सी पचासी सागर प्रमाण कहा है। श्रीदारिकशरीरका साधिक तीन परवतक बन्ध नहीं होता. श्चतः इसके भूजगार श्रीर श्ररूपतरबन्धका उत्कृष्ट श्रन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है श्रीर एकेन्द्रियोंमें श्रानन्त काल तक निरन्तर इसीका बन्ध होता है, श्रातः इसके श्रावक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान-न्तकाल कहा है। आहारकद्विकका अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक बन्ध न हो यह सम्भव है, अतः इनके चारों पदोंका उत्कृष्ट श्रान्तर उक्त काल प्रमाण कहा है। समचतुरस्त्रसंस्थान श्रादिका निरन्तरबन्ध कुछ कम तीन परुप अधिक दो छियासठ सागर काल तक होता रहता है, अतः इनके अवक्तन्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। स्रोदारिकआङ्गोपाङ्ग स्रादिका निरन्तर बन्ध साधिक तेतीस सागर काल तक होता रहता है, अतः इसके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। उद्योतका बन्ध एक सौ त्रेसठ सागर काल तक नहीं होता, इसलिए इसके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर उक्तकाल प्रमाण कहा है। एक पर्यायमें अन्तर्मुहर्तके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेणीपर आरोहण करनेवालेके तीर्थद्धर प्रकृतिके अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तुम् हर्त प्राप्त होनेसे उक्तप्रमाण कहा है और साधिक वैतीस सागरके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेणिपर आरोहण करने बालेके अवक्तव्यबन्धका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर प्राप्त होनेसे उक्तप्रमाण कहा है। इसके ४५६. णिरएसु घुविगाणं सुज०-अप्प० ज० ए०, उ० झंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० तेंतीसं० दे०। थीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-दोगदि-पंचसंदा०-पंचसंघ०-दोआणु०-उज्जो०-अप्पस०-दूमग-दुस्सर-अणादें०--दोगो० सुज०-अप्प०-अविष्ठ० ज० ए०, अवर्त्त० ज० झंतो०, उ० तेंतीसं० दे०। दोवेदणी०-चदु-णोक०-थिरादितिण्णियु० सुज०-अप्प० ज० ए०, उ० झंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० तेंतीसं० देस्०। अवत० जहण्णु० झंतो०। पुरिस०-समच०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें० सुज०-अप्प०-अविष्ठ० साद०भंगो। अवत्त० ज० झंतो०, उ० तेंतीसं० देस्०। दोआयु० तिरिएएपदा ज० ए०, अवत्त० ज० झंतो०, उ० हम्मासं दे०। तित्थ० सुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० झंतो०। अविष्ठ० ज० ए०, उ० तिण्णि-साग० सादि०। अवत्त० णत्थि झंतरं। एवं सत्तमाए। छसु उवरिमासु मणुस०-मणु-साणु०-उच्चा० पुरिस०भंगो।

अवस्थितवन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी यही है, क्योंकि तीर्थक्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल इससे अधिक नहीं है। शेष कथन सुगम है। आगे आदेशसे भी जिस मार्गणामें अन्तरका विचार करना हो, उस मार्गणाके काल आदिको जानकर वह घटित कर लेना चाहिए। प्रन्थविस्तार और पुनक्क होनेके भयसे हम उस पर अलग-अलग विचार नहीं करेंगे।

४५६. नारिकयोंमें ध्रांचबन्धवाली प्रकृतियोंके सुजगार ख्रौर अल्पतरचन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है क्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, श्रवशस्त विद्वायो गति, दुर्भंग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रोर दो गोत्रके भुजगार, श्रत्पतर श्रोर श्रवस्थितवन्धका जधन्य व्यन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट भ्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर हैं। दो वेदनीय, चार नोकषाय और स्थिर आदि तीन युगलके सुजगार न्त्रीर श्रास्पतरवन्धका अधन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्तर्मुहूर्त है। अवस्थित बन्धका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्य-बन्धका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुते हैं। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वक्रवंभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर खौर श्रादेयके सुजगार, श्रास्पतर और अवस्थित-बन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुतं स्रौर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। दो आयुक्रोंके तीन पर्दोका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवन्थका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कुष्ट अन्तर कुछ कम छह महीना है। तीर्यक्करके भुजगार श्रीर श्रत्पतरबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्त-र्मु हुते हैं। अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन सागर हैं। श्रवक्तव्यवस्थका श्रन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । प्रारम्भ-की छह पृथिवियोंमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी छौर उद्यगोत्रका भङ्ग पुरुषवेदके समान है।

विशेषार्थ — जो तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला मनुष्य मिध्यादृष्टि होकर नारिक्योंमें उत्पन्न होता है, उसके इसका भवक्तव्यवन्ध तो होता है, पर दूसरी बार अवक्तव्यवन्ध सम्भव -

१. आ॰ प्रवी ऋषडि॰ ब॰ ए॰ उ॰ ऋषत्त॰ इति पाठः ।

४६०. तिरिक्तेस धुविगाणं भुज०-अप्पट-अविद्वि० ओघं। यीणगिद्धि०३मिच्छ०--अणंताणु०४ भुज०-अप्प० ज॰ ए०, उ० तिरिरापिति० दे०। अविद्वि०अवत्त० ओघं। साददंदओ ओघं। अप्पष्मक्ताण०४--वेड०ळ०--मणुस०--मणुसाणु०उषा० ओघं। इत्थि० अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिरिरापितिदो० दे०। सेसपदा
मिच्छत्तभंगो। णवुंस०-चदुजा०-पंचसंठा०-ओराल्डि०अंगो०-इस्संघ०-आदाड०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४--दूभग-दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० पुन्वकोदी
देसू०। अविद्व० ओघं। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोदी दे०। पुरिस० तिरिरापित्या
पदा सादभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिरिरापि० दे०। तिरिक्ताउ० भुज०अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोदी सादि०। अविद्व० तिरिक्तअप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोदी सादि०। अविद्व० तिरिक्तगदितिगं णवुंसगभंगो। अवतं ओघं। पंचिं०-समचदु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४-

न होनेसे इसके अन्तरका निषेध किया है। तथा प्रथमादि छह पृथिवियोंमें मनुष्यगतित्रिक का बन्धाबन्ध पुरुषवेदके समान है, अर्तः यहाँ इनके सब पदोंका अन्तर पुरुषवेदके समान कहा है। अबस्थित बन्धका उत्कृष्ट अन्तर भी यही है, क्योंकि तीर्थक्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल इससे अधिक नहीं है। शेष कथन सुगम है। आगे आदेशसे भी जिस मार्गणामें अन्तरका विचार करना हो, उस मार्गणाके काल आदिको जान कर वह घटित कर लेना चाहिए। मन्थ विस्तार और पुन-रक्त होनेके भयसे इस उस पर अलग-अलग विचार नहीं करेंगे।

४६०. तिर्यक्वोंमें ध्रवनन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, ऋल्पतर खीर अवस्थितबन्धका भक्क भोषके समान है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रीर त्रानन्तानुबन्धी चारके भुजगार श्रीर श्राल्पतर-बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर कुछ कम तीन परुयप्रमाण है। अवस्थित भीर अवक्तव्यवस्थका अन्तर श्रोघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भन्न श्रोघके समान है। अप्रत्याख्यानावरण चार, वैक्रियिक छह, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उच्चगोत्रका भक्न क्योचके समान है। स्त्रीवेदके अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुळ कम तीन पत्य है। शेष पदोंका भङ्ग मिध्यात्यको समान है। नपुंसकवेद, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, श्रातप, उद्योत, श्रप्रशस्त विहायोगति, स्थावर श्रादि चार, दुर्मग, दुःस्वर और श्रनादेयके मुजगार श्रीर श्रास्पतरबन्धका जधन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रान्तर कुळ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवस्थितबन्धका अन्तर श्रोघके समान है। तथा अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमास है। पुरुषवेदके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। तथा अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पर्यप्रमाण है। तीन आयुक्रोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उक्त पर्नोका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है। तिर्यक्रायुके भुजगार श्रीर श्रह्पतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य श्रन्तर अप्तर्मुहर्त है स्रोर उक्त पदोंका उत्कृष्ट अप्तर साधिक एक पूर्वकोटि प्रमाण है। तथा इसके अवस्थितवन्धका और तिर्यक्रगतित्रिकका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा तिर्यक्रगतित्रिकके श्रवक्तव्यवन्धका सङ्ग श्रोचके समान है। पद्धे न्द्रियजाति, समचतुरससंस्थान, परवात, उच्छा वाय,

१. अवत्त० अवत्त० (१) श्रोधं इति पाठः ।

सुभग-सुस्सर-आदें तिरिखापदा० सादभंगों । अवत्त० ज० अंतो०, ७० पुन्वकोडी दे० । ओरालि० तिरिखाप० णवुंसगभंगो । अवत्त ० ओघं ।

४६१. पंचिं वितिस्वत ३ धुनिमाणं भुज ०-अप० ओघं। अविह ० ज० ए०, उ० तिण्णिपिल पुन्वकोहिपु०। थीणिमिद्धिदंहओ तिरिक्लोघं। अविह ० णाणा०-भंगो। एवं अवत्त०। [णविर ज० अंतो०]। सादासाद ०-चहुणोक०-थिरादि-तिण्णियु० सन्वपदा ओघं। अविह ० णाणा०भंगो। अपचक्लाण०४ दोपदा ओघं। अविह० सादभंगो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुन्वकोहिपुभत्तं०। इत्थि० मिच्छ ० भंगो। णविर अवत्त० तिरिक्लोघं। [पुरिस० अवत्त० तिरिक्लोघं।] सेसपदा सादभंगो। णवंस० तिण्णिम०-चदुजा०-ओरा०-पंचसंठा०-ओरा० अंगो०- इस्संघ०-तिण्णिक्षाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावरादि०४ -दूभग-दुस्सर-अणाद ०-णीचागो० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुन्वकोही० दे०। अविह० ज० ए०, उ० पुन्ककोहिपुभ०। चत्तिर आजणि तिरिक्लोघं। णविर तिरिक्लाउ० अविह० ज० ए०,

प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर श्रीर श्रादेयके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्धका ज्ञचन्य श्रान्तर श्रान्तर हि और उत्कृष्ट श्रान्तर कुछ कम एक पूर्वकेटि-प्रमाण है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदोंका भङ्ग नपुंसकवेदके समान है। तथा श्रावकव्यपदका भङ्ग श्रोचके समान है।

४६१. पद्मे न्द्रियतिर्येख्वत्रिकमें ध्रुषबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरबन्धका भङ्ग श्रोपके समान है। अवस्थितबन्धका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम पूर्वकोटिपुथक्तव अधिक तीन पल्यप्रमाण है। स्त्यानगृद्धिदण्डकका भक्न सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। इतना विशेष है कि अवस्थितवन्यका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इसी प्रकार अव-क्तव्यबन्धका अन्तर काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि जवन्य अन्तर अन्तर् हित है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदीका भन्न श्रीचके समान है। मात्र श्रवस्थितबन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रप्रत्याख्यानावरण चारके दो पदोंका भन्न श्रोघके समान है। श्रवस्थितबन्धका भन्न सातावेदनीयके समान है। श्रवक्तव्य-बन्धका जघन्य श्रान्तर श्रान्तर्मुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। स्नीवेदका भक्क मिध्यात्वके समात है। इतनी विशेषता है कि अवक्तन्यवन्धका भंग सामाग्य तिर्यक्रीके समान है। पुरुषवेदके श्रवक्तव्यबन्धका भंग सामान्य तिर्यक्र्वोंके समान है, शेव पदोंका भंग सातावेदनीय-के समान है। नपुंसकवेद, तीन गति, चार जाति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह सहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विद्यायोगति, स्थावर आदि चार. दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार और अल्पतरबन्धका जधन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यवस्थका जघन्य अन्तर अन्तम् हुर्त है और तीनों पर्वेका उरकृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोरिशमाण है। तथा अवस्थितवन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ब्रन्तर पूर्वकोटिप्रथः स्वप्रमाण है। चारों ब्रायुक्रोंका भक्त सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। इसनी विशेषता है कि तिर्यञ्जायुके अवस्थितबन्धका जचन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर

१. ता० आ ं प्रतीः तिष्मिपदां सादीसदिमंगी० इति पाठः । २० ता० आ० मत्योः अवस्र० इति पाठः । ३ ता० आ ० प्रत्योः एवं अव्हि० सादासोद० इति पाठः ।

उ॰ पुरुवकोडिपु० । देवग०-पंचिदि०-वेउव्वि०-समचदु०-वेउव्वि०आंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-पसत्थ०-तस०४ – सुभग-सुस्सर-आदेँ०-उचा० अज०-अप्प०-अविद्वि० साद०-भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० पुरुवकोडी दे० ।

४६२. पंचि विरिक्ख व्याप सन्वाणं तिरिणापदा जिव्र एव, उव्श्वाती । । णबिर परियत्तमाणिगाणं अवत्तव जव्श्वाती व, उव्श्वाती व । एवं सन्वअपज्जतगाणं सन्बसुद्वुमपज्जतापज्जताणं च ।

४६३. मणुस०३ पंचिदि०तिरिक्तभंगो । णवरि आहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोहिपु० । तित्थ० दोपदा श्रोघं । श्रविध० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोही दे०। णवरि घुविगाणं अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोहिपुथ० ।

४६४. देवेसु धुविगाणं भ्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अवहि० ज०

पूर्वकोटिग्रथक्त्यप्रमाण है। देवगति, पञ्चोन्द्रियजाति, वैकियिकशरीर,समचतुरस्रसंस्थान, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, पर्यात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय और उवगोत्रके सुजगार, अल्पतर और अवस्थितवन्धका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्म इतं है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिश्रमाण है।

विशेषार्थ — यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अवस्थित बन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान कहा है, अतः स्त्यानगृद्धि आदिके अवस्थित बन्धका भङ्ग ज्ञानावरणके समान जानना चाहिए-यह इस कथनका तारपर्य है। और इनके अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूतं और उत्कृष्ट अन्तर अवस्थितके उत्कृष्ट अन्तर अवस्थितके उत्कृष्ट अन्तर अवस्थितके उत्कृष्ट अन्तर समान कहकर जघन्य की अपेक्षा विशेषता खोल दी है। इसी प्रकार यहाँ सातावेदनीय आदिके समान कहके अवस्थित पदको ज्ञानावरणके समान कहा है सो इसका यह तात्पर्य है कि सातावेदनीय आदिके शेष पदोंका जो अन्तर ओधमें कहा है, वह यहाँ जानना चाहिए। मात्र इनके अवस्थित पदका अन्तर जैसा यहाँ ज्ञानवरणके अवस्थित पदका कहा है, उस प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्तर चितत कर लेना चाहिए।

४६२. पद्धे न्द्रियतियेख्यअपयितकोमें सब प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुत्ते हैं। इतनी विशेषता है कि परिवर्तमान प्रकृतियोंके अवक्तव्य-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तमु हुत्ते हैं और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुत्ते हैं। इसी प्रकार सब अपयोग तथा सब सुद्दम और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए।

४६३. मनुष्यत्रिकमें पद्मे निद्रयतिर्यक्कोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि आहारक दिकके तीन पदोंका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तर्ग्र हुर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रयक्त्वप्रमाण है। तीर्थक्कर प्रकृतिके दो पदोंका अन्तर भोषके समान है। अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तर है और दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अनुववन्धवाली प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्धका जयन्य अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर क्रम्य प्रकृति है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रमाण है।

४६४. देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजनार और ग्रस्पतरबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुकृत है। अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और ए०, उ० तेंत्तीसं० दे० । यीणगि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्यि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग--दुस्सर-अणादे०-णीचा० तिषिणाप० ज० ए०,
अवच० ज० श्रंतो०, उ० एकत्तीसं० दे० । साददंदओ णिरयभंगो । पुरिस०-समचदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदे०-उचा० तिषिणापदा सादभंगो । अवच०
ज० श्रंतो०, उ० एकत्तीसं० देसू० । दोश्राउ० णिरयभंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०उज्जो० तिषिणाप० ज० ए०, अवच० ज० श्रंतो०, उ० अद्वारस साग० सादि० ।
पणुस०-मणुसाणु० तिषिणाप० सादभंगो । अवच० ज० श्रंतो०, उ० अद्वारह० सादि० ।
एर्रदि०-आदाव-थावर० तिण्णिप० ज० ए०, अवच० ज० श्रंतो०, उ० वेसाग०
सादि० । पंचि०-ओरा०श्रंगो०-तस० तिण्णिप० सादभंगो । अवच० ज० श्रंतो०,
उ० वेसाग० सादि० । तित्थ० तिण्णिप० णाणा०भंगो । एवं सञ्वदेवाणं अप्यप्पणोश्रंतरं णेद्व्वं ।

४६५. एइंदिएसु सञ्चाणं पगदीणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रांतो० । श्रविष्ठि ओघं । बादरे श्रंगुलस्स असं०, बादरपज्जते संखेज्जाणि वाससहस्साणि, सुहुमाणं असंखेज्जा लोगा । सञ्चाणं श्रवत्त० ज० उ० श्रंतो०। तिरिक्लाउ० अविष्ठ० णाणा०भंगो । संसपदा पगदिश्रंतरं । मणुसाउं० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज०

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच सस्थान, पाँच सहनन, अप्रशस्त विद्यायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच-गोत्रके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है,अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर अन्तर्सुंहर्त है और सक्का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। पुरुषवेद,समचतुरस्त्रसंस्थान, वऋषभनाराचसंहनन,सुभग, प्रशस्त विद्वायोगति, सुस्वर, झादेय श्रौर उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्यका जघन्य अन्तर् अन्तर्महर्त है ऋौर उत्कृष्ट ऋन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। दो आयुर्ऋोंका भक्क नारिकयोंके समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी ध्रौर उद्योतके तीन पर्दोका जवन्य श्रम्तर एक समय है, अवक्तस्य-बन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। मनुष्य-गति और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके तीन पदोंका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। एकेन्द्रियजाति, श्रातप श्रौर स्थावरके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यवन्धका जघन्य श्रन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। पद्धे न्द्रियजाति, औदारिक आक्रो-पाङ्क और त्रसके तीन पदोंका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तमुहित है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। तीर्थक्कर प्रकृतिके तीन परोंका अन्तर **ज्ञानावर**णके समान है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना-अपना अन्तर जानना चाहिए।

४६५. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अस्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। अवस्थितपदका अन्तर ओवके समान है। अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर बादरोंमें अञ्जलके असंख्यातमें भागप्रमाण है, बादर पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और स्दर्भोंमें असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा सब (परिवर्तमान) प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त है। तिर्यक्रायुके अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान

१. श्रा॰ प्रतौ मसुसासु० इति पाठः ।

द्यंतो०, उ॰ सत्तवाससह० सादि०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाण०-णीचा० भ्रुज०-अप्प०-अविद्वि० णाणा०भंगो । अवत्त० ओघं। बादरे कम्मिट्टदी०, पज्जते संखेँज्ञाणि वास-सहस्साणि, स्रहुमाणं असंखेँज्ञा लोगा। मणुसगिद-मणुसाणु०-उचा० चत्तारिपदा-ओघभंगो। एवं सुहुमाणं पि। णविर बादरे कम्मिट्टदी०। णविर अविद्वि० ज० ए०, उ० अंगुल० असं०। बादरपज्जते संखेँज्ञाणि वाससह०।

४६६. बेइं०-तेइं०-चदुरिं० सव्यपगदीणं भ्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० स्रंतो०। अविहि० ज० ए०, उ० संखेंज्ञाणि वास०। णविर तिरिक्लाउ० भ्रुज० अप्प० ज० ए०, स्रवच० ज० स्रंतो०, उ० भविद्विशि सादि०। अविह० णाणा०भंगो। मणुसाउ० भ्रुज०-अप्प०-अविह०-अवच० द्विदिभुजगारभंगो। पंचण्णं कायाखं सव्वपगदीणं द्विदि-भ्रुजगारभंगो कादव्वो।

४६७. पंचिदिव-तसवर पंचणाव-छदंसव-चदुसंजव-भय-दुव-तेजाव-कव-वण्णवध-अगुव-उपव-णिमिव-पंचंतव भुजव-झप्पव ओघं। स्रविद्धिव जव ए०, अवत्तव जव स्रंतोव, उव सगद्विदीव। थीणगिद्धिव ३-मिच्छव-अणंताणुवध भुजव-अप्पव स्रोघं। अवद्विव-अवत्तव जव एव स्रंतोव, उव णाणावभंगो। साददंडस्रो ओघ। अवद्विव

है। शेष पदोंका अन्तर प्रकृतिबन्धके अन्तरके समान है। मनुष्यायुके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर मृत्यां हुतं है और सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक सात हजार वर्ष है। तिर्यक्षगति, तिर्यक्षगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्धका अन्तर आघावरणके समान है। अवक्तव्यवन्धका अन्तर ओषके समान है। बादरोंमें कर्मस्थिति प्रमाण है, पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष है और सूद्द्रमोंमें असंख्यात लोक-प्रमाण है। मनुष्यगति, सनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके चारों पदोंका भङ्ग ओषके समान है। इसी प्रकार सूद्द्रम जीवोंमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है। इतनी और विशेषता है कि बादरोंमें कर्मस्थितिप्रमाण है। इतनी और विशेषता है कि आपरिथतपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अङ्गुलके असंख्यात वें भागप्रमाण है। तथा बादर पर्याप्तक जीवोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है।

४६६. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंमें सब प्रकृतियोंके मुजगार और श्रास्पतर-पदका जयन्य श्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्तमुं हुते हैं। श्रावस्थित पदका जयन्य श्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रान्तर संख्यात वर्ष है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रायुके भुजगार और श्रान्तरपदका जयन्य श्रान्तर एक समय है, श्रावक्तव्य पदका जयन्य श्रान्तर श्रान्तमुं हूर्त है और तीनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक भवस्थितिप्रमाण है। श्रावस्थितपदका श्रान्तर ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यायुके भुजगार, श्रान्तर, श्रावस्थित श्रीर श्रावक्तव्यपदका श्रान्तर स्थितिश्वस्थके भुजगारके समान है। पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रश्रुतियोंका भक्त स्थितिश्वस्थके भुजगारके समान करना चाहिए।

४६७. पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार और अन्यतरपदका भङ्ग ओघके समान है। अवस्थितपदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है अवक्तव्यपदका ज्ञान्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनोंका उत्हृष्ट अन्तर अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुवन्धी चारके भुजगार और अन्यतरपदका भङ्ग कोघके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका ज्ञान्य अन्तर क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर ज्ञानावरणके समान है। णाणा०भंगो । श्रद्धक० श्रुज०-श्रप्प० ओघं । सेसाणं णाणा०भंगो । इत्थि० श्रुज०-अप्प० अवत्त ० ओघं । अविद्वि० णाणा०भंगो । पुरिस० श्रुज०-अप्प०-अवत्त० ओघं । अविद्वि० णाणा०भंगो । णवुंस०-पंचसंद्या०--अप्पस्थ०--द्भग-दुस्सर-अणादेँ०-णीचा०, श्रुज०-अप्प०-अवत्त० ओघं । अविद्वि० णाणा०भंगो । तिण्णि-आव० श्रुज०--अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उवक्त० सागरो०सदपुध० । अविद्वि० कायिद्दिशि० । मणुसाउ० सन्वपदाणं सगिद्दिशि० । णिरयगिदि--चदुजा०-णिरयाणु०-आदाव०--थावरादि०४ श्रुज०--अप्प०--अवत्त० जे० ए० श्रंतो०, उक्क० पंचासीदिसाग०सद० । अविद्वि० णाणा०भंगो । तिरिक्ता०--तिरिक्ताणु०--उज्जो० श्रुज०-अप्प०-श्रवत्त० ज० ए० श्रंतो०, उ० तेविद्याः स्वव्य०--वेविव्य०--वेविव्य०श्रंगो०--दोआणु० श्रुज०--अप्प० ज० ए०, उ० तेतिसं सागरो० सादि० दोहि श्रुदुत्तेहि सादिरेयं । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसंसागरो० सादि२० पुज्वकोहि समऊणसादिरेयं । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसंसागरो० सादि२० पुज्वकोहि समऊणसादिरेयं । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पंचासीदि-साग०-सदं० । ओरा०-श्रोरा०श्रंगो०--वज्ज० श्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णि-

सातावेदनीयदण्डकका भक्क खोचके समान है। तथा श्रवस्थितपदका श्रन्तर ज्ञानावरणके समान है। बाठ कषायोंके भुजगार और बाल्पतरपदका बान्तर क्रोघके समान है। शेष पदोंका बान्तर श्रानावरएके समान है। स्रीवेदके भुजगार, भ्रष्टपतर श्रीर श्रवक्तव्यपदका श्रन्तर श्रीयके समान है। अवस्थितपदका ऋन्तर ज्ञानावरणके समान है। पुरुषवेदके भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदका अन्तर ओघके समान है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। नपुंचकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर भीर अवक्तव्यपदका अन्तर अधिके समान है। अवस्थित पदका अन्तर मानावरणके समान है। तीन आयुत्रोंके भुजगार भौर ग्रस्पतर पदका जघन्य श्रम्तर एक समय है, अवक्तव्य परका जघन्य अन्तर अन्तमुहुत है और तीनों पर्दोका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर प्रथक्त्वप्रमाण है। तथा अवस्थित पदका अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। मनुष्यायुके सब पदौंका अन्तर अपनी कायस्थितिप्रमाण है। नरकगति, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावर स्रादि चारके भुजगार, स्रह्वतर स्रीर स्रवक्तव्य पदका जवन्य सन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। अवस्थितपदका अन्तर झानावरएकि समान है। तिर्येक्सगति, तिर्येक्सगत्यानुपूर्वी श्रीर रद्योतके भुजगार, श्राल्पतर श्रीर श्रवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय स्त्रीर अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। मनुष्यगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आक्नोपाङ्ग और दो आनुपूर्वीके भुजगार और अल्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट दो मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपद्का जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवस्थित परका अन्तर **क्रानावरणके समान है। पञ्चो**न्द्रियजाति, परघात, उच्छवास, श्रौर त्रसचतुष्कके भुजगार, श्रास्पतर श्रीर अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। श्रवकत्यपदका जवन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है चौर उत्कृष्ट अन्तर एकसौ पचासी सागर है। स्रौदारिकशरीर, स्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग स्रौर

१. ऋष शती ऋष्य । च । इति पाठः ।

पिछ० सादि०। अविह० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेँतीसं० सादि० पुन्वकोडी सादि०। आहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० चदुण्णं पि कायिहिदी०। समचदु०-पसत्थ०-स्रभग-सुस्सर-श्रादेँ०-जञ्चा० सुज०-अप्प०-अविह० पंचिद्यजादिभंगो। अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० वेद्याविह० सादि० दोपुन्वकोडिवास-पुत्रत्ताणि याओ सादिरेयं तिण्णिपिलिदो० देस्० श्रंतोसुहृत्णाणि। तित्थ० सुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० दोण्हं पि तेंतीसं० सादि० दोपुन्वकोडीओ दोहि वासपुधत्तेहि ऊणियाओ सादि०।

४६८. पंचमण०-पंचवचि० सञ्चपगदीणं शुज०-अप्प०-श्रविद्धि० ज० ए०, उ० श्रंतो० । श्रवत्त० णित्थ श्रंतरं । कायजोगीसु पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४--अग्र०-उप०-णिमि०-पंचंत० शुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । श्रविद्ध० ज० ए०, उ० श्रसंखेंज्ञा लोगा । अवत्त० णित्य श्रंतरं । सादासाद०-सत्तणोक०-पंचजा०-इस्संघ०-ओरा०श्रंगो०-इस्संघ०-पर०-उस्सा०-आदा- उज्जो०-दोविद्दा०-तसथावरादिदसयु० शुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविद्ध०

वक्षषभनाराचसंहननके मुजगार और श्रष्टपतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पर्य है। अवस्थितपदका अन्तर झानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्भुंहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। आहारकि हिकके तीन पदोंका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्भुंहूर्त है तथा चारों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितियमाण है। समचतुरस्थसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके मुजगार, अस्पतर और अवस्थितपदका भक्त पक्षेत्रिय- जातिके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर्भुंहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक, दो वर्षपृथक्त्व कम दो पूर्वकोटि अधिक तथा अन्तर्भुंहूर्त कम दो छियासठ सागरप्रमाण है। तीर्थहरप्रकृतिके भुजगार और अस्पतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुंहूर्त है। अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुंहूर्त है। अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुंहूर्त है। अवस्थित पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर है। वर्षभूकोटि अधिक तेतीस सागर है।

४६८. पाँचों मनोयोगी श्रीर पाँचों वचनयोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, श्रन्पतर श्रीर श्रवस्थित पदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूते हैं। अवक्तव्य-पदका अन्तर काल नहीं है। काययोगी जीवोंमें पाँच क्वानावरण, नौ दर्शनावरण, मिण्यात्व, सोलह क्वाय, भय, जुगुप्सा, श्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्यु, उपघात, निर्माण श्रीर पाँच अन्तरायके भुजगार श्रीर अल्पतरपदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुते है। अवस्थितपदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवस्थितपदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकपाय, पाँच ज्ञाति, छह संस्थान, श्रीदारिकश्राक्षेपाङ्ग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, हो विहायोगित श्रीर अस-स्थावर श्रादि इस युगलके भुजगार श्रीर अस्पतरपदका ज्ञान्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुते है। अवस्थितपदका अन्तर श्रानावरण ज्ञान्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुते है। अवस्थितपदका अन्तर श्रानावरण

१. ता० प्रती तेत्तीसं० सेखादि (सादि०) पुल्यकोडि इति पाठः ।

णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० श्रंतो० । दोत्राउ०-वेउव्वियद्ध०-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो । तिरिक्लाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० बावीसं वाससह० सादि० । अविह० ज० ए०, उ० असंखेंज्ञा लोगा । मणुसाउ०-मणुसगदि--मणुसाणु०--ज्ञा० सञ्चपदाणं ओघं । तिरिक्ल०-तिरिक्लाणु०--णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविह०-अवत्त० ओघं ।

४६६. श्रोरात्ति० णाणावरणादिदंडओ कायजोगिभंगो। णवरि श्रविह० ज० ए०, उ० वात्रीसं वाससह० देस् ०। सादासाद०-सत्तणोक०-दोगिद-पंचजादि-ञ्चस्संद्वाण-श्रोरात्ति०श्रंगो०--ञ्चस्संघ०--दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउ०-दोविहा०-तसथावरादि दसयुग०-दोगो० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविह० णाणा०भंगो। अवत्त० ज० उ० श्रंतो०। दोआउ०-वेउव्वियञ्च०-आहारदुग-तित्थ० मणजोगिभंगो। दोआउ० भुज०-अप्प०-अविह० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० सब्वपदाणं सत्तवास-सह० सादि०।

४७०. ओरासियमि० धुवियाणं देवगदिपंचगस्स च तिण्णिप० ज० ए०, उ० झंतो०। सेसाएां तिण्णिप० ज० ए०, उ० झंतो०। अवत्त० ज० उ० झंतो०।

के समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुंहूर्त है। दो आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। तिर्यञ्चायुके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्म हूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस हजार वर्ष है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर आसंख्यात लोकप्रमाण है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके सब पदोंका भङ्ग अध्यके समान है। तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रके भुजगार और अवस्थतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भङ्ग ओवके समान है।

४६६. श्रौदारिककाययोगी जीवोंमें ज्ञानावरणादिदण्डका भङ्ग काययोगी श्रीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थितपदका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम बाईस इजार वर्ष है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, सात नोकषाय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, श्रोदारिक श्रांगोपांग, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, परघात, उच्छ्यास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, अस-स्थावरादि दस युगल श्रोर दो गोत्रके भुजगार श्रीर अस्पतरपदका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है। श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है। दो श्रायु, वैक्रियिक छह, श्राहारकि छोर तथिङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो श्रायु, वैक्रियिक छह, श्राहारकि छोर तथिङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो श्रायु, वैक्रियक श्रन्तमुँहूर्त है श्रीर श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुँहूर्त है श्रीर सब पदोंका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक सात हजार वर्ष है।

४७०. श्रीदारिकमित्रकाययोगी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों श्रीर देवगतिपञ्चकके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुई हूर्त है। शेष प्रकृतियोंके तीन पदोंका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुई है। तथा श्रवक्तव्यपदका

१. ता० स्ना० प्रत्योः देसू० इति स्थाने सादि० इति पाठः ।

णवरि मिच्छ० अवत् णित्थ ऋंतरं । एवं वेउव्वियमि०-आहारमि० ।

४७१. वेजिब्ब०-आहार० धुवियाणं तिष्णिप० ज० ए०, उ० श्रंतो०। सेसाणं मणजोगिभंगो। कम्मइ० सब्बपगदीर्गा सब्बप० णत्यि श्रंतरं। णवरि अविडि० ज० उ० ए०।

४७२. इत्यिने० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० प्रांतो०। अवहि० ज० ए०, उ० पत्ति०सदपु०। थीण०२-मिच्छ०-अर्षाताणु०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पणवण्णं पिछ० दे०। अवहि०-अवत्त० णाणा०भंगो। णविरं अवत्त० ज० श्रंतो०। णिद्दा-पयछा-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थ श्रंतरं। सादादिदंडओ अहकसा०-दंडओ सन्वपदा ओघं। णविर कायिहिदी भाणिद्वा। इत्थि०-णवुंस०-तिरिक्ल०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्लाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्थ०-थावर०-द्भग-दुस्सर-अणादेँ०-णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पणवण्णं पत्ति० दे०। अवहि० णाणा०भंगो। पुरिस०-पंचि०-समचदु०-पसत्थ०-तस०-सुभग-

जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुंहूर्त है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके श्रवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी श्रीर श्राहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

४०१. वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीवोंमें ध्रुवदन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तर्मुंहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंका अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि सबस्थितपदका जघन्य और उत्कृष्ट श्रन्तर एक समय है।

४७२. स्त्रिवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन श्रीर पाँच श्रम्तरायके मुजगार श्रीर श्रम्पतर पदका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तमुंहूर्त है। श्रवस्थित पदका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रम्तर सो पर्याप्यकरव प्रमाण है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व श्रीर श्रम्ततानुबन्धी चारके मुजगार श्रीर श्रम्पतर पदका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रम्तर कुछ कम पचपन पर्य है। श्रवस्थित श्रीर श्रम्कच्यपदका भङ्ग ज्ञानावरण (अवस्थितपद) के समान है। इतनी विशेषता है कि श्रमकच्यपदका कान्य श्रम्तर श्रम्तमुँ हूर्त है। निद्रा, श्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुकक, श्रमुरुलघु, उपघात श्रीर निर्माणके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रमकच्यपदका श्रम्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय श्रादि दण्डक श्रीर श्राठ कपायदण्डकके सब पदोंका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि कायस्थित कहनी चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, श्रातप, उद्योत, श्रप्रस्त विहायोगिति, स्थायर, दुर्भग, दुःस्वर, श्रमत्य श्रीर नीचगोत्रके भुजगार श्रीर श्रस्पतरपदका जघन्य श्रम्तर छुछ, कम पचपन पर्य है। श्रवस्थितपदका भङ्ग श्रानावरणके समान है। पुरुषवेद, पञ्चोन्द्रयज्ञाति, समचतुरश्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस, सुभग, समचतुरश्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगिति, त्रस, सुभग,

ता० प्रतौ सन्त० याथाघ० सविह० (१) भंगो याविर इति पाठः ।

सुस्सर-आदेँ - उच्चा ० भुज ० - अप्प ० - अविह ० णाणा ० भंगो । अवत्त ० ज ० श्रंतो ०, उ० पणवण्णं पिल ० देस् ० । णिरया उ० सन्वपदा मणुसभंगो । दो आउ० तिण्णिप ० ज० ए०, अवत्त ० ज० श्रंतो ०, उ० काय हिदी ० । देवा उ० भुज ० अप्प ० - [अविह] ज० ए०, अवत्त ० ज० श्रंतो ०, उ० अहावण्णं पिल ० पुन्वको हिपुभत्ते ० । अविह ० काय हिदी ० । वेडिन्वय छ० - तिण्णिजा ० - सुहु म० - अपज ० न्साथार ० भुज ० - अपप ० - [अविह ०] ज० ए०, अवत्त ० ज० श्रंतो ०, उ० पणवण्णं पिल ० सादि ० । अविह ० काय हिदी ० । मणुस ० - ओरा ० - श्रो गो ० - वज्जरि ० - - मणुसाणु ० भुज ० - अपप ० ज० ए०, उ० तिण्णिपिल ० दे० । अविह ० णाणा ० भंगो । अवत्त ० ज० श्रंतो ०, उ० पणवण्णं पिल ० दे० । णविर ओराल ० अवत्त ० [उ०] पणवण्णं पिल ० सादि ० | श्राहारदुगं सन्वपदा ज० ए०, अवत्त ० ज० श्रंतो ०, उ० काय हि० । पर ० - उस्सा ० - वादर - पज्जत - पत्ते ० तिष्णपदा ० णाणा ० भंगो । अवत्त ० ज० श्रंतो ०, उ० पणवण्णं पिल ० सादि ० । तित्थ ० भुज ० अपण ज० ए०, उ० श्रंतो ० । अविह ० ज० ए०, उ० पुन्वको डी दे० । अवत्त ० णित्थ श्रंतरं । ४७३ . पुरिसेसु पढमदं इओ पंचणाणावरणादी विदियदं इओ थीण गिद्धि आदी

सुस्वर, आदेय और उचगात्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपद्का जघन्य अन्तर अन्तर्भुष्ट्रत है और व्ह्हेष्ट अन्तर कुळ कम पचपन पत्य है। नरकायुके सब पदोंका भङ्ग मनुष्योंके समान है। दो आयुओंके तीन पदोंका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तर्भृहूर्त हे और सब पर्होका उत्कृष्ट अन्तर कायस्थितिप्रमाण है । देवायुके भुजगार अल्पतर और अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तत्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उक्त तीन पदोंका उत्क्रष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्तव अधिक आद्वावन पत्य है। तथा अवस्थितपद्का अन्तर कायस्थितिप्रमाण है। वैक्रियिक छह, तीन जाति, सूद्दम, अपर्याप्त और साधारणके भुजगार अल्प-तर और श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तम् हर्त है श्रीर तीनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन परुष है तथा अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर काय-स्थितिप्रमाण है। मनुष्यगति, औद।रिकशरीर, ऋौदारिकश्चांगोपांग, वक्रर्षभनार। चसंहनत और मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार श्रीर श्रात्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर कुळ कम तीन परुष है। अवस्थितपदका भंग ज्ञान।वरणके समान है। अवक्तस्य पदका ज्ञान्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त हे और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पहन है। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिक-शरीरके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पत्य है। आहारकद्विकके सद पर्होका जघन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यवदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर सबका उत्कृष्ट श्रन्तर कायस्थितिप्रमाण है। परघात, उच्छवास, बादर, पर्याप्त स्त्रौर प्रत्येकके तीन पदोंका भंग झानावरणके समान है। अवक्तन्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमु हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक पचपन पस्य है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार और श्रास्पतरपदका जधन्य श्रान्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहर्त है। अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। अवक्तन्यपद्का अन्तर काल नहीं है।

४७३. पुरुषवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धि आदि द्वितीय

रे. ता**ः ऋाः प्रत्योः तिण्विपत्तिः यायाः इ**ति पा**र**ः।

तिद्यदंडम्रो णिहादी चल्रस्यदंड्यो सादादी पंचमदंड्यो अद्धक्ता० एदे इत्थिवेदभंगो । णवित्त सक्वाणं पुरिसवेदिदि णाद्का। तिद्ए दंडए णिहादीणं अवत्त० ज० म्रंता०, ज० सागरो०सदपुष० । थीणगिद्धिदंडए भुज०-अप्प० ओघं । इत्थि० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० वेद्याविठ० दे० । स्विद्धिण णाणा०भंगो । अवत्त० ज० स्रंतो०, उ० दिदिशुजगारभंगो । णवुंस०-पंचसंदा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचा० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० स्रंतो०, उ० वेद्याविठ० सादि० तिण्णि-पिल० देस् ० म्रंतोग्रहुत्तृणाणि । पुरिस० तिण्णियाड० इत्थि०भंगो । यवत्त० ज० म्रंतो०, उ० वेद्याविठ० दे० म्रंतोग्रहुत्तृणाणि । तिण्णियाड० इत्थि०भंगो । देवाउ० भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० म्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुक्वकोडितिभागेण पुक्वकोडीए सादिरयाणि । अवद्वि० णाणा०भंगो । णिर्यगदिदंड्यो तिरिक्सगदिदंड्यो दोपदा ज० ए०, अवत्त० ज० म्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुक्वकोडितिभागेण पुक्ककोडीए सादिरयाणि । अवद्वि० णाणा०भंगो । णिर्यगदिदंड्यो तिरिक्सगदिदंड्यो दोपदा ज० ए०, अवत्त० ज० म्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुक्वकोडितभागेण० । अविठ० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुक्वकोडितभागेण० । अविठ० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेत्तीसं० सादि० पुक्वकोडितभागेण० । सादि० । देवगदि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० श्रंतो० ।

दण्डक, निद्रादि तृतीय दण्डक, सातावेदनीय आदि चतुर्थ दण्डक श्रीर आठ कषायरूप पाँचवें दण्डकका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि सबके पुरुषवेदकी स्थिति जाननी चाहिए। निद्रादिकका जो तीसरा दण्डक है उसके श्रयक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमु हूर्त है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर सी सागरपृथक्त है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके भूजगार श्रीर अल्पतरपदका भंग श्रोचके समान है। स्त्रीवेदके भूजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रंष्ट अन्तर कुछ कम दो छिचासठ सागरप्रमाण है। अवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरण्के समान हैं। श्रवक्तव्यपदका जबन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर स्थितिबन्धके भुजगारके समान है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, श्रावशास्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके भुजगार श्रीर अल्पतर पदका जवन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तमु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम तीन पर्य अधिक दो **छियासठ सागर है । पुरु**पवेदके तीन पदींका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त कम दो छियासठ सागर है। तीन आयुत्रोंका भक्त स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। देवायुके मुजगार और अस्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तन्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका त्रिभाग श्रौर पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपद्का भङ्ग ज्ञानावरएके समान है। नरकगति-दण्डक श्रीर तिर्यश्चगतिदण्डकके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एकसी त्रेसठ सागर है। अवस्थितपरका अन्तर ज्ञाना-वरणके समान है। मनुष्यगतिपञ्चक्रके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य है। अवस्थित पदका अन्तर ज्ञानावरण के समान है। अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर अन्तर्भृहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके भूजगार और अल्पतरपदका जवन्य श्रान्तर

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः तिह्य दंडग्रो विहारां इति पाठः । २. श्रा॰ प्रतो ष॰ ए० उ० इति पाठः । ३. श्रा॰ प्रतो विहरवगदिदंडग्रो दोपदा इति पाठः ।

अविद्वि णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेतीसं० सादि० पुन्वकोडिसमऊणं सादिगं भविद् । पंचिदियदंडओ हिदिशुजगारभंगो । आहारदुगं पंचिदियभंगो । सम-चदु०-पसत्थ०--सुभग--सुस्सरं--आदे०--उचा० तिण्णिपदा णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० बेद्याव० सोदि० तिण्णिपत्ति० देस्०। [तित्थ०] शुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविद्व० ज० ए०, उ० तेत्तीसं० सादि० दोहि पुन्वकोडीहि दोहि वासपुथत्तेहि ऊणिगाहि सादिरे०। अवत० ज० श्रंतो०, उ० पुन्वकोडि० दे० वास-पुथत्तेणुणाणि।

४७४. णवुंसगे पंचणाणावरणादिपदमदंडओ विदियदंडओ थीण गिद्धिआदी तिद्यदंडओ णिहादी चडत्थदंडओ सादादी इत्थि०भंगो। एवरि सट्वाणं दंडगाणं अविद्वि० खवत्त०ओघं। थीणगिद्धिदंडए अज०-[अप्प०] ज॰ ए०, उ० तेँत्तीसं० दे०। अद्वक०-तिण्णिआउ०-वेडव्वियछ०-मणुसगिदितिगं आहारदुगं ओघं। इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-छज्ञो०-अप्पसत्थ०-दूभग-दुस्सर-आणादें० अज०--अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० खंतो०, उ० तेँतीसं० देस्०। अविद्वि० ओघं। पुरिस०-समचदु०-पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर-आदें० तिण्णिपदा सादभंगो। अवत्त० ज० खंतो०, उ० तेँतीसं० दे०। देवाउ०

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवस्थितबन्धका अन्तर इ। नावरणके समान है। अवक्तृत्यवन्धका जवन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। पक्कोन्द्रियज्ञातिदण्डकका भङ्ग स्थितिबन्धके भुजगार के समान है। आहारकि कका भङ्ग पक्कोन्द्रियों के समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायागित, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तृत्यपदका जवन्य अन्तर अन्तर्मु हूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण है। तीर्थङ्कर पश्चितके मुजगार और अलगतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर विद्यास्य स्थन्तर अन्तर अन्तर अन्तर स्थन्तर है। अवक्ष्यिक वेतीस सागर है। अवक्ष्ययदका अवन्य अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर स्थन्तर स्थन्तर स्थन्तर के समय है और उत्कृष्ट अन्तर क्षेत्र प्रथिक वेतीस सागर है। अवक्ष्ययदका अवन्य अन्तर अन्तर स्थन्तर सु हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथवन्त्य कम एक पूर्वकोटि है।

४७४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि अथम दण्डक, स्त्यानगृद्धि आदि द्वितीय दण्डक, निद्रादि तृतीय दण्डक श्रीर सातावेदनीय श्रादि चतुर्थ दण्डकका भङ्ग स्नीवेदी जीवोंके समान हैं। इतनी विशेषता है कि इन सब दण्डकोंके श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तस्यपदका श्रान्तर श्रोपके समान हैं। स्त्यानगृद्धिदण्डकके भुतगार श्रीर श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तस्यपदका अवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर कुछ कम तेतीस सागर हैं। श्राठ क्षाय, तीन श्रायु, वैक्रियिक छह, मनुष्यगितित्रक श्रीर श्राहारकद्विकका भङ्ग श्रोपके समान हैं। श्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, ख्योत, श्रवकाद विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर श्रीर श्रान्तरेय भुजगार श्रीर श्रवस्थित तर्पका जयन्य श्रव्तर एक समय हैं, अवक्तस्यपदका जयन्य श्रव्तर श्रुक कम तेतीस सागर हैं। श्रवस्थितपदका श्रव्तर श्रोपके समान हैं। पुरुपवेद, समचतुरक्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगित, सुभग, सुर्वर श्रीर श्रादेयके तीन पदोंका भङ्ग साता-वेदनीयके समान हैं। श्रवक्तस्यपदका जयन्य श्रन्तर श्रवके समान हैं। श्रवक्तस्य क्रम्तर श्रवक्र कम

१. ऋा॰ पतौ पसत्यः सुस्सर इति पाठः ।

मणुसि०भंगो । ओरा० दोपदा० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। अविह०-अवत्त० ओघं। स्रोरालि०स्रंगो०-वज्जरि० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० पुव्वकोडी दे०। स्रविह० ओघं। अवत्त० ज० स्रंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० स्रांतोग्रहुत्तेण सादि०। णवरि० वज्जरि० अवत्त० तेंत्तीसं० दे०। तित्थ० दोपदा० स्रोघं। अविह० ज० एग०, उ० तिण्णिसा० सादि०। अवत्त० ज० स्रंतो०, उ० पुन्वकोडितिभागं देसू०।

४७५. अवगद् ० सन्वाणं भ्रुन०--अप्पद०--श्रवत्त० णित्य श्रंतरं । कोधादि०४ धुविगाणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० श्रंतो० । सेसाणं पगदीणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अवत्त० णित्थि० श्रंतरं । णविर सादादीणं मणजोगिभंगो अवत्त०-वंधगस्स ।

४७६, यदि०-सुद० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-तेजा०-क०

तेतीस सागर हैं। देवायुका सङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। श्रीदारिकशरीरके दो पदांका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर अरकुष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रवस्थित श्रीर अवक्तव्य-पदका सङ्ग श्रीयके समान है। श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग श्रीर वर्श्वपमनाराच संहननके भुजगार श्रीर अस्पतर पदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। श्रवस्थित पदका सङ्ग श्रोयके समान है। श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुई ते है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुई ते है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुई ते श्रिक वेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि वश्रवमनाराचसंहननके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि वश्रवमनाराचसंहननके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके दो पदोंका मङ्ग ओषके समान है। श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तीन सागर है। श्रवक्तव्य पदका जघन्य श्रन्तर श्रन्तमुई ते है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम त्रिभागप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ तीर्थंद्वर प्रकृतिके अवक्तव्य बन्धका जो जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा है, वह इस प्रकार घटित करना चाहिए। नरकायुके बन्धक एक नपुंसकवेदी मनुष्यने अन्तर्मु हूर्त आयु शेष रहने पर तीर्थंद्वर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ किया और लघु अन्तर्मु हूर्त काल तक बन्ध करके मिध्यादृष्टि हुआ। और मर कर नारकी हो गया। पुनः पर्यात होकर सम्यग्दर्शन पूर्वक उसका बन्ध करने लगा। इस प्रकार तो तीर्थंद्वर प्रकृतिके अवक्तव्य बन्धका जयन्य अन्तर अन्तर्म हूर्ते प्राप्त हो जाता है। और एक पूर्वकोटिके नपुंसकवेदी मनुष्यने विभागमें आयु बन्ध किया। पुनः सम्यन्दृष्टि होकर तीर्थंद्वर प्रकृतिका बन्ध करने लगा। और अन्तमें मिध्यादृष्टि होकर नरकमें गया और अन्तर्मु हूर्त बाद पुनः उसका बन्ध करने लगा। इस प्रकार तीर्थंद्वर प्रकृतिके अवक्तव्यवन्धका उत्कृष्ट अन्तर एक पूर्वकोटिका कुछ कम विभाग प्रमाण प्राप्त होता है।

४०५. श्रपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार, श्रह्यतर श्रीर श्रवकत्यपदका श्रन्तर काल नहीं है। क्रोधादि चार कथायोंमें श्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जवन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तर है। श्रवकत्वव्यवद्या श्रन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय श्रादिके श्रवकत्वयद्या भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है।

४७६. मत्यज्ञानी और अताज्ञानी जीवोंमें पाँच क्वानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व,

१. ग्रा॰ मतौ म॰ उ॰ इति पाउः ।

वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० युज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविहि० ज० ए०, उ० असंखें ज्ञा लोगा । सादासाद०-इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रिद-अरिद-सोग-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० युज०--अप्पर्द०--अविह० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० उ० श्रंतो० । णवुंस० पंचसंठा०--ओरालि० अंगो० -- इस्संघ०--अप्पस्तथ०-- दूभग--दुस्सर--अणादेँ० भुज०--अप्पद० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिण्णि-पिल० दे० । अविह० ओघ । [णत्रिर ओरालि० अंगो० अवत्त० उ० तेंत्तीसं सादि०।] चदुआउ०-वेउव्वियछ०-मणुसगदितिगं ओघं । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० युज० अप्प० ज० ए०, उ० ऍक्षतीसं० सादि०। अविह०-अवत्त० अोघं । चदुआदि आदाकथावर०४ युज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० ! अविह० ओघं । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ तिण्णिप० णाणाभंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि० । ओरालि० युज०-अप्प० ज० ए०, उ० तिण्णिप पलि० दे० । अविह०-अवत्त० ओघं० । समचदु०--पसत्थ०--सुभग--सुस्सर-आदेँ० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिण्णिप० सादभंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तिण्णिप० सादभंगो ।

सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मगाशरीर, वर्णंचतुष्क, श्रगुरुलधु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार श्रीर अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर अन्तमुंहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक-प्रमाण है। सातावेदनीय, श्रासातावेदनीय, स्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, श्रारति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिके मुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका भक्न ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भु हूर्त है। नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, झौदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अल्पतरपद्का जधन्य अन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर श्रन्तमु^रहूर्त है श्रीर इनका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तीन पत्य है। श्रवस्थितपदका श्रन्तर काल श्रोधके समान हैं। इतनी विशेषता है कि श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्गके श्रवक्तव्यपदका उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। चार अत्यु, चैकियिक छह और मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है। तिर्यक्र्यगति श्रौर तिर्यक्र्यगत्यानुपूर्विके भुजगार और श्रन्यतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका अन्तरकाल भोघके समान है। चार जाति, स्रातप स्रोर स्थावर स्रादि चारके भुजगार स्रोर स्रस्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तत्र्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। तथा इनका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितवन्धका अन्तर स्रोधके समान है। पञ्जोन्द्रयजाति, परघात, उच्छवास और त्रसचतुष्कके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर साधिक तेतीस सागर है। श्रीदारिकशरीरके भुजगार श्रौर श्रारुपतरपदका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रौर ख्कुष्ट श्रान्तर कुछ कम तीन पल्य है। श्रवस्थित और अवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल कोचके समान है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेयके तीन पदोंका भक्क सातावेदनीय समान है। अवक्तव्यपद का जधन्य अन्तर अन्तमृहिर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुळ कम तीन परुय है। उद्योतके भुजगार

१. आ• प्रतौ झब्बसः ऋप्यदः इति पाठः ।

अवत्त ० ज श्रंती०, उ० ऍकत्तीसं० सादि०। अवहि० औषं। णीचा० तिण्णि-पदा० णद्वंसगभगो । अवत्त ० ओघं।

४७७. विभंगे पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविद्वि ज० ए०, उ० तेँचीसं ० दे० । सादासाद०--सत्तणोक०-तिरिक्त०-पंचि०-इस्संदा०-ओरा०श्रंगो०--इस्संघ०--तिरिक्ताणु०--उज्जो०--दोवि०--तसं०--थिरादिछयु०--णीचा० तिण्णिप० णाणा०भंगो । अवत० ज० उ० श्रंतो० । [श्रोरा०] पर्र०-उस्सास-बादर-पज्ज०-पत्ते० तिण्णिपदा णाणा०भंगो । श्रवत्त० णित्थ श्रंतरं । दोआउ०-वेउव्वि०ञ्च०-तिण्णिजादि-सुहुम०-अप०-साधा० मण०भंगो । दोत्राउ० णिरयभंगो । मणुस०-मणु-साणु०-उचा० ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अवद्वि० ज० ए०, उ० एकत्तीसं० दे०। अवत्त० सादभंगो । एइंदि०-आदाव-थावर० ग्रुज०-अप्प०-अवत्त० सादभंगो० । अवद्वि० ज० ए०, उ० वेसाग० सादि० ।

स्रोर श्रस्पतरपदका जघन्य श्रम्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रम्तर श्रन्तमु हूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट श्रम्तर साधिक इकतीस सागर है। श्रवस्थित पदका श्रम्तर श्रोधके समान है। नीचगोत्रके तीन पदोंका श्रम्तर नपुंसकवेदके समान है। श्रवक्तव्य पदका श्रम्तर श्रोधके समान है।

४७७. विभक्कज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय. भय. जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच श्रान्तरायके भुजगार श्रीर श्रल्पतरपदका जघन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर अन्त-मुर्दृतं है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सातावेदनीय, श्रसातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यंख्वगति, पद्धोन्द्रियजाति, छह संस्थान, श्रौदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तिर्थेख्वगत्यानुपूर्वी, उद्योत, दो विहायोगित, त्रस, स्थिर छ।दि छह युगल और नीचगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य-पदका जघन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। श्रीदारिकशरीर, परघात, उन्छवास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके तीन पर्दोका भक्क झानाबरणके समान है । श्रवक्तव्यपद्का अन्तरकाल नहीं है। दो अायु, वैकिथिक छह, तीन जाति, सूदम, अपर्याप्त और साधारणका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। दो आयुत्रोंका भङ्ग नारिकयोंके समान है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी श्रीर उचगोत्रके भूजगार श्रीर अल्पतर पदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्माहर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। त्र्यवक्तव्यपदका अन्तर सातावेदनीयके समान है। एकेन्द्रियज्ञाति, त्रातप और स्थावर-के भूजगार, अरुपतर और अवक्तव्यपदका अन्तर सातावेदनीयके समान है। अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है।

१. ता श्रा श्रा प्रत्योः स्रंतो श्रविष्ठ । प्रविष्ठ स्वाद्ध विश्व स्वाद्ध विश्व स्वाद्ध । २. स्रा श्रतो दो विषदा तस्य इति पाठः। ३. ता श्रा श्रतो स्वाद्ध मिन्छु पर इति पाठः। ४. सा श्रतो स्वयत् विश्व ए० इति पाठः।

४७८. आभिणि०--सुद्०--मोधि० पंचणा०-छदंस०--चदुसंज०--पुरिस०-भयदु०--पंचिं०--तेजा०--क०--समचदु०--वएण्०४---आगु०४--पसत्यवि०--तस०४-सुभगसुस्सर-आदेँ०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्पद० ज० ए०, उ० झंतो०। अविद्व०
ज० ए०, उ० झाविदि० सादि०। अवत्त० ज० झंतो०, उ० झाविदि० सादि०!
सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितििएण्युग० तिण्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० ज०
उ० झंतो०। अहक० भुज०-अप्प० ओघं। अविद्व० ज० ए०,उ० झाविदि० सादि०।
अवत्त० ज० झंतो०,उ० तेँत्तीसं० सादि०! दोआउ० भुज०-अप्प० ज० ए०,उ० तेँत्तीसं०
सादि०। अविद्व० ज० ए०, उ० झाविदि० सादि०। अवत्त० ज० झंतो०, उ०
तेँतीसं० सादि०। णविर देवाउ० अविदि० ज० ए०, उ० झाविदि० दे०। मणुसगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०,उ० पुञ्चकोदी० सादि० आविदि० सादि०। अवति०
ज० पितदो० सादि० वासपुधत्तेण सादि०, उ० तेँतीसं० सादि०। अविदि०
णाणा०भंगो। देवगदि०४-आहार०२ भुजे०-अप्प० ज० ए०, अक्त० ज० झंतो०,
उ० तेँतीसं० सादि०। अविदि० णाणा०भंगो। तित्थ० ओघं। एवं ओधिदं०-सम्मा०।

४७८. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी बीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दरीनाषरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चीन्द्रयज्ञाति, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, समयतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुरक, अगुरुलधुचतुरक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्तर आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र श्रीर पाँच श्रन्तरायके भुजगार श्रीर श्रह्यतरपदका जघन्य श्रम्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक छियासठ सागर है। अवक्तव्ययदका जघन्य अन्तर अन्तर्भहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक श्रियासठं सागर है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकवाय और स्थिर आदि तीन युगलके तीन पर्रोका भङ्ग झानावरणके समान है। श्रवक्तव्यपद्का जघन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर भ्रन्तर्मुहर्त है। स्राठ कषायोंके भुजगार स्त्रीर श्रन्पतरपदका भक्त स्रोघके समान है। श्रवस्थित-पदका जघन्य भन्तर एक समय है भौर उत्कृष्ट अन्तर साधिकञ्जियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। दो आयुर्झोंके भुजगार भौर अरुपतर पदका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपद्का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक ख्रियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इतनी विशेषता है कि देवायुके अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। मनुष्यगतिपञ्चकके भुजगार श्रीर अल्पतरपदका जघन्य स्रन्तर एक समय है चौर उत्कृष्ट श्रम्तर श्रम्तम् हूर्ते श्रधिक एक पूर्वकोटि है। श्रथक्तव्यपद्का जघन्य अन्तर वर्षपृथकत्व अधिक साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानायरणके समान है। देवगति चतुष्क और आहारकद्विकके भुजगार और अरुपतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका अन्तर ज्ञानावरणके समान है। तीर्थक्कर प्रकृतिका भङ्ग स्रोधके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

१. ता० ग्रा॰ प्रत्योः श्राहार० मुख्य इति पाठः ।

४७६, मणपज्ज० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-देवग०-पंचि०-वेजिक्व०-तेजा०-क०-समचदु०-वेजिक्व अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर--आर्दे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० द्यंतो०। अवद्वि० ज० ए०, अवत्त० ज० द्यंतो०, उ० दोण्हं पि पुन्वकोडी दे०। सादासाद०-चदुणोक०-थिरादितिणिगु० भुज०-अप्प०-अवद्वि णाणाभंगो। अवत्त० ज० उ० द्यंतो०। एवं त्राहारदुगं। देवाज० मणुसभंगो। एवं संजदा०।

४८०. सामाइ०-छेदो॰ पंचणा०-चढुदंसणा०-लोभसंज०-उचा०-पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविद्वि० ज० ए०, उ० पुन्वकोढी दे०। णिहा-पचला०-तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय०-दु०-देवग०-पंचि०-वेडिव०--तेजा०क०-समचुदु०-वेड०-श्रंगो०-वण्ण०४-देवाणु ०-श्रग्र०४-पसत्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्थ० भुज०-अप्प०-श्रवद्वि० णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थि श्रंतरं। सादादिदंढओ देवाड० मणपद्धवभंगो।

४८१. परिहार० धुवियाणं भुज०-अप्प०-अबद्दि० साददंडओ देवाउ०--तित्थ०

४७६. मनःपर्यययद्यानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुष्वेद, भय, जुगुप्सा, देवगित, पञ्चोन्द्रयज्ञाति, वैकियिकशरीर, तेजसशरीर, कामणशरीर, समचतुरक्ष-संस्थान, वैकियिक श्राङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुरक, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुरक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उस्चगोत्र श्रीर पाँच अन्तरायके भुजगार श्रीर अस्पतर पदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हुत्ते हैं। अवस्थित-पदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्भ हुत्ते हें श्रीर दोनों पदोंका उत्कृष्ट अन्तर कुत्र कम एक पूर्वकोटि हैं। सात।वेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय श्रीर स्थिर श्रादि तीन युगलके भुजगार अस्पतर श्रीर अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा अवक्तव्यपदका जयन्य श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भ हूर्ते हैं। इसी प्रकार श्राहारकद्विकका जानना चाहिए। देवायुका भङ्ग मनुष्योंके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

४८०. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच झानावरण, चार दर्शना-वरण, लोभसंवलन, उचगोत्र और पाँच ब्रान्तरायके भुजगार और ब्राल्पत पदका जघन्य ब्रान्तर एक समय है ब्रोर उत्कृष्ट ब्रान्तर ब्रान्तर्महूर्त है। श्रवस्थितपदका जघन्य ब्रान्तर एक समय है ब्रोर उत्कृष्ट ब्रान्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। निद्रा, श्रचला, तीन संज्वलन, पुरुपवेद, भय, जुगुप्ता, देवगति, पञ्चे न्द्रियजाति, चैकियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, वैकियिकश्राङ्गोपाङ, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, श्रगुरुलघुचतुष्क, श्रशस्त विह्यागेगति, श्रस् चतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण श्रोर तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार, श्रव्यतर श्रोर श्रवस्थित पदका भङ्ग झानावरणके समान है। श्रवक्तव्यपदका श्रन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय भादि दण्डक श्रोर देवायुका भङ्ग मनःपर्ययझानी जीवोंके समान है।

४८१. परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके मुजगार, ऋल्पतर स्रौर अवस्थितपदका भक्क, सातावेदनीय दण्डक, देवायु स्रौर तीर्थङ्कर प्रकृतिका भक्क मनःपर्ययज्ञानी

१. श्रा॰ प्रतो भुज॰ ऋषडि॰ इति पाठः । २. ता॰ श्रा॰ प्रत्योः बण्ण॰ देवासु॰ इति पाठः ।

मणपज्जनव्यंगो । आहारदुगं भुजव-अप्पदवज्जव एव, उव मंतोव। अविद्विव जव एव, उव पुल्नकोडी देस्वा। अवस्वव जव उव अंतोव। प्रवित्यव णित्य मंतरं। सुहुमसंपव सन्वपगदीणं भुजव--अप्पव णित्य मंतरं। संजदासंजदव सन्वपगदीणं परिहारवभंगो।

४८२. असंजदे धुवियाणं भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अविटि० ज० ए०, उ० असंखें ज्ञा छोगा । थीणगिद्धिदंडओ सादादिदंडओ णवुंसगभंगो । इत्थि०-णवुंस०-पंचसंघ०-उज्ञो०-अप्पसत्थ०-दृभग--दुस्सर-अणादे० भुज०-अप्पद० ज० ए०, अवर्ते० [ज०] अंतो०, उ० तेंत्तीसं० दे० । अविटि० ओघं । पुरिस०-सम-चदु०-वज्जरि०-पसत्थ०-सुभग--सुस्सर-आदे० तिष्णिप० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० अंतो०, उ० तेंत्तीसं० देस्० । चदुआउ०-वेउ०छ०-पणुसर्गे०-पणुसाणु०-उच्चा० ओघं । चदुजादिदंडओ पंचिद्यदंडओ णवुंसगभंगो । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णवुं-सगभंगो । स्रोरा लि० भुज०-अप्प०-स्रविट०-अवत्त० स्रोघं । ओरा लि० शुंज०-अप्प०-स्रविट०-अवत्त० स्रोघं । ओरा लि० शुंज०-अप्प०-स्रविट०-अवत्त० स्रोघं । ओरा लि० शुंज०-अप्प०-स्रविट०-अवत्त० स्रोघं । अतेरा लि० शुंज० जित्रा । णवरि

जीवोंक समान है। आहारकद्विकके भुजगार और अल्पतरपद्का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर है। अवक्तव्यपद्का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर क्रिक्ट अन्तर क्रुब्ध अन्तर अन्तर अन्तर क्रुब्ध अन्तर अन्तर क्रुब्ध अन्तर अन्तर अन्तर क्रुब्ध अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर क्रुब्ध अन्तर अन्तर जीवोंमें सब प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतरपद्का अन्तरकाल नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंका भंग परिहारविश्वुद्धिसंयत जीवोंके समान है।

४६२. असंयतों में भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियों के मुजगार और सलपतरपदका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर मृत्य है। अधिस्थितपदका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। स्त्यानगृद्धिदण्डक और सातावेदनीय आदि दण्डकका मङ्ग नपुंसकवेदी जीवों के समान है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगित, दुर्मग, दुःस्वर और अनादेयके भुजगार और अस्पतरपदका जधन्य अन्तर एक समय है, अबक्तव्य पदका जधन्य अन्तर अन्तरमुंहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितपदका मङ्ग ओधके समान है। पुरुषवेद, समचतुरक संस्थान, वअर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगिति, सुभग, सुस्तर और आदेयके तीन पदांका मङ्ग ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जधन्य अन्तर अन्तर्म हुर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। चार आयु, वैकियिक छह, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका मङ्ग ओघके समान है। चार आयु, वैकियिक छह, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका मङ्ग ओघके समान है। चार आयु, वैकियिक छह, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका मङ्ग ओघके समान है। औदारिक समान है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और अवक्तव्यपदका मङ्ग आधके समान है। औदारिक शारीरके भुजगार, अस्पतर अवस्थित और अवक्तव्यपदका मङ्ग आधके समान है। अवक्तव्य पदका आङ्गोपङ्ग और वर्ष्यभनाराचसंहननके तीन पदोंका मङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्य पदका अधन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर हो। इतनी

१. ऋा० मती ए० उ० अवस० इति पाठः । २. ता० मती वेड० मगुस्ता० इति पाठः ।

वज्जरि० अवत्त० ज० भ्रंतो०, उ० तेँतीसं० दे०। तित्य० तिविणप० ओघं। अवत्त० ज० भ्रंतो०, उ० पुच्चकोहितिभागं दे०। चक्खुदं० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खु० ओघं।

४८३. किएणाए पंचणा०--छदंस०-बारसक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वएण०४—
अगु०-छप०-णिमि०-पंचंत० युज०-[अप्प०] ज० ए०, छ० झंतो०। अविद्वि० ज०
ए०, ७० तेंत्तीसं० सादि०। थीणगि०३—मिच्छ०--अणंताणु०४—-णवुंस०--हुंड०--अप्पस०--दूस्सर-अणादें०--णीचा० दोपदा ज० ए०, अवत्त० ज० झंतों०, उ०
तेंत्तीसं० दे०। अविद्वि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० दो० झंतोग्रहुत्तं सादि० पवेस-णिक्खमणे। साद०-हस्स-रिद-थिर-सुभ-जस० भुज०-अप्प० णाणा०भंगो। अविद्वि० ज० ए०, उ० तेंत्तीसं० सादि० णीतस्स०। अवत्त० ज० उ० झंतो०। असाद-अरिद-सोग-अथिर-असुभ-अजस० सादभंगो। णविर अविद्वि० तेंत्तीसं सादि० दोहि ग्रहुत्तेहिं सादिरेयं पवेस-णिक्खमणे। इत्थि०-दोग०-चहुसंठा०-पंचसंघ०-दोआणु०- उचा० भुज०-अप्प०-अवत्त० णवुंसगभंगो। अविद्वि० ज० ए०, ७० तेंत्तीसं० सादि० मुहुत्तेण णीतस्स। पुरिस०-समचदु०--वज्जरि०--पसत्थ०-सुभग-मुस्सर-आदें० भुज०-

विशेषता है कि वज्रवभनाराचसंहननके अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तीर्थक्कर प्रकृतिके तीन पदोंका भङ्ग ओघके समान है। अव-क्तव्य पदका जयन्य अन्तर अन्तर अन्तर क्रिंगा प्रभाण है। चज्रदर्शनी जीवोंमें अस पर्यापकोंके समान भङ्ग है और अचज्रदर्शनी जीवोंमें अध्यक्षे समान भङ्ग है और अचज्रदर्शनी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

४८३. कृष्णलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके मुजगार और अस्पतरपदका जघन्य अपन्तर एक समय है और उत्कुर अन्तर अन्तर्मु हुर्त है। अवस्थितपदका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीम सागर है। स्त्यातगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसक्तेद, हुण्डसंस्थान, श्रप्रशस्त विहायोगित, दुर्भग, दुःस्वर, श्रनादेय श्रीर नीचगोत्रके दो पर्दोका जबन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्त-र्मुहूर्त है श्रीर सबका उत्कृष्ट श्रन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रवस्थितपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रवेश और निष्कमण्के दो अन्तर्मु हुर्त अधिक तेतीस सागर है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशःकीर्तिके मुजगार और अल्पतरपदका भङ्ग ज्ञाना-बर्एकि समान है। श्रवस्थितपद्का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निर्गमकी अपेक्षा एक अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मु हुर्त है । असातावेदनीय, अरति, शोक, ऋस्थिर, अशुभ श्रीर अयशःकीर्तिका भङ्ग साता-वेदनीयक समान है, किन्तु अवस्थित पदका उन्हुछ अन्तर प्रवेश और निष्कमण्की अपेक्षा दो अन्तर्मु हूर्त अधिक तेर्तास सागर है। स्त्रीवेद, दो गति, चार संस्थान, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी स्रोर उच्चगोत्रके भुजगार, अरुपतर स्रोर श्रवक्तव्यपदका भङ्ग नपुंसकोंके समान हैं। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निर्गमनका एक अन्तर्मु हूर्त अधिक तेतीस

१. ता श्राव प्रत्योः जव जव श्रंती वहित पाठः । २. श्राव प्रती गाणाभंगो । श्रवहिव जव एव, उक्तेत्रीसं सादिव दोहि सुहुत्तेहि इति पाठः ।

अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अविहि० ज० ए०, उ० तेँतीसं० सादि० ऍक्समुहुत्तेण णीतस्स । अवत्त० णवुंसगभंगो । दोश्राउ०-दोगदि-चदुजादि--दोआणु०--आदाव०-धावरादि ४ तिण्णिपदा ज० ए०, उ० अंतो० । अवत्त० णित्थ अंतरं । दोआउ० तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० सन्वेसिं झम्मासं दे० । पंचि०-पर०-उस्सा०-तस०४ दोपदा णाणा०भंगो । अविह० ज० ए०, उ० तेँतीसं० सादि० दोहि मुहुत्तेहि णिक्समण-पवेसणेहि । अवत्त० णित्थ अंतरं । ओरा०-ओरा०अंगो० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०। अविह० ज० ए०, उ० तेँतीसं० सादि० ऍक्केण मुहुत्तेण णीतस्स । अवत्त० णित्थ अंतरं । वेउव्व०-वेउव्व०आंगो० तिण्णिप० ज० ए०, उ० वावीसं० सादि० अंतोमुहुत्तेण पवेसंतस्स । अवत्त० ज० सत्तारस साग० सादि०, उ० वावीसं सा० सादि० । एवं णील-काऊणं। णविर मणुसगदितिगं पुरिस-भंगो । अप्पप्पणो हिदीओ भाणिदव्वाओ । णीलाए वेउ०-वेउ०श्रंगो० अवत्त० ज० सत्तारस साग० सादि०, उक्क० सत्तारस साग० सादि० । काऊए अवत्त० ज० दसवस्स-सहस्साणि सादि०, उ० सत्तसाग० सादि० । किण्ण--णीलाणं तित्थ० भुज०-अप्प०-अविह० ज० ए०, उ० अंतो० । काउए तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०।

सागर है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थात, वञ्चर्यभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, भीर श्रादेयके भूजगार श्रीर श्रास्पतर पदका जवन्य श्रान्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रान्त-मुंहर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलनेके एक श्चन्तम् हर्त सहित तेतीस सागर है। श्ववक्तव्य पदका भक्क नपुंसकीके समान है। दो श्राय, दो गति, चार जाति, दो त्रानुपूर्वी, त्रातप और स्थावर आदि चारके तीन पदोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट ऋन्तर ऋन्तमु हूर्त है। ऋवक्तव्य पदका अन्तरकाल नहीं है। दो ऋायुओं के तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मु हूते है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुळ कम छह महीना है। पंचेन्द्रियजाति,परघात, उच्छवास श्रीर त्रसचतुष्कके दो पदोंका अक ज्ञानावरणके समान है। श्रवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर निष्कः मण श्रीर प्रवेशके दो श्रम्तमुद्दितं सहित तेतीस सागर है। श्रवक्तव्यपद्का श्रम्तरकाल नहीं है : श्रीदारिकशरीर श्रीर श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्गके भुजगार श्रीर श्रत्यतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हुर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर निकलनेके एक अन्तर्सु हुतं सहित तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। वैकियिकशरीर स्त्रीर वैकियिकस्त्राङ्गोपाङ्गके तीन पदोंका जघन्य स्नन्तर एक समय है स्त्रीर उत्कृष्ट अन्तर प्रवेशके एक अन्तर्मुहर्त सहित बाईस सागर है। अवक्तव्यपदका जबन्य अन्तर साधिक सत्रह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक बाईस सागर है। इसी प्रकार नील और कापोत लैश्यामें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग पुरुषवेदके समान है। तथा अपनी-श्रपनी स्थिति कहनी चाहिए। नील लेश्यामें वैक्रियिकशरीर स्रौर वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके ब्रवक्तव्यपद्का जघन्य श्रम्तर साधिक सात सागर है स्पीर उत्हृष्ट अन्तर साधिक संबद्ध सागर है। कापोत लेश्यामें श्रवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर साधिक दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट बन्तर साधिक सात सागर है। कृष्ण श्रीर नील लेश्यामें तीर्थक्कर प्रकृतिके भुजगार, श्रस्पतर और अवस्थित पदका जावन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहिर्त है। कापोत अवद्वि० ज० ए०, उ० तिण्णिसाग० सादि० । अवत्त० णत्थि ऋंतर् ।

४८४. तेऊए पंचणा०-छदंसणा०--चदुसंज०--भय-दु०--तेजा०-क०--वण्ण०४-अगु०४--वादर-पज्ज०-पन्ते०-णिमि०-पंचंत० ग्रुज०-ऋष० ज० ए०, उ० श्रंतो० ।
अविद्वि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । थीणिग०३--मिच्छ०-अणंताणु०४-इत्थि०णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदाउज्जो०-अप्पसत्य०थावर-दूभग-दुस्सर-अणादेँ०-णीचा० तिण्णिप० ज० ए०, अवत्त० ज० अंतो०, उ०
बेसाग० सादि० । सादासाद०--चदुणोक०--थिरादितिण्णियु० दोपदा णाणा०भंगो ।
अविद्वि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि० । अवत० ज० उ० अंतो०। अद्वक०-ओरालि०तित्थ० ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०। अविद्वि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०।
अवत्त० णिय अंतरं । पुरिस०-मणुस०--पंचि०--समचदु०--ओरा०श्रंगो०-वज्जरि०मणुस०-पसत्थ०-तस०-सुभग-मुस्सर-आदेँ०-उचा० ग्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०।
अविद्वि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०। अवत्वि० ज० ए०, उ० बेसाग० सादि०।
दोआउ० सोधम्मभंगो । देवाउ०--आहारदुगं तििएएए० ज० ए०, उ० श्रंतो०।

लेश्यामं तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार श्रीर अरुपतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्तभुँ हूर्त है। श्रावस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रान्तर साधिक तीन सागर है। श्रावक्तव्यपदका श्रान्तरकाल नहीं है।

४८४. पीतलेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण श्रीर पाँच श्रान्तरायके भुजनार और अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट श्रान्तर श्रान्त-मूं हर्त है। अवस्थितपदका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। स्स्यानगृद्धि तीन,मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार,स्रीवेद, नपुंसक्वेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, पाँच संदनन, तिर्यञ्जगत्यानुपूर्वी, त्रातप, उद्योत, त्रप्रशस्त विद्वायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है. अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। सातावेदनीय, श्रमातावेदनीय, चार नोकवाय और स्थिर त्रादि तीन युगलके दो पदोंका भङ्ग ज्ञानावरखके समान है। अवस्थित पदका जघन्य श्रन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट श्रन्तर साधिक दो सागर हैं। अवक्तव्यपद्का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहर्त है। श्राठ कषाय, औरारिकशरीर श्रीर तीर्थङ्कर प्रकृतिके भुजगार श्रीर श्रह्यतरपदका जयन्य श्रन्तर एक समय है और उत्छष्ट अन्तर अन्तम् हिर्त है। अवस्थित पदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पद्धोन्द्रियजाति, समचतुरस्त्रसंस्थान, श्रौदारिकश्राङ्गापाङ्ग, वज्रर्षभनारावसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विद्यांगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय और उचगोत्रके भूजगार और अस्पतर पदका जधन्य अन्तर एक समय हे और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुंहूर्त हैं। अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तव्यपद्का जधन्य अन्तर अन्तर्महर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। दो आयुत्रोंका भन्न सौधर्मकरूपके समान है। देवायु और आहारकद्विकके तीन पदोंका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्माहर्त

१. ता० ऋरू मत्योः ऋंतो० । ऋषच० ज० ए० इति पाठः ।

अवत्ति णत्थि द्यंतरं । देवग०४ तिण्णिप० जि॰ ए०, उ० वेसाग० सादि । अवत्ति णत्थि द्यंतरं । एवं पम्माए । णविर सहस्सारभंगो । अहक्त०-ओरा०--ओरा०झंगो०- तित्थ० दोपदा जि० ए०, उ० द्यंतो०। अविष्ठि जि० ए०, उ० अहारससाग० सादि०। अवत्त ० णित्थि द्यंतरं । देवग०४ तिण्णिप० जि० ए०, उ० अहारससा० सादि०। अवत्त ० णित्थि द्यंतरं । एइंदि०-आदाव-थावरं वज्ज । पंचिदि०-तस० धुवभंगो ।

४८५, सुकाए पंचणा०--छदंस०--चदुक०--भय--दु०--पंचि०-तेजा०-क०वण्ण०४-अगु०४-तस०४-णिमि०--पंचेत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो०।
अविद्वि० ज० ए०, उ० तेँनीसं० सादि०। अवत्त० णित्थ श्रंतरं। थीणगि०३- मिच्छ०श्रणंताणु०४-इत्थि०-णवुंस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०--दूभग-दुस्तर--श्रणादेँ०णीचा० भुज०-श्रप्प०-अविद्व० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० पॅकत्तीसं० दे०।
णविर् थीणगिद्धि०३--मिच्छ०--अणंताणुवं०४ अविद्वि० ज०ए०, उ० पॅकत्तीसं सा०
सादि० श्रंतोम्रहुत्तेण। सादासाद०-चदुणोक०--थिरादितिणिग्रु० भुज०--अप्प० ज०
ए०, उ० श्रंतो०। अविद्व० ज० ए०, उ० तेँतीसं० सादि०। अवत्त० ज० उ० श्रंतो०।
अद्यक्साईस्र तिष्णिपदा णाणा०भंगो। अवत्त० णित्थ श्रंतरं। पुरिस०--समचदु०-

हैं। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं हैं। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानमा चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसमें सहस्रारकल्पके समान भक्न है। आठ कषाय, औदारिकशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और तीर्थद्धर प्रकृतिके दो पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगति-चारके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावरको छोड़कर अन्तरकाल कहना चाहिए। तथा पञ्चोन्द्रयजाति और अस प्रकृतियोंका भङ्ग धुनवन्धवाली प्रकृतियोंके समान है।

अद्भयः शुक्ललेश्यामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार कपाय, भय, जुगुरसा, पंचेन्द्रियजाति, तेजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुष्क, अगुरूलधुचतुष्क, असचतुष्क, निर्माण और पाँच
अन्तरायके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर अन्तर पृक् है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।
अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी चार, स्त्रीवेद,
नपुंसकवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और
तीचगोत्रके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका
जघन्य अन्तर अन्तर्गृद्धि तीन, मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके अवस्थितपदका अघन्य
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गृद्धतं अधिक इक्तीस सागर है। सातावेदनीय,
असातावेदनीय, चार नोकवाय और स्थिर आदि तीन युगलके भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गृद्धतं है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय
है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गृद्धतं है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय
है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय
है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्वव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर
अन्तर्गृहूर्त है। आठ क्वायोंके तीन पदींका भक्त आनावरणके समान है। अवक्वव्यपदका अचनर पसत्य०-[-सुभग-]सुस्सर-आदेँ०-उच्चा० तिण्णिप० सादभंगो। अवत्त० ज॰ झंतो०, उ० एकत्तीसं० दे०। मणुसाउ० देवभंगो। देवाउ० मणजोगिभंगो। मणुसग०--ओरा०-ओरा० झंगो०-मणुसाणु० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० झंतो०। अविह० ज० ए०, उ० तेँतीसं० दे०। अवत्त० णिथ्य झंतरं। देवगिद०४ तिण्णिप० ज० ए०, उ० तेँतीसं० सादि०। अवत्त० ज० अद्वारस० सादि०, उ० तेँतीसं० सादि०। आहार-दुगं भुज०-अप्प०-[अविह०] ज० ए०, उ० झंतो०। अवत्त० ज० उ० झंतो०। वक्तर० ज० उ० झंतो०। अवत्त० ज० उ० तेँतीसं० दे०। अवत्त०, उ० एकतीसं० दे०। अवत्त०, उ० एकतीसं० दे०। तत्थ० तिण्णिप० णाणा०भंगो। अवत्त० णिरिथ झंतरं। [भवसि० झोघं।] अञ्भवसि० पदि०भंगो।

४८६. खर्ग० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-पुरिस०-भय-दु०-पंचि०--तेजा०-क०-समचदु०--वण्ण०४—ऋगु०४-पसत्थ०-तस४-सुभगैं--सुस्सर--ऋदेॅ०--णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० सुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अवद्वि० ज० ए०, अवर्तं० ज०

काल नहीं है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विद्यायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्त-मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। मनुष्यायका भक्न देवोंके समान है। देवायुका भङ्ग मनोयोगी जीवोंके समान है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, श्रीदारिक श्राङ्गोपाङ्ग भीर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भुजगार श्रीर श्रत्यतरपदका जघन्य श्रन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहत है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवक्तव्य पदका जबन्य अन्तर साधिक अठारह सागर है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकके भूजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका अधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भृहूर्त है। अवक्तव्य पदका जयन्य श्रीर उत्कृष्ट श्रन्तर श्रन्तमुद्दिर्त है। वश्रपेभनाराचसंहननके भुजगार भ्रीर अस्पतापदका जघान्य अन्तर एक समय है और उत्हृष्ट अन्तर अन्तमु हुर्त है। अवस्थित पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। श्रवक्तव्यपदका जचन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्रृष्ट अन्तर कुद्र कम इकतीस सागर है। तीर्थंड्कर प्रश्नृतिके तीन पर्दोका भङ्ग शानावर एके समान है। तथा अवकत्यपदका अन्तरकाल नहीं है। भन्योंमें श्रोधके समान भक्त है। अभव्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भक्त है।

४८६. क्षायिकसम्बद्धत्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पश्चेन्द्रियजाति, तेजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरक्षसंस्थान, वर्णचतुरक, अगुरुलवु-चतुरक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुरक, सुभग, सुस्वर, त्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र स्नोर पाँच अन्तरायके भुजगार त्र्योर प्रस्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है स्रोर उत्कृष्ट सन्तर सन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जघन्य

१. ऋा॰ प्रती जि॰ ए॰ उ॰ ऋंतो॰ इति पाठः । २. ऋा॰ प्रती पखरथ॰ सुभग इति पाठः । ३ ऋा॰ प्रती ए० उ॰ ऋवच॰ इति पाठः ।

श्चंती॰, ड॰ तेँतीसं॰ सादि॰। एवं साददंडओ च। णवरि अवत्त॰ ज॰ ड॰ श्वंतो॰। अडक॰ दोपदा॰ ओधं। अविडि॰-अवत्त॰ णाण॰भंगो। मणुसाउ॰ देवभंगो। देवाड॰ मणुसि॰भंगो। मणुसगदिपंच॰ भुज॰-अप्प॰ ज॰ ए॰, ड॰ श्वंतो॰। अविडि॰ ज॰ ए॰, ड॰ तेँत्तीसं॰ दे॰। अवत्त० णत्थि॰ श्वंतरं। देवगदि॰४-आहारहुगं तिण्णिप॰ ज॰ ए॰, अवत्त० ज॰ श्वंतो॰, ड॰ तेँत्तीसं॰ सादि॰।

४८७. वेदगस० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०--पुरिस०भय-दु०-पंचि०-तेजा०क०-समचदु०-वण्ण०४-अगु०४-पसत्थ०-तस०४--सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-ज्ञा०पंचंत० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० श्रंतो० । अविष्ठ० ज० ए०, उ० द्वाविष्ठि० देसू० ।
साददंडओ णाणा०भंगो । णविर अवत्त० ज० उ० श्रंतो ०। अष्ठक० भुज०-अप्प० ज०
ए०, उ० पुन्वकोढी दे० । अविष्ठ० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० श्रंतो०, उ० तेंत्तीसं०
सादि०। दोत्राउ० भुज०--अप्प० ज० ए०, अवर्ते० ज० श्रंतो०, उ० तेंत्तीसं० सादि०।
अविष्ठ० णाणा०भंगो । मणुसगदिपंच० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पुन्वकोढी सादि०।
श्रंतोग्रहुतं । अविष्ठ० ज० ए०, उ० द्वाविष्ठ० देसू०। अवत्त० ज० पिठदो० सादि०,

अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और दोनों पदोंका चत्छृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार साताबेदनीयवण्डकका भक्न जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जधन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंके दो पदोंका भक्न ओषके समान है। अवस्थित और अवक्तव्यपदका भक्न झानावरणके समान है। मनुष्यायुका भक्न देवोंके समान है। देवायुका भक्न मनुष्यिनियोंके समान है। मनुष्यातिपञ्चकके भुत्रगार और अष्यतरपदका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थितपदका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। देवगिति चतुष्क और आहारकिविकके तीन पदोंका जधन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर की है। देवगिति चतुष्क और आहारकिविकके तीन पदोंका जधन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है।

४८७. वेदकसम्यक्तमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्ञलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा,पद्मीन्द्रयज्ञाति, तैनसरारीर,कार्मणुश्चरीर, समचतुरहासंस्थान, वर्णचतुरुक, अगुरुलघुचतुरुक, अशस्त विहायोगिति, त्रसचतुरुक, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अग्तरायके सुनगार और अस्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम हियासठ सागर है। अवस्थितपदका अवन्य अन्तर एक समय है। श्रीर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम हियासठ सागर है। साता-दण्डका भङ्ग हानावरणुके समान है। इतनी विशेषना है कि अवक्तव्य पदका जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर कुछ कम एक पूर्वकाटि है। अवस्थितपदका अवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकाटि है। अवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणुके समान है। अवक्तव्यपदका अवन्य अन्तर साधिक तेतीस सागर है। वो आयुओंके मुनगार और अस्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर अन्तर अन्तर कुछ कोर सक्व उत्वर्ध अन्तर साधिक तेतीस सागर है। वो आयुओंके मुनगार और अस्पतरपदका जवन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जवन्य अन्तर साधिक तेतीस सागर है। सन्तर अन्तर अन्तर अन्तर अन्तर साधिक तेतीस सागर है। स्वस्थितपदका अवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अवस्थितपदका अवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। अवस्थितपदका अवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । अवस्थितपदका अवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर यन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर यन्तर एक समय है । अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर यन्तर एक समय है । अवस्थितपदका जवन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक पूर्वका उत्वर्ध अन्तर एक पूर्वका उत्वर्ध अन्तर यन्तर एक पूर्वका जवन्य अन्तर एक पूर्वका जवन्य अन्तर एक पूर्वका जवन्य अन्तर एक पूर्वका जवन्य अन्तर युक्त समय है और उत्वर्ध जवन अन्य अन्तर एक पूर्वका जवन अन्तर युक्त स्थान स्थान स्थान स्थान स्थान पूर्वका एक पूर्वका विष्य पूर्वका जवन समय अन्तर युक्त स्थान स्थान स्थान स्थान स्थान स्थान पूर्वका पूर्य पूर्वका पूर्य स्थान स

१. ता शा शायि श्रष्टक अव उव अंती कृति पाठः। २. आ श्राणे य व ४० अक्त व इति पाठः।

उ० तेंचीसं ० सादि० । देवगदि०४ भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० तेंचीसं० सादि० । अवद्वि० णाणा०भंगो । अवत्त० ज० पिलदो० सादि०, उ० तेंचीसं० सादि० ! आहारदुगं भुज०-अप्प० ज० ए०, अवत्त० ज० झंतो०, उ० तेंचीसं० सादि० । अवद्वि० णाणा०भंगो । तित्य० ओघं । णवरि अवत्त० णत्थि झंतरं ।

४८८. उवसमै० पंचणा०--छदंसणा०--चहुसंज०--धुरिस०--भय-दु०--मणुस०-देवग०-पंचि०-चहुसरीर--समचदु०-दोद्यंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-दोआणु०--अगु०४--पसत्य०-तस-४-सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमि०-तित्य०-उच्चा०-पंचंत० अज०-अप्००-अविद्वि० ज० ए०, उ० अंतो०। अवत्त० णित्य अंतरं । सादासाद०-अद्दुष्णोक०-आहारदुग-थिरादितिण्णियु० तिण्णिपदा धुवियाणं भंगो। अवत्त० ज० उ० अंतो०।

४८६. सासणे धुवियाणं तिण्णिपदा ज० ए०, उ० श्रंती० । सेसाणं पि एसेव भंगो । णवरि अवत्त० णत्थि श्रंतरं । सम्मामि० धुविगाणं तिण्णिपदा० ज० ए०, उ० श्रंती० । एवं सादादीएां पि । णवरि अवत्त० ज० ए० श्रंती० । मिच्छादि० मदि०भंगो ।

४६०. सण्णी० पंचिद्यपज्जनभंगो । असण्णीसु धुवियाणं सुज०-अप्प० ज०

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छियासठ सागर है। अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। देवगतिचतुष्कके भुजगार और अल्प्यतरपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अविक्वयपदका भक्त ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्य पदका जयन्य अन्तर साधिक एक पत्य है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। आहारकि कि भुजगार और अल्प्तरपदका जयन्य अन्तर एक समय है, अवक्तव्यपदका जयन्य अन्तर अन्तर्भु हूर्त है और तीनोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। अवस्थितपदका भक्त ज्ञानतर अन्तर समान है। तीर्थक्करपृष्ठिका भक्त ओवक समान है। हतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है।

४८६. उपशमसम्यक्त्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, पुरुष्वेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चिन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, विश्वर्यगति, देवगति, पञ्चिन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आङ्गोपाङ्ग, विश्वर्यमाराचसंहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उचगोत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्य-पदका अन्तरकाल नहीं है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, आठ कषाय, चार नोकपाय, आहारकि द्विक और स्थिर आदि तीन युगलके तीन पर्दोका भङ्ग ध्रुचयन्धवाली प्रकृतियोंके समान है। अवक्तव्यपदका जयन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

४८६. सासादनसम्यक्त्वमें भ्रु वक्ष्यवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंका जधन्य ऋन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तम् हूर्त है। शेष प्रकृतियोंका भी यही भक्त है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अन्तरकाल नहीं है। सम्यग्मिध्याद्दष्टिमें भ्रु वबन्धवाली श्रकृतियोंके तीन पदोंका अधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुते है। इसी प्रकार सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भी जानना च।हिए। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका अधन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमु हुते है। मिध्याद्दष्टियोंका भक्त मत्यझानी जीवोंके समान है।

४६०. संझी जीवोंमें पञ्चोन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भङ्ग है। श्रसंझी जीबोंमें ध्रुवबन्धवाली

१. ता॰ भतौ सादि॰ ड॰ ड॰ (१) तेत्तीसं इति पाठः । २. साहिय स्नंतः । देवसम**ः इति पाठः** ।

ए०, उ० अंतो० | अविद्वि ओघं० | दोवेदणी०--सत्तणोक०--पंचजा०--झस्संठी०-ओरालि०श्रंगो०---झस्संघ०--पर०---उस्सा०--आदाउज्जो०--दोविहा०---तसादिदसयु० तिण्णिप० णाणा०भंगो | अवत्त० ज० उ० अंतो० | चदुआउ०-वेउव्वियद्य०-मणुस०३ तिरिक्लोघं | तिरिक्ल०३ तिण्णिप० णाणा०भंगो | अवत्त० ओघं | ओरालि० तिण्णिप० सादभंगो | अवत्त० ओघं |

४६१. आहारगेस्च पंचणाणावरणादिदंडओ ओघं। णवरि अवद्वि० ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, दोण्हं पि [७०] श्रंगुल० असंखेँ०। थीणागिद्धिदंडओ अवद्वि० श्रवत्त० णाणा०भंगो। सेसं ओघं। सादादिदंडओ ओघं। णवरि अवद्वि० णाणा०भंगो। इत्थि० मिच्छ०भंगो०। णवरि तिण्णिपदा श्रोघं। पुरिस० ओघं। अवद्वि० णाणा०भंगो। णवुंसगदंडओ ओघं। अवद्वि० णाणा०भंगो। तिण्णिश्चाच०-वेख-वियछ०-मणुसगदितिग-श्चाहारदुगं तिण्णिपदा ज० ए०, अवत्त० ज० श्रंतो०, ७० श्रंगुल० श्रसंखेँ०। तिरिक्खाच० श्रोघं। अवद्वि० णाणा०भंगो। तिरिक्खगदितिगं अवद्वि०-अवत्त० णाणा०भंगो। दोपदा ओघं। एइंदियादिदंडओ ओघं। अवद्वि० णाणा०भंगो। पंचिंदियदंडओ अवद्वि० णाणा०भंगो। सेसाणं ओघं। ओरास्कि०

प्रकृतियों के भुजगार श्रीर अल्पतर पदका जघन्य अन्तर एक समय है श्रीर उत्कृष्ट अन्तर श्रन्तगृहूर्त है। अवस्थितपदका भङ्ग श्रीयके समान है। दो वेदनीय, सात नोकषाय, पाँच जाति, अह
संस्थान, श्रीदारिकश्राङ्गोपाङ्ग, अह संहनन, परघात, उच्छ्वास, श्रातप, उद्योत, दो विहायोगित
श्रीर श्रसादि दस युगलके तीन पदोंका भङ्ग झानावरएके समान है। श्रवक्तव्यपदका जघन्य श्रीर
उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्म मुहूर्त है। चार श्रायु, वैक्रियिक छह श्रीर मनुष्यगतित्रिकका भङ्ग सामान्य तिर्यक्रों
के समान है। तिर्यक्रगतित्रिकके तीन पदोंका भङ्ग झानावरएके समान है। श्रवक्तव्यपदका भङ्ग
श्रोघके समान है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदोंका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। श्रवक्तव्यपदका
भङ्ग ओघके समान है।

४६१. आहारकों में पाँच ज्ञानावरणादि दण्डका भङ्ग श्रोघके समान है। द्वानी विशेषता है कि श्रवस्थितपदका ज्ञघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका ज्ञघन्य श्रन्तर श्रन्तमुं हूर्त है और दोनोंका उत्कृष्ट श्रन्तर श्रङ्गलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। स्त्यानगृद्धिदण्डकके श्रवस्थित श्रीर श्रवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। श्रेष भङ्ग श्रोघके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि तीन पद श्रोघके समान है। पुरुषवेदका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। नपुंसक्रवेददण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तीन श्रायु, वैकियिक छह, मनुष्यगतित्रिक और श्राहारकद्विकके तीन पदोंका ज्ञघन्य श्रन्तर एक समय है, श्रवक्तव्यपदका ज्ञधन्य श्रन्तर श्रङ्गलके श्रम्य है, श्रवक्तव्यपदका ज्ञधन्य श्रन्तर श्रङ्गलके श्रम्य है। तिर्यञ्चश्रायुका भङ्ग श्रोघके समान है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थित पदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तिर्यञ्चश्रायुका भङ्ग श्रोघके समान है। द्वानावरणके समान है। तिर्थञ्चश्रातित्रकके श्रवस्थित श्रोर श्रवक्तव्यपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। तथा दो पदोंका भंग श्रोघके समान है। एकेन्द्रियजाति श्रादि दण्डकको भंग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपदका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। पञ्चन्द्रियजाति दण्डकके

रै. ऋा॰ प्रती पंचका॰ छत्संदा॰ इति पादः।

एवं श्रंतरं समत्त ।

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो

४६२. णाणाजीवेहि भंगविचयाणु० दुवि०——ओघे० आदे०। श्रोघेण पंचणा०णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०--तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०णिमि०-पंचंत० शुज०--अप्पद०--अविद्ववंधगा णियमा अत्थि । सिया एदे य अवत्तगे य । सिया एदे य अवत्तगा य । सादासाद०-सत्तणोक०--तिरिक्खाउ-दुगदि-पंचजादिइस्संडा०-ओरालि० श्रंगो०-इस्संघ०--दोआणु०--पर०-उस्सा०--आदाउज्जो०-दोविहा०तसादिदसयु०--दोगोद० शुज० अप्प० अविद्वि० अवत्तव्ववंधगा य णियमा अत्य ।
तिण्णिश्चाउ० सव्वपदा भयणिज्ञा । वेडव्वियञ्च०--आहारदुग--तित्थ० शुज०--अप्प०
णियमा अत्य । अविद्वि०-अवत्त० भयणिज्ञा । एवं ओघभंगो कायजोगि०--ओरालि०-अचन्त्वु०-भवसि०-आहारग ति ।

४६३, णिरएसु धुविगाणं भ्रुज०-अप्प० णिय० अत्थि । सिया एदे य अविद्वरो

श्रवस्थितपद्का भङ्ग झानावरण्के समान है। शेव पदोंका भङ्ग श्रोवके समान है। श्रोदारिकशरीरके अवस्थित श्रोर श्रवक्तव्यपद्का भङ्ग झानावरण्के समान है। शेव पदोंका भङ्ग श्रोवके समान है। सम्बतुरक्तसंस्थानदण्डकका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपद्का भङ्ग झानावरण्के समान है। सात्र श्रवस्थितपद्का भङ्ग झानावरण्के समान है। शेव प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोघके समान है। मात्र श्रवस्थितपद्का भङ्ग झानावरण्के समान है। शेव प्रकृतियोंका भङ्ग श्रोवके समान है। मात्र श्रवस्थितपद्का भंग झानावरण्के समान है। श्रनाहारक जीवोंमें कार्मण्काययोगी जीवोंके समान भंग है।

इस प्रकार श्रन्तरकाल समात हुआ। नाना जीवोंकी श्रपेदा भक्कविचयानुगम

४६२. नाना जीवोंकी अपेका भंगविषय दो प्रकारका है-श्रोय और आदेश। श्रोधसे पाँच झानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, खोलह कवाय, भय, जुगुप्सा, श्रोदारिकशरीर, ते नसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुरक, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदक बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं श्रोर एक अवक्तव्यपदका वन्धक जीव हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं श्रोर एक अवक्तव्यपदका वन्धक जीव हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकवाय, तिर्यञ्चायु, दो गित, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहतन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्यात, दो विहायोगित, असादि दस युगल और दो गोत्रके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। तीन आयुओंके सब पद भजनीय हैं। वैक्रियिक छह, आहारकि और अवक्तव्यपद भजनीय हैं। इस प्रकार ओव अल्पतरपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। इस प्रकार ओवक समान काययोगी, औदारिककाययोगी, अचलुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

४६३, नारिकयोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार ख्रोर श्रारपदके बन्धक जीव

म । सिया एदे य अविद्वरा य । सेसाणं सञ्वपगदीणं ध्रुविगभंगो । णविर भविद्वि०-द्यवत्त० भयिणज्ञा । दोएइं आऊणं सञ्वपदा भयिणज्ञा । एवं सञ्बणिरय-सञ्वपंचिदियतिरि०-देव--विगलिदि०--पंचि०-तस०अपज्ञ०--बादरपुढ०-आउ०--तेउ०-वाउ०--वादरवण०पत्ते ०पज्जत्त--वेर्जे०-इत्थि०--पुरिस०-विभंग०--सामाइ०-छेदो०-परि-हार०-संजदासंज०-तेउ०-पम्म०-वेदगसम्मादिष्टि ति ।

४६४. तिरिक्लेस धुविनाणं सुज०-अप्प०-अविद्वि णिय० अत्य । सेसाणं ओघं । एवं ओरालियमि०-कम्मइ०--णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०असंज०-तििएएले०-अब्भव०-मिच्छा०-असिएए।-अणाहारगत्ति। णविर ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहार० देवगदिपंचग० सञ्वपदा भयणिज्जा।

४६५. मणुसेसु सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०णिय० अत्थि । सेसपदा भयणिजा । चदुआछ० सव्वपदा भयणिजा । एवं सव्यमणुसाणं पंचि ०-तस०२-पंचमण-पंचविष०-आभिणि०-सुद०-ओधि०-मणपज्ज०-संज०-चक्खु०-ओधिदं०-सुकले०-सम्मा०-खइग०-सिएए ति ।

४६६. वणुसञ्चपज्ञ०सञ्चपगदीणं सञ्चपदा भयणिज्ञा । एवं वेजिञ्चविम०-आहार०-आहारमि०-अवगद०-सुहुमसं०-अवसस०-सासण०-सम्मामि० ।

नियमसे हैं। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और एक अवस्थितपदका बन्धक जीव है। कदाचित् ये अनेक जीव हैं और अनेक अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेष सब प्रकृतियोंका भंग ध्रुवयम्धवाली प्रकृतियोंके समान हैं। इतनी विशेषता है कि अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं। दोनों आयुओंके सम पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पद्धोन्द्रियतियेंद्ध, देव, विकलेन्द्रिय, पद्धोन्द्रिय अपर्याप्त, वसअपर्याप्त, बादर प्रथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जातकायिक पर्याप्त, बादर अप्रिकायिक पर्याप्त, बादर जातकायिक पर्याप्त, बौकियिककाय-योगी, स्वीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, सामायिकसंयत, खेदीपस्थापनासंयत, परिहारविश्चिद्धसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मालेश्यावाले और वेदकसम्यग्दष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

४६४. तिर्यक्कोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके भुजगार, श्रह्पतर श्रौर श्रवस्थितपद्के बन्धक जीव नियमसे हैं। शेव प्रकृतियोंका भंग श्रीचके समान है। इसी प्रकार श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कामँग्रकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रांधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, श्रसंयत, तीन लेश्यावाले, श्रभव्य, मिण्यादृष्टि, श्रसंज्ञी श्रौर श्रनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि श्रौदारिकमिश्रकाययोगी, कामंग्रकाययोगी श्रौर श्रनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके सब पद भजनीय हैं।

४६५. मनुष्यों में सब प्रकृतियोंके भुजगार श्रीर श्रम्पतरपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। चारों श्रायुओंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार सब मनुष्य, पञ्चोन्द्रिय, पञ्चोन्द्रियपर्याप्त, श्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों बचनयोगी, श्राभिनियोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मनःपर्ययञ्चानी, संयत, चज्जदर्शनी, श्रवधिदर्शनी, श्रुवललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, श्रायिकसम्यग्दृष्टि श्रीर संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए!

४६६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्र-काययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अप्रगतवेदी, सृहमसाम्परायसंयत, उपशम-

रे. ता॰ प्रतौ पज्जत्तावे (व) इति पाठः । २. झा॰ प्रतौ सन्यमगुसाग् पंचि पंचि इति पाठः ।

४८७. सव्वएइंदि० पुढ०--बादर०-बादर०अप० मणुसाच० ओघं । सेसाणं सब्वपदा णिय० ग्रस्थि । एवं आउ०--तेउ०--वाउ०--बादर--बादरअप० तेसि चेव सव्वसुद्धम०-सब्ववण०-णिगोद०-बादरपत्ते०अपज्ज० ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समसं।

भागाभागाणुगमो

४६८. भागाभागाणु० दुवि०—ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वराण्०४-अगु०-उप०-णिमि०पंचत० भुजगारवंधगा सञ्बजीवाणं केविडयो भागो १ दुभागो सादिरेगो। अप०
दुभागो देस्०। अविड० सञ्बजीवाणं असंखेँ ज्ञिदिभागो। अवत्त० सञ्बजी० अणंतभा०।
सादासाद०-सत्तणोक०-चदुआए०-चदुगिदि-पंचजादि-ओरा०-वेचिव०--अस्संठा०ओरा०-वेच० अंगो०-अस्संघ०-चदुआए०-पर०-उस्सा०--आदाचज्ञो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-तित्थ०-दोगो० भुज० सञ्बजी० दुभा० सादि०। अप्प० दुभा० देस्०।
अविड०-अवत्त० असंखेँ०भा०। एवं आहारदुगं। णविर अविड०-अवत्त० संखेँज्ञिदिभा०। एवं ओघभंगो तिरिक्खोधं कायजोगि०-ओरा०-ओरा०-मि०-कम्मइ०-णवुंस०-

सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि श्रौर सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

४६७, सब एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त जीनोंमें मनुष्यायुका भंग छोचके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके बादर और वादर अपर्याप्त तथा सब सूदम, सब वनस्पतिकायिक, निगोद और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।

भागाभागानुगम

४६८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश हो प्रकारका है— श्रोघ श्रीर आदेश। श्रोघसे पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह क्षाय, भय, जुगुष्मा, श्रोदारिकरारीर, तेजस्शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, इपवात, निर्माण और पाँच अन्तरायके मुजगारपदके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं। श्रवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, श्रोदारिकशरीर, वैकियिकशरीर, छह संस्थान, श्रोदारिक आंगोपांग, वैकियिक आंगोपांग, छह संहनन, चार आतुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, असादि दस युगल, तीर्थक्कर और दो गोत्रके मुजगार पदके बन्धक जीव सब जीवोंके साधिक द्वितीय भागप्रमाण हैं। अल्पतरपदके बन्धक जीव श्रवं कन्धक जीव श्रवं क्षायोगिमाण हैं। इविहायोगित, श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव श्रवं सामप्रमाण हैं। इविहायोगित श्रीदिक्त श्रीर श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव श्रवं सामप्रमाण हैं। इसिप्रकार आहारकशरीरद्विकका भंग है। इतनी विशेषता है कि श्रवस्थित और श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी श्रकार श्रोघके समान सामान्य तिर्यक्र, काययोगी, औदारिक-

ता० प्रतौ कायजोगि० श्रोगलि० मि० इति पाठः ।

कोधादि०४ -मदि०-सुद०--असंज०-अचक्सु०--तिरिए। ले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छादि०-असिएए।०-आहार०-अणाहारग नि । एदेसि किंचि० विसेसो णादव्वो । ओरालि० तित्थ० ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंच० आहारस०भंगो । अवत० णत्थि। सेसाणं णेरहगादीएां याव सिरएए ति याओ असंखें ज्ञ-अर्एातजीविगाओ पगदीओ ताओ ओद्यं आहार-सरीरभंगो ।

एवं भागाभागं समतं। परिमाणाण्यगमी

४६६. परिमाणाणु० दुवि० — ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वरणा०४ - अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० ग्रुज०-अप्प०-अविह०वंधगा केंतिया १ श्रग्रंता। श्रवत्त० के० १ संखेंजा। थीणिग०३ - मिच्छ०-अहक०-ओरालि० ग्रुज०-अप०-श्रविह० कें० १ अणंता। अवत्त० के० १ श्रमंखें०। दोवेदणी०-सत्तणोक०-तिरिक्खाड०-दोगदि--पंचजा०-छस्संटा०-ओराछि० श्रंगो०-छस्संघ०--दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाङ्को०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगो० ग्रुज०-अप्प०-अविह०-अवत्त० कें० १ श्रग्रंता। तिरिणाश्राड०-वेड०छ० ग्रुज०-अप०-अविह०-अवत्त०केंतिं० १ श्रसं-

काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचजुदर्शनी, तीन लेश्यायाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इन मागेणाओं में जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए। औदारिककाययोगी जीवों तीर्थंद्वर प्रकृतिका, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवों में देवगतिपञ्चकका मंग आहारकशरीरके समान है। तथा अबक्तव्यपद नहीं है। शेष नरक आदिसे लेकर संज्ञी तक जो असंख्यात और अनन्त जीवों के वैंघनेवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका मज्ज अध्यसे आहारकशरीरके समान है। तथा जो संख्यात जीवों के वैंघनेवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका मज्ज ओघसे आहारकशरीरके समान है। तथा जो संख्यात जीवों के वैंघनेवाली प्रकृतियाँ हैं, उनका मज्ज ओघसे आहारकशरीरके समान है।

इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुन्ना।

परिमाणानुगम

४६६. परिसाणानुगमकी अपेता निर्देश दो प्रकारका है—ओव और आदेश। ओघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कामणशरीर, वर्ण्यतुष्क, अगुरुलघु, वपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीव कितने हैं ? अवन्त हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धि तीन, मिध्यास्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके मुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इंविदेशीय, सात नोकपाय, तिर्यक्कायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिकआङ्गोनपाइ, छह संहनन, दो बानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि इस युगल और दे गोत्रके भुजगार, अस्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव अनन्त हैं। तीन आयु और वैकिथिक छहके भुजगार, अस्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव स्नान्त हैं।

लेंजा। साहारहुगं भुज ० - [अप्प०-]-अविद्वि०-अवस० कें० १ संखेंजा। तित्य० भुज ० - अप्प० - अपि० कें० १ असंखेंजा। अवत० कें० १ संखेंजा। प्रवं ओघभंगों काय-जोगि-ओरालि० - [णवुंस० - कोघादि० ४ -] अचक्खु० - अवसि० - आहारए ति । णविर ओरालि० तित्थ० संखेंजा।

- ५००. णिरपसु मणुसाउ०सम्बपदा० तित्थय० अवत्त० कें०? संखेंजा । सेसाणं सम्बपदा कें० ? असंखें० । एवं सम्बणिरय-सम्बदेवा याव अपराजिदा शि बेउ०-वेउ०मि०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-सासणसम्मादिष्टि शि । णवरि इत्थि० तित्थ० संखें० ।
- ५०१. तिरिक्खेसु धुविगाणं तिण्णिपदा कें १ अणंता । सेसाणं ऋोघं । एवं तिरिक्खोघभंगो मदि०-सुद् ०-असंज ०-तिणिए। ले ०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असएणीसु । पंचिदियतिरिक्ख ० ३ धुविगाणं तिणिए। पवं सब्ब अपज्ञ ०-सन्वविगलिदि०-पुढ ०-आ ७० विज्ञ । सेसाणं परियत्तमाणि-याग्यं चत्तारिपदा कें ० १ असंखें ० । एवं सब्ब अपज्ञ ०-सन्वविगलिदि०-पुढ ०-आ ७० ते ७०-वाड ०-बादरपत्ते ग ति ।
- ५०२, मणुसेसु पंचणा०--णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०--भय-दु०--ओराखि०-तेजा०-क०-वएएा०४-अगु०-उष०--णिमि०--पंचंत० तिण्णिप० असंखें०। अवत०

कितने हैं ? असंख्यात हैं। आहारकद्विकके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्रस्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तीर्थक्कर प्रकृतिके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अवक्तन्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार ओवके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कवाययाले, अवज्ञु-दर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

५००. नारिकयोंमें मनुष्यायुके सब पदोंके और तीर्थक्कर प्रकृतिके अवक्तस्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। रोष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? स्रसंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, देव, अपराजित विभान तकके सब देव, वैकियिककाययोगी, वैकियिक-मिश्रकाययोगी, खीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवोंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

४०१. तिर्यक्रोंके ध्रुचबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हैं १ अनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंका भंग आधिके समान है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यक्रोंके समान मत्यक्रानी, श्रुता-भ्रानी, असंयत, तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिध्यादृष्टि और असंक्री जीवोंमें ज्ञानना चाहिए। पक्रोन्ट्रिय तिर्यक्षत्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं १ असंख्यात हैं। शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं १ असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अगिनकायिक, वायुकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंके जानना चाहिए।

५०२. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलद्द कषाय, भय, जुगुप्सा, स्रोदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचनुष्क, श्रगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव श्रसंख्यात हैं। श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं। दो

संखेंजा । दोआउ०--वेडिव्यि०छ० -आहार०२--तित्य० चत्तारिपदा कें० १ संखेंजा । सेसाणं चत्तारिपदा कें० १ असंखें० । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपगदीणं सव्वपदा केंतिया १ संखें० । मणुसिभंगो सव्वद्व०--आहार०-आहारमि०--अवगद०--मणपज्ज०-संजद०-सामाइ०-छेदो ०-परिहार०-सुहुम० ।

४०३. एइंदिएसु सन्वपगदीणं सन्वपदा कें०१ श्रणंता। णवरि मणुसाउ० ओघं। एवं वणप्फदि-णियोद०।

४०४. पंचिदिएसु पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०--तेजा०-क०-वाराण०४--अगु०-उप०-णिमि०--तित्थय०--पंचंत० तिण्णिप० के० १ असंखें० । श्रवत्त० के० १ संखें० । आहारदुगं सव्वप० कें० १ संखें० । सेसाणं चत्तारिपदा कें० १ असंखें० । एवं पंचिदियपज्ज०--तस-तसपज्ज०--पंचपण०--पंचवचि०--चक्ख०-सण्णि ति । ओरा०मि० कम्भइ०-[अणाहार०] तिरिक्खोधं । णवरि देवगदिपंचग० सव्वपदा संखेंजा ।

५०५, आभिणि०--सुद्द०--ओधि० पंचणा०-छदंस--अद्दक०-पुरिस०-भय-हु०-देवग०-पंचि०-वेउ०-तेजा०-क०--समचदु०-वेउ०द्यंगो०--वएए।०४-देवाणु०-अगु०-पस-त्थवि०-तस०४-सुभग-सुस्सर-स्रादे०--णिमि-क्तिथ०--उच्चा०-पंचंत० तिएएएप० के० १

श्रायु, वैक्रियिक छह, श्राहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिके चारों परोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शेप प्रकृतियोंके चारों परोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सनुष्यपर्याप्त श्रोर मनुष्यित्योंमें सब प्रकृतियोंके सब परोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। सर्वार्थ-सिद्धिके देव, श्राहारककाययोगी, श्राहारकमिश्रकाययोगी, श्रपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्वद्विसंयत श्रोर सूदमसाम्परायसंयत जीवोंमें मनुष्यित्योंके समान भंग है।

५०३. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ! अनन्त हैं । इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भंग आंघके समान है। इसी प्रकार बनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंमें जानना चाहिए।

५०४. पश्चेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कवाय, भय, जुगुत्सा, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुत्तघु, उपघात, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायकं
तीन पदोंके वन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके वन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आहारकदिकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। श्रेप प्रकृतियोंके चारों पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार पञ्चोन्द्रिय पर्याप्त, अस, असपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चजुदराँनी और संज्ञी जीवोंके ज्ञानना चाहिए। औदारिकमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सामान्य तिर्थक्चोंके समान भग है। इतनी विशेषता है कि देवगतिपञ्चकके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं।

५०५. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी श्रीर अवधिक्षानी जीवोमें पाँच ज्ञानावरण,छह दर्शनावरण, श्राठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुण्सा, देवगति, पञ्चोन्द्रयज्ञाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकश्रांगोपांग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुजधु, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, श्रादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उसगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं १ असंस्थात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव

असंखें । अवत्त ० केंति ० १ संखें ० । सादासाद ०--अपश्वक्खाण ० ४ -- चतुणोक ०-- देवा उ०--मणुसगदिपंच ०--थिरादितिरिख्यु ० चत्तारिप ० कें ० १ असंखें ० । मणुसाउ०-आहारदुगं सन्वप ० कें ० १ संखें ०। एवं ओधिदं ० - सम्मादि ० - वेदग ० - सम्मामि च्छादिष्टि ति । णवरि वेदग ० - सम्मामि ० धुविगाणं अवत्त ० णत्थि ।

४०६. संजदासंज० धुविगाणं तिण्णिपदा परियत्तमाणियाणं चत्तारिपदा कें ? असंखे०। तित्य० सञ्चप० के० ? संखे०।

४०७, किएएा--णीलाणं तित्थ० तिएएएप० कें० ? संखें० ! तेज--पम्मासु धुविगाणं तिएएएपदा कें० ? असंखें० । पश्चक्खा०४ -- देवगदि०४ -- तित्थ० अवत्त०
संखेंजा । सेसपदा० असंखें० । सेसाणं सव्वप० असंखें० । मणुसाउ०-आहार०२
सव्वप० कें० ? संखें० । सुकाए पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-दोगदि-पंचजादिचदुसरीर-दोद्रंगो०-वण्ण०४ -- दोस्राणु०-अगु०४--पसत्थवि०--तस०४--णिमि०-तित्थ०पंचत० तिएएएप० कें० ? असं०। अवत्त० कें० ? संखें० । दोआउ०-आहार०२ सव्वपदा कें० ? संखें० । सेसाणं सव्वप० कें० ? स्रसंखें० ।

५०८. खइग० पंचणा०--इदंस०--बारसक०--पुरिस०--भय-दु०-दोगदि-पंचि०-

कितने हैं ? संख्यात हैं । सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय, ऋप्रत्याख्यानावरण चार, चार नोकषाय, देवायु, मनुष्यगतिपञ्चक और स्थिर ऋदि तीन युगलके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? ऋसंख्यात हैं । मनुष्यायु और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें ध्रुषदन्धवाली प्रकृतियोंका ऋवक्तव्यपद नहीं है।

५०६. संयतासंयत जीवोंमें भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके श्रीर परिवर्तमान प्रकृतियोंके चार पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? श्रसंख्यात हैं। तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

५०७. कृष्ण और नील लेश्यामें तीर्यंद्वर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संस्थात हैं। पीत और पदालेश्यामें भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। प्रत्याख्यानावरण चार, देवगतिचतुष्क और तीर्यंद्वर प्रकृतिके अवक्तव्य पदके बन्धक जीव संख्यात हैं। प्रत्याख्यानावरण चार, देवगतिचतुष्क और तीर्यंद्वर प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यायु और आहारकिहिकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। शुक्तलेश्यामें पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कवाय, भय, जुगुरसा, दो गित, पाँच जाति, चार शरीर, दो आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलधुचतुष्क, प्रशस्त विदायोगित, असचतुष्क, निर्माण, तीर्यंद्वर और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। दो आयु और आहारकिहक सब पदोंके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। दो आयु और आहारकिहक सब पदोंके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। श्रेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। श्रेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। श्रेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। श्रेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हें ? संख्यात हैं। श्रेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीव

५०८. श्राधिकसम्यवस्वमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कवाय, पुरुषवेद, भय,

[👫] ऋग • प्रती धुवियायां के • इति पादः ।

चदुसरीर-समचदु०-दोग्रंगो०--वज्जरि०-वर्गा०४--दोआणु०-अगु०४--पसत्य०-तस०४--सुभग-सुस्सर-आदे०-िगमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० तिण्णिप० के०? असंखे०। अवत्त० के० १ संखे० । दोवेदणी०--चदुणोक०--थिरादितिण्णियु० सव्वपदा के० १ असंखे०। दोआज०-आहारदुगं सव्वप० के० १ संखे०।

५०६. उनसम् पंचणा ०-छदंस०-अद्वक०-पुरिस०-भय-दु०--दुगदि-पंचि०-चदुसरीर-समचदु०--दोश्रंगो०--वज्जरि०--वष्ण ०४--दोश्राण ०-अग्र०४--पसत्थ०-तस०४-सुभग सुस्सर-आदेँ०-णिमि०-उच्चा०-पंचंत० तिषिणप० के० १ असंखेँ०। अवत्त० के० १ संखेँजा। सेसाणं सन्वपदा के० १ असंखेँजा। सेसाणं सन्वपदा के० १ असंखेँजा।

एवं परिमाणं समतं।

सेंताणुगमो

५१०. खेताणुगमेण दुवि०—ओघे० श्रादे०। ओघे० पंचणा०--णवदंस०-मिच्छ०--सोलसक०-भय-दु०--ओरालि०--तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-श्रवद्वि०बंधगा केविड खेंते ? सञ्बलोगे। अवत्त० केॅ० ? लोगस्स असंखेंज्जदिभागे। सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०--दोगदि०-पंचजा०-छस्संठा०-

जुगुप्सा, दो गति, पक्चे न्द्रियज्ञाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो स्रांगोपांग, वर्क्षभनाराच संहनन, धर्मचतुष्क, दो स्नानुपूर्वी, स्नगुरुत्तधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, स्नादेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र स्नौर पाँच स्नन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? स्रसंख्यात हैं। स्व वेदनीय, चार नोक्षाय स्नौर स्थिर श्रादि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। दो वेदनीय, चार नोक्षाय स्नौर स्थिर श्रादि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। दो स्नायु स्नौर स्वाहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

५०६. उपशमसम्याहिष्ट जीवों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, छाठ कपाय, पुरुष्वेद, भय, जुगुःसा, दो गति, पक्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आगोपांग, वर्षभमनाराच संहनन, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलधुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगांत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंकें बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। आहारकदिक और तीर्थक्करके सब पदोंके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। असंख्यात हैं।

इस प्रकार परिमाण समाप्त हुआ।

क्षेत्राज्ञुगम

५१०. चेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच आनावरण, नी दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस शरीर, कार्म खरारीर, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है १ सब लोक चेत्र है। अवकव्य पदके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है १ सब लोक चेत्र है। सातावेदनीय,

जोरा ० जांगा ० - जस्संघड ० -- दोआणु ० -- पर ० -- उस्सा ० -- आदा छज्जो ० -- दो विहा ० -- तसादि-दस्त यु०-दोगो ० चत्तारिप ० कें० १ सन्वलोंगे । तिण्णि आच ० - वेडिन्नियळ ० - श्वाहा र ० २ --तिस्थ ० सन्वप ० कें० १ लो ० असंखें० । एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालि० - ओरा० मि०--कम्म०-- णवुंस० -- कोथादि ० ४ -- मिद० -- सुद० -- असंज० -- श्वच व्यव ० -- ति एए ले ० --भवसि० - अब्भवसि० - मिच्छा० - अस्एए - आहार ० - अणाहा र ए नि ।

५११. एइंदि०-सञ्बसुहुमएइंदि० धुक्गाणं तििएएएदा सञ्बलो०। मणुसाउ० ओषं। सेसाणं सञ्वपादीणं सञ्वपदा कें० १ सञ्बलो०। एवं पुढ०--आउ०--तेउ०- वाउ०--वणप्पदि०--णिगोद० तेसिं सञ्बसुहुमाणं च। बादरएइंदि०पज्ज०--अपज्ज० धुवियाणं तििएएए० कें० १ सञ्बलो०। सादासाद०--चढुणोक०--थिरादिदोिएएए७ सञ्वप० कें० १ सञ्बलो०। इत्थि०-पुरि०-तिरिक्खाउ०-चढुजा०-पंचसंदा०-ओरालि० स्रांगो०--छ्रसंघ०-आदा०--उज्जो०--दोविहा०--तस०-वादर०--सुभग०-दोसर०-आदे०-जस० चत्तारिप० कें० १ लो० संखें०। णवुंस०-एइंदि०-हुंढ०-पर०-उस्सा०-थावर०-सुहुम-पज्जतापज्ज०-पर्ने०-साधा०-दूभग-अणादे०-अजस०तिएएए० कें० १ सञ्बलो०। अवत्त० कें० १ लो० संखेज०। मणुसाउ०-मणुसग०३ चत्तारिप० कें० १ लो०

असातांवदनीय, सात नोकषाय, तिर्यक्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोन्पाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परचान, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगिति, असादि दस युगल और दो गोत्रके चार पदोंके बन्धक जीबोंका कितना चेत्र हैं ? सब लोक चेत्र हैं। तीन आयु, वैकियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थंङ्करके सब पदोंके बन्धक जीबोंका कितना चेत्र हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिककाययोगी, आदारिकिस अकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कवायवाले, मत्यद्वानी, श्रुता-झानी, असंयत, अचलुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिश्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

प११ एकेन्द्रिय और सब सूच्स एकेन्द्रिय जीवोंमें ध्रुव्वत्धवाली प्रकृतियोंके तीन परोंके बन्धक जीवोंका खेन सब लोक है। मनुष्यायुका भक्ष चोघके समान है। शेष सब प्रकृतियोंके सब परोंके बन्धक जीवोंका कितना खेन है १ सब लोक चेन है। इसी प्रकार पृथिनीकायिक, जलकायिक, ध्राग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद और इन सबके सब सूच्म जीवोंमें जानना चाहिए। वादर एकेन्द्रिय तथाउनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमें ध्रुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन परोंके बन्धक जीवोंका कितना केन्न है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय और स्थिर आदि दो युगलोंके सब परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेन्न है १ सब लोक चेन्न है। खीवेद, पुरुषवेद, तियंख्यायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, सुभग, दोस्वर, आदेय और यशःकीर्तिके चार परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेन्न है १ लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण चेन्न है । नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, पर्धात, उच्छ्वास, स्थावर, सूच्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अतादेय, और अयशःकितिके तीन परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेन्न है १ सब लोक चेन्न है । अवक्तव्य पर्के बन्धक जीवोंका कितना चेन्न है १ लोकके संख्यातवें भागप्रमाण चेन्न है । मनुष्यायु और मनुष्यगित-

१. ता० प्रतौ छुस्पंब० दोन्नावु० दोविहा० इति पाठः। २. त्रा० प्रतौ धादा० इति पाठः।

असंखें । तिरिक्ख०३ तिरिएएप० केवडि० ? सव्वलो०। अवत्त० लो० असं०।

४१२. बादरपुढ० तस्सेव श्रपक्षं० पंचणा०-णवदंस०--मिच्छ०--सोलसक०-भय०-दुगुं०-ओरा०-तेजा०-क०-वर्गा०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप कें० ? सव्वलो०। सादासाद०-चढुणोक०-थिराथिर--सुभासुभ० चतारिप० सव्वलो०। इत्थि०-पुरिस०--दोआड०--मणुसग०--चढुणा०--पंचसंठा०--ओरा०श्रंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाष०-दोविहा०-तस-बादर--सुभग-दोसर-आदे०-[जस०]-उच्चागो० चत्तारिप० लो० असं०। णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर०--उस्सा०-थावर०-सुहुम-पज्जतापज्ज०-पत्ते०-साधार०--दूभग०-अणा०-अजस०--णीचा० तिण्णिप० सव्वलो०। श्रवत्त० लो० असंखेँ०। एवं वादरआड०--तेड०--वाउ० तेसि चेत्र अपज्ज० बादर०-पत्ते० तस्सेव अपज्ज०। णवरि बादरवाउ० जिम्ह लोग० असंखेँ० तिम्ह लो० संखेँ०। सेसाणं ऐरइगादीणं यात्र सण्णि ति संखेँज्ज--असंखेँजजीविगाणं सव्वपदा कें० ? लो० असंखेँजदिभागे।

एवं खेँतं समत्तं।

त्रिकके चार परोंके बन्धक जीवोंक। कितना चेत्र हैं ? लोकके श्रसंख्यातवें भाग प्रभागा चेत्र हैं । तिर्यक्रमितित्रिकके तीन परोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र हैं ? सब लोक चेत्र हैं । अवक्तव्य पर्के बन्धक जोवोंका लोकके श्रसंख्यातवें भागश्रमागा चेत्र हैं ।

५१२. बादर पृथिवीकायिक स्त्रीर उसके स्रपर्याप्त जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सालह कपाय, भय, जुगुप्सा, ऋौदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ? सब लोक चेत्र है। सातावेदनीय, ऋसातावेदनीय, चार नोकषाय,स्थिर, ऋस्थिर, शुभ और ऋशुभक चार पदोंके बन्धक जीयोंका सब लोक चेत्र हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, श्रीदारिक श्रांगोपांग, छह संहतन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायो-गति, त्रस, वादर, सुभग, दो स्वर, त्रादेव, यश:कीर्ति स्त्रीर उचगोत्रके चार पदोंके बन्धक जीबोंका चेत्र लोकके श्रसंख्यातर्वे भागप्रमाण है। नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्येख्वगत्यानुपूर्वी, परवात, उच्छ्वास, स्थावर, सूदम, पर्याप्त, ख्रपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सब लोक चेत्र है। श्रवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाख क्षेत्र हैं । इसी प्रकार बादर जल-कायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त तथा बादर प्रत्येकश्रारीर और उनके अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है, वहाँ पर बादर वायुकायिक जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण कहना चाहिए । शेष नारकी आदिसे लेकर संज्ञी तकके संख्यात श्रीर श्रसंख्यात संख्याक जीवोंमें सब पट्टोंके बन्धक जीवोंका कितना चेत्र है ?'लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्र है।

इस प्रकार चेत्र समाप्त हुआ।

फेसणाणुगमो

४१३. फोसणाणु० दुवि॰ — स्रोघे० सादे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अहक०भय-दु०-तेजा०-क०-वएए।०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भ्रुज०-अप०-अवहि०वंधगेहि
केविहयं खेंनं फोसिदं ? सन्वलो०। अवत्त० लो० असंखें०। थीणगिद्धि०३—अणंताणु०४
तिएएए० सन्वलो०। अवत्त० अहचों०। सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाड०-दोगदि-पंचजादि-छस्संदा०-ओरा० अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्जो०दोविहा०--तसादिदसयु०--दोगो० भ्रुज०-अप्प०-अवहि०--अवत्त० कें० ? सन्वलो०।
मिच्छ० तिएएए० सन्वलो०। अवत्त० अह-बारह०। अपचक्खाण०४ तिएएए०
सन्वलो०। अवत्त० छचों०। णिरय-देवाड०-आहार०२ चत्तारिए० कें० ? लो०
असं०। मणुसाउ० चत्तारिप० अहचों० सन्वलो०। णिरय-देवग०-दोआणु० तिएएए०
छचों०। अवत्त० खेंत०। ओरालि० तिएएए० सन्वलो०। अवत्त० बारहचों०।
वेउन्वि०-वेउन्वि०-अंगो० तिएएए० बारह०। अवत्त० खेंत०। तिरथयरं तिएएए०

स्पर्शनानुगम

५१३. स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—स्रोध स्रोर स्रादेश । स्रोधसे पाँच झानावरण, स्रह दर्शनावरण, आठ कवाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके मुजगार, अल्पतर और अबस्थितपदके बन्धक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है ? सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तठयपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यात वें भागप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन श्रीर श्रनन्तानुबन्धी चारके तीन पर्दोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ घटे चौदह राज्यमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकवाय, तिर्यख्वायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, श्रीदारिक श्रांगोपाम, छह संहनन, दो श्रानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके मुजगार, अरुपतर, अवस्थित न्त्रीर अवक्तत्र्यपद्के वन्यक जीवोंने कितने चेत्रका स्पर्शन किया है? सत्र लोकका स्पर्शन किया है। मिध्यात्वके तीन पर्दोके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्वर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम ब्याठ बटे चीदह राजू ब्रौर कुछ कम बारह बटे चीदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानायरण चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। श्रवक्तन्यपदके बन्यक जीयोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु और आहारकद्विकके चार पदीके बन्धक जीवीने कितने सेत्रका स्पर्शन किया है १ क्षांकके असंख्यातवें भागप्रमाण चेत्रका स्वर्शन किया है। मनुष्यायुके चार पदीके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो त्रानुपूर्वीके तीन पर्दोके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्रान किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका स्वर्शन जेवके समान है। श्रीदारिकशरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बढे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्परीन किया है । बैक्रियिकशारीर खीर वैक्रियिक आंगोपांगके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राज्यामाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अवकाव्य-

प्र १४. णिरप्सु धुविगाणं तिपिराप० अचौँ । थीणगि०३-अणीताणु०४-तिण्णि-

पत्के बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। तीर्थंक्टर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ, कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है।

विशेषार्थ-पाँच ज्ञानावरण आदिके भुजगार, अरुपतर और अवस्थितपद एकेन्द्रियादि सब जीवोंके होते हैं, इसलिए इनका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा उनका अवक्तव्य पद उप-शमश्री हिसे गिरनेवाले मनुष्य और मनुष्यिनीके तथा ऐसे जीवके मरकर देव होने पर प्रथम समय में होता है, इसलिए इसका स्पर्शन लोकके व्यसंख्यातचें भागप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि तीन श्रौर अनग्तानुबन्धी चारके भुजगार आदि तीन पदोंका स्वामित्व पाँच ज्ञानावरणके समान है, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोक कहा है। तथा इनका अवक्तव्यपद उत्परके गुणस्थानोंसे गिरकर इनके बन्धके प्रथम समयमें दोता है। ऐसे जीवोंका स्वर्शन देवोंकी मुख्यतासे कुछ कम थाठ बटे चौदह राज्यमाण है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है । सातावेदनीय आदि कुछ परावर्त-मान प्रकृतियाँ हैं और कुछ अध्यवनिधनी हैं। इनके भुजगार आदि पर्योका बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव है, अतः इनके सब पदोंके बन्धकोंका स्पर्शन सर्वतोक प्रमाण कहा है। मिध्यात्वके सब पदौंका स्पर्शन स्त्यानगृद्धित्रिकके समान घटित कर लेना चाहिए। मात्र नीचे कुछ कम पाँच राजू भौर अपर कुछ कम सात राजु प्रमाण क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्वातके समय भी इसका अवक्तव्यवन्ध सम्भव है, इसलिये इस पदकी अपेत्ता इसका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे **चौदह राजु प्रमा**ण भी कहा है। श्रप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पद एकेन्द्रिय आदि सब जीवोंके सम्भव है, इसलिए इनकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। तथा इनका अवक्तव्य पद कपर कुछ कम छह राजु प्रमाण चेत्रका स्पर्शन करनेवाले जीवोंके भी होता है, अतः यह एक प्रमाण कहा है। नरकायु श्रौर देवायुका बन्ध श्रमंत्री श्रादि मारणान्तिक समुद्धात श्रौर उपपाद पदके बिना करते हैं और आहारकद्विकका संयत जीव करते हैं, खतः इनके चारों पदोंकी अपेद्धा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। मनुष्यायुके चारों पद देवोंके विहारादिके समय और एकेन्द्रियोंके सम्भव हैं, अतः इसके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोक प्रमाश कहा है। जो तिर्यक्क श्रीर मनुष्य नारिकयों श्रीर देवोंमें मारशान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके कमसे नरकगतिद्विक और देवगतिद्विकके भूत्रगार आदि तीन पद सम्भव हैं. अतः इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजू प्रमास कहा है। परन्तु मारणान्तिक समुद्धातके समय इनका अवक्तव्ययद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन चेत्रके समान कहा है। औदारिकशरीरके तीन पदों की अपेक्षा स्पर्शन ज्ञानावरणके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा नारकी और देव उरवन्न होनेके प्रथम समयमें ऋौदारिक शरीरका अयक्तव्यवन्ध करते हैं, इसलिए इस पदकी भ्रापेचा कुछ कम बारह बढे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कहा है। तिर्येक्टों और मनुष्योंके नारिकयों और देवोंमें मारिणान्तिक समुद्धात करते समय वैक्रियिक शरीरद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह राजू प्रमाण स्पर्शन कहा है,पर ऐसे मनुष्यों और तिर्यञ्जोंके इनका श्रवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इसकी अपेक्स स्पर्शन केत्रके समान कहा है। विद्वारादिके समय देवों के तीर्थद्वर प्रकृतिके तीन पर सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौद्द राजु प्रभाग कहा है। तथा तीर्थद्भर प्रकृतिका अवक्तव्यपद एक तो मनुष्यों के होता है और तीर्थद्भर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले जो मनुष्य दूसरे श्रीर तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं, उनके होता है। इन सबके स्पर्शनका यदि विचार करते हैं,तो वह लोकके असंख्यातचें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिए यह रोजके समान कहा है। ५१४. नार कियोंमें ध्रववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बढे

बेद-तिरिक्स०-छस्संठा०-छस्संघ०-तिरिक्खाणु०-दोविहा०-तिष्णिमिक्सिञ्चयुग०-णीचा० तिरिणाप० छच्चोँ०। अवत्त० खेँत्त०। सादासाद०-चदुणोक्त०-उज्जो०-थिरादितिण्णयु० सञ्जप० छच्चोँ०। दोआउ०-मणुसगदितिय-तित्य० सञ्जपदा खेँत्तं। मिच्छ० तिण्णि-पदा छच्चोँ०। अवत्त० पंचचोँ०। एवं सञ्जणेरइगाणं अप्यप्पणो फोसणो णेदन्बो।

५१५. तिरिक्खेसु पंचणा०--छदंस०-अद्दक०--भय-दु०-तेजा०-क०-वराखा०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० सव्वलो० | यीणगिद्धि०३--अद्दक०-ओरा० तिण्णिप० सव्वलो० | श्रवच० खेँच० | साददंदओ ओघो | दोआउ०-वेजव्यियद्ध०

चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तीन वेद, तिर्यक्रगिति, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यक्रगित्यानुपूर्वी, दो विद्दायोगित, मध्यके तीन युगल चौर नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन चेत्रके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकपाय, उद्योत, और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगितित्रक और तिर्थक्कर प्रकृतिके सब पदोंके बन्धक जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है। मिध्यात्वके तीन पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। मिध्यात्वके तीन पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण चेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब नारिकयों में अपना-अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थं — नारिकयों में भूवबन्धवाली प्रकृतियों के तीन पद ही होते हैं। अत्यत्र भी जहाँ जो धुव प्रकृतियों हैं, उनके यथा सम्भव तीन पद ही होते हैं। और नारिकयों का स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राज्यमाण है, इसिलए धुवबन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों की अपेक्षा यह उक्तप्रमाण कहा है। स्त्यानगृद्धि आदि दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के तीन पदों की अपेक्षा यह उक्तप्रमाण कहा सादिक तीसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के सब पदों की अपेक्षा भी यही स्पर्शन प्राप्त होता है, क्यों कि इन प्रकृतियों के यथायोग्य पद नारिकयों के मारणान्तिक समुद्धातके समय और उपपाद पदके समय भी सम्भव हैं। मात्र दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियों के अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्रेके समान है, क्यों कि मारणान्तिक समुद्धातके समय या उपपादपदके समय इनमें से जो जहाँ बँधती हैं, उनका वहाँ अवक्तव्यवन्ध नहीं होता। मनुष्यगतित्रिक और तीर्थद्धर प्रकृतिका मारणान्तिक समुद्धातके समय भी बन्ध होकर मनुष्यों मारणान्तिक समुद्धात करते समय ही होता है, इसिलए इन प्रकृतियों के सव पदों की अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होने से वह चेत्रके समान कहा है। मिध्यात्वका अवक्तव्यपद छठे नरक तकके नारिकयों के मारणान्तिक समुद्धातके समय भी सम्भव है, अतः इस अपेक्षा कुछ कम पाँच बटे चौदह राज्यमाण स्वतं कहा है। सब नारिकयों में अपने अपने स्वयं स्वयं का विचारकर इसी प्रकार स्पर्शन चटित कर लेना साहिए।

५१५. तिर्यंक्रों में पाँच कानावरण, छह दर्शनावरण, श्राठ कवाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, आठ कषाय, श्रीर औदारिकशरीरके तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का स्पर्शन सेत्रके समान है। सातावेदनीय दण्डकका भङ्ग श्रोधके समान है। द ओर्घ । मिच्छ० तिष्णिप० ओर्घ । अवत्त० सत्तचो० । मणुसाउ० चत्तारिप० लो० असंखें० सव्वलो० ।

५१६. पंचिदियतिरिक्ख ३ धुवियाणं तिष्णिपदा छो० असंखें सव्बहो०। थीणिगिद्धि०२-अद्दुक०-णबुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-ओरा०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-पर ०- उस्सा०-थावर०-सुहुम-पज्जत्तापज०-पत्ते०-साधार०-दूभ०-अणादें०-णीचा०तिष्णिप० छो० असंखें सव्वहो०। अवत्त ० खेंत्त ०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० छो० असं० सव्वहो०। मिच्छ०-अजस० तिष्णिप० छो० असं० सव्वहो०। अवत्त० सत्त्वो०। इत्थि० तिष्णिप० दिवहुचोँ०। अवत्त० खेंत्त०। पुरिस०-दोगदि-सम-

आयु और बैक्रियिक छहका भङ्ग ओघके समान है। मिथ्यात्व के तीन प्रदोंका भङ्ग ओघके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चार पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तिर्यक्कों में पाँच झानावरणादि ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। स्यानगृद्धि आदिके तीन पद एकेन्द्रियादि सबके सम्भव हैं, इसलिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा भी सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। मात्र इनका अबक्तव्य पद जो गुणस्थानप्रतिपन्न तिर्यक्कोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह क्षेत्र के समान कहा है। ऐसे तिर्यक्कोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे वह क्षेत्र के समान कहा है। यहाँ सातावेदनीय दण्डक, दो आयु और बेक्नियक छहका भक्न ओघके समान है, यह स्पष्ट ही है। मिथ्यात्वके तीन पद एकेन्द्रियादि तिर्यक्कोंके सम्भव हैं, इसलिए इनकी अपेक्षा स्पर्शन भी ओघके समान कहा है। मात्र मिथ्यात्वका अवक्तव्य पद सब तिर्यक्कोंके सम्भव नहीं है, किन्तु जो गुणस्थानप्रतिपन्न तिर्यक्क मिथ्यात्व में आते हैं, उनके ही सम्भव है और सासादन से मारणान्तिक समुद्घात करते समय मिथ्याहिष्ट होकर ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें समुद्घात करते समय होता है। ऐसे जीवोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजू प्रमाण उपलब्ध होता है, इसलिए इस अपेक्षा से यह उक्त प्रमाण कहा है। मनुष्यके चारों पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके सम्भव है, इसलिए इसके चारों पदोंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है।

५१६. पश्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन परोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। स्यानगृद्धित्रिक, आठ कषाय, तपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, हुण्डसंस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकका स्पर्शन किया है। कात्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकको असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकको असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकको असंख्यातवें भागप्रमाण और अवश्वको तिर्वे तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकको असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकको स्पर्शन किया है। भावपात्र लोकको स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बीवेदके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बीवेदके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम स्वत्व बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बीवेदके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम स्वत्व चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

१. आ०पतौ हुंड० पर० इति पाठः ।

चदु०-दोआणु०-दोविहा०-सुभग-दोसर-आहेँ०-उच्चा०तिष्णिष० छच्चोँ०। अवत्त० खेँत्त०। चत्तारिआउ०-मणुसगदि-तिष्णिजा०-चदुसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदाव० चत्तारिप० खेँत्त०। पंचिं०-वेउ०-वेउ०अंगो०-तस० तिष्णिप० वेरहचौँ०। अवत्त० खेँत्त०। उज्जो०-जस० सन्वप० सत्तचोँ०। बादर० तिष्णिप० तेरह०। अवत्त० खेँत्त०।

है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्र के समान है। पुरुषवेद, दो गित, समचतुरक्ष-संस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, सुमग, दो स्वर, आदेय और उच्चाेत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। चार आयु, मनुष्यगित, तीन जाति, चार संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और आतपके चार पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पञ्चीन्द्रयजाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक आङ्कोपाङ्ग और त्रसके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे.चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशक्तितिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विठोषार्थ---पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चित्रिकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सब लोकप्रमाण होनेसे इनमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पर्दोकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। यहाँ धुववन्धवाली प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण अन्तकी आठ कषाय, भय, जुगुंप्सा, तैजसहारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुछघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय । स्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रकारसे ही घटित कर छेना चाहिए। तथा यहाँ स्त्यानगृद्धि आदि प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद मारणान्तिक समुद्धातके समय और उपपाद पदके समय सम्भव न होनेसे इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सातावेदनीय आदिके चारी पदींकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण और सब लोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार मिथ्यात्व आदि दो प्रकृतियोंके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्धन घटित कर लेना चाहिए। तथा इन दो प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद जिस प्रकार सामान्य तिर्यञ्जोंके मिथ्यात्व पदकी अपेक्षा बतला आये हैं, उस अवस्थामें ही सम्भव है; इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुल कम सात बटे चौदह राजप्रमाण कहा है। देवियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी स्त्रीवेदका बन्ध होता है, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बंदे चौदह राज्यप्रमाण कहा है पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्य-पद नहीं होता। इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें और नार्रकयोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी पुरुषवेद आदिका यथायोग्य बन्ध होता है, अतः इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है, पर ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यवन्ध नहीं होता, इसिछए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। चार आय आदिके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। क्योंकि एक तो चार आयुओंके सब पद और शेष प्रकृतियोंका अवक्तत्र्यपद मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होते । और होष प्रकृतियोंके तीन पद मारणान्तिक समुद्धातके समय होकर भी स्पर्शन छोकके असंख्या-

१. ता० आ० प्रत्योः तस०४ तिण्णिप० इति पाठः ।

५१७. पंचिं विरिक्ख व पंचणा व ज्यांस्व निच्छ व सोलसक व सम्बद्ध व अरेश व ते जिल्ला प व से स्वर्ण व स्वर

तवं भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। देवोंमें और नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी पश्चेन्द्रियजाति आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसिलए इन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्शन कुछ कम वारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनका अवक्तव्य पद नहीं होता, इसिलए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय भी उद्योत और यशाकीर्तिके सब पद सम्भव हैं, इसिलए इनके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। ऊपर सात और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। उपर सात और नीचे छह इस प्रकार कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूका स्पर्शन करते समय बादर प्रकृतिके तीन पद सम्भव होनेसे इसका तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें इसका अवक्तव्य पद सम्भव नहीं है, इसिलए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५१७. पख्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपयोप्तकोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, ओदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुछघु, जपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब छोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, ग्रुम और अग्रुभके चार पदोंके बन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और पाँच अन्तरायके तीन पदींके बन्धक जीवींने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुख्यगति, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्कोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायो-गति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उचगोत्रके सब पर्दोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नपुंसकवेद, तिर्येष्ट्रगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्येक्षगत्यानुपूर्वी, परधात, उच्छ्वास, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्मग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पर्होंके बन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयराक्षीर्ति के तीन पर्वोके बन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातयें भागप्रमाण और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राज्यप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक

१. ता॰ प्रतौ सब्वलो॰ । एवं इति पाठः ।

विगलिदि०-बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-बाउ०पञ्जत्ता०बादरपत्ते०पञ्जत्तगाणं च । णवरि तेउ-बाऊणं मणुसगदिचदुकं बञ्ज । वाऊणं जम्हि लोग० असंखेंज० तम्हि लोग० संखेंज० ।

५१८. मणुस०३ पंचणा०-णवदंस०-सोलसक¹-णवंस०-भय-दु०-तिरिक्ख०-एइं-दि०-औरा०-तेजा०-क०-हुंड०-चण्ण०४-तिरिक्खाणु०-अगु०४-थावर०-सुहुम०-पञ्ज०-अपञ्ज०-पत्ते०-साधार०-दुभ०-अणादेॅ०-णिमि०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिप० लो० असं०

पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर बायुकायिक पर्याप्त और बादर प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और बायु-कायिक जीवोंमें मनुष्यगतिचतुष्कको छोड़कर यह स्पर्शन कहना चाहिए। तथा जहाँ पर लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहा है,वहाँ वायुकायिक जीवोंमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन कहना चाहिए।

विठोषार्थ-पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण बतलाया है। इस सब स्पर्शनके समय इनके ज्ञानावरणादिके तीन पद और साता-वेदनीय आदिके चार पद सम्भव होनेसे यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पद्मेन्द्रियतिर्यक्क-अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और मनुष्योंमें जब मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब भी स्रीवेद आदिका यथायोग्य बन्ध होता है, पर ऐसे जीवांका स्पर्शन मी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनके स्वीवेद आदिके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यहाँ सब एकेन्द्रियोंमें यथायोग्य मारणान्तिक समुद्धात करते समय नपुंसकवेद आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए यहाँ इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब छोकप्रमाण कहा है। पर ऐसे समयमें इनके इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इस-लिए इसकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मरणान्तिक समुद्घात करते समय इनके उद्योत और यशकीर्तिके चार पद सम्भव हैं, इसिछए इन दो प्रकृतियोंके चार पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटें चौदह राजूप्रमाण कहा है। इसी प्रकार बादरके तीन परोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण घटित कर लेना चाहिए । पर इसका अवक्तव्य पद मारणान्तिक समुद्घातके समय नहीं होता, अतः इसकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। जो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त सब एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उनके भी अयशःकीर्तिके तीन पद सम्भव हैं, अतः इस प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण कहा है। यहाँ सब अपर्याप्त आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ कही हैं, उनमें यह स्पर्शन बन जाता है। इसिछए उनमें यह स्पर्शन पञ्चिन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। मात्र अग्निकायिक और बायु-कायिक जीवोंके महुष्यगति आदि चारका बन्ध नहीं होता, इसिछए इनमें इनका स्पर्शन नहीं कहना चाहिए । तथा वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन छोकके संख्यातवें भागप्रमाण होनेसे इनमें छोकके असंख्यातवें मागके स्थानमें उक्त स्पर्शन कहना चाहिए।

५१८. मनुष्यत्रिकमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुण्डसंस्थान,

१. ता॰प्रतौ पंचणा॰ णवदंस॰ मिच्छ॰ सोलसक॰, आ॰प्रतौ पंचणा॰ छदंस॰ मिच्छ॰ सोलसक॰ इति पाठः ।

सव्वलो । अवत्त व सेंत । सादादिदंडओ मिच्छत्तदंडओ पंधि तिरि भंगो । इत्थि - पुरि - चदु आउ - तिगदि-चदु जा - वेउ - आहार - पंचसंठा - निष्णि अंगो - छस्संघ - ति-ष्णि आपु - आदाव - दोविहा - तस-सुभग-दोसर - आदें - तित्थ - उच्चा - चत्तारिष - सेंत भंगो । उज्जो - जस - चत्तारिष - बादर - तिष्णिप - सत्तचों - अवत्त - खेंत - भंगो ।

५१९, देवेसु ध्रुविगाणं तिष्णिप० अह-णव०। थीणिगिद्धि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्स०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर०-दूभग०-अणादेँ०-णीचा० तिष्णि-प० अह-णव०। अवत्त० अङ्कचौँ०। सादासाद०-मिच्छ०-चदुणोकसाय-उज्जो०-थिरादि-तिष्णियु० सव्वप० अह-णव०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुसग०-पंचि०-पंचसंठा०-

वर्णचतुष्क, तिर्यक्कगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, स्थावर, सृक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डक और मिथ्यात्वदण्डकका भङ्ग पक्केन्द्रिय तिर्यक्कोंके समान है। स्वीवेद, पुरुषवेद, चार आयु, तीन गति, चार जाति, वैक्रिन्यकरारीर, आहारकरारीर, पाँच संस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आत्प, दो विहायोगिति, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय, तीर्यङ्कर और उन्नगोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योत और यञ्चकितिके चार पदोंके तथा बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ — मनुष्यित्रकमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्शन है। इनके पाँच हानावरणादिके तीन पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन वन जानेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। पर यहाँ इनका अवक्तव्य पद सब लोकप्रमाण स्पर्शनके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। कारणका विचार कर कथन कर लेना चाहिए। सातावेदनीयरण्डक और मिथ्यात्वदण्डकका भङ्ग पञ्चित्रिय तिर्यञ्चोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। यहाँ सातावण्डकसे सातावेदनीय, असातावेदनीय, हास्य, रित, अरित, शोक, स्थिर, अस्थिर, श्रुभ और अशुभका तथा मिथ्यात्वदण्डकसे मिश्यात्व और अयशःकीर्तिका प्रहण होता है। इनमें स्त्रीवेद आदिके चारों पद यथायोग्य लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शनके समय ही होते हैं, इसलिए यह स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। उपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय भी इनके उद्योत और यशःकीर्तिके चार पद और वादरके तीन पद सम्भव हैं, अतः यहाँ इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। पर ऐसी अवस्थामें वादर प्रकृतिका अवक्तव्यपद नहीं होता, अतः इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५१९. देवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यक्क्ष्माति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यक्क्ष्मात्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असाता-

ओरा०अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसर०-आदेँ०-उचा० सन्वप० अट्टचोँ०। तित्थय० तिण्णिप० अट्टचोँ०। एवं सन्वदेवाणं अप्पप्पणो पोसणं षेदव्वं।

५२०. एइंदि०-पुढ०-आउ० नेतेउ०-वाउ० तेसिं चेव बादर-बादरपत्ते० तेसिं चेव अपञ्ज० सञ्चवणप्पदि-णियोद० सञ्बसहुमाणं च खेँत्तभंगो । णवरि मणुसाउ० सञ्चाणं तिरिक्खोघं । उञ्जो०-जस० सञ्चप० सत्तचोँ० । एवं बादर० । णवरि अवत्त० खेँत्त० । अजस० तिण्णिपदा सञ्चलो० । अवत्त० सत्तचोँ० ।

वेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगछके सूब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और कुछ कम नौ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। श्लीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पञ्चीन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, ओदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर, आदेय और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंके अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चोंदह राजू व कुछ कम नौ बटे चोंदह राजूमाण है। ध्रुवबन्धवाली और स्त्यानगृद्धि आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा तथा सातावेदनीय आदि के चार पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन बन जाता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्य पद एकेंद्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव न होनेसे इसकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौंदह राजूप्रमाण कहा है। यहाँ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ ये हैं—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस्रश्रीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तराय। स्त्रीवेद आदि के चारों पदोंकी अपेक्षा और तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। यहाँ जो अन्य विशेषता है, वह अलगसे जान लेनी चाहिए। सब देवोंका जो अलग-अलग स्पर्शन है, उसे समझ कर तदनुसार उनमें भी यह स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

५२०. एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इनके बादर, बादर प्रत्येक बनस्पतिकायिक और इन सबके अपर्याप्त, सब वनस्पतिकायिक, निगोद और सब सूक्ष्म जीवोंमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इन सबमें मनुष्यायुका भङ्ग समान्य तिर्येश्वोंके समान है। उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम सान बटे चौदह राज्यमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार बादर प्रकृतिका जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राज्यमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ एकेन्द्रिय और पृथिवीकाय आदिके जितने प्रकार बतलाये हैं, उनमें सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन और क्षेत्रमें अन्तर नहीं होनेसे वह क्षेत्रके आमान कहा है। मात्र मनुष्यायुके सब पदोंके बन्धक जीव थोड़े होते हैं। इसलिए यहाँ इसके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सामान्य तिर्यक्रोंके समान कहा है। उद्योत और यशकीतिंके सब पद तथा बादर

१. ता० आ॰प्रत्योः एइंदि० हुंड० आउ० इति पाठः।

५२१. पंचिदि०-तस०२ पंचणा०-छदंस०-अडक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४अगु०४-पञ्ज०-पत्ते०-णिमि०-पंचंत० तिण्णिप० अट्ठ० सव्वलो०। अवत्त०
खेँत०। थीणगि०२-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०थावर०-दूमग०-अणादेँ०-णीचा० तिण्णिप० लो० असं० अट्ठ० सव्वलो०। अवत्त०
अट्ठ०। सादासाद०-चदुणोक०-थिराथिर-सुभासुभ० चत्तारिप० अट्ठ० सव्वलो०।
[मिच्छत्त० तिण्णिपदा० अडुचौँ० सव्वलो०।] अवत्त० अटु-बारह०। अपचक्खाण०४ तिण्णिप० अटु० सव्वलो०। अवत्त० छचौँ०। इत्थि०-पुरिस०-पंचि-पंचसंठा'-ओरा०अंगो०-चदुस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर०-आदेँ० तिण्णिप० अटुबारह०। अवत्त० अटुचौँ०। णिरय-देवाउ० -तिण्णिजा०-आहार०२ सव्वपदा खेँतं।

के तीन पद उपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव होनेसे यह स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। किन्तु बादरका अवक्तव्यपद ऐसे समयमें सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। अयशःकीर्तिके तीन पद उक्त जीवोंके सब अवस्थाओंमें सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण कहा है। पर इसके अवक्तव्यपदका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। हाँ, ये जीव जब ऊपर बादर एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, तब भी इसका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इसका भी स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है।

५२१. पद्धेन्द्रियद्विक ओर त्रसद्विक जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके संमान है। स्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकवेद, तिर्यद्वगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पर्दोके बन्धक जीवों-ने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अग्रुभके चार पर्दोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्र-का स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजु-प्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राज् प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गी-पाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चोदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकायु, देवायु, तीन जाति और आहारकद्विकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके

१. आ० प्रतौ पुरिस० पंच० पंचसंठा० इति पाठः । २. आ० प्रतौ अवस० णिरयदेवाउ इति पाठः ।

दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदाव०-उचा० सर्व्वपदा अहचोँ० । णिरय-देवगदि-दोआणु० तिण्णिप० छच्चोँ० । अवत्त० खेँत्त० । ओरालि० तिण्णिप० अह० सव्वलो० । अवत्त० बारह० । वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिण्णिप० बारहचाँ० । अवत्त० खेँत्त० । उज्जो०-जस सव्वप० अह-तेरह० । वादर० तिण्णिप० अह-तेरह० । अवत्त० खेँत० । सहुम०-अपज्ञ० न्साधा० तिण्णिप० लो० असं० सव्वलो० । अवत्त० खेँत्त० । अजस० तिण्णिप० अहचोँ० सव्वलो० । अवत्त० अह-तेरह० । तित्थ०तिण्णिप० अहचोँ० । अवत्त० खेँत्तं । एवं पंचिदियमंगो पंचवचि०-चक्खु०-सण्णि ति । कायजोगि-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ओधभंगो ।

समान है। दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप और उश्चगोत्रके सब पदाँके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। नरकगति, देवगति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका रपर्शन किया है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिक शरीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवाने कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवांका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उद्योत और यशःकीर्तिके सब पदोंके बन्धक जीवींने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदींके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्र का स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपन्के बन्धक जीवींका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सुद्दम, अपर्याप्त और साधारणके तीन पर्देकि बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रयाण और सब लेकप्रमाण दोत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन दोत्रके समान है। अयशःकीर्ति के तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुपमाण क्षोत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पदींके बन्धक जीवीं ने कुछ कम आठ बटे चौद्ह राजुप्रमाण क्षोत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवां का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार पञ्जेन्द्रियोंके समान पाँचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, चक्षदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्ष-दर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें ओघके समान भक्त है।

विशेषार्थ — पञ्चेन्द्रियद्विक और त्रसद्धिक जीवोंका विहासिदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और मारणान्तिकपदको अपेक्षा स्पर्शन सब छोकप्रमाण है, इसिछए इनमें पाँच ज्ञानावरणादिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। मात्र इन प्रश्लोतयोंका अवक्तव्यपद इन मार्गणाओंमें ओघके समान होनेसे अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। इन मार्गणाओंमें स्पानगृद्धि तीन आदिके तीन पदौंकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहासदिकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वछोकप्रमाण प्राप्त होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है।

१, आ० प्रतौ आदाव उजी० सन्वपदा इति पाठः । २, अ० प्रतौ अद्दतेरह० अवत्त० अद्दतेरह० अपज्य० दृति पाठः ।

यहाँ इनका अवक्तव्यपद विहारादिके समय भी सम्भव है, इसलिए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्य-पदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पद विहारादिके समय और मारणान्तिक समुद्धातके समय सम्भव होनेसे इनके चारों पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण कहा है। अप्रत्याख्या-नावरण चतुष्कके तीन पदोंकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सब छोकप्रमाण स्पर्शन पाँच ज्ञानावरणादिके समान घटित कर छेना चाहिये । तथा जो संयतासंयत आदि मर कर देवोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके प्रथम समयमें इनका अवक्तव्यपद सम्भव है, इसिछए इस अपेक्षासे इनके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। देवोंमें विहारादिके समय और देवों व नारिकयोंके मनुष्यों व तिर्यचोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय स्त्रीवेद आदिके तीन पद सम्भव हैं, इसिछए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। किन्तु मारणान्तिक समुद्धातके समय इनका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। नरकायु आदिके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। शेष दो आयु और मनुष्यगति आदिके सब पदोंका बन्ध देवोंमें विहारादिके समय भी सम्भव होनेसे यह कुछ आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तिर्यक्कों और मनुष्योंके नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय नरकगतिद्विकके और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते समय देवगतिद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इस-छिए इनके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। मात्र ऐसे समयमें इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं होता, इसलिए इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। देवोंमें विहारादिके समय और सव एकेन्द्रियोंमें औदारिकशरीरके तीन पद सम्भव हैं, इसलिए इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण कहा है। मात्र मुख्यतासे जो तिर्यंच और मनुष्य मर कर नारकियों और देवोंमें उत्पन्न होते हैं, उनके प्रथम समयमें इसका अवक्तव्यपद होता है। इसलिए इसके अबक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मनुष्यों और तिर्यंचोंके नारकियों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातके समय भी बैक्रियिकद्विकके तीन पद सम्भव हैं, इसिछिए इनके तीन पर्दोकी अपेक्षा स्पर्धन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। पर ऐसे समय में इनका अवक्तव्यपद सम्भव न होनेसे इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। उद्योत और यश:कोर्तिके सब पदोंका बन्ध विहारादिके समय और नीचे कुछ कम छह राजू व उपर कुछ कम सात राजूप्रमाण स्पर्शनके समय भी सम्भव होनेसे इनके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठे बटे चौद्ह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौद्ह राजुप्रमाण कहा है। इसी प्रकार बाहर प्रकृतिके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन घटित कर छेना चाहिए। मात्र ऐसे समयमें इसका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। सूक्ष्मादिके तीन पर्दोकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन छोकके असंख्यातर्वे भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण होनेसे यह उक्तप्रमाण कहा है। तथा इनके अवक्तत्र्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है, यह स्पष्ट ही है। विहारादिके समय और सब एकेन्द्रियोंमें अयशःकीर्तिके तीन पद सम्भव होनेसे इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण कहा है। तथा इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजू यश:कीर्तिके समान जान लेना चाहिए। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तीन पद विहारादिके समय सम्भव होनेसे इसके तीन पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा ऐसे समयमें इसका अवक्तव्यपद सम्भव नहीं है, इसलिए इस अपेक्षासे स्परान क्षेत्रके समान कहा है। यहाँ ५२२. ओराहि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०- वष्ण०४--अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० तिष्णिप० सव्वलो० । अवत्त० खेँत्त० । णवरि मिच्छत्तस्स अवत्त० सत्तचोँ६० । सादादिदंडओ ओघं । सेसं तिरिक्खोघं । ओरा-लियमि० धुविगाणं तिष्णिप० सव्वलो० । सादादिदंडओ ओघं । मणुसाउ० तिरिक्खोघं । देवगदिपंचगस्स सव्वपदा खेँत्तभंगो । मिच्छ० तिष्णिप० णाणा०भंगो । अवत्त० खेँत्त० ।

५२३. वेउव्वियका० धुविगाणं तिष्णिप० अद्द-तेरह० । थीणगि०३-अणंताणु० ४--णवुंस०-तिरिक्ख०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-दूभ०-अणादेँ०-णीचा० तिष्णिप० अद्द-तेरह० । अवत्त० अद्दचौँ० । सादासाद०-चदुणोक०-उज्जो०-थिरादितिष्णियु० सञ्चप० अद्द-तेरह० । मिच्छ० तिष्णिप० अद्द-तेरह० । अवत्त० अद्द-बारह० । इत्थि०-पुरिस०-

पाँच मनोयोगी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ हैं, उनमें यह स्पर्शन अविकल बन जाता है। इसलिए उनमें पंचेन्द्रियोंके समान स्पर्शन जाननेकी सूचना की है। तथा काययोगी आदि मार्गणाओंमें ओघप्रस्पणा घटित हो। जाती है, इसलिए उनमें ओघके समान जाननेकी सूचना की
है। इसी प्रकार आगे भी मार्गणाओंमें अपने-अपने स्वामित्वको जानकर स्पर्शन घटित कर
लेना चाहिए। जहाँ विशेषता होगी, उसका निर्देश करेंगे।

५२२, औदारिककाययोगी जीवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, मिध्यात्व, सोछह कवाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुळ, उप- धात, निर्माण और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम सात बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भड़ ओघके समान है। शेष भड़ सामान्य तिर्यचोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें धुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भड़ ओघके समान है। मुख्यायुका भड़ सामान्य तिर्यचोंके समान है। देवगतिपंचकके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मिध्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मिध्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अवक्तन्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

५२३. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें घुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पहोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यक्चगति, हुण्डसंस्थान, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, हुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगलके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। मिथ्यालके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। मिथ्यालके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। स्वीवेद, चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। स्वीवेद, चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। स्वीवेद, चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्धन किया है। स्वीवेद,

१. ताः प्रतौ अहतेरह० । अवस० अहतेरह० । अवस० इति पाठः ।

पंचिं०-पंचसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोविहा०-तस-सुभग-दोसर-आर्दे० तिष्णिप० अह-बारह० । अवत्त० अहचोँ० । दोआउ०-मणुस०-मणुसाणु०-आदा०-उचा० सञ्वप० अहचोँ० । एइंदि०-थावर० तिष्णिप० अह-णव० । अवत्त० अहचोँ०। तित्थ० ओर्घ । बेउन्वियमि०-आहार०-आहारमि० खेँत्तभंगो ।

५२४. कम्मइ० धुविगाणं तिण्णिप० सव्वलो० । सेसं ओरालियमि०भंगो । णवरि मिच्छ० अवत्त० ऍकारह० ।

५२५. इत्थिवे॰ पंचणा०-चदुदंसणा०-चदुसंज०-पंचंत० तिण्णिप० छो० असं० अहचों० सव्वलो० । थीणगिद्धि०३-अणंताणु०४-णवुंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-तिरिक्खाणु०-थावर-द्भग-अणादें०-णीचा० तिण्णिप० अहचों० सव्वलो० । अवत्त० अहचों० । णिद्दा-पयला-अहक० ै-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०४-पजत-पत्ते०-णिमि० तिण्णिप० अहचों० सव्वलो० । अवत्त० खेत्त० । [सादासाद०-चदुणोक०-थिरा-

पुरुषवेद, पंचिन्द्रियजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो विहायोगित, त्रस, सुभग, दो स्वर और आदेयके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चोदह राजू और कुछ कम बारह बटे चोदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चोदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगति, म

५२४. कार्मणकाययोगी जीवोंमें धुववन्धवाली प्रकृतियोंके तीन परोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। रोष भङ्ग औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि मिध्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—नीचे पाँच राजू और उत्पर छह राजू इस प्रकार मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजू स्पर्शन जानना चाहिए।

प्रथ. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदाँके बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौद्द राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, नपुंसकवेद, तिर्यचगित, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्द राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्द राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। निद्रा, प्रचला, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसरापीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्युचतुष्क, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने बुछ कम आठ बटे चौद्द राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, स्थिर, अस्थिर,

Jain Education International

२. ता॰ प्रतौ णिद्दा पयला य॰ (१) अडक॰, आ॰प्रतौ णिद्दा पयला य अडक॰ इति पाठः ।

थिर-सुमासुम० चत्तारिपदा० अहचों० सव्वलो० | मिच्छ० तिष्णिप० अहचों० सव्वलो० | अवत्त० अह-णव० | दोआउ०-इत्थि०-पुरिस०-मणुस०-पंचसंठा०-ओरालि०-अंगो०-छस्संघ०-मणुसाणु-आदाव-पसत्थ०-सुभग-सुस्सर-आदें०-उचा० सव्वपदा अह-चों० | दोआउ०-तिष्णिजा०-आहार०२-तित्थ० सव्वप० खेंत्त० | दोगदि-दोआणु० तिष्णिप० छचों० | अवत्त० खेंत्त० | पंचि०-अप्पसत्थ०-तस-द्सर० तिष्णिप० अह-बारह० | अवत्त० अहचोंह० | ओरालि० तिष्णिप० अह० सव्वलो० | अवत्त० दिवहु-चों० | विउव्वि०-वेउव्वि०अंगो० तिष्णिप० बारहचों० | अवत्त० खेंत्त० | उज्जो०-जस० सव्वप० अह-णव० | बादर० तिष्णिप० अह-तेरह० | अवत्त० खेंत्त० | सुहुम-अपज०-साधार० तिष्णिप० लो० असंखें० सव्वलो० | अवत्त० खेंत्त० | [अजस० तिष्णिप० अहचों० सव्वलो० | अवत्त० खेंत्त० | आत्रस० तिष्णिप० अहचों० सव्वलो० | अवत्त० खेंत० | आत्रस० तिष्णिप० अहचों० सव्वलो० | अवत्त० खेंत० | विरस्ध इत्थिमंगो | णविर अपच क्खाण०४-ओरालि० अवत्त० लो० असं० छचों० | तित्थ० ओघं |

शुभ और अशुभके चारों पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और सब ळोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्यके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौद्द राजू और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। हो आयु, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यगति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्त विहायगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उचगोत्रके सब पट्निके बन्धक जीबोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, तीन जाति, आहारकद्विक और तीर्थेक्टरके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दो गति और दो आनुपूर्वीके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है! अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। एँचेन्द्रियजाति, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस और दुःस्वरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तर्वपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाणक्षेत्रका स्पर्शन किया है। औदारिकशरीरके तीन पहोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया 🖢 । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रसाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके तीन परोंके बन्धक जीयोंने कुछ कम बारह बट चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्रव्यपदके बन्धक जीवींका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उद्योति और यशःकीतिके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू अहीर कुछ कम सी बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। बादरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सूक्स, अपर्याप्त और साधा रणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अयशःकीर्तिके तीन पहोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका सर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंने कुछ कमें आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। षुरुषनेदी जीनोंमें स्नीनेदी जीनोंके समान भक्न है। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने लोकके असंस्थातवें भागप्रमाण और इन्छ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन

५२६. णवुंस० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज० -पंचंत० तिष्णिप० सन्वलो०। पंचदंस०-वारसक०-भय-दु०-तेजा०-क-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० तिष्णिप० सन्वलो०। अवत्त०। अवत्त० सेंत्र०। सादादिदंडओ ओघं। मिच्छ० तिष्णिप० सन्वलो०। अवत्त० बेंत्र्रांच०। दोआउ०-आहार०२-तित्थ० खेंत्र्रांगो० मणुसाउ०-वेउव्वियछ० तिरिक्लोघं। ओरालि० तिष्णिप० सन्वलो०। अवत्त० छच्चो०। अवगद० सन्वप्रा० भुज०-अप्प०-अवत्त० खेंत्र्रांगो।

किया है। तथा तीर्धद्भर प्रकृतिके बन्धक जीवोंका भङ्ग ओघके समान है।

५२६. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच झानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पाँच दर्शनावरण, बारह क्याय, भय, जुगुप्सा, तैजसरारीर, कार्मणरारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात और निर्माणके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तल्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका मझ ओघके समान है। मिथ्यात्वके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तल्यपदके बन्धक जीवोंने कुल कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, आहारकद्विक और तीर्थङ्करके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। मनुष्यायु और वैक्रियिक छहके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। औदारिकरारीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तल्यपदके बन्धक जीवोंने कुल कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अपगतवेदी जीवोंमं सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तल्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है। अपगतवेदी जीवोंमं सब प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवक्तल्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ-नीचे छठे नरक तक के नारकी मनुष्य व तिर्थक्कों में मारणान्तिक समुद्धातके समय तथा तिर्युद्ध और मनुष्य उपर बादर एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्रुघातके समय र्याद मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्ध करें,तो सव मिलाकर कुछ कम बारह वटे चौदह राजुप्रमाण इस पदकी अपेक्षा स्पर्शन प्राप्त होता है यह देखकर यहाँ मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदके बन्धके जीवो का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। पहले औदारिककाययोगमें और वैकियिककाययोगमें कुछ कम सात बटे चौदह राजप्रमाण यह स्पर्शन कह आये हैं सो वहाँ भी ऊपर बादर एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समु-द्वात करा केर है आना चाहिए । पहले कार्मणकाययोगमें यह स्पर्शन कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजप्रमाण कह आये हैं। उत्पर सात राजू तो स्पष्ट हैं। नीचे जो पाँच राजू कहे हैं सो उसका अभिप्राय है कि जो सातवें नरकका नारकी सम्यक्त्व या सासादनसे मिथ्यात्वमें आता है वह मरकर उसी समय कार्मणकाययोगी नहीं हो सकता। यह पात्रता छठे नरक तक ही सम्भव है। आशय यह है कि कार्मणकाययोगके प्राप्त होनेके पूर्व समयमें सम्यग्दृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टि हो और कार्मणकाययोगमें मिध्यादृष्टि हो, यह पात्रता छुठे नरक तक से मरनेवाले नारकी के ही हो सकती है। यही कारण है कि नीचे यह स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राज्यमाण कहा है। यह तो स्पष्ट है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मर कर नरकके सिवा तीन गतिम उत्पन्न होता है और इस गतियों में उत्पन्न होने पर क्रमसे दो में औदारिकमिश्रकाययोग और देवों में बैकि-विकसिश्रकाययोग होता है। तथा इन योगों के रहते हुए ही मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त होने पर प्रथम समयमें मिश्यात्वका अवक्तव्यवन्ध भी होता है। यही कारण है कि इन दोनों योगों में

१. ता॰ प्रती चदुसं (दंस॰) चदुसंज॰ इति पाठः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः तिण्णिप॰ अइतेरह॰ अवत्त॰ इति पाठः ।

५२७. मदि०-सुद० धुविमाणं भुज०-अप्प०-अविह० सव्वलो०। सेसं ओघं। णविर देवगदि—देवाणु० तिण्णिप० पंचचों०। अवत्त० खेँत्त०। ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो०। अवत्त० ऍकारह०। बेउ०-बेउ०अंगो० तिण्णिप० ऍकारह०। अवत्त० खेँत्त०। विभंगे धुविगाणं तिण्णिप० अह० सव्वलो०। सेसं पंचिदियभंगो। णविर बेउ०छ० मदि०भंगो। ओरालि० अवत्त० खेँत्त०।

५२८. आमिणि०-सुद०-ओधि० पंचणा०-छदंस०-अद्दक०-पुरिस०-भय-दु०-मणुस०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वजरि०-

मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। आवश्यक समझकर यहाँ यह प्रासंगिक स्पष्टीकरण किया है।

५२७. मत्यक्षानी और श्रुताक्षानी जीवों में ध्रुवबन्धवाठी प्रकृतियों के भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवों ने सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भक्त ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि देवगति और देवगत्यानुपूर्विके तीन पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिकशरीर के तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों ने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। विक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीन पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों के कम ग्यारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। विभङ्गज्ञानो जीवों में ध्रुवबन्धवाठी प्रकृतियों के तीन पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और सब छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भङ्ग पद्मित्रयों के समान है। इतनी विशेषता है कि वैक्रियिक छहका भङ्ग मत्यक्षानी जीवों के समान है। तथा औदारिकशरीरके अवक्तव्यका भङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ — जो तिर्यवच और मनुष्य देवों में मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके देवगितिहिकका मुजगार, अल्पतर और अवस्थितबन्ध सम्भव है। किन्तु यह सहस्रार करण तक मारणान्तिक समुद्धात करनेवालेके ही होता है, आगेके देवों में यह समुद्धात करनेवालेके नहीं; क्यों कि आगेके देवों में ऐसे मनुष्य और तिर्यवच ही मारणान्तिक समुद्धात करते हैं जो विशुद्ध परिणामवाले होते हैं। अतः इनके इन पदों का स्पर्धान कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुष्माण कहा है। तथा देवों में मारणान्तिक समुद्धातके समय देवगितिहिकका नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके अवक्तव्य पदके वत्धक जीवों का स्पर्धान क्षेत्रके समान कहा है। सभी एकेन्द्रिय जीव औदारिकशरीरका नियमसे बन्ध करते हैं। अतः इसके तीन पदों के बन्धक जीवों का स्पर्धान सर्वलेकियमाण कहा है। जो तिर्यद्ध और मनुष्य सासादनमें आकर मरते हैं और विमहगतिमें औदारिकशरीरका अवक्तव्यबन्ध करते हैं। अतः इसके तीन पदों के बन्धक कम ग्यारह बटे चौदह राजुपमाण उपलब्ध होनेसे वह उक्तप्रमाण कहा है। देवगितिहिकके समान वैकियिकशरीरिहिकको सब पदों की अपेक्षा स्पर्धान घटित कर लेना चाहिए। मात्र इसमें नारिकयों में मारणान्तिक समुद्धात करनेवालों का तीन पदों की अपेक्षा कुछ कम छह राजु स्पर्धन और मिला लेना चाहिए। इसी कारणसे यहाँ इनके तीन पदों की अपेक्षा सर्धान कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। होष कथन स्पष्ट ही है।

५२८. आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीयों में पाँच ज्ञानावरण, छह वर्शनावरण, आठ कवाय, पुरुषवेद, भय, जुरुप्सा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक: शारीर, तैजसरारीर, कार्मणशारीर, समचतुरसांस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वस्त्रपंभनाराच

षणा०४-मणुसाणु०-अगु०४-पसत्य०-तस० ४-सुमग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि०तित्थ०-उचा०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अबिटि० अहचोँ०। अवत्त० खेँत्त०। णविरि
मणुसगिदिपंचग० अवत्त० छचोँ०। सादासाद०-चदुणोक०-मणुसाउ०-थिरादितिण्णियु० चत्तारिपदा० अहचोँ०। अपचक्खाण०४ तिण्णिप० अहचोँ०। अवत्त०
छचोँ६०। देवाउ०-आहार०२ ओघं। देवगिद०४ तिण्णिप० छच्चोँ०। अवत्त०
खेँत्त०। एवं ओधिदं०-सम्मादि०-बेदग०। मणपज्ञ०-संजद० याव सुहुमसं० खेँतभंगो।

५२९. संजदासंज० धुविगाणं सव्वप० छच्चो० । देवाउ०-तित्थ० सव्वप०

संहतन, वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आरेंग, निर्माण, तीर्थं हुर, उश्चगीत्र और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यगति-पञ्चकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोक्षाय, मनुष्यायु और स्थिर आदि तीन युगलके चारों पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों ने कुछ कम आठ वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों ने कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और आहारकदिक्ता भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक चीवों के समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यन्दष्टि और वेदकसम्यन्दिष्ठ जीवों के जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी और संयत जीवों से लेकर सूक्षम-साम्परायसंयत तकके जीवों का सङ्ग क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ—संयत मनुष्यों के तथा संयतासंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च और मनुष्यों के मर कर देवों में उत्पन्न होने पर मनुष्यगितपञ्चकका अवक्तव्यवन्ध होता है। यतः इनका स्पर्शन कुछ कम छह वट चौदह राजूप्रमाण उपलब्ध होता है। अतः यहाँ मनुष्यगित-पञ्चकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों का स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। असंयतसम्यग्दृष्ट्र मनुष्य मर कर प्रथम नरकमें भी जाते हैं और ऐसे जीवों के भी प्रथम समयमें उक्त प्रकृतियों का अवक्तव्य वन्ध होता है, पर इससे उक्त स्पर्शनमें कोई अन्तर नहीं आताः इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये। संयत और संयतासंयत जीवों के मर कर देव होने पर अपत्याख्यानावरण चतुष्कका अवक्तव्यवन्ध होता है और इनका स्पर्शन भी कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण है। अतः इनके अवक्तव्यवन्धका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। यद्यपि संयत मनुष्यों के ओर संयतासंयत तिर्यञ्च व मनुष्यों के असंयत सम्यग्दृष्टि होने पर भी अप्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्य वन्ध होता है, पर यह स्पर्शन पूर्वोक्त स्पर्शनमें सिम्मिलित है; इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५२९. संयतासंयत जीवों में भ्रुवयन्धवाली प्रकृतियों के सब पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु और तीर्थङ्करके सब

१. ता॰ प्रती चत्तारिस (पदा)॰ अहचो॰, आ॰ प्रती चत्तारिस॰ अहचो॰ इति पाठः ।

सेंचर्मणो । सेसाणं चत्तारिप० छचो० । असंजदेसु धुवियाणं तिष्णिप० सञ्वलो० । सेसं ओघं ।

५३०. किण्ण-णील-काऊणं धुवियाणं तिण्णिप० सव्वलो० । [मिन्छत्त० तिण्णि-पदा० सव्वलो० ।] अवत्त० पं०-चत्तारि-वेचोँ० । दोआउ०-देवगदिदुगं सव्वपदा स्त्रेत्त० । मणुसाउ० तिरिक्लोघं । थीणिग०३-अणंताणु०४ तिण्णिप० सव्वलो० । अवत्त० सेंत्त० । सादादिदंडओ ओघं । णिरय०-वेउव्वि०-'वेउव्वि०अंगो०-णिरयाणु० तिण्णिप० छचत्तारि-वेचोँ० । अवत्त० सेंत्त० । ओरालि० तिण्णिप० सव्वलो० । अवत्त० छचतारि-वेचोँ० । तित्थ० तिण्णिप० सेंत० । काऊए तित्थ० णिरयभंगो ।

पदों के बन्धक जीवों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियों के चार पदों के बन्धक जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। असंयतों में ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब छोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष भक्ष ओधके समान है।

५२०. कृष्ण, नील और कापोत लेरयामें प्रुववन्धवाली प्रकृतियों के तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मिथ्यात्वके तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवों ने कुछ कम पाँच वटे चौदह राजू और कुछ कम दो वटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु और देवगतिद्विक से सब पदों का भन्न क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भन्न सामान्य तिर्यवन्धों समान है। स्त्यानगृद्धि तीन और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तीन पदों के बन्धक जीवों ने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भन्न ओघके समान है। नरकगति, वैकियिकशरीर, बैक्टियक आङ्गोपाङ्ग और नरकगत्यानुपूर्वीके तीन पदों के बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजू, माण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने एवं के बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजू, कुछ कम चार बटे चौदह राजू और कुछ कम दो बटे चौदह राजूभमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तीर्थङ्करप्रकृतिके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। कापोतलेश्वयों तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है।

विशेषार्थ-सातवें नरकका नारकी नियमसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है। वहाँ से मरकर अन्य गतिमें उत्पन्न होते समय मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं वन सकता। यही कारण है कि यहाँ कृष्णलेश्यामें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम पाँच बटे चौदह राज्यसमाण कहा है। नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम चार बटे चौदह राज्य और कुछ कम दो बटे चौदह राज्य कमसे पाँचवें और तीसरे नरकसे मर कर और तियंख्रों व मनुष्योंमें उत्पन्न होने पर मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्ध करनेवालोंकी अपेक्षा कहा है। इन लेश्याओंमें मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका इससे अधिक स्पर्शन अन्य प्रकार सम्भव नहीं है। इसी प्रकार औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदका स्पर्शन उक्त लेश्याओंमें ले आना चाहिये। मात्र यह स्पर्शन तियंख्रों और मनुष्योंके नरकमें उत्पन्न करा कर प्रथम समयमें प्राप्त

१. आ॰ प्रतौ ओघं। वेडव्वि॰ इति पाठः। २. आ॰ प्रतौ अवत्त॰ खेत्त॰ ओरालि॰ तिण्णिप॰ सब्बलो॰। अवत्त॰ छचतारिबेचोदः॰। अवत॰ खेतः। ओरालि॰ इति पाठः।

५३१. तेउ० धुवियाणं तिष्णिप० अह-णव०। श्रीणिग०३-अणंताणु०४णवंस०-तिरिक्ख०-एइंदि०-दुंड०-तिरिक्खाणु०-श्वावर-दूभग-अणादे०-णीचा०
तिष्णिप० अह-णव०। अवत्त० अहची०। सादासाद०-मिच्छ०-चदुणोक०-उज्जो०थिरादितिष्णियु० चत्तारिप० अह-णव०। अपचक्खाण०४-ओराहि० तिष्णिप०
अह-णव०। अवत्त० दिवहुचो०। इत्थि०-पुरिस०-दोआउ०-मणुस०-पंचि०-पंचसंठा०-ओरा०अंगो०-छस्संघ०--मणुसाणु०-आदा०-दोविहा०-तस०-सुभग-दोसरआदे०-उचा० चत्तारिप० अहचो०। देवाउ०-आहार०२-तित्थ० ओघं। देवगदि०
४ तिष्णिप० दिवहुचो०। अवत्त० खेत्त०। एवं पम्मार वि। णवरि अपचक्खाण०
४-ओरा०-ओरा०अंगो० अवत्त० पंचचो०। देवगदि०४ तिष्णिप० पंचचो०।

करना चाहिये । तथा जो तिर्येख्न या मनुष्य मर कर सातवें नरकमें गमन करता है उसके भी यह एपईन सम्भव है, अतः कृष्ण लेक्यामें यह कुछ कम छह करे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यद्यपि सामान्य नारिकयोंमें तीर्थेङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है फिर भी यहाँ कृष्ण और नील लेक्यामें क्षेत्रके समान आर कापीत लेक्यामें नारिकयोंके समान कहने का कारण यह है कि कृष्ण और नीललेक्यामें नारिकयोंके तीर्थेङ्कर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। इन लेक्याओंमें केवल मनुष्योंके ही तीर्थेङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, इसलिए इन लेक्याओंमें तीर्थेङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका जो क्षेत्र कहा है उसी प्रकार यहाँ स्पर्शन कहा है। तथा कापीत लेक्यामें नारिकयोंके भी तीर्थेङ्कर प्रकृतिका बन्ध होता है, इसलिए यह नारिकयोंके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

५३१. पीतलेश्यामें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्यानगृद्धि तीन, अनन्तानुबन्धी चार, नपुंसकचेद, तिर्यक्कगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, तिर्येक्टगत्यानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्रके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रेमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, चार नोकषाय, उद्योत और स्थिर आदि तीन युगछके चार परोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अप्रत्याख्यानावरण चार और ओदारिकशरीरके तीन पदंकि बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र-का स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, मनुष्यगति, पक्क्रीन्द्रयजाति, पाँच संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो खर, आदेय और उचगोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायु, आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार पदालेइयामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अप्रत्याख्यानावरण चार, औदारिकशरीर और भौदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह

अवच ० खेच ० । सेसाणं सव्वप ० अहची ० ।

५३२. सुकाए पंचणा०-छदंस०-अटक०-भय-दु०-देवग०--पंचि०-तिण्जि-सरीर-वेउ ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४--तस० ४-णिमि०--तित्थ०-पंचंत०

राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बर्ट चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विद्रोषार्थ-जो पीतलेश्यावाले जीव अपर देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके उस समय स्यानगृद्धि तीन आदिका अवक्तव्यवन्ध नहीं होता, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र सातावेदनीय, असातावेदनीय और मिथ्यात्व आदिका अवक्तव्यवन्य एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्रुघातके समय भी होता है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यवन्धका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम नौ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यहाँ एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धातं करते समय अनन्तानुबन्धीका अवक्तव्यवन्ध नहीं कराया है और मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्ध कराया है। इससे स्पष्ट है कि सासादन गुणस्थानवाला जीव सासादनको प्राप्त करते समय प्रारम्भिक कालमें एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करता और इसलिए वह भर कर एकेन्द्रियोंमें जन्म भी नहीं लेता। किन्तु ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि होकर प्रथम समयमें ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्वात कर सकता है-यह मिथ्यात्वके अवक्तव्यवन्थके स्पर्शनसे ही स्पष्ट है। पीतलेश्याके साथ तिर्यक्त और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करें तो कुछ स्पर्शन कुछ कम बटे चौदह राजुप्रमाण होता है। इसीसे अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका स्पर्शन कुछ कम डेढ़ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। यहाँ संयत मनुष्योंकी और संयतासंयत तिर्यक्री और मनुष्योंको मारणान्तिक समुद्धात करनेके प्रथम समयमें असंयत कराके यह स्पर्शन लाना चाहिए । किन्तु ऐसे तिर्यक्रों और मनुष्योंके मारणान्तिक समुद्धातके समय देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यबन्ध नहीं होता, इसिछए इनके अवक्तव्यबन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है, क्योंकि जो देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते हैं, उनके पहलेसे ही इन प्रकृतियोंका बन्ध होता रहता है। पदालेक्यामें कुछ कम नौ बटे चौदह राज्यप्रमाण स्पर्शन नहीं होता, क्योंकि इस लेश्याबाले जीव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्धात नहीं करते, इसलिए कुछ प्रकृतियोंको छोड़-कर इस छेरयामें रोप सब प्रकृतियोंके सम्भव पर्होंके बन्धकी जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। जिन प्रकृतियोंके सम्बन्धमें विशेषता है, उसका खुलासा इस-प्रकार है-अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध नहीं करनेवाले तिर्यक्र और मनुष्य देवोंमें मारणान्तिक समुद्र्यात करनेके प्रथम समयमें असंयत होकर इनका बन्ध करें, यह सम्भव है और ऐसे जीवांका स्पर्शन कुछ कम पाँच बढे चौदह राजुप्रमाण है, अतः यहाँ इनके अवक्तन्य पदके बन्धक जीवों का स्पर्शन एक प्रमाण कहा है। तिर्यक्क और मनुष्य देवों में जन्म लेनेके प्रथम समयमें औदारिकद्विकका नियमसे अवक्तव्यवन्य करते हैं और पद्मलेक्यामें ऐसे जीवों का भी स्पर्शन कुछ कम पाँच राजुप्रमाण होता है, अतः यह भी उक्त प्रमाण कहा है। देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यबन्धके लिए जो युक्ति पीत लेक्यामें दी है वही यहाँ भी जान लेनी चाहिए। तदनुसार इनके अवक्तव्यवन्धका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

५३२. ग्रुङ्केरयामें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, देव-गति, पञ्चेन्द्रियजाति, तीन शरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुखपु-चतुष्क, त्रसम्बतुष्क, निर्माण, तीर्थहुर और पाँच अन्तरायके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ तिष्णियः छत्रो० । अवत्तः सैंत्तभंगो । देवाउ०-आहार०२ सञ्वपदा ओघं । सेसाणं सञ्चपदा छत्रो० ।

५३३. अब्भवसि० मदि०भंगो । णवरि मिच्छत्तं अवत्तव्वं णत्थि ।

५३४. खइग०-उवसम० ओधि०भंगो । णवरि अपचक्खाण०४ अवत्त० खेँत-भंगो । देवगदि०४-आहार०२ सञ्वप० खेँत्त० । मणुसगदिपंचगस्स य अवत्त० खेँत-भंगो । उवसमे तित्थकरं सञ्वपदा खेँत्तं ।

कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। देवायु और आहारकद्विकके सब पदांके बन्धक जीवोंका स्पर्शन ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियों में से चार प्रत्याख्यानावरणको व देवगतिचतुष्कको छोड़कर शेष सब प्रकृतियों का अवक्तव्यपद उपशमश्रीणमें प्राप्त होता है, प्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यपद संयत मनुष्यके संयतासंयत होने पर प्राप्त होता है और देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद संश्री तिर्थेक्च और मनुष्य जीवों के प्राप्त होता है, अतः इस पद्की अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। यद्यपि संश्री जीवों का स्पर्शन अधिक है, परन्तु इनके देवगतिचतुष्कका अवक्तव्यपद स्वस्थानमें ही बनता है और इस अपेक्षासे इनका स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। अतः यह भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

५३३. अभव्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद उन जीवोंके होता है जो अपरके गुणस्थानोंसे उतरकर मिथ्यात्वमें आते हैं। किन्तु अभव्य सदा मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अतः इनके मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका निषेध किया है।

५३४. श्वायिकसम्यक्त्व और उपशमसम्यक्त्वमें अविधिज्ञानी जीवोंके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि इनमें अप्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका भक्त क्षेत्रके समान है। देवगतिचतुष्क और आहारकदिकके सब पदोंका भक्त क्षेत्रके समान है। मनुष्यगतिपद्धकके अवक्तव्यपदका भक्त क्षेत्र समान है। तथा उपशमसम्यक्वमें तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदोंका भक्त क्षेत्रके समान है।

विशेषार्थ— उक्त दोनों सम्यक्त्वोंमें अप्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यपद उन्हीं जीवों के होता है जो उपरके गुणस्थानवाले मनुष्य अविरतसम्यन्दृष्टि होते हैं। अतः इनके अवक्तव्यपदका मङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। क्षायिकसम्यन्दृष्टि मनुष्यों या तिर्यक्क्षोंके देव होने पर प्रथम समयमें मनुष्यगति पञ्चकका अवक्तव्यपद होता है और उपरामश्रीणसे मरकर देव होने पर उपरामसम्यन्दृष्टि देवोंके प्रथम समयमें मनुष्यगतिपञ्चकका अवक्तव्यपद होता है। यतः इन जीवोंका रण्यान लोकके असंख्यातवें मागप्रमाण है। अतः इन दोनों सम्यक्त्वोंमें मनुष्यगति पञ्चकके अवक्तव्यपदका भङ्ग क्षेत्रके समान कहा है। तीर्यङ्गर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले उपरामसम्यन्दृष्टि जीव संख्यातसे अधिक नहीं होते। अतः इसके सब पदींका भङ्ग भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

१. आ० प्रतौ अपध्यनवाण०४ खेत्तमंगो इति पाठः।

५३५. सासणे धुविगाणं तिष्णिप० अह-बारह० । दोआउ०-मणुसग०-मणुसाणु० उचा० सव्वप० अहचो० । देवाउ० ओघं । देवगदि०४ तिष्णिप० पंचचो० । अवत्त० खेँत्त० । सेसं सव्वपदा अह-बारह० । णवरि इत्थि०-पुरिस०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-दोविहा०-सुभग-द्भ० दोसर-आदे०-आणादे०-णीचा० अवत्त० अहचो० । ओरा०-ओरालि०अंगो० अवत्त० पंचचो० ।

५३६. सम्मामि० धुविगाणं तिण्णिप० अद्व० । देवगदि०४ तिण्णिप० सैंत० । सेसाणं सञ्चपदा अद्व० ।

५३५. सासादनसम्यक्त्यमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो आयु, मनुष्यगित, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवायुका भक्न ओघके समान है। देवगित-चतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंना स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि क्षीवेद, पुरुषवेद, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो विहायोगित, सुभग, दुर्भग, दो स्वर, आदेय, अनादेय और नीचगोत्रके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा औदारिकश्रिर और औदारिक आक्नोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा औदारिकश्रिर और औदारिक आक्नोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ — आयुका बन्ध मारणान्तिक समुद्धातके समय नहीं होता। तथा सासादनसम्यग्दृष्ट जीव मर कर नरकमें नहीं जाता और सासादन सम्यग्दृष्टियोंके एकेन्द्रियोंमें मारणानितक समुद्धात करते समय मनुध्यगतिद्विक व उच्चगोत्रका बन्ध नहीं होता, इसिछए यहाँ इन
सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा
है। मनुष्यों और तिर्यक्कोंके देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय देवगतिचतुष्कके तीन
पदोंका ही बन्ध होता है। उसमें भी सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यक्क सहस्रार कल्प तक ही मर
कर उत्पन्न होते हैं। अतः यहाँ देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम
पाँच बटे चौदह राजूप्रमाण और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।
यद्यपि सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्य सहस्रार कल्पसे आगे भी उत्पन्न होते हैं पर इनका स्पर्शन
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, अतः तीन पदोंकी अपेक्षा कहे गये उक्त स्पर्शनमें इससे
कोई अन्तर नहीं पड़ता। तथा स्त्रीवेद आदिका यहाँ मारणान्तिक समुद्धातके समय या उपपाद
के समय अवक्तव्यवन्ध नहीं होता, अतः इनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम
आठ वटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

५३६. सम्यग्मिथ्याद्यष्टि जीवोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूपमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विश्वेषार्थ--सम्याग्मिथ्याद्य जीव न तो मरते ही हैं और न ही इनमें मारणान्तिक

५३७. मिच्छा० मदि०भंगो। णवरि मिच्छत्तं अवत्तव्वं णत्थि। असण्णीसु घुवि-गाणं तिण्णप० सव्यलो०। सादादिदंडओ ओघं। दोआउ०-वेउ०छ०-ओरा०अंगो सेंत्त०। मणुसाउ० तिस्विखोयं। अणाहार० कम्महगभंगो।

एवं फोसणं समत्तं

कालाणुगमो ।

५३८. कालाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघेण पंचणा०-छदंस०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भुज०-अप्प०-अविह०वंघगा केवचिरं कालादो होदि ? सव्वद्धा। अवत्त० केव० ? ज० ए०, उ० संस्थें अ सम०। थीणगि०३-मिच्छ०-अहक०-ओरा० तिण्णिप० सव्वद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० आविल० असंखें०। दोवेदणीय-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-

समुद्धात होता है, इसिंछए इनमें देवगतिचतुष्कको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंके अपने-अपने पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजूम्माण कहा है। देवगतिचतुष्कका बन्ध तियंद्ध और मनुष्य करते हैं और यहाँ इनका स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतः देवगतिचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

५२७. मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्यका अवक्तव्यपद नहीं है। असंज्ञियोंमें ध्रुवयन्थवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंने सय छोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सातावेदनीय आदि दण्डकका भक्क ओघके समान है। दो आयु, वैक्रियिकषट्क और औदारिक आक्नोपाङ्गका भक्क क्षेत्रके समान है। मनुष्यायुका भक्क सामान्य तिर्यक्रोंके समान है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगी जीवोंके समान मक्क है।

विशेषार्थ—असंक्षियोंमें पश्चेन्द्रिय असंक्षी जीव ही नरकायु, देवायु और वैक्षियिकषट्क-का बन्ध करते हैं और नारिकयोंमें व देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करते समय भी इनका स्पर्शन छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसिलए तो इन आठ प्रकृतियोंके सब पदोंका भक्ष क्षेत्रके समान कहा है और औदारिक आङ्गोपाङ्गका सब पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र ही सब छोक है, इसिलए स्पर्शन तो उतना होगा ही। यह देखकर इसके सब पदोंका भक्ष भी क्षेत्रके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार स्पर्शन समाप्त हुआ ।

कालानुगम।

५३८. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कथाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा काल है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? तथन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । स्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कथाय और औदारिकशारीरके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका सर्वदा काल है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । यो वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यक्चायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आक्रो-

ह्यसंठा०-ओरा०अंगो०-ह्यसंघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउओ०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० चत्तारिपदा सन्बद्धा। तिष्णिआउ० भ्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० पिट्दो० असंखेँ०। अविद्व०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवित्ति० असंखेँ०। वेउ०-छ० भ्रुज०-अप्प० सन्बद्धा। अविद्व०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवित्ति० असं। एवं तित्थ०। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० संखेँजस०। आहार०२ भुज०-अप्प० सन्बद्धा। अविद्व०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेँजस०। एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरा०-णवुंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति।

पाझ, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादिदस युगल और दो गोत्रके चार पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तीन आयुओंके भुजगार
और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके
असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक
समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिक छहके भुजगार और
अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका
जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी
प्रकार तीर्थेद्धर प्रकृतिकी अपेक्षा काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहा रकदिकके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके
बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार
ओघके समान काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, मन्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ-प्रथम दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके प्रारम्भके तीन परोंका बन्ध एकेन्द्रियादि सब जीय करते हैं, इसलिए इनका सब काल कहा है। मात्र इनका अवक्तव्यपद् उपरामश्रेणिसे उतरते समय होता है या उपशमश्रेणिमें मरण कर देव होने पर प्रथम समयमें होता है, इसिंडए इनके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यदि एक समयमें नाना जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण करके एक साथ अवक्तव्यपदके पात्र होते हैं तो एक समय होता है और क्रमसे संख्यात समय तक उपशमश्रीण पर आरोहण कर उसी कमसे अवक्तव्यवन्धके पात्र होते हैं तो संख्यात समय होता है। मात्र इन प्रकृतियोंमें प्रत्या-ख्यानावरण चार भी हैं सो इनके अवक्तव्यवन्धका काल विरत जीवोंको नीचे लाकर प्राप्त करना चाहिए। आगे जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका सर्वदा काल कहा है, उसका कहीं तो पूर्वोक्त कारण है और कहीं उनका किसी न किसीके निरन्तर बन्ध होना कारण है। इसलिए यह उस प्रकृति-के बन्ध स्वामीका विचार कर ले आना चाहिए। जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका काल न्यूनाधिक है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है--पहले स्यानगृद्धि आदिके अवक्तव्यपदका काल एक जीव-की अपेत्ता एक समय बतला आये हैं। यदि नाना जीव इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद करें तो कमसे कम एक समय तक करते हैं, क्योंकि सासादनसे छेकर संयतासंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थातको राशि पल्यके असंख्यावें भागप्रमाण है। उसमेंसे कुछ जीव यदि मिध्यात्व आदि गुणस्थानोंमें आते हैं तो एक समयमें आकर अन्तर भी पड़ सकता है, इसलिए तो इन प्रकृतियों-के अवक्तव्यपदका जघन्य काछ एक समय कहा है और यदि निरन्तर मिथ्यात्व आदि गुण-स्थानको प्राप्त होते रहें तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे । इसलिए इन प्रकृतियोंके अमक्तव्य पद्का उत्कृष्ट काळ आविछके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रत्येख

५३९. तिरिक्खेस धुनिगाणं तिष्णिप० सन्बद्धा । सेसं ओघं । एवं औरालि०मि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-तिष्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असष्णि-अणाहारए त्ति। णवरि ओरालियमि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० सुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो० । अबद्धि० ज० ए०, उ० संखेंजस० ।

५४०. अवगद०-सुहुमसंप० सञ्चपग० भ्रुज०-अप्प० ज० ए०, उ० अंतो०।

श्रायुका बन्ध काल अन्तर्गुहूर्त है और इसमें भुजगार आदि तीन पदोंका जधन्य काल एक समय है। साथ ही नारकी, मनुष्य और देवोंका प्रमाण असंख्यात है। यह सब देखकर नरकायु, मनुष्यायु और देवायुके दो पदोंका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके श्रमंख्यातवें भागप्रमाण तथा इनके अवस्थित और अवक्तव्यपदका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तीर्थक्कर प्रकृतिके अन्य तीन पदोंका काल तो इसी प्रकार है, पर अवक्तव्यपदके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जो तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले मनुष्य नरकमें उत्पन्न होते हैं या उपशामश्रीण पर चढ़ते हैं उन्हींके तीर्थ-क्कर प्रकृतिका अवक्तव्य वन्ध होता है। किन्तु ये कुल संख्यातसे अधिक नहीं हो। सकते, अतः तीर्थक्कर प्रकृतिके अवक्तव्य वन्ध होता है। किन्तु ये कुल संख्यात समय कहा है। यही युक्ति आहारक-दिकके अवस्थित और अवक्तव्यपदके कालके विषयमें जाननी चाहिए। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्रकृतणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओधके समान कहा है।

५३९. तिर्यक्कोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। होष मङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार औदारिकिमश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेक्स्यावाले, अमन्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकिमश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपञ्चकके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित और अवक्तत्यपदके बन्धक जीवोंका

जपन्य काल एक समय है ओर उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओं में उपरामश्रेणि नहीं होती, इसलिए इनमें श्रुवबन्धवाली प्रकृतियों के सब पदों के बन्धक जीवों का काल सर्वदा कहा है। जो सम्यन्दृष्टि तिर्यक्च और मनुष्य औदारिकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक होते हैं उन्हों के देवगित-पद्मकका इन मार्गणाओं में बन्ध होता है, इसलिये इनमें भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवों का जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। एक साथ नाना जीव इन मार्गणाओं को प्राप्त हुए और उन्होंने एक समय तक भुजगार और अल्पतरपदका बन्ध किया तो जधन्य काल एक समय बनता है तथा निरन्तर क्रमसे यदि नाना जीव इन मार्गणाओं को प्राप्त होते रहते हैं तो इन पदों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बनता है। परन्तु ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक ही मार्गणाओं को प्राप्त होते हैं। अतः इन मार्गणाओं में उक्त प्रकृतियों के अवस्थित और अवक्तव्यपदका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि कार्मणकाय-योगमें और अनाहारक मार्गणामें दो-दो समयके फरकसे जीवों को प्राप्त कर भुजगार और अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल लाना चाहिये; अन्यथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होना सम्भव नहीं है। शेष कथन सुगम है।

५४०. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्यरायसंयत जीवों में सब प्रकतियों के भुजगार और

अवगद् अवत्त े ज ० ए०, उ० संखेजास० ।

५४१. सव्वएइंदि०-पुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं च सव्वसुहुमार्ण बादरपुढ०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं चेव अपञ्ज० सव्ववणण्यादि०-णियोद०-बादरपत्ते० तस्सेच अपञ्ज० मणुसाउ० तिरिक्खोघं। सेसाणं सव्वपदा सव्वद्धा। सेसाणं णिरयादि याव सण्णि ति जासिं णाणाजीवेहि भंगविचए भयणिजा तासिं अप्पप्पणो द्विदिशुजगार-भंगो। अवद्वि०-अवत्त० भयणिजा सेसपदा[ण] भयणिजा याओ ताओ ओघं णिरय-भंगो। एसिं अवत्त० संखेजा तासिं ओघं तित्थयरभंगो। यासिं सव्वपदा संखेजा आहारसरीरभंगो।

ॐ एवं कालं समत्तं ॐ अंतराणुगमो ।

५४२. अंतराणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० भ्रज०-अप्प०-अवद्वि०बंधगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतरं। अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधत्तं०। थीण-

अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अप-गतवेदी जीवोंमें अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है।

विशेषार्थ इन मार्गणाओं को कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक संख्यात समय तक जीव प्राप्त होते हैं, इसिंछये इनमें सब प्रकृतियों के अवस्थित और अवक्तव्यपदका ज्ञान्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। शेष कथन सुगम है।

५४१. सब एकेन्द्रिय, पृथिबीकायिक, जलकायिक, अप्रिकायिक, वायुकायिक और इन पृथिबी आदि चारोंके सब सूक्ष्म, बादर पृथिबीकायिक, वादर जलकायिक, बादर अप्रिकायिक, बादर अप्रिकायिक वनस्पतिकायिक और बादर अप्रेयेक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवोंमें मनुष्यायुका मङ्ग सामान्य तिर्यक्क्षोंके समान है। शेष सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। नरकगतिसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओंमें जिनका नाना जीवोंकी अपेक्षा मङ्गविचय भजनीय है, उनका अपने-अपने स्थितिबन्धके मुजगारके समान काल है। जिनके अवस्थित और अवक्तव्यपद भजनीय हैं तथा शेष पद भजनीय नहीं हैं, उनका ओघसे नरकगतिके समान मङ्ग है। तथा जिनके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं, उनका ओघसे तीर्थङ्कर प्रकृतिके समान मङ्ग है और जिनके सब पदोंके बन्धक जीव संख्यात हैं, उनका ओघसे आहारक-शरीरके समान मङ्ग है।

इस प्रकार काल समाप्त हुआ।

अन्तरानुगम

५४२. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण-चतुष्क, अगुक्लघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके भुजगार अल्पतर और अवस्थित-पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? अन्तरकाल नहीं है। अवक्तन्यपदके बन्धक

१. आ॰ प्रतौ अंतो॰ । अविह॰ अवत्त॰ इति पाठः ।

गिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तिण्णिप० णित्थ अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० सत्त रादिंदियाणि । सादासाद०-सत्तणोक०-तिरिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-छसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-पर०--उस्सा०-आदाउओ०-दोविहा०-तसादिदसपु०-दोगो० चत्तारिप० णित्थ अंतरं । अपचक्खाण०४ तिण्णिप० णित्थ अंतरं । अवत्त० ज० ए०, उ० चोंहस रादिंदियाणि । एवं पचक्खाण०४ । णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० चदुवीसं ग्रुहुत्तं । अवद्वि० । तिण्णिआउ० भ्रुज०-अप्प०-अवत्त० ज० ए०, उ० चदुवीसं ग्रुहुत्तं । अवद्वि० ज० ए०, उ० असंखेँआ लोगा । वेउ०छ० भ्रुज०-अप्प० णित्थ अंतरं । अवद्वि० ज० ए०, उ० असंखेँआ लोगा । अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं आहार०२ । तित्थ० भ्रुज०-अप्प०-अवद्वि० देवगदिभंगो । अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुथत्तं । ओरालि० अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । सेसपदाणं णित्थ अंतरं । एवं ओधमंगो काथजोगि-ओरा०-णवंस०-कोधादि०४-अचक्खु०-भवसि०-आहा-रए ति ।

जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। स्त्यान-मृद्धि तीन, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तीन पर्दोके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपर्के बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यद्वाय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विद्यायोगति, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके चारों पद्देंके बन्धक जीवों-का अन्तरकाल नहीं है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीन पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्क्रष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है। तीन आयुओं के भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहर्त है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। वैक्रियिकषटकके भूजगार और अल्पतर पद्के बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित-पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्त-र्महर्त है। इसी प्रकार आहारकद्विकके विषय में जानना चाहिये। तीर्थक्कर प्रकृतिके भूज-गार, अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग देवगतिके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। औदारिकशरीरके अव-क्तव्यपदके वन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। शेष पदोंके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी, औदारिक-काययोगी, नपुंसकवेदी, कोघादि चार कषायवाले, अच्छुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके आनना चाहिये।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डकमें और दूसरे दण्डकमें कही गई प्रकृतियोंके तीन पर्दोक्ता निरन्तर बन्ध एकेन्द्रियादि जीवोंके पाथा जाता है, इसिंडिये इन पदोंके अन्तर कालका निषेध किया है। मात्र उपशमश्रेणिका जयन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व- ५४३. णिरएसु तित्थ० ओघं। अथवा अवच० ज० ए०, उ० पलिदो॰ असंखें । सेसाणं भुज०-अप्प० णत्थि अंतरं। अवट्वि० ज० ए०, उ० असंखेंजा लोगा।

प्रमाण है, इसिंछिये इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष-पृथक्त्वप्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वमार्गणाका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है। तद्नुसार सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी इतना ही अन्तर है। अतः स्यानगृद्धि तीन आदिके अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात कहा है। सातावेदनीय आदिके चारों पर्होका एकेन्द्रिय आदि जीव बन्ध करते हैं, अतः इनके चारों पर्दोंके अन्तरकालका निषेध किया है। अत्रत्याख्यानावरण चार और प्रत्याख्यानावरण चारके तीन पदोंके अन्तरका निषेध **हानावरणके समान जानना चाहिये। तथा** प्रथमोपशमसम्यक्त्यके साथ संयतासंयत गुण-स्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन-रात है। तदनुसार पाँचवें आदि ऊपरके गुणस्थानोंसे च्युत होकर जीव इतने ही काल तक अविरत अवस्थाको नहीं प्राप्त होता। अतः अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनरातप्रमाण कहा है। इसी प्रकार उपशमसम्यक्त्वके साथ विरत जीवका जघन्य भन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात है। इसका अभिप्राय इतना है कि विरत जीव इतने ही काछ तक विरताविरत गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, इसछिए प्रत्याख्याना-बरणके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन-रात है । नरक, मनुष्य और देवगतिमें यदि कोई भी जीव उत्पन्नन हो तो कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक चौबीस मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होता। इसके अनुसार इन आयुओंके बन्धमें भी इतना अन्तर पढ़ सकता है, इसिछए इन तीन आयुओं के तीन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस मुहुर्त कहा है। मात्र इनके अवस्थितपदका परिणामोंके अनुसार अन्तर होता है इसलिए वह जघन्यरूपसे एक समय और उत्कृष्टरूपसे असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। वैक्रियिकषटकके भूजगार और अल्पतरपदका बन्ध नाना जीव करते ही रहते हैं, इसलिए इनके उक्त दो परोंके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार तीर्थक्कर और औदारिकशरीरके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके अन्तरकालका निषेघ घटित कर लेना चाहिए। तथा वैक्रियिकषट्कके अवस्थितपद्के अन्तरकालको तीन आयुओंके समान घटित कर लेना चाहिए। वैक्रियिकपट्क और औदारिकशरीर परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदेका ज्ञचन्य अन्तर एक समय और उत्क्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहुर्त कहा है। तथा तीर्थह्नर प्रकृतिका अवक्तव्यपद् उपशमश्रेणिमें व दूसरे-तीसरे नरकमें होता है। उसमें भी उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तप्रमाण है, इसलिए इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण कहा है। यहाँ गिनाई राई काययोगी आदि मार्गणाओंमें यह प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए उनके कथनको ओघके समान कहा है।

५४३. नारिक्योंमें तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्त ओघके समान है। अथवा अवक्रव्यपदका सचन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। शेष प्रकृतियोंके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात सोकप्रमाण है। अवत्त० ज० ए०, उ० अंतो० । शीणगिद्धिदंडओ ओघमंगो । सत्तमाए दोगिद-दो-आणु०-दोगो० थीणगिद्धिमंगो ।

५४४. तिरिक्खेसु धुविगाणं भुज०-अष्प०-अवष्टि० णत्थि अंतरं । सेसं ओघं ओरालियमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-असंज०-तिण्णिले०-अब्भवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारए ति । णवरि ओरालि०मि०-कम्मइ०-अणाहारएसु देवगदिपंचग० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० मासपुघ० । अविद्वि० ज० ए०, उ० असंखेँ० लो० । णवरि तित्थ० भुज०-अप्प० ज० ए०, उ० वासपुघ० ।

अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। मात्र सातवीं प्रथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भङ्ग स्यानगृद्धिके समान है।

विशेषार्थ-हम पहले ही बतला आये हैं कि तीर्थंद्भर प्रकृतिका अवक्तव्यपद नरकमें भी सम्भव है, इसलिए यहाँ ओघ प्ररूपणा बन जाती है। किन्तु एक उपदेश ऐसा भी है कि तीर्थंद्भर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला जीव दूसरे और तीसरे नरकमें अधिकसे अधिक पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक नहीं उत्पन्न होता, इसलिए इस उपदेशके अनुसार तीर्थंद्भर प्रकृतिके अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। शेष प्रकृतियोंका बन्ध यहाँ निरन्तर होता है, इसलिए उनके भुजगार और अल्पतर पदके अन्तरका निषेध किया है और अवस्थितपदका अन्तर परिणामोंके अनुसार कहा है। तथा परावर्तमान या अधुवविधनी प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर कहा है। सातवें नरकमें तिर्थंद्धगति, तिर्थंद्धगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका बन्ध सम्यग्हिष्टके होता है, इसलिए स्यानगृद्धिके समान भङ्ग बन जाता है।

५४४. तिर्यक्कोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियों के मुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। शेष भक्त ओघके समान है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, तीन लेइयावाले, अभव्य, मिथ्याहृष्टि, असंशी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाय-योगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें देवगतिपद्मक के भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। इतनी विशेषता है कि तीर्थङ्करप्रकृतिके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि नारकी, मनुष्य और देव मर कर ओदारिकमिश्रकायरोगी, कार्मण-कायरोगी और अनाहारकोंमें यदि अन्तरसे उत्पन्न हों तो कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक मासप्रथक्त्वके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं, इसिलए इन मार्गणाओंमें देवगति-चतुष्कके भुजगार और अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासप्रथक्त्वप्रमाण कहा है। तथा तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाले नारकी और देव उक्त तीन मार्गणाओंमें यदि अन्तरसे उत्पन्न होते हैं तो कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक वर्षप्रथक्त्वके अन्तरसे उत्पन्न होते हैं, अतः इन मार्गणाओंमें तीर्थक्कर प्रकृतिके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय और एकष्ट अन्तर ५४५. अवगद०-सुहुमसं० अप्पसत्थाणं भ्रुज०-अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुघ० । अप्प० ज० ए०, उ० छम्मासं० । पसत्थाणं भ्रुज० ज० ए०, उ० छम्मासं० । अप्प०-अवत्त ० ज० ए०, उ० वासपुघ० । सुहुमसं० अवत्त० णत्थि अंतरं ।

५४६. आभिणि०-सुद०-ओधि० मणुसगदिपंचग०-देवगदि०४ भुज०-अप्प० णस्थि अंतरं । अवद्धि० ज० ए०, उ० असंखेंजा लोगा । अवत्त० ज० ए०, उ० मासपुध० । णवरि ओधिणा० ज० ए०, उ० वासपुध० । एवं ओधिदं०-सुक्कले०-सम्मा० खहग०-वेदग० । उवसम० एदाओ पगदीओ ज० ए०, उ० वासपुध० । सेसाणं

वर्षप्रथक्त्वप्रमाण कहा है। इसका यह अभिप्राय है कि वर्षप्रथक्त्वके अन्तरसे कोई न कोई जीव तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला देव और नरक पर्यायसे आकर इस भूमण्डलको सुशोभित करता है। विदेहोंमें निरन्तर तीर्थक्कर होते हैं, इसलिए यह असम्भव भी नहीं है। फिर भी यहाँ यह प्रथक्त शब्द ७ और ८ का वाची न होकर बहुत्व अर्थको व्यक्त करनेवाला है,ऐसा हमें प्रतीत होता है। शेष कथन सुगम है।

५४५. अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके मुजगार और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व-प्रमाण है। अल्पतरपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। प्रशस्त प्रकृतियोंके मुजगार पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अल्पतर और अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्वप्रमाण है। मात्र सूद्मसाम्परायसंयत जीवोंमें अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ पर अप्रशस्त प्रकृतियोंका भुजगार और अवक्तव्यवन्ध उपशमश्रेणिमें इतरते समय होता है, इसलिए इनके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथम्त्वप्रमाण कहा है। तथा क्षपकश्रेणिमें इनका अल्पतरबन्ध होता है इसलिए इस पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। यद्यपि उपशमश्रेणिपर चढ़ते समय इन प्रकृतियोंका अल्पतर बन्ध होता है पर उपशमश्रेणिसे क्षपकश्रेणिका अन्तरकाल कम है, इसलिए यह अन्तर :क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा लिया है। प्रशस्त प्रकृतियोंका अन्तर इससे भिन्न प्रकारसे लाना चाहिए। अर्थात् क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा प्रशस्त प्रकृतियोंके भुजगारबन्धका और उपशमश्रेणिकी अपेक्षा इनके अल्पतर और अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए। कारण स्पष्ट है। मात्र सुस्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए। कारण स्पष्ट है। मात्र सुस्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए। कारण स्पष्ट है। मात्र सुस्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपदका अन्तर लाना चाहिए। कारण स्पष्ट है। मात्र सुस्मसाम्परायमें किसी भी प्रकृतिका अवक्तव्यपदका वहाँ होता।

५४६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगतिपञ्चक और देवगितचतुष्कके भुजगार और अल्पतर पदके बन्धक जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थित पदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात छोक-प्रमाण है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासप्रथक्तवप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्तवप्रमाण है। इसी प्रकार अवधिद्यश्नी, ग्रुक्ठलेश्यावाले, सन्यग्रहि, श्वायिकसम्यग्रहि और वेदकसम्यग्रहि जीवोंमें ज्ञानना चाहिए। उपशमसन्यग्रहि जीवोंमें इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जबन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्तवप्रमाण है।

णिरयादि याव सिष्णि ति अवत्त० अप्पप्पणो हिदिश्चजगारअवत्तव्वभंगो कादव्वो । सेसपदा कालेण साधेदव्वं । तेऊए देवगदि०४ अवत्त० ज० ए०, उ० मासपुष० । बोरालि० अवत्त० ज० ए०, उ० अडदालीसं श्रुहुत्तं । एवं पम्माए वि । णविर ओरालि०-ओरा०अंगो० अवत्त० ज० ए०, उ० पक्तं० ।

एवमंतरं समत्तं ।

भावाणुगमो

५४७. भावाणुगमेण दुवि०-ओघे० आदे०। ओघे० सव्वपगदीणं भुज०-अप्प०-

नरकगितसे लेकर संज्ञी तक शेष मार्गणाओं अवक्तव्यपदका भङ्ग अपने-अपने स्थितिबंधके मुजगारके अवक्तव्य भङ्गके समान कहना चाहिए। शेष पदोंको कालके अनुसार साध लेना चाहिए। पीतलेश्यामें देवगितचतुष्कके अवक्तव्य पदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्वप्रमाण है। औदारिकशरीरके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अबतालीस मुहूर्त है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकशरीर और औदारिक आङ्गोपाङ्गके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर एक पश्चप्रमाण है।

विशेषार्थ-आभिनिबोधिकज्ञानीः श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मनुष्यगति-पद्मकके अवक्तव्यपद्की प्राप्ति दो प्रकारसे होती है। प्रथम तो उपशमश्रेणिसे मरकर देव होने पर और दसरे चतुर्थ गुणस्थानसे मरकर नारकी होने पर या चतुर्थादि किसी भी गुणस्थानसे मरकर देव होने पर । इसका अभिप्राय यह है कि चतुर्थगुणस्थानमें वैक्रियिकमिश्रकायप्रयोगका जो अन्तर है वही यहाँ मनुष्यगतिपञ्चकके अवक्तव्यपदका अन्तर है। जीवस्थान अन्तर प्ररूपणामें यह जघन्य रूपसे एक समय और उत्कृष्ट रूपसे मासप्रथक्तवप्रमाण बतलाया है। इसलिए यहाँ इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण लिया गया है। पहले औदारिकमिश्रकाययोगमें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्यपदका अन्तर बतला ही आये हैं। वहीं यहाँ घटित कर छेना चाहिए। मात्र अवधिक्षानी जीवोंमें मनुष्यगतिपद्धक और देव-गतिचतुष्कका यह उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि कोई अवधिज्ञानी अधिकसे अधिक इतने काल तक वैकियिकमिश्रकाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी न हो यह संभव है। अवधिज्ञानीके समान ही उपशमसम्यग्दृष्टिमें यह अन्तर जानना चाहिए। पीत-लेक्यामें देवगतिचतुष्कके अवक्तव्य पदका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगीके समान ही घटित कर छेना चाहिए। परन्तु पीतलेइयामें वैकियिकमिश्रकाययोगका एत्क्रष्ट अन्तर अङ्तालीस मुहर्त है, इसलिए यहाँ औदारिकशरीरके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर अड़तालीस मुहर्त कहा है और पद्मलेश्यामें वैक्रियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट अन्तर एक पत्तप्रमाण है, इसलिए पद्म-लेख्यामें औदारिकद्विकके अवक्तव्य पदका उत्कृष्ट अन्तर एक पश्चप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ ।

भावानुगम

५४७. भावानुगमको अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है — ओघ और आदेश। ओघसे सब

२. ता॰ प्रतौ पवरि औराङि॰ अङ्गो॰ इति पाठः ।

अवद्वि०-अवत्त०बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । एवं याव अणाहारए ति । एवं भावं समत्तं ।

अपाबहुआणुगमो

५४८. अप्पाबहुगं दुवि०—ओवे० आदे० । ओवे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्टि० अणंतगु० । अप्प० असंखेँ अगु० । अज० विसे० । सादासाद०-सत्तणोक०-तिणिक्खाउ०-दोगदि-पंचजा०-छस्संठा०-ओरा०अंगो०- छस्संघ०-दोआणु०-पर०-उस्सा०-आदाउजो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-दोगो० सव्वत्थोवा अवट्टि० ।
अवत्त० असंखेँ अगुणा । अप्प० असं०गु० । अज० विसे० । एवं तिण्णिआउ०-वेउविवयछ० । आहार०२ सव्वत्थोवा अवट्टि० । अवत्त० संखेँ अ०गु० । अप्प० संखेँ ०गु० ।
अज० विसे० । तित्थ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्टि० असंखेँ अगु० । अप्प० असं०
गु० । अज० विसे० । एवं ओवभंगो कायजोगि-ओरालि०, णवरि ओरालिए तित्थकरं
आहारसरीरभंगो, अचक्खु०-भवसि०-आहारए ति ।

प्रकृतियोंके मुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कौनसा भाव है ? औद्यिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ।

अल्पबहुत्वानुगम ।

५४८. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—औघ और आदेश। ओघसे पाँच ह्यानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, बर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपद्के बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्पतरपद्के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगार पदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। सातावेदनीय, असाता-वेदनीय, सात नोकषाय, तिर्यद्वायु, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, छद्द संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छास, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक तीन आयु और वैक्रियिकषट्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। आहारकद्विकके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। तीर्थद्वर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे सुजगारपदके मन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार ओघके समान काययोगी और ओदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिककाययोगी जीवोंमें तीर्थद्वरप्रकृतिका भक्क आहारकशरीरके समान है। तथा ओघके समान ही अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

५४९. णिरएस धुवियाणं सञ्बत्योवा अवद्वि०। अप्प० असंखें ०गु०। सुज० विसे०। थीणगिद्धिदंडओ ओयं। णवरि अवद्वि० असंखें अगु०। मणुसाउ० आहार-सरीरभंगो। सेसाणं पगदीणं ओघं सादभंगो। एवं सत्तसु पुढवीसु। णवरि सत्तमाए दोगदि-दोआणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो।

५५०. तिरिक्खेस धुविगाणं सव्बत्थोवा अविष्ठ । अप्प० असं०गु०। स्रज० विसे०। सेसं ओघं । पंचिदियतिरिक्ख० धुविगाणं तिरिक्खोघं । सेसाणं पि एवमेव। णविर अविष्ठ ० जम्ह अणंतगुणं तिम्ह असं०गुणं कादव्वं । पंचि०तिरि०पज्जच-जोणिणीसु ओरालि० सादमंगो । पंचि०तिरि०अपज्ज० धुविगाणं णेरइगमंगो । सेसाणं सव्वत्थोवा अविष्ठि०। अवच० असं०गु०। [अप्प० असं०गु०।] स्रज० विसे०। एवं सव्वअपज्ज०- एहंदि०-विगलिं०-पंच कायाणं च ।

५५१. मणुसेसु पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सञ्बत्थोवा अवत्त०। अविद्ये० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। दोआउ०-वेउव्वियछ०-आहार०२-तित्थ० आहार-

५४६. नारिकयोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगार पदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। स्यानगृद्धिदण्डकका मङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्ष्य पदके बन्धक जीवोंसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुका मङ्ग आहारकशरीरके समान है। शेष प्रकृतियोंका मङ्ग ओघके सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें दो गित, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका मङ्ग स्यानगृद्धिके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ स्त्यानगृद्धिदण्डकसे स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-चतुष्क, ये आठ प्रकृतियाँ छी गई हैं।

५४०. तिर्यक्रोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भ्रुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष भक्न ओघके समान है। पश्चिन्द्रियतिर्यक्षोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भक्न सामान्य तिर्यक्षोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भक्न भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि जहाँ अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे कहे हैं, वहाँ असंख्यातगुणे कहना चाहिए। पश्चिन्द्रियतिर्यक्ष पर्याप्त और पश्चिन्द्रिय तिर्यक्ष योनिनियोंमें औदारिकशरीरका भक्न सातावेदनीयके समान है। पश्चिन्द्रियतिर्यचअपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भक्न नारिकयोंके समान है। पश्चिन्द्रियतिर्यचअपर्याप्तकोंमें ध्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भक्न नारिकयोंके समान है। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजनगारपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हो। इनसे भुजनगारपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हो।

५५१. मनुष्योंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोत्तद्द कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरत्तधु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजगारपदके

स॰भंगो । साददंडओ ओघं । एवं मणुसपञ्ज०-मणुसिणीसु । णवरि संसेंअं कादव्वं । एवं सच्वद्व० । णवरि धुवियाणं अवत्त० णित्य । सेसाणं वेदाणं णेरहगभंगो ।

५५२. पंचिदि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सम्बत्थोवा अवस०। अविह० असंखेंअगु०। अप्प० असंखेंअगु०। भुज० विसे०। सेसाणं ओघं। पंचिदियपअत्तएसु वि एसेव। णवरि ओरालि० सादभंगो। एवं तस०-तसप्ज०।

५५३. पंचमण०-तिष्णिवचि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-देव०-ओरा०-वेउ०-तेजा०-क०-वेउ०अंगो०-वण्ण०४-देवाणु०-अगु०४-बादर-पज्ञ०-पत्ते०-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थोवा अवत्त०। अविद्वि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। भ्रुज० विसे०। सेसाणं ओवं। दोवचि० तसपज्ञत्तभंगो। ओरालि०मि० पंचि०तिरि०-अपज्ञ०भंगो। 'णविर मिच्छ० अवत्त० ओवं०। देवगदि-पंचिदि० सव्वत्थो० अविद्वि। अप्प० संखेंज्ञगु०। भ्रुज० विसे०। एवं कम्मइ०-अणाहार०। वेउव्वि०का० देवभंगो। णविर तित्थ० णिरयभंगो। एवं वेउ०-मि०। आहार०-

बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयु, वैक्रियिकपट्क, आहारकद्विक और तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्त ओघसे आहारकशरीरके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भक्त ओघके समान है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्यात करना चाहिए। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ ध्रुवबन्धवाछी प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है। शेष देवोंका भक्त नारिकयोंके समान है।

४५२. पञ्चेन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोल्ह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकरारीर, तैजसरारीर, कार्मणरारीर वर्णचतुष्क, अगुरुल्ख, उपधात, निर्माण, तीर्थद्धर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुज-गारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका मङ्ग ओघके समान है। पञ्चेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंमें भी यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि औदारिकरारीरका मङ्ग सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें जानना चाहिए।

प्यतः पाँचों मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीवों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थङ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अज्ञारपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अज्ञारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका अङ्ग ओघके समान है। दो वचनयोगी जीवों में त्रसपर्याप्त जीवों के समान अङ्ग है। औदारिक-मिश्रकाययोगी जीवों में पञ्चिन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों के समान अङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका अङ्ग ओघके समान है। तथा देवगति और पञ्चिन्द्रयज्ञाति के अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव संख्यात्गुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर पदके बन्धक जीव संख्यात्गुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवों में जानना चाहिए। वैक्रियककाययोगी

१. ता॰ प्रतौ णत्थि स्रंतरं । सेसाणं इति पाठः ।

आहारमि० सन्बद्दभंगो । णवरि देवाउ०-तित्य० मणुसि०भंगो ।

५५४- इत्थिवे० पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० सव्यत्थो० अवहि०। अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । पंचदंस०-मिच्छ०-बारसक०-भय०-दु०-तेजा०-क०-वण्ण-४-अगु०४-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० सव्यत्थो० अवत्त० । अवहि० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेताणं सव्यत्थो० अवहि० । अवत्त० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । सेताणं सव्यत्थो० अवहि० । अवत्त० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । आहारदुगं तित्थ० मणुसि०भंगो । एवं पुरिस० । णवरि तित्थ० ओवं ।

५५५. षात्रुंसगे पंचणा०-चदुदंस०-चदुसंज०-पंचंत० इत्थिभंगो। पंचदंस०-भिच्छ०-बारसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण४-अगु०-उप०-णिमि० सब्बत्थो० अवत्त०। अवद्वि० अणंतगु०। अप्प० असं०गु०। भ्रुज० विसे०। सेसाणं ओघं। अवगद० अप्पसत्थाणं सब्बत्थो० अवत्त०। भ्रुज० संखेंज्ञगु०। अप्प० संखेंज्जगु०।

जीवों में देवों के समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्त नारिकयों के समान है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों में जानना चाहिए। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों में सर्वार्थसिद्धिके समान भक्त है। इतनी विशेषता है कि देवायु और तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्त मनुष्यितियों के समान है।

५५४. स्नीवेदी जीनोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संस्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीय विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघुचतुष्क, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। आहारक-दिक और तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्न मनुष्यनियोंके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनो विशेषता है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्न ओघके समान है।

५५५. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्ञ्यलन और पाँच अन्तरायका भक्क स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, बारह कपाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्यु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इतसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनंत्तगुणे हैं। इतसे अुजगारपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इतसे अुजगारपदके बन्धक जीव बिशेष अधिक हैं। शेष प्रकृतियोंका भक्क ओधके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इतसे भुजगारपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इतसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इतसे भुजगार

१. ता॰ प्रतौ सव्बत्थो॰ [अवत्त०] । अवद्वि० अप्प०्इति पाठः ।

पसत्थाणं सन्वत्थो० अवत्त०। अप्प० संखेंजगु०। भुज० संखें०गु०। एवं सुहुमसं०। णवरि अवत्त० पत्थि।

५५६. कोघे णवंसगभंगो। माणे पंचणा०-चढुदंस०-तिण्णिसंज०-पंचंत० सव्बत्थो० अविह०। अप्पद० असं०गु०। भुज० विसे०। पंचदंस०-मिच्छ०-तेरसक०-भप०-दु०- ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि० सव्बत्थो० अवत्त०। अविह० अणंतगु०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। सेसं ओघं। एवं मायाए वि। णविर पढमदंडओ पंचणा०-चढुदंस०-दोसंज०--पंचंत०। विदियदंडओ पंचदंस० निम्छ०- चोदसक०-भयदु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०। लोभे एवं चेव। पविर पढमदंडओ पंचणा०-चढुदंस०-पंचंत० सच्वत्थो० अविह०। अप्प० असं०गु०। भुज० विसे०। विदियदंडओ पंचदंस०-भिन्छ०-सोलसक०-भय-दु०। उविर ओघं।

५५७. मदि-सुदेसु धुत्रियाणं सच्वत्थो० अबद्धि० । अप्प०४ असं०गु० । भुज०

पदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूच्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्यपद नहीं है।

५५६. कोधकपायमें नपुंसकवेदी जीवोंके समान भक्क है। मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायके अवस्थित पदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। पाँच दर्शनावरण, भिथ्यात्व, तेरह कषाय, भय, जुगुप्सा औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुळघु, उपघात और निर्माणके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष भक्क ओधके समान है। इसी प्रकार मायाकषायमें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तराय रूप है। दूसरा दण्डक पाँच दर्शनावरण, मिश्यात्व, चौदह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकश्ररीर, तैजसरारोर, कार्मणरारीर, वर्णचतुष्क, अगुरुळ्यु, उपघात और निर्माणरूप है। लोभकषायमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतर-पदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दूसरा दण्डक पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोछह कषाय, भय और जुगुप्सा रूप होकर आगे यह ओघके समान है।

५५७. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ध्रुवबन्धवाछी प्रकृतियोंके अवस्थित पदके बन्यक जीव सबसे थाड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जोव असंख्यातगुणे हैं। इनसे

१. ता. प्रती सब्बत्यो॰ [अवत्त॰] । अविहि॰ अप्प॰ इति पाठः । २. ता प्रती विदियदंडओ । ओषं पंचदंस॰, आ. प्रती विदियदंडओ ओषं । पंचदंस॰ इति पाठः ।३. ता प्रती सब्बत्यो॰ [अवत्त॰] ।अविहि॰ । अप्प॰ इति पाठः । ४. ता॰ प्रती सब्बत्यो॰ [अवत्त॰] । अविहि॰ अप्प॰ इति पाठः ।

विसे० | मिच्छ० ऑरालि० सेसाणं च ओघं | विभंगे धुविगाणं अदि०भंगो | भिच्छ०-देव०-ओरालि०-वेउ०-वेउ०अंगो०-देवाणु०-पर०-उस्सा०-बादर-पञ्ज०-पत्ते० सन्वत्थो० अवत्त० | अवद्वि० असं०गु० | अप्प० असं०गु० | भुज० विसे० | सेसं ओघं |

५५८. आमिणि०-सुद्०-ओघि० पंचणा०छदंस०-बारसक०-पुरि०-भय-दु०-दोगदि-पंचि०-चदुसरीर-समचदु०-दोअंगो०-वज्जरि०-वण्ण०४-दोआणु०-अगु०४- पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आदेँ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा०-पंचंत० सव्वत्थो० अवत्त०। अविद्वि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। स्रज्ञ० विसे०। सादासाद० चदुणोक०-देवाउ०-थिरादितिण्णियु० ओघं। मणुसाउ०-आहार०२ मणुसि०भंगो। एवं ओघिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०-उवसम०। णवरि खइगस० दोआउ० आहारसरीरभंगो। उव-सम्मा० आहार०२-तित्थ० मणुसि०भंगो। मणपञ्जव० ओधिमंगो। णवरि संखेँजं कादव्वं। एवं संजद०।

५५९. सामाइ० छेदो० पंचणा०-चदुदंस०-स्रोभसंज०-उचा०-पंचंत० सन्वत्थो० अविदि० । अप्प० संर्वेजगु० । मुज० विसे० । सेसं दोदंस०-तिण्णिसंज०-पुरिस०-भय-दु० सन्वत्थो० अवत्त० । उविर मणपञ्जवभंगो । एवं परिहार० । णविर धुविगाणं भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्व और औदारिकशरीर तथा शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । विभङ्गज्ञानी जीवोंमें धुवबन्धवाली प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यक्षानी जीवोंके समान है । मिथ्यात्व, देवगित, औदारिकशरीर, वैकियिकशरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष भङ्ग ओघके समान है ।

५५८. आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिक्षानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कथाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, दो गति, पश्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपाङ्ग, वश्चर्यभानाराच संहनन, वर्णचतुरक, दो आनुपूर्वी, अगुरु छु-चतुष्क, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थङ्कर, उच्चगात्र और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवध्यतपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजगारपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोकषाय, देवायु और स्थिर आदि तीन युगलका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायु और आहारकदिकका भङ्ग मनुष्यितियोंके समान है। इसी प्रकार अवधिद्र्यनी, सम्यग्हिष्ट, क्षायिकसम्यग्हिष्ट, वेदकसम्यग्हिष्ट और उपश्चमसम्यग्हिष्ट जीवोंके जानना चाहिए। इननो विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्हिष्ट जीवोंके आहारकदिक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यितियोंके समान है। सनःपर्ययञ्चानियोंमें आहारकदिक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यितियोंके समान है। सनःपर्ययञ्चानियोंमें आहारकदिक और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यितियोंके समान है। सनःपर्ययञ्चानियोंमें अवधिक्षानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिए। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिए।

५५९. सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शना-वरण, लोभसंज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अल्पतरपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष दो दर्शनावरण, तीन संज्वलन, पुरुषवेद, भय और जुगुप्साके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। आगे मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान भक्क है। इसी प्रकार परिहार- अवत्त० णित्थ । संजदासंज० अणुदिसभंगो । देवाउ० ओघं । तित्थ० मणुसि०भंगो । असंजदे धुविगाणं तिरिक्लोघं । सेसाणं ओघं । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

५६०. किण्ण-णील-काऊणं असंजदभंगो । किण्ण०-णील० तित्थ० वेउन्वि०मि० भंगो । काउ० णिरयभंगो तित्थग० । तेउ० देवभंगो । णवरि थीणगि०३-मिच्छ०-बार-सक०-देवग०-ओरालि०-वेउ०-वेउ०अंगो०-देवाणु०-तित्थ० सम्बत्थोवा अवत्त० । अविड० असं०गु० । अप्प० असं०गु० । भुज० विसे० । दोआउ० ओघं । मणुसाउ० देवभंगो । आहारदुगं ओघं । एवं पम्पाए वि । णवरि ओरा०अंगो० देवगदिभंगो ।

५६१. सुकाए पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-दोगदि-पंचि०-चदु-सरीर-दोअंगो०-वण्ण४-दोआणु०-अगु०४-तस०-४-णिमि०-तित्थ०-पंचंत० सव्वत्थो० अवत्त०। अवदि० असं०गु०। अप्प० असं०गु०। मुज० विसे०। दोआउ०-

विशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद नहीं है। संयतासंयत जीवोंमें अनुद्दिशके समान भङ्ग है। मात्र देवायुका भङ्ग ओघके समान है। तथा तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। असंयतोंमें भ्रुवबन्ध वाली प्रकृतियोंका भङ्ग सामान्य तिर्यक्षोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। चिश्वदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—यहाँ सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतमें शेष दो दर्शनावरण आदि दण्डकमें जुगुप्सा तक प्रकृतियाँ गिनाई हैं, शेष नहीं गिनाई हैं। वे ये हैं—देवगित, पञ्चेन्द्रिय-जाति, तीन शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आङ्गोपाङ्ग, वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरु-छयुचतुष्क, प्रशस्त विहायोगिति, असचतुष्क, सुभग, सुस्यर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर। इस प्रकार दो दर्शनावरणसे छेकर तीर्थङ्कर तक इन प्रकृतियोंके अवक्तव्यपदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। तथा इन प्रकृतियोंके शेष पदोंका तथा अन्य सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका भङ्ग मनःपर्ययञ्चानी जीवोंके समान है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

५६०. कृष्ण, नील और कापीत लेक्यामें असंयतींके समान भङ्ग है। मात्र कृष्ण और नीललेक्यामें तीर्थ दूरप्रकृतिका भङ्ग बैक्षियकिमश्रकाययोगी जीवोंके समान है और कापीत-लेक्यामें तीर्थ द्वरप्रकृतिका भङ्ग नार्राक्योंके समान है। पीतलेक्यामें देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्म, बारह कषाय, देवगति, ओदारिकश्ररीर, वैक्षियिकश्ररीर, वैक्षियिक आङ्गोपाङ्ग, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थ द्वर प्रकृतिके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्प-तरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्प-तरपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्प-तरपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयुओंका भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यायुका भङ्ग देवोंके समान है। आहारकिहकका भङ्ग ओघके समान है। इसी प्रकार पद्मलेक्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि औदारिकाङ्गोपांगका भङ्ग देवगतिके समान है।

५६१. शुक्केर्यामें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, चार शरीर, दो आङ्गोपांग, वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरु-लघुचतुष्क, त्रसचतुष्क, निर्माण, तीर्थञ्कर और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतर पदके बन्धक

१. ता० प्रतौ णित्य ऋंत० । संजदासंज० इति पाठः ।

आहार-२ मणुसि० भंगो । सेसाणं आणदभंगो ।

५६२. अञ्भवसि० मदि०भंगो । णवरि मिच्छ० अवत्त० णित्य । एवं मिच्छा०-असण्णि त्ति । सासण०-सम्मामि० देवभंगो । णवरि अप्पप्पणो धुवपगदीओ परियत्ति-याओ च णादन्वाओ भवंति । सण्णी० मण०भंगो । एवं अप्पायहुगं समत्तं ।

एवं भुजगारबंधो समत्तो

पदणिक्खेवो समुक्तिणा

५६३. एत्तो पदणिक्खेवे ति तत्य इमाणि तिण्णि अणियोगदाराणि । तं जहा-सम्रुकित्तणा सामित्तं अप्पाबहुगे ति । सम्रुकित्तणा दुविधा-जह० उक० । उक० पगदं । दुवि०-ओधे० आदे० । ओधे० सन्वपगदीणं अत्थि उक्कस्सिया वङ्की उक्क० हाणी उक्कस्सगमवद्गाणं । एवं याव अणाहारए ति षोद्व्यं । णवरि अवगद०-सुहुमसंप० अत्थि उक्क० वङ्की उक्क० हाणी । एवं जहण्णागं पि ।

एवं समुक्तित्रणा समत्ता

सामित्तं

५६४. सामित्तं दुवि०-जह०-उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दु०-

जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे भुजगारपदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। दो आयु और आहारकद्विकका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग आनतकल्पके समान है।

५६२. अभव्योंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान सङ्ग है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्निश्यादृष्टि जीवोंमें देवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी ध्रुवप्रकृतियाँ और परिवर्तमान प्रकृतियाँ जाननी चाहिए। संज्ञी जीवोंमें मनोयोगी जीवोंके समान भङ्ग है।

्रस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ । इस प्रकार भुजगारवन्थः समाप्त हुआ ।

पदनिक्षेप सम्रत्कीर्तना

५६३. आगे पदिनक्षेपका प्रकरण है। उसमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं। यथा—समुत्कीर्तना, स्वामित्व ओर अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उज्जृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ ओर आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट बृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंमें उत्कृष्ट बृद्धि और उत्कृष्ट हानि है। इसी प्रकार जघन्य समुत्कीर्तना जानना चाहिए।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

५६४. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असाता- तिरिक्ख ०-एइंदि ०-इंड ०-अप्पसत्थव ० ४-तिरिक्खाणु १०-उप ०-धावर ०-अधिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उकस्सिया बङ्घी कस्स ? अण्णदरस्स यो चदुद्वाणिययवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिहिदिबंधमाणो अंतोमुहुत्तं अणंतगृणाए सेढीए वड्डिद्ण उकस्ससंकिले-सेण उकस्सदाहं गदो तदो उकस्सयं अणुभागवंघो तस्स । उकसिया हाणी कस्स ? यो उकस्तयं अणुभागं वंधमाणो मदो एइंदियो जादो तदो तप्पाओँगजहण्णए पडिदो तस्स उकस्सिया हाणी । उकस्सयमवद्वाणं कस्स ? यो उक्तसमं अणुभागं वंधमाणो सागारकखएण पडिभग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए पडिदो तस्स उकस्सममवहाणं। एवं हस्स-रदीणं । णवरि तप्पाओंम्गसंकिलिट्टो त्ति भाणिदव्वा । साद०-जस०-उचा० उक० वड्डी० कस्स० ? अण्ण० खवगस्स सुहुमसं० चरिमे उक्कस्सने अणुभागबंधे वट्टमाण-गस्स तस्स उक्क० वड्ढी । उक्क० हाणी कस्स ? यो उवसामयो से काले अकसाई होहिदि त्ति मदो देवो जादो तप्पाओँगजहण्णए पदिदो तस्स उक० हाणी। उक० अवडाणं कस्स ? अष्ण० अष्पमत्तसंजदस्स अक्खवग-अणुवसमगस्स सव्वविसुद्धस्स अर्णतदुगु-णेण बह्निद्ण अविदरस उक्ससमवदाणं । इत्थि०-पुरिस०-तिण्णिजादि-चदुसंठा०-चदु-संघ०-सुहुम-अपञ्ज०-साधार० उक्क० बह्वी क० ? अण्ण० यो चदुहा०यव० उवरिं अंतोकोडाकोडिटिदिं बंधसाणो अंतोम्रहुत्तं अणंतमुणाए सेढीए वड्डिद्ण तदो तप्पाओँगा-वेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुष्सा, तिर्यक्र्यगति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्शचतुष्क, तिर्यक्कमत्यानुपूर्वी, उपवात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीच गोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी कीन है ? चतुःस्थानिक यवमध्यके अपर अन्तःकोङ्गकोङ्ग स्थितिका बन्ध करनेवाला जो जीव अन्तर्मुहर्त काल तक अनन्तगुणी श्रेणिक्तपसे वृद्धिको प्राप्त होकर उत्क्रष्ट संक्लेशके द्वारा उत्क्रप्ट दाहको प्राप्त हुआ है और तब उद्दरष्ट अनुभागबन्ध किया है, ऐसा अन्यतर जीव उक्त प्रश्नतियोंको उत्हष्ट दृद्धिका स्वामी है। उत्हृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्हृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव मरकर एकेन्द्रिय हो गया और वहाँ तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्धको प्राप्त हुआ वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कीन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो अन्यतर जीव साकार उपयोगसे निवृत्त होकर तत्श्रायोग्य जधन्य अनुभागबन्ध करने छगा है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार हास्य और रतिका स्वामित्व कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यहाँ तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट ऐसा कहना चाहिए। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उभगोत्रको उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक सूद्रमसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनन्तर समयमें अकषायी होगा कि इसी बीच मेर कर देव हो गया और तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध करने लगा वह उत्दृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? अक्षपक और अनुपशामक अन्यतर जो अप्रमत्त-संयत सर्वविशुद्धि जीव अनन्तगुणी वृद्धिके साथ अवस्थित है वह उक्त प्रकतियोंके उत्कृष्ट अव-स्थानका स्वामी है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तीन जाति, चार संस्थान, चार संहनन, सृक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणकी उत्ऋष्ट बृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोङ्गकोङो स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्भुहूर्त काल तक अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः स्रप्यसत्यवि॰ ४ तिरिक्खाणु॰ इति पाठः ।

संकिलेसेण तप्पाओंग्गउक्करसं गदो तप्पाओंग्गउक्करसगं अणुभागं प्वंघो तस्स उक्क० वहाँ । उक्क० हाणी करस ? यो तप्पाओंग्गउक्करसगं अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिंडमगो तप्पाओंग्गजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अव-हाणं । णिरयाउग० उक्क० वहीं करस ? यो तप्पाओंग्गजहण्णगादो संकिलेसादो तप्पा-अगॅग्गउक्करससंकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभागं पवंघो तस्स उ० वहीं । उक्क० हाणी क० ? यो उक्क० अणुभा० वंधमाणो सागारक्खएण पिंडमग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए पिंददो तस्स उ० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । तिण्णिआउ०-आदा० उ० वहीं कि० ? यो तप्पाओंग्गजहण्णगादो विसोधीदो उक्करसविसोधि गदो तदो तप्पाओंग्गउक्क०अणुभागं पवंघो तस्स उक्क० वहीं । उ० हा० क० ? यो तप्पाओंग्गउक्करसगं अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिंडसग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए पिंददो तस्स उ० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । णिरयग०-असंप०-णिरयाणु०-अप्प०-दुस्स० उक्क० वहीं क० ? यो चदुद्वा०यवमज्झ० उविरं अंतोकोडा० वंधमाणो उक्करस-संकिलेसेण उक्करसयं दाहं गदो तदो उक्करसअणुभागवंघो तस्स उक्क० वहीं । उ० हाणी करस ? यो उक्क० अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिंडमग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० वहीं । उ० हाणी करस ? यो उक्क० अणुभागं वंधमाणो सागारक्खएण पिंडमग्गो तप्पाओंग्गजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० वहीं । उ० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । मणुसगिंनाजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । मणुसगिंनाजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । मणुसगिंनाजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । मणुसगिंनाजहण्णए पिंददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं । मणुसगिंनाजहण्णण पिंददो तस्स उक्क० अवहाणं । मणुसगिंनाजहण्णणण पिंदपों सेवाजिक्क अप्तेव सेवाजिक स्व सेवाजिक स्व सेवाजिक स्व सेवाजिक स्व सेवाजिक स्व सेवाजिक सेवा

बृद्धिको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंके द्वारा तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंको प्राप्त होकर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है, वह उक्त प्रकृतियोकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी 🕏 । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगके क्षय होनेसे निवृत्त होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागवन्ध करता है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। नरकायुकी उत्कृष्ट ष्टुद्धिका स्वामी काँन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्रेशसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह नरकायुकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला साकार उपयोगका क्षेय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कष्ट अवस्थान होता है। तीन आयु और आतपकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिसे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट युद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन 🕏 🎙 तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रति-भग्न होकर तत्प्रायोग्य अघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होत। है । नरकगति, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, नरक-गत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो चतुः-स्थानिक ययमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट संक्षेशके द्वारा उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य करता है वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उप-योगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट

१. ता० प्रती श्रादाउजो० उ० वड्डी, त्रा० प्रती त्रादाउजो० वड्डी इति पाटः ।

पंचग० उक्क० बड्डी कस्स ? यो जहण्णगादो विसोधीदो उकस्सगं विसोधि गदो तदो उक्क० अणु० पर्वधो तस्स उक्क० वड्डी। उक्क० हाणी कस्स १ यो उक्कस्सं अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तप्पाओँग्गजह० पडिदो तस्स उक्क० हाणो । तस्सेव से काले उक्क० अवडाणं । देवग०-वेउ०-आहार०-वेउ०-आहार० अंगो०-देवाणु० उक्क० बड्डी क०? अण्ण० खवग० अपुटवकरणपरभवियणामाणं **बंधचरिमे वट्टमाणगस्स त**स्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स ? उवसामयस्स परिवदमाण-यस्स परभवियणामाणं दुसमय०बंधगस्स उक्त० हाणी । उ० अवहा० क० १ अण्ण० अप्पमत्त० अखवग० अणुवसामयस्स सागार-जागार० सव्वविसुद्धस्स अंतोम्रहत्तं अणंतगुणाए सेढीए वड्डिद्ण अवहिदस्स तस्स उक्क० अवद्वाणं । पंचि०-तेजा०-क०-समच०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिपंच०--णिमि०-तित्थ० उक० बड्डी कस्स ? अण्ण० खबग० अपुरुवकर० परभवियणामाणं बंधचरिमे वट्टमाणगम्म तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी कस्स ? यो उत्रसामाणं से काले परभवियणामाण अबंधगो होहिदि त्ति तदो तप्पाओंग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्टाणं सादभंगो । उञ्जो० उक्क० वड्डी क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए जेरहगस्स मिच्छादिद्विस्स सव्वाहि पञ्जत्तीहि पञ्जत्तगदस्स सागार-जा० सव्वविद्यु० अणियद्वि-करणे वड्डमाणगस्स से काले सम्मत्तं पडिवज्जिहिदि ति तस्स उक्क० वड्डी । उक्क०

हृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है 🤊 जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका खामी है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। देवगति, वैकियिकशरीर, आहारकशरीर, वैकियिक आङ्गोपाङ्ग, आहारक-**आङ्गोपाङ्ग और देवगत्यानुपूर्वीको उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ?** अन्यतर जो क्षपक अपूर्व-करणमें परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्क्रष्ट हानिका स्वामी कौन है ? गिरनेवाळा जो उपशामक परभव-सम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके द्वितीय समयमें स्थित है वह उत्कृत हानिका स्वामी 🕏 । उत्कृष्ट अवस्थानका स्त्रामी कौन 🔁 ? अक्षपक और अनुपशामक तथा साकार-जागृत और सर्वविद्युद्ध अन्यतर जो अप्रमत्तसंयत जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तराणी श्रीणिरूपसे ब्रद्धिको प्राप्त होकर अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुछघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रस-चतुष्क, स्थिर आदि पाँच, निर्माण और तीर्थङ्करकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्य-तर क्षपक जीव अपूर्वकरणमें नामकर्मकी परभवसम्बन्धी प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशासक अनन्तर समयमें नामकर्मकी परभवसम्बन्धी प्रकृतियोंका अबन्धक होगा कि इसी बीचमें तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका भंग स्रातावेदनीयके समान हैं। उद्योतकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? मिथ्यादृष्टि, सब पर्या-प्रियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जीव अनिवृत्तिकरणमें रहते हुए तदनन्तर समयमें सम्यक्वको प्राप्त होनेवाला है वह उत्कृष्ट वृद्धिका

हाणी कस्स ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स मिच्छादिद्विस्स सव्वाहि पञ्ज० पञ्जनग० तप्पाओँग्गडकस्सिगादो विसोधीदो पडिभग्गो तप्पाओॅग्गजहण्णए पदिदो तस्स उक० हाणी । तस्सेव से काले उकस्सगमबद्धाणं ।

५६५. आदेसेण णेरहएसु पंचणा०-णत्रदंस०-असाद०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०-हुंड०-असंपत्त०-अप्पसत्थवण्ण०४-तिरिक्खाण०-उप०-अप्प-सत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी क०? यो चढुद्दा०यवमज्झस्स उविरं अंतोकोडाकोडिद्दिदिं बंधमाणो अंतोग्रहुत्तं अणंतगुणाए सेढीए विड्डिट्ण उक्कस्सगं दाहं गदो तदो उक्क० अणुभागं पवंघो तस्स उक्क० वट्ढी । उक्क० हाणी कस्स? यो उक्क० अणु० वंधमाणो सागारक्खएण पिडमग्गो तप्पा०जहण्णए पिददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं । साद०-मणुस०-पंचिदि०-ओरा०-तेजा०-क०-समच०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४--थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० उक्क० वट्ढी हाणी अवद्वाणं च ओघं मणुसगिदि-भंगो । इत्थि०-पुरिस०-दो आउ०-चढुसंठा०-चढुसंघ०-उज्जो० ओघभंगो । हस्स-रिद० इत्थिवदेभंगो । [एवं] सत्तमाए । उविरमासु छसु उज्जो० तिरिक्खाउभंगो । सेसमेसेव ।

स्वामी हैं। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन हैं ? मिथ्यादृष्टि और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका नारकी जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्य विशुद्धिको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है और वही तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है।

५६५. आदेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिश्यात्व, सोलह कपाय, पाँच नोकषाय, तिर्येक्कगति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिकासंहनन, अप्रशस्त-बर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? चतुःस्थानिक यवमध्यके उत्पर अन्तः-कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवाला जो जीव अन्तर्मुहुर्त तक अनन्तराणित श्रेणिकमसे बृद्धिको प्राप्त होता हुआ उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है वह क्लप्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने-बाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जधन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, सम-चतुरस्र संस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी, अगुरुल्युत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, असचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थह्रर और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट बृद्धि, हाति और अवस्थानके स्वामीका भङ्ग ओधसे मनुष्यगतिके समान है। स्नीवेद, पुरुषवेद, दो आयु, चार संस्थान, चार संहनन और उद्योतका भङ्ग ओघके समान है । हास्य और रतिका भङ्ग स्त्रीवेदके समान है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें जानना चाहिए । पहलेकी छह पृथिवियोंमें उद्योतका भङ्ग तिर्यञ्जायुके समान है। रोष पूर्वोक्त प्रकार ही है।

र. आ॰ प्रतौ सेसमेवमेव इति पाटः ।

५६६. तिरिक्षेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरय०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-णिरयाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णि वि णेरइयमंगो । सादा०-देवग०-पसत्थसत्तावीसं उचा० तिण्णि वि णेरइयसाद-भंगो । इत्थि०-पुरिस०-इस्स-रिद्-तिरिक्ख०-चढुजादि-चढुसंठा०-पंचसं०-तिरिक्खाणु०-थावरादि०४ ओघं इत्थिमंगो । चढुआउ०-आदावं ओघं । मणुसगिदपंचग-उजो० तिरिक्खाउभंगो । अथवा बादरतेउ०-वाउ० उजो० उक्क० विद्व-हाणि-अवदाणं यदि कीरिद तेसिं सादभंगो तिण्णि वि । एवं पंचिदियतिरिक्ख०३ । णवरि उजो० तिरिक्खाउभंगो ।

५६७. पंचिदि०तिरि०अप० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरिक्ख०- एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर०४-अथिरादिपंच-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी क० १ यो तप्पाओंम्गजह०संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभा० बंधो तस्स उक्क० बड्ढी। उक्क० हाणी कस्स०१ यो उक्क० अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पडिभग्गो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। सादा०-मणुस०-पंचि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा० अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अग्०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-उचा०

५६६. तिर्यक्क्रोमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिध्यात्व, सोल्ह्र कषाय, पाँच नोकषाय, नरकगित, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, नरकगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीनों ही पदोंका भक्त नारिकयोंके समान है। सातावेदनीय एक, देवगित आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उचगोत्रके तीनों ही पदोंका भक्त नारिकयोंके सातावेदनीयके समान है। स्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, तिर्यक्क्रगति, चार जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, विर्यक्क्रगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारका भक्त ओघसे स्नीवेदके समान है। चार आयु और आतपका भक्त ओघके समान है। मनुष्यगतिपक्कक और उद्योतका भक्त विर्यक्क्रायुके समान है। अथवा बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव उद्योतको उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानको यदि करता है,तो इनके तीनों ही पदोंका भक्त सातावेदनीयके समान है। इसी प्रकार पश्चिन्द्रिय तिर्यक्क्षत्रिकके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें उद्योतका भक्त विर्यक्कायुके समान है।

५६७. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों में पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्ड संस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर चतुष्क, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट दृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्रुशसे उत्कृष्ट संक्रुशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करता है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है । उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है । सातावेदनीय, मनुष्यगति, पञ्चोन्द्रयजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणहरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक आङ्गोपाङ्क, वऋषभनाराचसंहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क,

ता० प्रतौ यदि किरे (कीर) दि तेसिं पि सादमंगो । तिण्णि वि एवं पंचिदियतिरिक्स ।
 शणविर इति पाटः ।

उक्क० वड्डी कस्स ? यो जह० विसोधीदो उक्क० विसोधि गदो तदो उक्क० अणु० पर्वधो तस्स उक्क० वड्डी । उक्क० हाणी क० ? यो उक्क० अणुभा० बंधमाणो सागारक्खएण पिड-भगो तप्पाओँ गजह० पिददो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अबद्धाणं । हत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-तिष्णिजा०-चदुसंठा०-पंचसंघ०—अप्पसत्थ०-दुस्सर० तिष्णि वि णाणावरणभंगो । णवरि तप्पाओँ गसंकिलिहो काद्व्यो । दोआउ०-आदाव० ओयं । उज्जो० तिरिक्खाउभंगो । एवं सव्वअपजन्तगाणं एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च । णवरि एइंदिएसु तेउ-वाउकाइएसु उज्जो० सादभंगो ।

५६८. मणुस०३ खवियाणं बह्नि-अवद्वाणं ओघं देवगदिभंगो । सेसं पंचिंदि० तिरि०भंगो ।

५६९. देवेसु पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-[सोलसक०-]पंचणोक०तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पसत्थ०-थावर०अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० पेरइगमंगो । सेसाणं पि पोरइगमंगो । णवरि आदाउजो०
तिरिक्खाउमंगो । भवण०-वाणवें०-जोदिसि०-सोधम्मी० पंचणा०-णवदंस०-असादा०मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-तिरि०-एइंदि०-हुंड०-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०थावर०-अथिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिष्णि वि देवोघं । सेसाणं पि देवमंगो । णवरि

मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुल्युत्रिक, प्रशस्त विद्यागाति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जयन्य विद्युद्धिसे उत्कृष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभन्न होकर तत्यायोग्य जयन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। स्वीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, तीन जाति, चार संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त विद्यागिति और दुःस्वरके तीनों ही पदोंका भंग झानावरणके समान है। इतनी विशेषता है कि तत्यायोग्य संक्षिष्टके कहना चाहिए। दो आयु और आतपका भंग ओवके समान है। उद्योतका भंग तिर्यक्क्षायुके समान है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, अप्रिकायिक और वायुकायिक जीवोंमें उद्योतका भंग सातावेदनीयके समान है।

५६८. मनुष्यित्रकमें क्षपक प्रकृतियोंकी बृद्धि और अवस्थानका भंग ओघसे देवगतिके समान है। शेष भंग पक्रोन्द्रय तिर्यक्कोंके समान है।

५६९. देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, पाँच नोकवाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विद्यायोगति, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायका भंग नारिकयोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग भी नारिकयोंके समान है। इतनी विशेषता है कि आतप और उद्योतका भंग तिर्यञ्चायुके समान है। भवनवासी, ज्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान कल्पके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय-जाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीनों ही पदोंका भंग सामान्य देवोंके समान है।

असं०-अप्पसत्थ०-दुस्स० इत्थिमंगो। सणक्कुमार याव सहस्सार ति पढमपुढविमंगो। आणद याव उविरमगेवआ ति पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-उप०-अप्पसत्थ०-अथिरादिछ०--णीचा०-पंचंत० उक्क० बहुी कस्स० १ यो तप्पाओंमाजहण्णमादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० प्रवंधो तस्स उक्क० बहुी। उक्क० हाणी क० १ यो उक्क० अणुमा०वंधमाणो सागारक्खरण पित्रमंगो तप्पाओंमाजह० पिडदो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्टाणं। साददंडओ णिरयमंगो। हत्थिवेददंडओ पंचिं०तिरि०अपज्ञ०मंगो। [मणुसाउ० देवोधं।] अणुदिस याव सच्वट्ट ति पंचणा०-छदंस०-असादा०-बारसक०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थवण्ण०४-उप०-अथिर-असुम-अजस०-पंचंत० उक्क० बहुी कस्स १ यो जह० संकि० उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पंधो तस्स उक्क० वहुी। उक्क० हा० क० १ यो उक्क० अणु० वंधमाणो सायारक्खएण पित्रमंगो तप्पाओंमाजह० पिददो तस्स उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं। साददंडओ देवोघं। हस्स-रदि० उक्क० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवहाणं। साददंडओ देवोघं। हस्स-रदि० उक्क० वहुी क० १ यो तप्पाओंमाजह० अणुभागं वंधमाणो तप्पाओ० जह० संकिलेसादो तप्पा० उक्क० संकिलेसं गदो तप्पाओंमाजह० अणुभागं वंधमाणो तप्पाओ० जह० संकिलेसादो तप्पा० उक्क० संकिलेसं गदो तप्पाओ० उक्क० अणुभागं वंधमाणो तप्पाओ० तस्स उक्क० वहुी।

होष प्रकृतियोंका भंग भी समान्य देवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असम्प्राप्तासृपाटिका संहत्तन, अप्रशस्त विहायोगित और दुःस्वरका भंग स्त्रीवेदके समान है। सनत्कुमारसे लेकर सहसार कल्पतकके देवोंमें प्रथम पृथिवीके समान भंग है। आनतकल्पसे लेकर उपरिम धैवेयक तकके देवोंमें पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिश्यात्व, सोछह कषाय, पाँच नोकषाय, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्रुपाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्क्रष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य संक्षेशसे उत्कृष्ट संक्षेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीयदण्डकका भंग नारिकयोंके समान है। स्नीवेददण्डकका भंग तिर्यक्र अपर्याप्तकोंके समान है। मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वोर्थसिद्धि तकके देवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषदेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपधात, अस्थिर, अशुभ, अयशः-कीर्ति और पाँच अन्तरायको उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य संक्रेशसे उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट दृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्थामी कीन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा वही भनन्तर समयमें उकुष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय दण्डकका भंग सामान्य देवोंके समान 🕏 । हास्य और रतिकी उत्हृष्ट बृद्धिका स्थामी कौन है ? तत्प्रायोग्य जघन्य अनुभागका बन्ध करनेबाला जो जीव तत्प्रायोग्य जघन्य संक्षेत्रासे तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्षेत्राको प्राप्त होकर उ० हा० क० ? यो तप्पा० उक० अणु० बंधमाणो सागारक्णएण पडिभग्गो तप्पा० जह० पदिदो तस्स उक० हाणी। तस्सेव से काले उक० अवहाणं। मणुसाउ० ओघं।

५७०. पंचिं - तस०२ ओघमंगो। णवरि पंचणा०दंडओ उक्क० वड्डी ओघं०। हाणी अवहाणं सागारक्खएण पिंडमगो ति भाणिदव्वं। पंचमण० - पंचवचि० खविगाणं पगदीणं मणुसिमंगो। सेसं पंचिं भंगो। कायजोगि० ओघं। ओरालि० मणुसमंगो। णवरि उज्जो० तिरिक्ख० मंगो। ओरालियमि० पंचणाणावरणादिसंकिलिष्टपगदीणं उक्क० वड्डी क० १ यो से काले सरीरपञ्जची जाहिदि ति जहण्णगादो संकिलेसादो उक्कस्सगं संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पबंघो तस्स उ० बड्डी। उ० हा० क० १ यो उ० अणु० बंघमाणो दुसमयसरीरपञ्जचि जाहिदि ति सागारक्खएण पिंडमगो तस्स उ० हाणी। तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। सादादीणं सव्वविसद्धाणं उक्क० वड्ढी क० १ यो जहण्णगादो विसोधीदो उक्क० विसोधि गदो तदो से काले सरीरपञ्जचि जाहिदि ति उक्क० अणु० पबंघो तस्स उक्क० वड्ढी। एवं सेसाणं पि तप्पाओं गर्सिकिलिहाणं तप्पाओं गाविसुद्धाणं च एसेव आलावो कादक्वो। एवं वेउव्वियमि० आहारमिस्साणं पि। णवरि अप्यप्पणो पगदीओ कादक्वाओ। वेउव्वि० देवोघं।

तत्त्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? तत्त्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। मनुष्यायुका भंग ओघके समान है।

५७०. पद्धेन्द्रियद्विक और ऋसद्विक जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि पाँच ज्ञानावरणएण्डककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी ओघके समान है। हानि और अवस्थान जो साकार उपयोगसे प्रतिभग्न हुआ है उसके कहना चाहिए। पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भंग मनुष्यिनियोंके समान है। शेष भंग पञ्चेन्द्रियोंके समान है। काययोगी जीवोंमें ओघके समान भंग है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्यिनियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग तिर्युद्धोंके समान है। औदारिकमिश्रकाय-योगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरणादि संक्रिष्ट प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो तदनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा कि इसके पूर्व समयमें जघन्य संक्षेशसे उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट दृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव दो समयमें हारीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा कि शरीर पर्याप्तिके समयसे दो समय पूर्व साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है । तथा वही अनेन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय आदि सर्वविशुद्ध प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हुद्धिका स्वामी कौन है ? जो जघन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर अगले समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा कि शारीरपर्याप्तिके समयसे पूर्व समयमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार होष प्रकृतियोंका भी तत्प्रायोग्य संक्षिष्ट और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध जीवोंके यही आसाप करना चाहिए। इसी प्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ करनी चाहिए। बैक्रियिक

णवरि उञ्जो० सत्तमभंगो । आहार० सव्बद्धभंगो ।

५७१. कम्मइ० पंचणा०-णवदं०-असादा १०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक० तिरिक्ख १०-एइंदि०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थवणण०४-तिरिक्खाणु०-उप०-अप्पस्थ०-थावरादि०४-अधिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वड्ढी क० १ यो जहण्णगादो संकिलेसादो उक्क० संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणुभा० पर्वधो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हा० क० १ यो उक्क० अणु०वंधमाणो सामारक्षरण पिक्समो तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवद्वाणं क० १ अण्ण० वादरएइंदियस्स उक्कस्सिया हाणि काद्ण अवद्विदस्स तस्स उ० अवद्वाणं। सादादीणं पसत्थाणं पगदीणं मणुसगदि-पंचग० उक्कस्सविद्द-हाणी देवोघं। उक्क० अवद्वाणं णाणावरणभंगो। देवगदिपंचग० अवद्वाणं णत्थि। सेसाणं तप्पाओम्मसंकिलिद्वाणं तप्पाओम्मविसुद्धाणं च एसेव आलावो कादव्वो। णवरि तप्पाओम्मसंकिलिद्व-तप्पाओम्मविसुद्ध ति भाणिदव्वं। एवं अणाहार०।

५७२. इत्थिवेदे पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरय०-तिरिक्ख०-एइंदि०-हुंड०-अप्पस०४-दोआणु०उप०-अप्पसत्थ०-थावर०-अधिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० उक्क० वर्ही हाणी अवद्वाणं ओयं णिरयगदिभंगो। सादा०-जस०-उच्चा० उक्क० वर्ही क० १ अण्ण० खनग० अणियद्विवादरसांपराइगस्स काययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि उद्योतका भंग सातवीं पृथिवीके समान है। आहारककाययोगी जीवोंका भंग सर्वार्थसिद्धिके समान है।

५७१. कार्मणकाययोगी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, पाँच नोकषाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियज्ञाति, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्पाटिकासंहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विद्वायोगति, स्थावर आदि चार, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट बुद्धिका स्थामी कौन है ? जो जघन्य संक्रेशसे उत्कृष्ट संक्रेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेन्वाछा जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभम हुआ है वह उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेन्वाछा जो जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभम हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर बादर एकेन्द्रिय जीव उत्कृष्ट हानि करके अवस्थित है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके और मनुष्यगतिपञ्चककी उत्कृष्ट बृद्धि और हानिका भन्न सामान्य देवोंके समान है। उत्कृष्ट अवस्थानका भन्न हानावरणके समान है। देवगतिपञ्चकका अवस्थानपद नहीं है। शेष प्रकृतियोंका तत्प्रायोग्य संक्षिष्ट और तत्प्रायोग्य विश्चद्ध जीवोंके यही आलाप करना चाहिए। इसनी विशेषता है कि तत्प्रायोग्य संक्षिष्ट और तत्प्रायोग्य विश्चद्ध पेसा कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए।

५७२. स्त्रीवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौदर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह् कषाय, पाँच नोकपाय, नरकगति, विर्यद्भगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट बृद्धि, हानि और अवस्थानका भङ्ग ओघसे नरकगतिके समान है। साता-वेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी उत्कृष्ट बृद्धिका स्थामी कौन है ? जो अन्यतर क्षपक जीव

१. ता. प्रतौ णवदंस० सादा० इति पाठः । २. त्रा. प्रतौ सोलसक० तिरिक्ख० इति पाठः ।

चरिमे उक्कस्सए अणुभागवंथे वट्टमाणगस्स तस्स उक्क० वर्दी। उक्क० हाणी क० १ अण्ण० उवसाम० परिवद० अणियद्विवादर०दुसमयं वंध० उ० हा०। अवट्ठाणं ओघं। सेसाणं पि खविगाणं मणुसि०भंगो। सेसाणं पगदीणं पंचि०तिरि०भंगो। उज्जो० आदावभंगो।

५७३. पुरिसेसु साद०-जस०-उचा० उक्क० वड्ढी अवटा० इत्थि०भंगो। उ० हा० क० १ यो उवसम०अणियट्टी से काले अबंधगो होहिदि त्ति मदो देवो जादो तस्स उ० हाणी। सेसं पंचिंदियपञ्जत्तभंगो। णवरि तिरिक्खाउभंगो।

५७४. णवुंसगे पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-णिरयग०-तिरिक्ख०-हुंड०-असंप०-अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप०-अप्पसत्थ०-अयि-रादिछ०-णीचा०-पंचंत० तिण्णिपदा ओघं णिरयगदिमंगो। खविगाणं इत्थिमंगो। इत्थिवेददंडओ चदुजादीए घेप्पदि। उज्जो० ओघं। सेसं इत्थिभंगो।

५७५. अवगद० अप्पसत्थाणं उक्क० वड्ढी क० ? अण्ण० उवसा० परिवद० अणिय० दुचरिमे ' बंधादो चरिमे अणुभागवंधे वट्टमाणस्स से काले सवेदो होहिदि त्ति तस्स उ० वड्ढी । उक्क० हा० क० ? अण्ण० खवग० अणिय० पढमादो अणु-भागवंधादो विदिए अणुमा० वट्टमा० तस्स० उ० हाणी । साद०-जस०-उच्चा० उक्क०

भनिवृत्ति बादरसाम्परायके अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक जीव अनिवृत्ति-करण बादर साम्परायके द्वितीय समयमें बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। शेष क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग भी मनुष्यिनियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चनिद्रय तियञ्चोंके समान है। उद्योतका भङ्ग आतपके समान है।

पंजरे. पुरुषवेदी जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी उत्झूख वृद्धि और अवस्थानका भक्क स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव अनन्तर समयमें अवन्धक होगा कि अवन्धक होनेके पूर्व समयमें सरकर देव हो गया वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। होष भक्क पक्केन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान

है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रायुके समान भन्न है।

५७४. नपुंसकवेदी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलइ कथाय, पाँच नोकथाय, नरकगित, तिर्यक्षगित, हुण्डसंस्थान, असम्प्राप्तास्ट्रपाटिका संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगित, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायके तीन पदोंका भङ्ग ओघसे नरकगितके समान है। ध्रपक प्रकृतियोंका भङ्ग स्तिवेदी जीवोंके समान है। स्त्रीवेददण्डकको चार जातियोंके साथ प्रहण करना चाहिए। उद्योतका भङ्ग ओघके समान है। श्रोष भङ्ग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है।

५७४. अपगतवेदी जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो गिरनेवाला अन्यतर उपशामक अनिवृत्तिकरण जीव द्विचरम समयमें होनेवाले बन्धसे अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धमें अवस्थित है और जो अगले समयमें सवेदी होगा वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपक प्रथम अनुभागबन्धसे द्वितीय अनुभागबन्धमें विद्यमान है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। साता-

१. त्रा. प्रतौ परिवद० दुःचरिमे इति पाटः ।

बड्ढी ओर्घ । उ० हा० क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० सुहुमसं० दुसमयबंध-गस्स तस्स उ० हा० । एवं सुहुमसंपराइ० ।

५७६. कोधादि०४ ओघं। णविर सादा०-जस०-उचा० उक० वर्ढी अवहाणंओघं। उ० हा० क० १ अण्ण० यो उवसाम० कोधसंजलणाए से काले अवंधगो होहिदि ति मदो देवो जादो तप्पाओं गजह० पदिदो तस्स उक० हाणी। एवं माणे मायाए। लोमे ओघं।

५७७. मिद्-सुदे पढमदंडओ हस्स-रिदंडओ ओघं। सादा० देवगिद्यसत्य-सत्तावीसं उचा० उक्क० वड्ढी क० ? अष्ण० मणुसस्स सागार—जागार० सव्यविसुद्ध० संजमाभिम्रहस्स चिरमे समए उक्कस्सने अणुमानवंघे वट्टमाणस्स तस्स उ० वड्ढी। उ० हाणी क० ? अण्णदरस्स संजमादो परिवदमाणगस्स दुसमयवंघगस्स तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्टाणं क० ? यो तप्पाओँ गउक्क० विसोधीदो सागारक्खएण पिड-मग्गो तप्पाओ० जह० पिददो तस्स उक्क० अवट्टाणं। एवं संजमाभिम्रहाणं। मणुसगदि-पंच० उक्क० वड्ढी क० ? सम्मत्ताभिम्रहस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी क० ? सम्मत्तादो परिवद० दुसमयवंघ० तस्स उ० हाणी। अवट्टाणं सादमंगो। सेसं

वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? गिरनेवाले जिस अन्यतर उपशामकने सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें दूसरे समयमें बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयतके जानना चाहिए।

५७६. कोधादि चार कषायवाछे जीवोंमें ओधके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर उपशामक कोधसंज्वलनके बन्धसे अनन्तर समयमें अवन्यक होगा कि मरा और देव होकर तत्रायोग्य जधन्यको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। इसी प्रकार मान और मायाकषायवाले जीवोंमें जानना चाहिए। लोभ-कषायवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

५७० मत्यज्ञानी और श्रुवाज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डक और हास्य-रितद्ण्डक ओघके समान है। सातावेदनीय, देवगित आदि प्रशस्त सत्ताईस प्रकृतियाँ और उच्चगीत्रकी उत्कृष्ट दृद्धिका स्वामी कौन है? जो अन्यतर मनुष्य साकार-जागृत, सर्वविशुद्ध संयमके अभिमुख और उत्कृष्ट अनुभागवन्थमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट दृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? संयमसे गिरनेवाछे जिस अन्यतर जीवने दो समय तक बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? जो तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। इस प्रकार संयतके अभिमुख होकर उत्कृष्ट वृद्धिका प्राप्त होनेवाछी प्रश्वतियोंका स्वामित्व जानना चाहिए। मनुष्यगतिपृद्धककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ जीव उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है? सम्यक्त्वके उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। अवस्थानका भक्न सातावेदनीयके

१. आ. पतौ कोभसंजलणा वि से इति पाठः ।

ओर्घ । विभंगे पसत्थाणं मदि०भंगो । सेसाणं पंचिदियभंगो ।

५७८. आभिणि०-सुद्०-ओघि० पंचणा०-छदंस०-असाद०-बारसक०-पुरिस०-अरिद-सोग-भय-दु०-अप्पसत्थ०४-उप०-अधिर-असुभ-अजस०-पंचंत० उक० वड्हा क० ? अण्ण० असंज० सागार-जा० णियमा उक्क०संकिलिइस्स मिच्छत्ताभिस्ह० चिरमे उक्क० अणुभा० वट्टमा० तस्स उक्क० वड्हा । उक्क० हाणी क० ? यो तप्पा ओगाउक्कस्सगादो संकिलेसादो पिडमगो तप्पाओगाजह० पिदो तस्स उ० हा० । तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं । हस्स-रदीणं सत्थाणे तिण्णि वि काद्व्वाणि । सेसाणं ओघं । मणपज्जवे पढमदंडओ ओधिणाणिभंगो । णविर असंजमाभिस्ह० । एवं हस्स-रदीणं पि । सेसं ओघं । एवं संजद-सामाइ०-छेदो० । णविर सामा०-छेदो० साद०-जस०-उचा० उक्क० वड्ही अवद्वाणं ओघं । उक्क० हाणी क० ? अण्ण० उवसाम० परिवद० विदियसमयअणियद्वि०संजदाणं । सव्वाणं हाणी मणुसिभंगो । परिहार० पढमदंडओ मणपज्जवभंगो । णविर वड्ही सामाइय-च्छेदोवद्वावणाभिस्हस्स । सेसाणं सत्थाणं कादव्वं । संजदासंजदे पढमदंड० वड्ही ओधि०भंगो । हाणी अवद्वाणं सत्थाणे । साददंडओ वड्ही संजमाभिस्ह० । हाणी अवद्वाणं सत्थाणे । असंजदे

समान है। शेष ओघके समान है। विभङ्गज्ञानी, जीवोंमें प्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग पञ्चेन्द्रियोंके समान है।

५७८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुरुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात, अस्थिर, अञ्जुम, अयशाकीर्ति और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर असंयतसम्यन्दृष्टि साकार-जागृत है, नियमसे उत्कृष्ट संक्वेश परिणामवाला है और मिथ्यात्वके अभिमुख होकर अन्तिम उत्कृष्ट अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्इष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जो तत्प्रायोग्य उत्क्रष्ट संक्रेशसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्थामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। हास्य और रितके तीनों ही पद स्वस्थानमें करने चाहिए। शेष प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयमके अभिमुख जीवके उत्क्रष्ट वृद्धिका स्वामित्व कहना चाहिए । इसी प्रकार हास्य और रतिका भी कहना चाहिए । शेष भक्न ओघके समान है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उचगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानका भङ्ग ओघके समान है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? जिस गिरनेवाले उपशामकने अनिवृत्तिकरणमें दो समय तक बन्ध किया है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। यहाँ सब प्रकृतियोंकी हानिका भङ्ग मनुष्यिनियोंके समान है। परिहार-विशुद्धिसंयत जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता 🕏 कि वृद्धि सामायिक और छेदोपस्थापनासंयतके अभिमुख हुए जीवके होती है। शेष प्रकृ-तियोंका भङ्ग स्वस्थानमें करना चाहिए। संयतासंयत जीवांमें प्रथम दण्डककी वृद्धिका भङ्ग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है। इसकी हानि और अवस्थान स्वस्थानमें होते हैं। सातावेद-

१. ता. आ. प्रत्योः ओषिविभंगो इति पाठः ।

पढमदंडओ ओघं । साददंडओ मदि०भंगो। णवरि असंजदसम्मादिद्विस्स कादच्या। सेसं ओघं।

५७९. चक्खुदं० तसपजातभंगो । अचक्खु० ओघं। ओधिदं०-सम्मा०-खइग० ओधि०भंगो^२। णवरि खर्गे पढमदंडए वड्ढी सत्थाणे कादच्या।

५८०. किण्णाए पढमदंडओ णबुंसगर्भंगो । साददंडओ णिरयभंगो । इत्थि ०-पुरिस०-हस्स-रिद-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-थावरादि०४ णबुंसगर्भगो । देवगदिपंच० उक्क० वड्ढी कि० १ यो तप्पा०जह०विसोधिं गदो उक्क० अणु० पवंघो तस्स उक्क०वङ्घी । उक्क० हा० क० १ यो तप्पा०उक्क०अणुभा० वंघमाणो सागारक्खएण पिड भग्गो तप्पाओ० ज० पिडदो तस्स उक्क० हा० । तस्सेव से काले उक्क० अवद्वाणं। सेसं ओघादो साघेदच्चं ।

५८१. णील-काऊणं पहमदंडओ साददंडओ इत्थि०-पुरिस०-हस्स-रिद-चटुसंठा० चटुसंघ० णिरयभंगो । णिरय०-चटुजादि-णिरयाणु०-थावरादि०४ उक्क० बड्डी कस्स ? यो तप्पाओंम्मजह०संकिलेसादो उक्क०संकिलेसं गदो तदो उ० अणुभा० पबंधो तस्स उक्क० बहुी। उ० हा० क० ? यो उक्क० अणुभा० बंधभाणो सागारक्खएण पडिभगो तप्पा०

नीयदण्डककी दृद्धिका स्वामी संयमके अभिमुख हुआ जीव है। हानि और अवस्थान स्व-स्थानमें होते हैं। असंयत जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भक्त मत्यज्ञानी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिए। शेष भक्त ओघके समान है।

५७९. चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसंपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवधिज्ञानी जीवोंके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रथम दृण्डकमें वृद्धि स्वस्थानमें कहनी चाहिए।

५८०. कृष्णलेश्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। सातावेदनीयदण्डकका मंग नारिकयोंके समान है। स्निवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार जाित, पाँच संस्थान, पाँच संहनन और स्थावर आदि चारका भङ्ग नपुंसकोंके समान है। देवगतिपञ्चककी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है शिजसने तत्प्रायोग्य विश्वद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्थ किया है वद् उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हािनका स्वामी कौन है शितस्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव साकार उपयोगका क्ष्य होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जवन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हािनका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। श्रेष सब ओषके अनुसार साथ छेना चाहिए।

५८१. नील और कापोत लेक्यामें प्रथम दण्डक, साता दण्डक तथा स्तिवेद, पुरुषवेद, हास्य, रित, चार संस्थान और चार संहतनका मङ्ग नारिकयोंके समान है। नरकगित, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी और स्थावर आदि चारकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जिसने तत्यायोग्य जचन्य संक्षेत्रासे उत्कृष्ट संक्षेत्राको प्राप्त होकर तत्यायोग्य उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया है वह उत्कृष्ट बुद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो

१. आ. प्रती संजदासंजदे पटमदंडओ ओघं इति पाठः । २. ता.आ. प्रत्योः खह्म० वेदम० ओघि० भंगो इति पाठः । ३. ता. प्रती णिरयभंगो । देवगदिपंच० उक्क० इत्थि० इति पाठः । ४. ता. प्रती णवुंसक-भंगो । बहुी क० इति पाठः । ५. आ. प्रती ओघेण इति पाठः ।

जह० पदिदो तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्क० अव<mark>द्वाणं । देवगदि०५</mark> किण्णभंगो । णवरि काऊए तित्थयरं णिरयभंगो । सेसं^२ आउगादीणं ओघादो साधेदव्वं ।

५८२. तेऊए पढमदंडओ सोधम्मभंगो। साद० उक्क० वही कस्स ? यो तप्पा०जहण्णगादो विसोधीदो उक्कस्सगं विसोधि गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क०
वहीं । उ० हाणी क० ? यो उक्क० अणुभा० मदो देवो जादो तदो तप्पाओंगजह०
पिंडदो तस्स उक्क० हाणी। अवद्वाणं ओघं। पेचिं०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थव०४अगु०३-पसत्थ०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० सादभंगो। देवगादि०उक्क० परिहारभंगो। सेसं सोधम्मभंगो। एवं पम्माए वि। णवरि पढमदंडओ
सहस्सारभंगो। उज्जो० तिरिक्खाउमंगो। सुकाए खिवगाणं ओघं। पढमदंडगादि०
आणदभंगो।

५८३. भवसि० ओघं । अब्भवसि० पढमदंडओ ओघं । साददंडओ णिख्यभंगो । पसत्थाणं कादव्वं । णवरि चदुगदि० सव्वविसुद्धो त्ति । उज्जो० सादभंगो । सेसं ओघं ।

जीव साकार उपयोगका क्षय होनेसे प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य जघन्यको प्राप्त हुआ है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थानका स्वामी है। देव-गतिपञ्चकका भङ्ग कृष्णलेश्याके समान है। इतनी विशेषता है कि कापोतलेश्यामें तीर्थह्वर प्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है। शेष आयु आदिका भङ्ग ओघके अनुसार साध लेना चाहिए।

५८२. पीतलेश्यामें प्रथम दण्डक सौधर्मकल्पके समान है। सातावेदनीयकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जिसने तलायोग्य जधन्य विशुद्धिसे उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागवन्य किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन है ? उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करनेवाला जो जीव मर कर देव हुआ और तल्प्रायोग्य जधन्यको प्राप्त हुआ वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। अवस्थानका भङ्ग ओधके समान है। पश्चेन्द्रिय-जाति, तैजसशारीर, कार्मगशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरलप्रवृद्धिक, प्रशस्त विहायोगित, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगीत्रका भङ्ग सातावेदनीयके समान है। देवगितकी उत्कृष्ट वृद्धिका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान है। शेष भङ्ग सौधर्मकल्पके समान है। इसी प्रकार पद्मलेश्यमों भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डक सहस्रारकल्पके समान है। तथा उद्योतका भङ्ग तिर्यक्ष्यायुके समान है। शुरू-लेश्यामें क्षपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है। प्रथम दण्डक आदिका भङ्ग आनतकल्पके समान है।

५८३. भट्योंमें ओघके समान भङ्ग है। अभव्योंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंका कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि चारगितके सर्वविशुद्ध जीवके कहना चाहिए। उद्योतका भंग सातावेदनीयके समान है। शेष भंग ओघके समान है।

१. आ. प्रती देवगदि०५ णवरि इति पाठः । २. त्रा. प्रती णिरयमंगो । किण्णभंगो । सेसं इति पाठः ।

५८४ वेदग० साददंडओ तेउ०भंगो । सेसं ओधि०भंगो । उवसम० ओधि०मंगो । णविर सादा०-जस०-उचा० उक० वड्डी क० ? अण्ण० सुहुमसंप० उवसाम० चिरमे उक्क० अणु० वट्ट० तस्स उक्क० वड्डी । एवं सञ्चाणं उवसामगाणं सादादीणं पसत्थाणं । सासणे पढमदंडओ सञ्चसंकिलिट्टस्स । साददंडओ सञ्चविसुद्धस्स । पुरिसदंडओ तण्पाओ०संकि० ! तिण्णि आऊणि ओघं । सम्मामि० पढमदंडओ उक्क० वड्डी क० ? मिच्छत्ताभिम्रह० तस्स उक्क० वड्डी । उ० हा० क० ? सम्मत्ताभिम्रह० चिरमसमय-वंधगस्स तस्स उक्क० वड्डी । उक्किस्सिया हाणी अवट्ठाणं सत्थाणे । मिच्छादिद्वी० मिद०भंगो ।

५८५. असण्णीसु अन्भव०भंगो । णवरि पढमदंडए उक्क० वड्डी क० १ यो तप्पाओंग्गजह० संकि० उक्क०संकिलेसं गदो तदो उक्क० अणु० पबंधो तस्स उक्क० वड्डी । उ० हाणी अवद्वाणं सागारक्खएण पडिभग्गो । आहार० ओघं ।

एवं उकस्ससामित्रं समत्तं

५८६. जहण्णए पगदं । एत्तो जहण्णपदणिक्खेवसामित्तस्स साधणट्टं अट्टपद-भृदसमासलक्खणं वत्तइस्सामो । तं जहा—मिच्छादिद्विस्स या अणंतभागफद्दग-

५८%. वेदक सम्यक्त्वमें सातावेदनीय दण्डकका भंग पीतलेइयाके समान है। शेष भंग अवधिक्वानी जीवोंके समान है। उपशामसम्यक्त्वमें अवधिक्वानी जीवोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्त्मसम्परायिक उपशामक जीव अन्तिम अनुभागवन्धमें विद्यमान है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। इसी प्रकार सब उपशामकोंके सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका कहना चाहिए। सासादन सम्यक्त्वमें प्रथम दण्डक सर्वसंक्ष्रिष्टके, सातावेदनीयदण्डक सर्वविशुद्धके और पुरुषवेददण्डक तत्प्रायोग्य संक्ष्रिष्टके कहना चाहिए। तीन आयुका भंग ओवके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रथम दण्डकको उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन हे ? जो मिथ्यात्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानिका स्वामी कौन हे ? जो सम्यक्त्वके अभिमुख होकर अन्तिम समयमें बन्ध कर रहा है वह उत्कृष्ट हानिका स्वामी है। उत्कृष्ट अवस्थान स्वस्थानमें होता है। सातावेदनीयदण्डककी उक्ष्रप्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सम्यक्त्वके अभिमुख होतर वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सम्यक्त्वके अभिमुख है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि और अवस्थान स्वस्थानमें होते हैं। मिथ्यादिष्ट जीवोंमें मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है।

५८५. असंझियोंमें अभव्योंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डककी उत्कृष्ट बृद्धिका स्वामी कीन है ? जिसने तत्प्रायोग्य जवन्य संक्लेशसे उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया है वह उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामी है। उत्कृष्ट हानि और अवस्थानका स्वामी साकार उपयोगके क्षय होनेसे प्रतिभन्न हुआ जीव होता है। आहारकोंमें ओवके समान भंग है।

इस प्रकार उद्घष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

५८६. जघन्यका प्रकरण है। यहाँ जघन्यपदिनक्षेपके स्वामित्वका साधन करनेके लिए अर्थपदको संक्षेपमें बतलाते हैं। यथा—मिथ्यादृष्टिकी जो अनन्तमागस्पर्द्धकृद्धि है, संयतकी परिवड्ढी संजदस्स या अणंतभागफद्दगपरिवड्ढी मिच्छादिद्विस्स या अणंतभागपरिवड्ढी सा अर्णतगुणा । एदेण अद्वपदभृदसमासलक्खणेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-चदुदंस०-पंचंत० जहण्णिमा बङ्की कस्स ? अण्णदरस्स उवसा० परिवद० दुसमयसुद्धमसं० तस्स जह० वड्ढी । जह० हा० क० ? अण्ण० सुहुमसंप० खबगचरिमे जह० अणु० वट्ट० तस्स जह० हाणी 🕴 जह० अवहा० क० ? अण्ण० अप्पमत्तसं० अक्खवग० अणुवसमग० सागार-जा० सञ्चविसुद्धस्स उक्तस्सविसोधीदो पडिभग्गस्स अणंतभागेण वड्डिद्ण अवद्विदस्स जह० अवद्वाणं । णिदाणिदा-पचलापचला-थीणागि०-मिच्छ०-अणंताणु० जह० वड्ढी क० ? अण्ण संजमादो वा संजमासंजमादो वा सम्मत्तादो वा परिवदमाणगस्स दुसमयमिच्छादिहिस्स तस्स जह० वड्ढी । क० १ अण्या मणुसस्स वा मणुसीए वा भिच्छादिष्ट्रिण सन्वाहि पञ्जतीहि पञ्जत-गदस्स सागार-जा० सन्वविसु० से काले संजमं पडिविजिहिदि ति तस्स ज० हा०। ज० अवट्टा० क० ? अण्ण० पंचिंदियस्स मिच्छाद्विस्स सव्वाहि पञ्जत्तीहि पञ्जत्तगदस्स सागार-जा० तप्पाओंग्गउकस्सगादो विसोधीदो पडिभगगस्स अणंतभागेण वड्डिद्ण अवहिदस्स तस्स जह० अवहा० । णिदा-पयलाणं जह० वड्डी अवद्वाणं णाणावरण-भंगो । जह० हा० क० ? अण्ण० खबग० अपुव्यकरणस्स णिद्दा-पयलाणं वंधचरिमे बद्दमा० तस्स जह० हाणी। सादासाद०-थिराथिर-सुभासुभ-जस०-अजस० जह० वड्ढी कस्स ? अण्ण० सम्मादिहिस्स वा मिच्छादिहिस्स वा परियत्तमाणमज्ज्ञिम-

जो अनन्तभाग स्पर्धकत्रृद्धि है तथा मिथ्यादृष्टिकी जो अनन्तभागतृद्धि है वह अनन्तगुणी है। संक्षेपमें कहे गये इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन है ? जिस गिरनेवाले अन्यतर उपशामकने सूक्ष्म साम्परायमें दो समय तक वन्ध किया है वह जघन्य ृद्धिका स्वाभी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक जीव अन्तिम अनुभागवत्धमें अवस्थित है वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कीन है ? जो अन्यतर अक्षपक और अनुवशामक अप्रमत्तसंयत जीव साकार जागृत है, सर्वविशुद्धि है, उरहष्ट विशुद्धसे प्रतिभग्न हुआ है और अनन्तभागबृद्धिके साथ अवस्थित है वह जनन्य अत्रस्थानका स्वामी है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, मिश्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर जीव संयमसे, संयमासंयमसे और सम्यक्त्वसे गिर कर दो समयवर्ती मिथ्यादृष्टि है वह जधन्य वृद्धिका खामी है। जधन्य हानिका स्वामी कीन है ? मिथ्यादृष्टि, सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर मनुष्य या मनुष्यिनो जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त करेगा वह जधन्य हानिका स्वाभी है। जधन्य अवस्थानका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और साकार-जागृत जो अन्यतर पञ्चीन्द्रय मिथ्यादृष्टि जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जधन्य अवस्थानका स्वामी है। निद्रा और प्रचलाकी जघन्य वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ज्ञानावरणके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? जो अन्यतर अपूर्वकरण क्षपक जीव निद्रा और प्रचलाके बन्धके अन्तिम समयमें विद्यमान है वह जघन्य हानिका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, श्थिर, अस्थिर, ग्रुम, अञ्जय, यश:कोर्ति और अयश:कीर्तिकी जघन्य वृद्धि [हानि और अवस्थान] का स्वामी कौन है १ परिणामस्स अणंतभागेण बिहुद्ण बहुी हाइद्ण हाणी एकद्रस्थमवहाणं। अपचक्खाण०४ ज० बहुी क० ? अण्ण० संजमादो वा संजमासंजमादो वा परिवदमाणस्स दुसमयअसंजदसम्मादिष्टिस्स तस्स जह० बहुदी। ज० हा० क० ? अण्ण० असंज० सन्वाहि पज्जनीहि पज्जनादस्स सागार-जा० सन्वविसु० से काले संजमं पिडविजिहिदि त्ति तस्स [ज०] हाणी। ज० अवद्वा० क० ? अण्ण० असंज० सन्वाहि पज्जनीहि पज्ज० सागा० सन्विवसु० उक०विसोधीदो पिडमग्गस्स अणंतभागेण बिहुद्ण अवदिदस्स तस्स ज० अवद्वाणं। पश्चक्खाण०४ ज० बहुदी क० ? अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयसंजदासंजदस्स ज० बहुदी। ज० हा० क० ? अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयसंजदासंजदस्स ज० बहुदी। ज० हा० क० ? अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्य दुसमयसंजदासंजदस्स ज० वहुदी। ज० हा० क० ? अण्ण० संजमादो परिवदमाणस्य दुसमयसंजदासंजदस्स ज० वहुदी। ज० हा० क० हा०। ज० अवद्वा० क० ? अण्ण० सागार-जा० तप्पाओंम्गउक०विसोधीदो पिडमग्गस्स अणंतभागेण बिहुद्ण अवदिदस्स तस्स ज० अवद्वाणं णाणावरणभंगो। ज० हा० क० ? अण्ण० खवग० अपुव्यक० अणियद्विस्स। णविर अप्पप्पणो पाओंगं णादव्वं। इत्थि०-णवंस० ज० वहुदी क० ? अण्ण० चदुगदियस्स पंचि० सिण्ण० मिच्छा० सन्वाहि० सागार-जा० तप्पाओं ३० विसु० अणंतभागेण बिहुद्ण वहुदी हाइद्ण हाणी

जो परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव 🗜 वह अनन्तभाग वृद्धिरूपसे वृद्धि अनन्तभागहानिरूपसे हानि और इनमेंसे किसी एक जगह अवस्थानका स्वामी है । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे और संयमासंयमसे गिरनेवाला जो अन्यतर दो समयवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व विश्रद्ध जो अन्य-तर असंयतसम्यग्दष्टि जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविश्रद्ध जो अन्यतर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। प्रत्याख्यानावरणचतुष्कर्का जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिरनेवाला जो दो समयवर्ती संयतासंयत जीव है वह जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर संयतासंयत जीव अनन्तर समयमें संयमको प्राप्त होगा वह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत जो अन्यतर जीव तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभन्न होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है। चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क और उपघातकी जघन्य वृद्धि और अवस्थानका स्वामी ज्ञानावरणके समान है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपक जीव जघन्य हानिका स्वामी है। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने प्रायोग्य जानना चाहिए। स्नोवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जो सब पर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विशुद्ध अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी और मिथ्यादृष्टि जीव है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि

१. ऋा॰ प्रतौ संजमादो परिवदमाणस्स इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ बहुदूण उ) अ) बहिदस्स, आ॰ प्रतौ बहुिदूण उबहिदस्स इति पाठः। ३. ता॰ ऋा॰ः प्रत्योः सागारजा॰ कसाओ॰ इति पाठः।

एकदरत्थमवद्वाणं। अरदि-सोग० ज० वडढी क० १ अण्ण० पमत्त०संज० सागा० तप्पा० विसु० अणंतभागेण बङ्किद्ण बङ्ढी हाइद्ण हाणी एकदरत्थमबद्वाणं । णिरय-देवाउ० ज० बद्दी क० ? अष्ण० तिरिक्ख० मणुस० जहण्णिगाए पञ्जगत्तणिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणगस्स मज्झिमपरिणामस्स अणंतभागेण बिंद्रियुण बड्ढी हाइदूण हाणी एक० अबद्घाणं। तिरिक्ख-मणुसाऊणं ज० वड्डी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० जहाँण्णियाए अपजन्म-णिव्वत्तीए णिव्वत्तमाणगस्स मज्झिम० अणंतभागेण वड्डिद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एक० अवटा० । णिरयग०-देवग०ज० वर्ड्डी क० १ अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० परि-यत्तमाणमज्ज्ञिम० अणंतभागेण बह्निद्ग बह्नी हाइद्ग हाणी एक्क० अवद्वा०। एवं तिष्णिजादि-दोञाणु०-सुद्धम०-अपज्ञ०-साधार० । मणुस० १-छस्संठा०-छस्संघ०-मणु०-साणु०-दोविहा०-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आर्दे०-अणादे०-उच्चा० ज० वडढी क० १ अण्य० चदुगदि० मिच्छादि० परिय०मिज्झम० अणंतभागेण विद्विद्ण वङ्की हाइद्ण हाणी एकः० अवद्वा० । तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० ज० बङ्गी कः० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए पोरहगस्स मिच्छादि० सव्वाहि पञ्ज० सागार-जा० तप्पा०उक०-विसोधीदो पर्डिभग्गो अर्णतभागेण वड्डिद्ण वड्डी । तस्सेव से काले ज० अवहा० । ज० हा० क० ? अण्ण० सत्तमाए पुढवीए मिच्छादि० सव्वाहि पज्ज० सागा० सव्व-और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। अरित और शोककी जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध जो अन्यतर प्रमत्तसंयत जीव है वह अनन्त भागवृद्धि के द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी हैं । नरकायु और देवायुकी जघन्य बृद्धिका स्वामी कीन है ? अधन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्ति-मान और मध्यम परिणामवाळा ऐसा अन्यतर जो तिर्यक्क और मनुष्य है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा बृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। तिर्यक्काय और मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका खामी कौन है ? जघन्य अपर्याप्तक निवृत्तिसे निवृत्तमान और मध्यम परिणामवाला जो अन्यतर तिर्यञ्च और मनुष्य है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। नरकगति और देवगतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? परिवर्तमान मध्यम परिणामवास्रा अन्यतर तिर्येक्च और मनुष्य अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार तीन जाति, दो आनुपूर्वी, सूदम अपर्याप्त और साधारणको अपेक्षा स्वामित्व जानना चाहिए। मनुष्यगत्ति, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दु:स्वर, आदेय, अनादेय और उद्यगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यंतर चार गतिका परि-वर्तमान मध्यम परिणामवाला मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्वामी है। तियेक्वगति, तिर्येक्व-गत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन हैं ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और साकार-जागृत ऐसा अन्यतर सातत्री पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी तत्रायोग्य उत्कृष्ट विद्युद्धिसे प्रतिभग्न होकर अनन्तभागवृद्धि करता हुआ जघन्य वृद्धिका स्वामी हैं। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सव पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकारजागृत और सर्वविश्चद्ध जो अन्यतर सातवीं पृथिवीका मिथ्यादृष्टि नारकी अनिवृत्तिकरणके

१. ता॰ प्रतौ साद॰ मगुस॰ इति पाठः।

िसु० अणियद्विकरणे चरिमे ज० अणु० वट्ट० तस्स ज० हा० । एइंदि०-थावर० ज० वड्डी अबद्वाणं । पंचिं०-तेजा०-क०-पसत्थ४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० चदुगदि० पंचिं० सण्णि० मिच्छा० सच्वाहि प० सागा० णियमा उक्कस्ससंकिलिद्धस्स अणतभागेण बहुिद्ण बड्ढी हाइद्ण हाणी एकद० अवद्वाणं। ओरालि०-ओरालि०-अंगो०-उज्जो० ज० वर्द्धी क० ? अण्ण० णेरइ० वा देवस्स वा मिच्छादिद्विस्स सव्वाहि प० सामा० णिय० उक्क० संकि० अणंतभागेण बहुदृण बड्ढी हाइदृण हाणी एकः अवट्टाः । वेउ०-वेउ०अंगो० ज० वर्डा क० ? अण्ण० मणुस० पंचि० तिरिक्ख०-जोणिणीयस्स वा सण्णि० मिच्छादि० सच्चाहि पज्ज० सागा० णियमा उक्क० संकि० अणंतमामेण वड्डिद्ण वर्ड्टी हाइद्ण हाणी एक० अवट्ठाणं । आहार०२ ज० वर्डी क०१ अण्णा० अप्यमत्तसं० पमत्ताभिग्रह० सागार० सव्वसंकि० अणंतभागेण वड्डि-दृण वड्दी हाइदृण हाणी एक० अवहाणं। आदा० ज० वड्दी क० ? अण्ण० ईसा-र्णतकष्य देवस्स मिच्छा० सच्वाहि पञ्जतीहि पञ्ज० सागार-जा० णिय० उक्क०-संकिलि० अणंतभागेण वड्डिद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एक० अवद्वाणं । तित्थ० ज० वर्दी कः ? अण्णः मणुसस्स वा मणुसीए वा असंजदसम्मादिहिस्स सञ्चाहि पजाः अन्तिम समयमें अघन्य अनुभागबन्ध करता है वह जधन्य हानिका स्वामी है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावरकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर तीन गतिका परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव है वह अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानमें अवस्थानका स्वामी होता है। पञ्चेन्द्रियजाति, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धि का स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्रेशयुक्त अन्यतर चार गतिका पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्त-भागहानिके द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थान पर अवस्थानका स्त्रामी है। औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग और उद्योतकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्वेशयुक्त अन्यतर मिथ्यादृष्टि देन और नारकी अनन्तभागवृद्धिके द्वारा वृद्धि, अनन्तभागहानि द्वारा हानि और इनमेंसे किसी एक स्थानपर अवस्थानका स्वामी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआंगोपांगकी जघन्य बुद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेश-युक्त अन्यतर मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तभागदृद्धिद्वारा जघन्य ु वृद्धिका,अनन्तभागहानिद्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानपर जघन्य अवस्थानका _ स्वामी है। आहारकद्विककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन हैं ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त प्रमत्तसंयतके अभिमुख अन्यतर अप्रमत्तसंयत जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा अघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थान पर जघन्य -अवस्थानका स्वामी है। आतपकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त अन्यतर ऐशानकल्प तकका मिथ्यादृष्टि देव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थान पर जधन्य अवस्थानका स्वामी है। तीर्थक्करप्रकृतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और उत्ऋष्ट संक्लेशसे प्रतिभग्न हुआ

सागा०-जा० उक्स्ससंकिलेसादो पिडिभगास्स अणंतमागेण विद्विष्ण विद्वि। तस्सेव से काले ज० अवट्ठा०। ज० हा० क० ? अण्ण० असंजदसम्मादिद्विस्स सन्वाहि पज्ज० सागा० तप्पा०संकिलि० मिच्छत्ताभिम्च० चरिमसमयअसंज० तस्स ज० हाणी।

५८७. आदेसेण णेरहएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ० [४-उप०-पंचंत०] ज० वड्ढी क० ? अण्ण० असंजद० सच्वाहि पञ्ज० सागार० सच्चित्यु० अणंत०भागेण बह्निद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी एक्क० अवद्वाणं । थीणिग०३-मिच्छ०-अणंताणुवं०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० सम्मत्तादो परिवदमा० दुसमय-मिच्छा० तस्स ज० वड्ढी । ज० हा० क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि प० सागा० सव्ववि० से काले सम्मत्तं पडिविज्ञिहिदि ति तस्स ज० हा० । ज० अवद्वा० क० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० तप्पा०उक्कस्सिगादो विसोधि गदो अणंतभागेण वड्ढिद्ण अविद्वदस्स तस्स ज० अवद्वा० । सादासाद०-थिरादितिण्णियु० ओघं । इत्थि०-णवुंस० ज० तिण्णि वि क० ? अण्ण० मिच्छादि० ओघभंगो । अरिद-सोग० ज० क० ? अण्ण० सम्मादिद्वस्स तिण्णि व० । तिरिक्ख०-मणुसाऊणं ज० वड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छा० जहण्णिगाए पञ्जत्तिण्वव० णिव्वत्तमा० अणंतभागेण विद्वद्ण वड्ढी हाइद्ण हाणी

अन्यतर असंयतसम्यग्द्दष्टि मनुष्य और मनुष्यिनी अनन्तभागद्दिके द्वारा जघन्य दृद्धिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत, तत्प्रायोग्य संक्लेशयुक्त और मिथ्यात्वके अभिमुख अन्यतर असंयतसम्यग्द्दष्टि जीव अन्तिम समयमें जघन्य हानिका स्वामी है।

५८७. आदेशसे नारिकयोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर असंयतसम्यग्द्दिः जीव अनन्तभागवृद्धिद्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिद्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानपर जघन्य अवस्थानका स्वामी है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कको जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सम्यक्त्वसे गिरकर जिसे मिथ्यात्वमें दो समय हुए हैं,ऐसा अन्यतर जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध जो अन्यतर मिथ्याद्दष्टि जीव अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करेगा वृह जघन्य हानिका स्वामी है। जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत जो अन्यतर मिथ्याद्दष्टि जीव तत्प्रायोग्य उत्ऋष्ट विद्युद्धिको प्राप्त होकर अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह अधन्य अवस्थानका खामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलका मंग ओघके समान है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य तीनों ही पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्याद्यादिके ओघके समान भंग है। अरति और शोकके तीनों पदोंका स्वामी कौन है ? अन्यतर सम्यग्दिष्ट तीनों ही पदोंका स्वामी है । तिर्यक्रायु और मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्ति निवृत्तिसे निवृत्तमान अन्यतर मिथ्यादृष्टि अनन्त-भागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी

रै. ता॰ प्रतौ चरिमे समयं ऋसंज॰ इति पाठः । रे. ता॰ आ॰ प्रत्योः अप्पसत्य॰ *** जि॰ बङ्घी॰ इति पाठः ।

एक० अवद्वाणं । तिरिक्ख०३ ओघं । मणुसग दिदं छओ ओघं । पंचिं०-ओरा० तेजा०-क०-ओरा०अंगो० न्पसत्थ०४-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वह्दी क० ? अण्ण० मिच्छा० सव्वाहि पज्ज० सागा०-जा० सव्वसंकि० अणंतभागेण विद्वृत्ण वह्दी हाइदृण हाणी एक० अवद्वाणं । एवं उज्जो० । तित्थ० ज० वह्दी क० ? अण्ण० असंज० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण विद्वृत्ण वह्दी हाइदृण हाणी एक० अवद्वाणं । एवं छसु पुढवीसु । णविर तिरिक्ख०३ मणुसगिदिभंगो । सत्तमाए मणुसग०-मणुसाणु०-उज्जा० ज० वह्दी क० ? अण्ण० असंजद० सागार-जा० तप्पाओंग्गउक्तस्ससंकिलेसादो पिडभग्गो अणंतभागेण विद्वृत्ण वह्दी । तस्सेव से काले ज० अवद्वाणं । ज० हा० क० ? अण्ण० असंज० मिच्छत्ताभिग्न० तस्स ज० हाणी ।

५८८. तिरिक्षेसु पंचणा०-छदंसणा०-अड्ठक०-पंचणो०-अप्पसत्थ०४-उप०-पंचंत० ज० वड्ढी क० ? अष्ण० संजदासंज० सागार-जा० सव्विवसु० अणंतभागेण वड्डि-दृण वड्ढी हाइदृण हाणी एक० अवट्ठाणं। थीणगिद्धिदंडओ ओघं। साददंडओ ओघं। इत्थि०-णचुंस० ओघं। अरदि-सोग० ज० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं क० ? अष्ण०

एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है । तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग ओघके समान है । मनुष्य-गतिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। पञ्चिन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जयन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियांसे पर्याप्त, साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर मिथ्याद्यष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जघन्य हानिका और उनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार उद्योतका स्वामित्व जानना चाहिए। तीर्थङ्करप्रकृतिकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्लेशयुक्त अन्यतर असंयतसम्यग्द्दांब्ट जीव अनन्तभागर्झाद्धके द्वारा जघन्य बृद्धिका, अनन्तभागहानिके द्वारा जधन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जधन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार छहीं पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चगतित्रिकका भङ्ग मनुष्यगतिके समान है । सातथी पृथिवीमें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानु-पूर्वी और उच्चगोत्रकी जवन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशसे प्रतिभन्न हुआ अन्यतर असंयतसम्यग्द्रष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका स्वामी है तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? मिथ्यात्वके अभिमुख हुआ अन्यतर असंयतसम्यग्दध्टि जीव जघन्य हानिका स्वामी है।

५८८. तिर्येश्वोंमें पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वविशुद्ध अन्यतर संयतासंयत सम्यन्दृष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागवृद्धिके द्वारा जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। स्यानगृद्धिदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। अर्रात और शांककी

१. आ० प्रती आरा० ओरा० श्रंगो० इति पाठः।

संजदासंज । अपचक्खाण ०४ तिष्णि वि ओघं। णवरि हाणी संजमासंजमं पहिवर्जंतस्स । चदुआउ ०-तिष्णिगदि—चदुजा०-छस्संठा०—छस्संघ०-तिष्णिआणु०-दोविहा०-धावरादि४-मिन्झिल्लुगुगलाणि तिष्णि उचा० ज० वह्ही क० १ अण्ण० मिन्छादि० परिय०मिन्झिम० अणंतभागेण तिष्णि वि०। तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु० -णीचा० ज० वह्ही क० १ अण्ण० वादरतेउ०-वाउ०जीवस्स सव्वाहि प० अणंतभागेण तिष्णि वि। पंचिं०-वेउव्वि०-तेजा०—क०-वेउव्वि०अंगो०—पसत्थ०४-अगु०३—तस०४-णिमि० ज० वह्ही क० १ अण्ण० पंचिं० सिण्ण० मिन्छा० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण विद्वृष्ण वह्ही हाह्दूण हाणी एकदर० अवहाणं। ओरालि०-ओरालि०अंगो०-आदाउङ्गो० ज० वह्ही क० १ अण्ण० पंचिं० सिण्ण० मिन्छा० सागा० तप्पा०संकि० अणंतभागेण विद्वृष्ण वहही हाह्दूण हाणी एकद० अवहाणं। एवं पंचिं०तिरिक्ख०३। णवरि तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० णिरयभंगो।

५८९. पंचिं०तिरि०अपञ्ज ० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक०-अप्पसत्थ०४-७प०-पंचंत० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० सिण्णस्स सन्वविद्य० अणंत-

जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? अन्यतर संयतासंयत जीव उक्त तीनों पदांका स्वामी है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके तीनों हो पदांका भङ्ग ओधके समान है। इतनी विशेषता है कि संयमासंयमको प्राप्त होनेवाळा जीव जघन्य हानिका स्वामी है । चार आयु, तीन गति, चार जाति, छह संस्थान, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, दो विहायो गति, स्थावर आदि चार, मध्यके तीन युगल और उन्नगोत्रकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कौन 🕏 ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धि, अनन्त-भागहानि और अवस्थानके द्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है। तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ अन्यतर बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव अनन्तभागदृद्धि, अनन्तभागद्दानि और अवस्थानके द्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वैक्रियिकआङ्कोपाङ्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्लेशयुक्त अन्यतर पश्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्याद्दष्टि जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागद्दानिरूपसे जघन्य द्दानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। औदारिकशरीर, औदारिक-आङ्कोपाङ्ग, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत और तत्प्रा-योग्य संक्षेशयुक्त अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्याद्दव्दि जीव अनन्तआगवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। इसी प्रकार पद्धेन्द्रिय तिर्थेखित्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रगति, तिर्यक्रगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भङ्ग सामान्य नारिकयोंके समान है।

५८९. पञ्चेन्द्रिय तिर्येक्च अपर्याप्त जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोछह कषाय, पाँच नोकषाय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी सर्वविशुद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका,

१. ता॰ प्रतौ तिण्णिकि॰। तिरिक्खाणु॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ वही क॰ १ पंचि॰ इति पाठः।

भागेण विद्धित्ण वह्ही हाइत्ण हाणी एकद० अवद्वा० । सादासाद०-दोगिद-पंचजा०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-तसादिदसयुग०-दोगो० ज० वह्ही क० ? अण्ण० पिरय०मिष्क्रम० अणंतभागेण विद्धित्ण वह्ही हाइद्ण हाणी एक अवद्वाणं । इत्थि०-णवंस०-अरिद-सोग० ज० वह्ही क० ? अण्ण० सिण्ण० सागा० तप्पा०विसु० अणंतभागेण विद्धित्ण वह्ही हाइद्ण हाणी एक० अवद्वाणं । दोआउ० ओघं । ओरा०-तेजा०-क०-[ओरालि०अंगो०-]पसत्थ०४-अगु०-णिमि० ज० वह्ही क० ? अण्ण० पंचि० सिण्ण० सागा० णिय० उक्क० संकि० अणंतभागेण विद्धित्ण वही हाइद्ण हाणी एक० अवद्वा० । पर०-उस्सा०-आदाउजो० ज० वह्ही क० ? अण्ण० सागा० तप्पा०संकि० अणंतभागेण तिण्णि वि । एवं सव्वअपज०-[सव्वएइंदि०-] सव्व-विगलिं०-पंचकायाणं च । णवरि एइंदिएसु तिरिक्ख०-तिरिक्खाणु०-णीचा० तिरिक्खांचं । तेउ-वाऊणं पि तिरिक्खगदितिगं णाणा०भंगो ।

५९०. मणुस०३ खविगाणं ओघं। सेसं पंचि०तिरि०भंगो। तित्य० ओघं०। ५९१. देवेसु पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ साददंडओ इत्थि०-णबुंस०-अरदि-सोग०-[दो]आउ० णिरयभंगो। दोगदि-एइंदि०-छस्संठा०-छस्संघ०-दोआणु०-दोविहा०-

अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, दो गति, पाँच जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो भानुपूर्वी, दो विहायोगित, त्रसादि दस युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघ य अवस्थानका स्वामी है। स्नीवेद, नपुंसकवेद, अर्रात और शोकको जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संझी, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य विद्युद्ध जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जधन्यवृद्धिका, अनन्तभाग-हानिरूपसे जघन्य हानिका भौर इनमेंसे किसी एक अवस्थित स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। दो आयुओंका भक्क ओघके समान है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकआङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलधु और निर्माणकी जधन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, साकार-जागृत और नियमसे उत्कृष्ट संक्लेशयुक्त जीव अनन्त-भागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका, अनन्तभागहानिरूपसे जघन्य हानिका और इनमेंसे किसी एक अवस्थित स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। परघात, उच्छास, आतप और उद्योतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर संज्ञी, साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट जीव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, अनन्तभागहानि और अवस्थितरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। इसी प्रकार सब अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंमें तिर्येक्कगित, तिर्येक्कगत्यानुपूर्वी और नीच-गोत्रका भङ्ग सामान्य तिर्यञ्जोंके समान है। अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें भी तिर्यञ्ज-गतित्रिकका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है।

५९०. मनुष्यत्रिकमें श्लपक प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । शेष भंग पञ्चेन्द्रियतिर्यर्क्षके समान है । तीर्थङ्कर प्रकृतिका भंग ओघके समान है ।

४९१. देवोंमें प्रथम दण्डक, स्त्यानगृद्धिदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अर्ति, शोक और दो आयुओंका मंग नारिकयोंके समान है। दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह

थावर०-तिष्णियुग०-दोगो० ज० बड्डी क० ? अण्ण० परियत्तमाणमिन्सम० अणंत-मागेण तिष्णि वि० । पंचिं०-ओरा०अंगो०-तस० ज० बड्डी क० ? अण्ण० सणकुमार याव उत्तरिमदेवस्स मिच्छा० सागा० सव्वसंकि०अणंतभागेण तिष्णि वि० । ओरा०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-बादर-पज्जत-पत्ते०-णिमि० ज० बड्डी क० ? अण्ण० मिच्छा० सागा० णिय० उक्क०संकि० अणंतभागेण तिष्णि वि० । आदा० ज० बड्ढी क० ? अण्ण० मिच्छादि० ईसाणंतदेव० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण तिष्णि वि० । उज्जो० ज० बड्डी क० ? अण्ण० मिच्छादि० सागा० सव्वसंकि० अणंतभागेण तिष्णि वि० । तित्थ० णिरयभंगो । भवण०-वाण०-जोदिसि० सोधम्मीसा० देवोधं । णवरि पंचिं०-तस० परि०मज्झि० अणंतभागेण तिष्णि वि० । औरालि-सरीरअंगोवंग० तप्याओंग्गसंकिलिइस्स तिण्णि वि० ।

५९२. सणकुमार याव सहस्सार ति पढमपुढविभंगो । आणद याव णवगेवजा ति पढमदंडओ थीणगिद्धिदंडओ साददंडओ इत्थि०-णवुंस०-अरिद-सोग०-मणुसाउ० देवोघं । मणुस०-पंचिं०-ओरा०-तेजा०-क०-ओराठि०अंगो०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-तस०४-णिमि० ज० वड्ढी क० १ अण्ण० मिच्छादि० सागा० सम्बसं०

संस्थान, छद्द संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विद्दायोगति, स्थावर, तीन युगल और दो गोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला जीव क्रमसे अनन्तभागरूप वृद्धि, हानि और अवस्थान रूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है ? साकार-जागृत और सर्व संक्रिष्ट अन्यतर सनत्कुमारसे छेकर उपरिम प्रैवेयकतकका मिथ्यादृष्टि देव क्रमसे अनन्तभाग-वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदींका स्वामी है। औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिश्यादृष्टि, साकार-जागृत और नियमसे उत्दृष्ट संक्षेशयुक्त जीव कमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानद्वारा तीनों ही पदोंका स्वामी है। आतपकी जघत्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और सर्वसंक्रेशयुक्त अन्यतर ऐशान करूप तकका मिथ्यादृष्टि देव क्रमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदींका स्वामी है। उद्योतकी जघन्य दृद्धिका स्वामी कीन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्वसंह्वेशयुक्त देव कमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामीहै । तीर्थं द्वरप्रकृतिका भङ्ग नारकियोंके समान है । भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशानकल्पके देवोंमें सामान्य देवोंके समान भक्न है। इतनी विशेषता है कि पश्चेन्द्रियजाति और त्रसके तीनों ही पदोंका स्वामी परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला देव कमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे होता है। औदारिकशरीर आङ्गोपांगके तीनों ही पदोंका स्वामी तत्यायोग्य संक्षिष्ट देव होता है।

५९२. सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्पतक प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। आनत-कल्पसे लेकर नीवें प्रैवेयकतकके देवोंमे प्रथम दण्डक, स्यानगृद्धिदण्डक, सातावेदनीयदण्डक, क्रीवेद, नपुंसकवेद, अरित, शोक और मनुष्यायुका भंग सामान्य देवोंके समान है। मनुष्य-गति, पक्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिक आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणकी जघन्य वृद्धिका अणंतभागेण तिण्णि वि० । छस्संठा०-छस्संघ०-दोविहा० मन्झिमाणि तिण्णियुगलाणि दोगोदस्स च ज० वड्ढी कस्स ? अण्ण० मिच्छा० परिय०मन्झिम० अणंतभागेण तिण्णि वि० । [तित्थ० देवोघं ।]

५९३. अणुदिस याव सर्वेड० त्ति पढमदंडओ साददंडओ अरदि-सोग-मणुसाउ० देवोघं । मणुस०-पंचि०-ओरा०-तेजा०-क०-समचदु०-ओरा०अंगो०-वज्जरि०-पसत्थ०४-मणुसाणु०-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्सर-आर्दे०-णिमि०-तित्थ०-उच्चा० ज० वट्टी क० ? अण्ण० सागा० सञ्वसंकि० अणंतभागेण तिण्णि वि०।

५९४. पंचिंव-तस०२-पंचमण०-पंचवचिव-कायजोगिव ओघं। ओरालिव ओघं। णविर तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं। ओरालिविमव पढमदंडओ सम्मादिष्टिस्स। थीण-गिद्धिदंडओ पंचिंव सिण्णिव सन्विवसुव। तिरिक्खगदितिगं तिरिक्खोघं। एवं सेसाव ओघभंगो। णविर से काले सरीरपञ्जिषं जाहिदि ति भाणिदव्वं। वेउव्विव देवोघं। णविर तिरिक्खगदितिगं ओघं। वेउव्वियमिव पढमदंडओ सम्मादिष्टिस्स। थीण-गिद्धिदंडओ मिच्छादिव सागाव सन्विवसुव से काले सरीरपञ्जि जाहिदि ति अणेत-

स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्व संक्रेशयुक्त अन्यतर देव क्रमसे अनन्तभाग बृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। छह संस्थान, छह संहमन, दो विहायोगित, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रकी जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर मिथ्यादृष्टि परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला देव क्रमसे अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। तीर्थङ्करप्रकृतिका भंग सामान्य देवोंके समान है।

प्९३. अनुदिशसे छेकर सर्वार्थिसिङ्कि तकके देवांमें प्रथम दण्डक, सातावेदनीय दण्डक, अरित, शोक और मनुष्यायुका भंग सामान्य देवांके समान है। मनुष्यगति, पश्चेन्द्रियजाति, ओदारिकशरीर, तैजसशरार, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकआंगोपांग, यक्रपेम-नाराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरु छ्युत्रिक, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुरवर, आदेय, निर्माण, तीथंद्वर और उचगीत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर साकार-जागृत और सर्व संक्रेशयुक्त देव कमसे अनन्तभागवृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है।

५९४. पख्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी और काययोगी जीवोंमें ओषके समान भंग हैं। औदारिककाययोगी जीवोंमें औषके समान भंग हैं। इतनी विशेषता हैं कि तिर्यक्चगतित्रिकका भंग सामान्य तिर्यक्चोंके समान हैं। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव हैं। स्यानगृद्धिदण्डकका स्वामी पख्चेन्द्रिय संज्ञी और सर्वे-विशुद्ध जीव हैं। तिर्यक्चगतित्रिकका भंग तिर्यक्चोंके समान हैं। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भंग भोषके समान हैं। इतनी विशेषता है कि जो अनन्तर समयमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त होगा वह स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिए। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सामान्य देवोंके समान भंग हैं। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्चगतित्रिकका भंग ओषके समान हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी सम्यग्दृष्टि जीव हैं। जो मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत और सर्वविशुद्धि जीव अनन्तर

१. ता• प्रती सेसा० । स्रोधि० स्रोघं णवरि सेस (ले) काल (ले) सरीरपजात्तं, आ० प्रती सेसा० स्रोधिसंगो । णवरि से काले सरीरपजात्तं इति पाटः ।

भागेण तिष्णि वि० । सेसं देवोघभंगो । आहार०-आहारमि० सव्बद्धभंगो । कम्मइ० पढमदंडओ ज० बड्ढी क० ? अण्ण० चदुगदि० सम्मादि० । सेसाणं देवभंगो । एवं अणाहारए ति ।

५९५. इत्थिवेदे पढमदंडओ अणियद्विखवगः । थीणगिद्धिदंडओ ओघं । साद-दंडओ तिगदियस्स । अद्वक्तः ओघं । इत्थिः णवुंसः तिगदिः । अरदि-सोगं ओघं । चदुआउ-दोगदि-तिण्णिजाः -दोआणुः -थावरादिः ४—आहार २ -तित्थः ओघं । दोगदि-एइंदिः -छस्संठाण-[छस्संघः -दोआणुः -] दोविहाः -- मिन्झिल्लातिण्णियुः - दोगोः तिगदिः । पंचिं ० वेडिव्यः -वेडिव्यः अंगोः -तसः जः बङ्घो कः ? अण्णः दुगदियः सव्वसंकिः । ओराः ० -[ओरालिः अंगोः ० -] आदाः छोः जः वङ्घी कः ? अण्णः देवीए संकिलिद्धः । तेजाः -कः पसत्थः ४-अगुः ३ -बादर-पञ्जत्त-पत्ते ० - णिमिः जः बङ्घी कः ? अण्णः तिगदियः तप्पाः संकिलिः । [सेसं ओघं ।] पुरि-सेसु पढमदंडओ इत्थिवेदमंगो । सेसं पंचिदियमंगो । णवरि तिरिक्खगदितिगं मणुसिमंगो ।

५९६. णवुंसगे पढमदंडओ इत्थिभंगो । दोगदि-चदुजादि-दोआणु०-थावरादिध-

समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा वह अनन्तभाग वृद्धि, हानि और अनन्तर अवस्थानरूपसे स्त्यानगृद्धिदण्डकके तीनों ही पर्दोका स्वामी है। शेष भंग सामान्य देवोंके समान है। आहारककाययोगी और आहारकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सर्वार्थिसिद्धिके समान भंग है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें प्रथम दण्डककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर चार गतिका सम्यन्द्दिष्ट जीव स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भंग देवोंके समान है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

५९५. स्वीवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका स्वामी अनिवृक्तिकरण क्षपक जीव है। स्त्यानगृद्धदण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकका स्वामी तीन गतिका जीव है। आठ कपायोंका भङ्ग ओघके समान है। स्वीवेद और नपुंसकवेदका स्वामी तीन गतिका जीव है। अरति और रोकका भङ्ग ओघके समान है। चार आयु, दो गति, तीन जाति, दो आनुपूर्वी, स्थावर आदि चार, आहारकद्विक और तीर्थंद्वर प्रकृतिका भङ्ग ओघके समान है। दो गति, एकेन्द्रियजाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित, मध्यके तीन युगल और दो गोत्रके तीनों पदोंका स्वामी तीनों गितका जीव है। पञ्चिद्वयज्ञाति वैक्षियक शरीर, वैक्षियिकआङ्गोपाङ्ग और त्रसकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है। सर्वसंक्ष्मि आन्यान वृद्धिका स्वामी है। वैज्ञातिका जीव तीनों पदोंका स्वामी है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग, आतप और उच्चोतकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है। सर्वसंक्षिष्ट अन्यतर देवी तीनों पदोंकी स्वामी है। तैजसशरीर, कामणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरलघुत्रिक, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और तिर्माणकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है? तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट अन्यतर तीन गतिका जीव तीनों पदोंका स्वामी है। होष भङ्ग ओघके समान है। पुरुषवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग स्वीवेदी जीवोंके समान है। शेष भङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि तिर्थंद्व-गितिकका भंग मनुष्यिनियोंके समान है।

५९६. नर्षुसकवेदी जीवोंमें प्रथमदण्डकका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। दो गति, भार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चारके तीनों पदोंके स्थामी परिवर्तमान मध्यम दुर्गादय० तिरिक्ख० मणुस० परिय०मिज्झम० । मणुसर्गादिदंडओ तिगदिय०। तिरिक्ख०३ ओघं। पंचिं०-तेजा०-क०-पसत्थ०४-अगु०३-तस४-णिमि० तिगदियस्स सन्यसंकि०। ओरालि०-ओरा०अंगो० उज्जो० णेरइग० सन्वसंकि०। वेउ०-वेउ० अंगो० ओघं। आदावं दुर्गादय०। सेसं ओघं।

५९७. अवगद्वेदे पहमदंडओ ओघं। साद०-जस०^३-उचा० ज० वहुी क० १ अण्ण० विदियसमयअवगद्वेदे०। ज० हा० क० १ अप्प० उपसाम० परिवद० दुसमय०^३सुहुमसंप० । एवं सुहुमसंप०। कोघादि०४ पहमदंडओ इत्थिभंगो। सेसं ओघं।

५९८. मदि०-सुद० पढमदंडओ ज० वड्डी क० ? अण्ण० मणुसस्स संजमादो परिवदमाणस्स दुसमयबंधस्स तस्स ज० वड्डी । ज० हा० क० ? अण्ण० मणुसस्स सागा० सन्वविसु० संजमाभिग्र० चिरमे अणु० वट्ट० तस्स ज० हाणी । ज० अवट्टा० कस्स० ? अण्ण० पंचि० सिण्ण० सन्वाहि प० तप्पा०उक्क०विसोधीदो परिभग्गस्स अणंतभागेण बाड्डिद्ण अवद्विदस्स तस्स ज० अवट्टा० । सादादिदंडओ ओघं चदुगदि-यस्स । सेसाणं पि ओघं । एवं विभंग० ।

परिणामवाले दो गतिके तिर्यञ्ज और मनुष्य हैं। मनुष्यगतिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। तिर्यञ्जगतित्रिकका भंग ओघके समान है। पञ्जन्तियजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, त्रसचतुष्क और निर्माणके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिष्ट तीनों गतिका जीव है। औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग और उद्योतके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्लिष्ट नारकी है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआंगोपांगका भंग ओघके समान है। आतपके तीनों पदोंका स्वामी दो गतिका जीव है। शेष भक्न ओघके समान है।

५९७. अपगतवेदी जीवोंमें प्रथम दण्डक ओघके समान है। सातावेदनीय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कीन है ? अन्यतर द्वितीय समयवर्ती अपगतवेदी जीव जघन्य वृद्धिका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? अन्यतर उपशमश्रीणिसे गिरनेवाला द्वितीय समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक जीव जघन्य हानिका स्वामी है। इसी प्रकार सूद्मसांपरायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। क्रोध आदि चार कषायवाले जीवोंमें प्रथम दण्डकका भक्त स्त्रीवेदी जीवोंके समान है। शेष भक्त ओघके समान है।

५९८. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? संयमसे गिर कर द्वितीय समयमें बन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य जघन्य वृद्धिका स्वामी है । जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत सर्वविशुद्ध और संयमके अभिमुख होकर अन्तिम समयमें अनुभागवन्ध करनेवाला अन्यतर मनुष्य जघन्य हानिका स्वामी है । जघन्य अवस्थानका स्वामी कौन है ? सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त और तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे प्रतिभग्न हुआ जो अन्यतर पञ्चेन्द्रिय संज्ञी जीव अनन्तभागवृद्धिके साथ अवस्थित है वह जघन्य अवस्थानका स्वामी है । सातावेदनीय आदि दण्डकका मङ्ग चार गतिके जीवके ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका भङ्ग भी ओघके समान है । इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंमें जानना चाहिए ।

ता० त्रा० प्रत्योः मणुस० ३ परिय०मिज्ञम० इति पाठः । २. ता० त्रा०-प्रत्योः त्रोघं । सुद∙ जस० इति पाठः । ३ त्रा०प्रतौ त्रण्ण० उवसमपदम० दुसमय० इति पाठः ।

५९९. आभिणि०-सुद०-ओधि० पढमदंडओ ओघं। सादासाद०-थिरादितिण्णियु० चढुगदि०। सेसाणं पि संजमाभिग्रहाणं ओघं। मणुसगदिपंचग० ज०
वड्ढी क० ? अण्ण० देव० णेरइ० सागा० तप्पा०उकस्ससंकिलेसादो पिडमग्गस्स
अणंतभागेण विद्विद्य अविद्विद्स्स। तस्तेत्र से काले ज० अवद्वाणं। ज० हा० क० ?
अण्ण० सागा० उक्क०संकि० मिच्छत्ताभिग्र० चिरमे अणु० वद्व० तस्सेव ज० हाणी।
मणुसाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० देव-णेरइ० जहण्णियाए पञ्जणिव्वत्तीए ज०
परिय०मिज्झम० [अणंतभागेण विद्विद्ण वड्ढी] हाइद्ण हाणी एकद० अवद्वाणं।
देवाउ० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुस० ज० पञ्जणिव्व० ज०
परिय०मिज्झम०। देवगदि०४ ज० वड्ढी क० ? अण्ण० तिरिक्ख० मणुसस्स मणुस
गदिमंगो। पंचि०-तेजा०-क०-समचदु०-पसत्थ०४-अगु०३-पसत्थ०-तस०४-सुमगसुस्सर-आदे०-णिमि०-उच्चा० ज० वड्ढी क० ? अण्ण० चढुगदि० तिण्णि वि
मणुसगदिभंगो। एवं ओधिदंसणि-सम्मादि०-खइग०-वेदग०-उवसम०-सम्मामिच्छादिहि
ति। णवरि खइगे पसत्था० सत्थाणे ज० वड्डी क० ? अण्ण० सव्वसंकि० अणंतभागेण
तिण्णि वि०। मणपञ्जव० खविगाणं ओघं। सेसाणं ओधिभंगो। एवं संजद-सामाइ०-

५९९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें प्रथम दण्डकका भङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीय, असातावेदनीय और स्थिर आदि तीन युगलके तीनों पदोंका स्वामी चारों गतिका जीव है। शेष संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भी भङ्ग ओघके समान है। मनुष्यगतिपञ्चककी जधन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत और तत्प्रायोग्य उत्क्रष्ट संक्षेत्रासे प्रतिभन्न हुआ अन्यतर देव और नारकी जीव अनन्तभागवृद्धिरूपसे जघन्य वृद्धिका स्वामी है। तथा वही अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। जघन्य हानिका स्वामी कौन है ? साकार-जागृत, उत्हृष्ट संक्षेशयुक्त और मिश्यात्वके अभिमुख हुआ जो अन्यतर जीव अन्तिम अनुभागबन्धमें अवस्थित है वह जधन्य हानिका स्वामी है। मनुष्यायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जधन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान तथा परिवर्तमान मध्यम परिणाम-वाळा अन्यतर देव और नारकी अनन्तभागवृद्धिके साथ जघन्य वृद्धिका स्वामी है, अनन्तभाग-हानिके साथ जदन्य हानिका स्वामी है तथा इनमेंसे किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थानका स्वामी है। देवायुकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? जघन्य पर्याप्त निवृत्तिसे निवृत्तमान और जघन्य परिवर्तमान मध्यम परिणामवाला अन्यतर तिर्यश्च और मनुष्य यथायोग्य तीनों पदोंका स्वामी है। देवगतिचतुष्ककी जघन्य बृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर तिर्येख्न और मनुष्यके मनुष्यगतिके समान भङ्ग है । पञ्चीन्द्रयजाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलयुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्चगोत्रकी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर चारों गतिका जीव तीनों ही पदोंका स्वामी है जो मनुष्यगतिके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अवधि-दर्शनी, सम्यग्दष्टि, श्वायिकसम्यग्दष्टि, वेद्कसम्यग्दष्टि, उपशमसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिश्या-दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यक्त्वमें प्रशस्त प्रकृतियोंकी स्वस्थानमें जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सर्वसंष्टिष्ट जीव अनन्तभाग वृद्धि, हानि और तदनन्तर अवस्थानरूपसे तीनों ही पदोंका स्वामी है। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्षपक प्रकृतियोंका भन्न ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भन्न अवधिज्ञानी जीवोंके समान

छेदो ०-परिहार ०-संजदासंज ० । णवरि किंचि विसेसो णादव्वो ।

६००. असंजदेसु पढमदंडओ मणुसस्स असंजदसम्मादिद्विस्स । सेसं मदि०भंगो ओघो व । चक्खु० तसपञ्जत्तभंगो । अचक्खु० ओघं ।

६०१. किष्णाए पढमदंडओ णिरयोघं। एवं विदियदंडओ। सादादिदंडओ तिगदिय०। इत्थि०-णवुंस० तिगदिय०। अरदि-सोग० णेरइगस्स सम्मादि०। चढु०-आउ० ओघं। दोगदि—चढुजा०—दोआणु०—थावरादि०४दंडओ णवुंसगभंगो। तिरिक्खगदितियं ओघं। मणुसगदिदंडओ तिगदियस्स। पंचिं०दंडओ तिगदियस्स संकिलेसं०। ओरा०-ओरा०अंगो०-उजो० णेरइ० मिच्छादि० सव्वसंकि०। वेउ०-वेउ०अंगो० दुगदियस्स मिच्छा० उक्क०संकि०। आदावं दुगदिय० तप्पा०संकि०। तित्थ० ओघं। णील-काऊणं किष्णाभंगो। णवरि तिरिक्खगदितिय० एइंदियभंगो। पंचिंदियदंडओ णिरयभंगो। वेउव्वि०-वेउव्वि०अंगो०-आदाव० ज० दुगदिय० तप्पा०संकि०। दोगदि—चढुजादि—दोआणु०-थावर०४-णवुंसग-मणुसगदिदंडओ तिगदियस्स कादव्वं।

६०२. तेखले० पढमदंडओ परिहारभंगो। विदियदंडगादिसंजमाभिग्रहाणं

६०२. पीतलेक्यामें प्रथम दण्डकका भङ्ग परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान है। द्वितीय

है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इनमें जो कुछ विशेषता है वह जान लेनी चाहिए।

६००. असंयतोंमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्य है। शेष भङ्ग मत्यज्ञानी जीवों और ओघके समान है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें त्रसपर्याप्त जीवोंके समान भङ्ग है। अचक्षुदर्शनवाले जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है।

६०१. कृष्ण लेक्यामें प्रथम दण्डकका भन्न सामान्य नारिकयोंके समान है। इसी प्रकार दसरे दण्डकका भक्न जानना चाहिए। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। स्तिवेद और नपुंसकवेदके तीनों पदोंका स्वामी तीनों गतिका जीव है। अरित और शोकके तीनों पदोंका स्वामी सम्यग्दृष्टि नारकी है। चारों आयुओंका भक्न ओघके समान है। दो गति, चार जाति, दो आनुपूर्वी और स्थावर आदि चार दण्डकका भक्क नपुंसकवेदी जीवोंके समान है। तिर्यञ्जगतित्रिकका भन्न ओघके समान है। मनुष्यगतिदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। पञ्चन्द्रियजातिदण्डकके तीनों पदोंका खामी संक्षिष्ट तीनों गतिका जीव है। औदारिकशरीर, औदारिक आङ्गोपाङ्ग और उचीतके तीनों पदोंका स्वामी सर्वसंक्रिष्ट मिथ्यादृष्टि नार्की है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकआङ्गोपाङ्गके तीनों पदोंका स्वामी उक्तप्ट संद्वेशयक्त मिथ्यादृष्टि दो गतिका जीव है। आतपके तीनों पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्षिष्ट दो गतिका जीव हैं। तीर्थक्कर प्रकृतिका भक्क ओघके समान है। नील और कापीत लेक्यामें कृष्यलेक्याके समान भन्न है। इतनी विशेषता है कि तिर्यक्रगतित्रिकका भन्न एके न्द्रियोंके समान है। पञ्चेन्द्रियजातिदण्डकका भंग नारिकयोंके समान है। बैक्कियिकशरीर, बैकियिकआंगोपांग और आतपके तीनों पदोंका स्वामी तत्प्रायोग्य संक्षिष्ट दो गतिका जीव 崀 । दो गति, चार जाति, दो .आनुपूर्वी, स्थावर चतुष्क, नपुंसकवेददण्डक और मनुष्यगति-दण्डकके तीनों पदोंका स्वामित्व तीन गतिके जीवोंके कहना चाहिए।

ओयं। साददंडओ तिगदियः। इत्थिः णांसं देवः तप्पाः विसुः तिष्णि वि। अरिद्-सोगः ओयं । दोगदि-दोजादि-छस्संठाः छस्संघः दोआणुः दोवहाः -तस-थावरादितिष्णियुः देवस्स । देवगदिः ४ जः वड्ढी कः ? अष्णः तिरिक्षः मणुसः सम्बसं । ओरालिः याव णिमिः ति सोधम्मभंगो । ओराः अंगोः देवस्स तप्पाः संकिलिः । तित्थः देवस्स । एवं पम्माए वि। णवरि पंचिदियदंडओ सहस्सारभंगो ।

६०३. सुकाए खविगाणं संजमाभिग्रहाणं च ओघं। साददंडओ तिगदिय०। सेसाणं पि आणदभंगो। देवगदि०४ पम्मभंगो।

६०४. भवसि० ओघं। अञ्मवसि० पढमदंडओ ज० क० ? अण्ण० चढुग० सन्वित्यु० । सेसाणं ओघं । सासणे पढमदंडओ चढुग० सन्वित्यु० । सादादिदंडओ चढुग० । पंचिं०-ओरा०दंडओ चढुग० सन्वसंकि० । तिरिक्खगदितियं सत्तमाए सन्वित्यु० । मिन्छादि० मदि०भंगो । असण्णी० पढमदंडओ सन्वित्यु० । सेसं ओघं । आहार० ओघं । एवं जहण्णयं समत्तं ।

एवं सामित्तं समत्तं।

दण्डक आदि संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका मङ्ग ओघके समान है। सातावेदनीयदण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। स्नीवेद और नपुंसकवेदके तीनों ही पदोंका स्वामी तत्त्रायोग्य विशुद्ध देव है। अर्रात और शोकका मङ्ग ओघके समान है। दो गति, दो जाति, छह संस्थान, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगित और त्रस व स्थावर आदि तीनों युगलोंके तीनों पदोंका स्वामी देव है। देवगतिचतुष्ककी जघन्य वृद्धिका स्वामी कौन है ? अन्यतर सर्वसंष्ठिष्ट तिर्यक्क और मनुष्य यथायोग्य तीनों पदोंका स्वामी है। औदारिकशरीरसे लेकर निर्माण तककी प्रकृतियोंका भंग सौधमी कल्पके समान है। औदारिक आंगोपांगके तीनों पदोंका स्वामी यथायोग्य तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट देव है। तीर्थक्क प्रकृतिका स्वामी देव है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पद्मीन्द्रियज्ञातिदण्डकका भंग सहस्नार कल्पके समान है।

६०३. शुक्ललेश्यामें क्षपक और संयमके अभिमुख प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। सातावेदनीय दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी तीन गतिका जीव है। शेष प्रकृतियोंका भी भंग आनत कल्पके समान है। देवगतिचतुष्कका भंग पद्मलेश्याके समान है।

६०४. भन्योंमें ओघके समान मंग है। अभन्योंमें प्रथम दण्डकके तीनों जघन्य पदोंका स्वामी कौन है? सर्विवशुद्ध अन्यतर चार गतिका जीव स्वामी है। शेष प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। सासादनसम्यक्वमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्वविशुद्ध चारों गतिका जीव है। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी चारों गतिका जीव है। सातावेदनीय आदि दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्व संक्लिष्ट चारों गतिका जीव है। तिर्यद्धगतित्रिकके तीनों पदोंका स्वामी सातवीं पृथिवीका सर्वेवशुद्ध नारकी है। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मत्यक्षानी जीवोंके समान भंग है। असंक्षी जीवोंमें प्रथम दण्डकके तीनों पदोंका स्वामी सर्वविशुद्ध जीव है। शेष भंग ओघके समान है। आहारक जीवोंमें ओघके समान मंग है। इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार स्वामित्व समाप्त हुआ ।

१, आ॰ प्रतौ तिण्णि वि स्रोघं इति पाठः । २. आ. प्रतौ णिमि॰ इत्थि॰ सोधम्ममंगा इति पाठः ।

अपाबहुअं

६०५. अप्पाबहुगं दुवि०-जह० उक्क० । उक्क० पगदं । दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-सत्तणोक०-तिरिक्ख०- एइंदि०-हुंड-अप्पसत्थ०४-तिरिक्खाणु०-उप०-थावर-अथिरादिपंच०-णीचा०-पंचंत० सव्वत्थोवा उक्क० बढ्ढी । उक्क० अवहा० विसेसाधिया । उक्क० हाणी विसे० । सादा० देवग०-पंचि०-वेउव्वि०-आहार०-तेजा०-क०-समचदु०-दोअंगो०-पसत्थ०४-देवाणु०-अगु०३-पसत्थवि०-तस०४-थिरादिछ०-णिमि०-तित्थ०-उचा० सव्वत्थो० उक्क० अवहा० । उक्क० हाणी अणंतगु० । उक्क० वही अणंतगु० । इत्थि०-पुरिस०-चदु-आछ०-दोगदि-तिण्णिजादि-ओरालियसरीर-चदुसंठा०-ओरालि०अंगो०-छस्संघ०-दोआणु०-आदा०-अप्पसत्थ०-सुहुम ०-अपज०-साधार०-दुस्सर० सव्वत्थोवा उक्क० वही । उ० हाणी अवहाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसा० । उज्जो० उक्क० हाणी अवहा० दो वि तुल्लाणि थोवाणि । उ० वही अणंतगु० ।

६०६. षेरइएसु सब्बपगदीणं सव्बत्थोवा उ० वड्डी । उ० हा० अवट्डाणं च दो वि तुल्लाणि विसे० । उज्जो० ओघं । एवं सत्तमाए । उवरिमासु छसु उज्जोवं इत्थि-भंगो । सेसा एवमेव । सन्वतिरिक्स-सन्वअपज्ञ०-सन्वदेवस्स एइंदि०-विगलिं०-पंचका-याणं ओरालियमि०-वेउ०-आहार³०-आहारमि०-पंचले०-अब्भव०-सासण०-

अल्पबहुत्व

६०५. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जयन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओय और आदेश । ओयसे पाँच झानावरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, स्रोछह कथाय, सात नोकथाय, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उपघात, स्थावर, अस्थिर आदि पाँच, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायकी उत्कृष्ट दृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट अवस्थान विशेष अधिक है । इससे उत्कृष्ट आहारकश्रारीर, तैजसश्रारीर, कार्मणश्रारीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो आंगोपांग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीर्थङ्कर और उद्यगित्रका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट हानि अनन्त-गुणी है । इससे उत्कृष्ट दृद्धि अनन्तगुणी है । स्रावेद, पुरुषवेद, चार आयु, दो गति, तीन जाति, औदारिकश्रारीर, चार संस्थान, औदारिक आंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतुप, अप्रशस्त विहायोगति, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और दुस्वरकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे स्तोक है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनस्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है । इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है ।

६०६. नारिकयोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है। इससे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं। उद्योतका भंग ओधके समान है। इसी प्रकार सातवीं पृथियोमें जानना चाहिए। पहलेकी छह पृथिवियोंमें उद्योतका भंग स्त्रीवेदके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग भी इसी प्रकार है। सब तियंख्न, सब अपर्याप्त, सब देव, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाय-

१. आ॰ प्रतौ भप्पसत्थ॰४ सुहुम॰ इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ पंचकायाणं च। ओरालियभि॰ वेउ॰ वेउ॰मि॰ आहार॰ इति पाठः।

असण्णि० णेरहगभंगो । णवरि दोण्हं मिस्साणं आउ० ओघं । सेसाणं सव्वत्थो० उ० हाणी अवद्वाणं च । उक्क० बड्ढी अणंतगु० । एवं वेउव्वियमि० । एदेसिं उज्जोवं जाणिदव्वं ।

६०७. मणुस०३-पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-ओरा ०-इत्थि०-पुरिस०णवुंस०-चक्खुदं०-सुक०-सिण्णि० खिवगाणं ओघं। सेसाणं णिरयभंगो। उजी०
ओघं। णविर मणुस०-[३] इत्थि०-पुरिस०वजेसु। कायजोगि-कोघादि०४-मिद०-सुद०विभंग०-असंज०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-आहारए ति ओघभंगो। कम्मइ०
देवगिदपंचग० सव्वत्थो० वड्ढी। हाणी विसे०। सेसाणं पगदीणं सव्वत्थो० अवद्वा०।
बहुी अणंतगु०। हाणी विसेसाधिया। अवगद० सव्वाणं सव्वत्थो० उ० हाणी। उ०
बहुी अणंतगु०। एवं सुहुमसं०। आमिणि०-सुद०-ओघि० मिच्छत्ताभिमुहाणं सव्वत्थो० उ० हाणी अवदाणं च। उ० वड्ढी अणंतगु०। खिवगाणं ओघं। एवं
मणपज्जव ०-संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०-ओघिदं०-सम्मा०-खइग०वेदग०-उवसम०-सम्मामि०। णविर खड्गे अप्यसत्थ० ओघं इत्थिवेदभंगो।

एवं उक्कस्सं समर्च ।

योगी, आहारककाययोगी, आहारकिमश्रकाययोगी, पाँच छेइयावाले, अभव्य, सासादनसम्य-म्टिष्ट और असंज्ञी जीवोंमें नारिकयोंके समान भक्क है। इतनी विशेषता है कि दो मिश्रयोगोंमें आयुका भक्क ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट दृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इनके उद्योत भी जानना चाहिए।

६०७, मनुष्यत्रिक, पञ्चिन्द्रियद्विक, त्रसाद्वक, पाँची मनीयोगी, पाँची वचनयोगी, औदारिक-काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, चक्षुदर्शनी, शुक्कलेश्यावाले और संज्ञी जीवींमें क्षपक प्रकृतियोंका भक्त ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंका भक्त नारिकयोंके समान है। उद्योतका भक्त ओचके समान है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, स्वीयेदो और पुरुषवेदी जीवांको छोड़कर कहना चाहिए। काययोगी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अचक्षदर्शनी, भन्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंमें औषके समान भन्न है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें देवगतिपञ्चककी उत्कृष्ट बृद्धि सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अवस्थान सबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इससे उत्कृष्ट हानि विशेष अधिक है। अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि संबसे स्तोक है। इससे उत्कृष्ट वृद्धि अनन्तगुणी है। इसी प्रकार सुदमसाम्पराधिक-संयत जीवोंमें जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्वके अभिमुख प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट हानि और अवस्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे उत्कृष्ट बृद्धि अनन्त्राणी है। क्षपक प्रकृतियोंका भङ्क ओघके समान है। इसी प्रकार मनःपर्ययञ्चानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविश्चद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्द्रष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यन्दृष्टि जीवोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका भङ्ग ओघसे छीवेदके समान है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

१, आ॰ प्रती पंचमण॰ ओरा॰ इति पाठः । २. ता॰ प्रती ओधं । मणपञ्च॰ इति पाठः ।

६०८. जह० पगदं । दुवि०-अघे० आदे० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-पुरिस०-हस्स-रदि-भय-दु०-अप्पसत्थव०४-उप०-पंचंत० सव्वत्थो० ज० हा० । ज० वड्ढी अणंतगु० । सादासाद०-चदुणोक०-चदुआउ०-तिगदि-पंचजा०-पंचसरीर-छस्संठा०-तिण्णअंगो०-छस्संघ०-पसत्थ०४-तिण्णिआणु०-अगुरु०३-आदा-उज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयु०-[णिमि०] उच्चा ० ज० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि तुल्लाणि । तिरिक्खगदितिगं तित्थ० सन्वत्थो० ज० हाणी । वड्डी अवट्ठाणं च दो वि तु० अणंतगु० । एवं ओघमंगो मणुस०३-पंचि०-तस०२-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरा०-इत्थि०-पुरिस०.णवुंस०-कोघादि४-मदि०-सुद०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारए ति । णवरि मणुस०३-ओरा०-इत्थि०-पुरिस० तिरिक्खगदितिग० सादभंगो ।

६०९. णिरएसु थीणागिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४-तिरिक्ख०३ ओघं। सेसाणं तिष्णि वि तुल्लाणि। एवं सत्तमाए। एवमेव ल्रसु उवरिमासु। तिरिक्ख०३ सादभंगो।तिरिक्खेसु णिरयभंगो।अपचक्खाण०४ओघं।सव्वदेव०-वेउव्व०-वेउव्व०-मि० णिरयभंगो।सव्वअपञ्ज०-एइंदि०-विगलिं०-पंचकायाणं च तिष्णि वि तु०। ओरा०

६०९. नारिकयोंमें स्यानगृद्धित्रिक, मिश्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तिर्यक्क्षगृतित्रिकका भंग ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंके तीनों ही पद तुल्य हैं। इसी प्रकार सातवीं पृथिवींमें जानना चाहिए। इसी प्रकार पहलेकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इसनी विशेषता है कि तिर्यक्क्षगितित्रिकका भंग सातावेदनीयके समान है। तिर्यक्क्षोंमें नारिकयोंके समान भंग है। अप्रत्याख्यानावरण चारका भंग ओघके समान है। सब देव, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें नारिकयोंके समान भंग है। सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंमें सब प्रकृतियोंके तीनों ही

६०८. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोछह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रित, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णचतुष्क,, उपघात और पाँच अन्तरायकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। सातावेदनीय, असातावेदनीय, चार नोक्षपाय, चार आयु, तीन गति, पाँच जाति, पाँच शरीर, छह संस्थान, तीन आंगोपांग, छह संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, दो विहायोगित, त्रसादि दस युगल, निर्माण और उद्योत्रकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों ही तुल्य हैं। तिर्यञ्चगतित्रक और तीर्थञ्चरकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों ही तुल्य हैं। तिर्यञ्चगतित्रक और तीर्थञ्चरकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों ही तुल्य होकर उससे अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार ओघके समान मनुष्यत्रिक, पञ्चित्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, क्षीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्या-दृष्टि, संज्ञो और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोगी, क्षीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें तिर्यञ्चगतित्रिकका भंग सातावेदनीयके समान है।

१ ता॰ प्रतौ ज॰ हा॰ । बड्डी इति पाठः । २. ता॰ आ॰ प्रत्योः तसादिदोण्णियु॰ उच्चा॰ इति पाठः ।

मि०-आहार०-आहारमि०तिण्णि वि० तु० । कम्मइ०-अब्भव^९०-सासण०-असण्णि०-अणाहारए ति णिरयभंगो ।

६१०. आभिणि०-सुद्०-ओधि० पढमदंडओ ओघं। मणुस० सन्वत्थो० ज० हाणी। वड्ढी अवट्ठाणं दो वि तु० अणंतगु०। एवं सन्वसंकिलिट्ठाणं पगदीणं। एवं मणप०-संज०-सामा०-छेदो०-परिहार०-संजदासंज०-ओघिदं०-सम्मा०-खइग०-वेदग०- उवसम०-सम्मामि०। अवगदवे०-सुहुमसं० सन्वत्थो० ज० हाणी । ज०] वड्ढी अणंतगु०। परिहार०-तेउ०-पम्म० अप्पसत्थाणं पगदीणं सन्वत्थो० ज० हाणी। वड्ढी अवट्ठाणं अणंतगु०।

एवं पदणिक्खेने ति समत्तं। वड्ढी समुक्तित्तणा

६११. बह्वियंचे त्ति तत्थ इमाणि अणियोगदाराणि णादच्वाणि भवंति । तं जहा-सम्र-कित्तणा याव अप्पाबहुगे ति । सम्रक्तित्तणा दुवि०-ओघे० आदे० । ओघे० सञ्वपगदीणं अत्थि छबह्वि० छहाणि० अवदि० अवत्तव्ववंघगा य । एवं ओधभंगो मणुस०२-पंचि०-तस० २-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरा०-आभिणि-सुद-ओघि०-मणपज्ञ०-संज०-चक्खु०-

पद तुल्य हैं। औदारिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सब प्रश्नतियोंके तीनों ही पद तुल्य हैं। कार्मणकाययोगी, अभव्य, सासादनसम्य-गृहष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें नारिकयोंके समान भंग है।

६१०. आभिनिबोधिक झानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों में श्रिथम दण्डक ओघके समान है। मनुष्यगतिकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे वृद्धि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हैं। इसी प्रकार संक्रशसे जघन्य अनुभागबन्धको प्राप्त होनेवाठी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार मनःपर्ययञ्चानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्य-ग्रहृष्टि, श्लायिक सम्यग्रहृष्टि, वेदक सम्यग्रहृष्टि, उपरामसम्यग्रहृष्टि और सम्यग्मिथ्याहृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है। परिहारविशुद्धिसंयत, पीतछेदया और पद्मछेदयामें अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य हानि सबसे स्तोक है। इससे जघन्य वृद्धि और अवस्थान अनन्तगुणे हैं।

इस प्रकार पदनिश्लेष समाप्त हुआ । **दृद्धि समु**त्कीर्तना

६११. वृद्धिबन्धका प्रकरण है। उसमें ये अनुयोगद्वार ज्ञातन्य हैं। यथा—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—ओघ और आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी छह वृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तन्यपदके बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार ओघके समान मनुष्यित्रक, पश्चेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों बचनयोगी, काययोगी, औदारिककायोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षु-

१. ता प्रती आहारमि० कम्मइ० तिण्णि वि० तु० अन्भव०. आ० प्रती आहारमि० कम्मइ० तिण्णि वि० । अन्भव० इति पाउः । २. ता० प्रती सुहुमसं० ज० (स) व्यत्थो० हा०. आ० प्रती सुहुमसं० सव्यत्थो० हाणी इति पाउः ।

अचक्खु ०-ओधिदं ०-सुक्रले ०-भवसि ०-सम्मा ०-खइग ०-उवसम ०-सण्णि-आहारए ति ।

६१२. णिरएस धुविगाणं अत्थि छवड्डि० छहाणि० अवडि०। सेसं ओघमंगो। णविर पढमाए तित्थ० अवत्त० णत्थि। एवं सव्वणेरह्य-पंचिं०तिरि०अपञ्ज०-देवा०, तित्थ० धुवभंगो, सव्वएइंदि०-विगलिं०-पंचका०-ओरा०मि०-वेउ०-वेउ०मि०-आहार० -अहारमि०-कम्मइ०-मदि०-सुद०-विभंग०-परिहा०-संजदासंज०-असंज०-पंचले०-अञ्भव०-सासण०-सम्मामि०-असण्णि-अणाहारि ति। ओरालि०मि०-कम्मइ ०-अणाहार० देवगदिपंचग० अवत्त० णत्थि १३। वेउव्वियमि०-किण्ण० -जील० तित्थय० १३ अवत्त० णत्थि।

६१३. इत्थि०-पुरिस०-णबुंस०-कोघे पंचणा०-चदुदं०-चदुसंज०-पंचंत० अत्थि० छवड्डि० छहाणि० अवडि० | सेसाणं ओघं | माणे तिण्णिसंज० मायाए दोसंज० लोभे पंचणा०- चदुदंस०-पंचंत० अत्थि छवड्डि० छहाणि० अवड्डि० | सेसं ओघं | अवगदवेदे सञ्जाणं अत्थि अणंतगुजवड्डि० हाणि० अवत्तन्वबंधगा य | एवं सुहुमसंप० | णवरि

दर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्कुलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दष्टि, क्षायिकसम्यग्द्रष्टि, छप-शमसम्यग्द्रष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

६१२. नारिकयों में भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियों की छह बृद्धि, छह हानि और अवस्थितपद्के बन्धक जीव हैं। रोष मङ्ग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि पहली पृथिवीमें तीर्थक्कर प्रकृतिका अवक्तव्य पद नहीं है। इसी प्रकार सब नारकी, पक्केन्द्रिय तिर्यक्क अपर्याप्त और देवों में जानना चाहिये। मात्र देवों में तीर्थक्कर प्रकृतिका मङ्ग भ्रुवबन्धवाली प्रकृतियों के समान है। तथा इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वेक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकिमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, पाँच लेक्स्यावाले, अभव्य, सासादनसम्यग्रहि, सम्यग्मिथ्याहिष्ट, असंज्ञी और अनाहारक जीवों के जानना चाहिए। मात्र औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवों के देवगितपञ्चकका अवक्तव्यपद नहीं है, तेरह पद हैं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कृष्णलेक्स्य और नीललेक्स्यमें तीर्थक्कर प्रकृतिके तेरह पद हैं। वैक्रियकमिश्रकाययोगी, कृष्णलेक्स्य और नीललेक्स्यमें तीर्थक्कर प्रकृतिके तेरह पद हैं। वैक्रियकमिश्रकाययोगी,

६१३. स्नीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और क्रीध कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायकी छह बृद्धि, छह हानि और अविश्यितपद्के बन्धक जीव हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। मानकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, तीन संज्वलन और पाँच अन्तरायकी, माया कषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, दो संज्वलन और पाँच अन्तरायकी तथा लोभकषायमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अविश्यितपद्के बन्धक जीव हैं। शेष भङ्ग ओघके समान है। अपगतवेदी जीवोंमें सब प्रकृतियोंको अनन्तगुणवृद्धि. अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपद्के बन्धक जीव हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसान्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता

१. ता॰ प्रती ओरा॰ वेडिव्ययका॰ वेडिव्यय• आहार॰ इति पाठः। २. आ॰ प्रती ओरालि॰ कम्मइ॰ इति पाठः। ३. आ॰ प्रती वेडिव्यय॰ किण्म॰ इति पाठः।४. ता॰ प्रती अवगद्वेदेवेद (१) सब्बाणं इति पाठः।

अवत्त० णित्थ । सामाइ०-छेदो० पंचणा०-चदुदंस ०-स्रोभसंज०-उचा०-पंचंत० अस्थि छवड्डि० छहाणि० अवद्वि० बंधगा य ।

एवं समुक्तिणा समत्ता

सामित्तं

६१४. सामित्ताणुगमेण दुवि०-अघि० आदे० । अघि० पंचणा-छदंस०-चढुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क्र०-वण्ण० ४-अगु-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्ढि० छहाणि० अवद्धि० क० १ अण्ण० । अवत्त० क० १ अण्ण० उवसा० परिवद० मणुसस्स वा मणुसीए वा पटमसमयदेवस्स वा । एदेण क्रमेण भुजगारसामित्तभंगो अवसेसाणं सव्वाणं । एवं यात्र अणाहारए त्ति णादव्यं ।

कालो

६१५. कालाणुगमेण दुवि०। ओघे० सञ्चयमदीणं पंचवड्डि० पंचहाणिबंधमा केवचिरं कालादो होदि ? ज० ए०, उ० आवलि० असंखें०भागो। अणंतगुणवड्डि-हाणि० ज० ए०, उ० अंतो०। अविट० ज० ए०, उ० सत्तद्व सम०। अवत्त० ज० [उ०] ए०। एवं याव अणाहारए ति णेदन्वं।

है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं है। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, छोभ संज्वलन, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायकी छह बृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव हैं। शेप भङ्ग ओघके समान है।

इस प्रकार समुस्कीर्तना समाप्त हुई।

स्वामित्व

६१४. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओव और आदेश। ओघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह बृद्धि, छह हानि और अव-स्थितपरके वन्धक जीव कौन हैं? अन्यतर जीव वन्धक है। अवक्तव्यपरके बन्धक जीव कौन हैं? अन्यतर जीव वन्धक है। अवक्तव्यपरके बन्धक जीव कौन हैं? उपशामश्रीणसे गिरनेवाळा अन्यतर मनुष्य, मनुष्यिनी और प्रथम समयवर्ती देव अवक्तव्यपरका बन्धक है। शेष सबका इसी कमसे मुजगारानुगमके स्वामित्वके समान मङ्ग है। अनाहारक तक इसी प्रकार जान छेना चाहिए।

काल

६१%. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश। ओषसे सब प्रकृतियोकी पाँच बृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवितिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्भुट्टत है। अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सात-आठ समय है। अवस्थ्यपदके वन्धक जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहग्यक मार्गणा तक जानना चाहिए।

१. आ० प्रती पंचणा० पंचदंस० इति पाटः।

अंतरं

६१६. अंतराणुगमेण दुवि०। ओषेण पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०-क०-वणा० ४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० पंचविष्ठ् ०-हाणिबंधंतरं केविचरं कालादो १ ज० ए०, उ० असंखेंआ' लोगा। [अविद्या एसेव भंगो।] अणंतगुणविष्ठ्-हाणिबंधंतरं ज० ए०, उ० अंतो। अवत्त० ज० अंतो०, उ० अद्धपोग्गल०। तित्थय० पंचविष्ठ्-हाणि-अविद्या ज० ए०, उ० तेंचीसं० सादि०। एवं अवत्त०। णविर जह० अंतोष्ठ०। अणंतगुणविष्ठ-हाणि० ज० ए०, उ० अंतो०। एदेण कमेण भुजगारभंगो कादच्यो। एवं याव अणाहारए ति णेदच्यं।

विशेषार्थ यहाँ जितने पद कहे हैं उन सबका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा प्रारम्भकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण, शेष दो वृद्धि-हानियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्भृहूर्त, अवस्थितपदका उत्कृष्ट काल सात-आठ समय और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट काल एक समय होनेसे उक्तप्रमाण कहा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक यथायोग्य एक जीवकी अपेक्षा काल घटित कर लेना चाहिए।

अन्तर

६१६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश। ओघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुख्यु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी पाँच वृद्धि और पाँच हानिबन्धका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अवस्थितपदका यही भन्न है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानि बन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहर्त है। अवक्तव्यवन्धका जघन्य अन्तर अन्तर अन्तर मुहर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अध्युद्धल परिवर्तनप्रमाण है। तीर्थक्ष्य प्रकृतिकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। इसी प्रकार अवक्तव्य बन्धका भी अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर अन्तर्भुहर्त है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर समान अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहर्त है। उसी क्रमसे भुजगारप्ररूपणाके समान अन्तर काल करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ —यह सम्भव है कि पाँच ज्ञानावरणादिकी पाँच ष्टद्धि और पाँच हानि एक समयके अन्तरसे हों और अनुभाराधन्धके परिणामोंके अनुसार असंख्यात लोकप्रमाण कालके अन्तरसे हों, इसलिए इन बुद्धियों और हानियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका एक समय अन्तर तो स्पष्ट है पर उत्कृष्ट अन्तर जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है, उसका कारण यह है कि ये दोनों यदि नहीं होती हैं तो अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक ही नहीं होती,

१. ता॰ प्रती पंचतं । [उक्क हाणि अवतः बंधतरं केवचिरं कालादो होदि १ जहरू एग॰ उक्क ॰] असंखेजा, आ॰ प्रती पंचतं उक्क ॰ हाणी॰ बंधतरं केवचिरं कालादो १ ज० ए॰, उ० असंखेजा इति पाटः ।

णाणाजीवेहि भंगविचओ

६१७. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुवि०। ओघेण पंचणा०-णवदंसणा०-भिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालिय०—तेजा०—क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत०छवड्डि-छहाणि-अवद्वि० णियमा अत्थि। सिया एदे य अवत्तगे य। सिया एदे य अवत्तव्यगा य। तिण्णि आउ० सव्वपदा भयणिजा। वेउव्वियछ०-आहारदुगं तित्थय० अणंतगुणवड्डि-हाणि० णिय० अत्थि। सेसपदा भयणिजा। सेसाणं सव्व-पगदीणं सव्वपदा भयणिजा। एवं भुजगारभंगो कादव्बो। एवं अणाहारए त्ति णेदव्वं।

भागाभागो

६१८. भागाभागाणुगमेण दुवि० । ओघेण पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरा०-तेजा०-क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० पंचयड्वि-हाणि-अवहि०

अन्तर्मुहूर्तकालके बाद ये नियमसे होती हैं। इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिसे उत्तरते समय या उत्तरते समय मर कर देव होनेपर होता है। किन्तु यहाँ जघन्य अन्तर प्राप्त करना है, इसिलए अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार उपशमश्रेणि पर आरोहण कराके इनका बन्ध करानेसे जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त ले आये। तथा उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध-पुद्रल परिवर्तन प्रमाण होनेसे इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्रल परिवर्तन प्रमाण कहा है। इनके अविध्यतपदका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर पाँच दृद्धियों और पाँच-हानियोंके ही समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तेतीस सागर होनेसे यहाँ इसकी पाँच दृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है। होष कथन स्पष्ट ही है।

नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय

६१७. नाना जीवांकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश! ओघसे पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, ओदारिक-शारीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह दृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये होते हैं और एक अवक्तव्यपदका बन्धक जीव होता है। कदाचित् ये होते हैं और अनेक अवक्तव्यपदके बन्धक जीव होते हैं। तीन आयुओंके सब पद भजनीय हैं। वैक्रियिक छह, आहारकदिक और तीर्थङ्करप्रकृतिकी अनन्तगुणदृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। शेष सब प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। इस प्रकार भुजगारके समान भङ्ग करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक सार्गणा तक जानना चाहिए।

भागाभाग

६१८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओध और आदेश। आंत्रसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिश्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ?

१. ता० प्रतौ भयणिजा । आहार० २ तिस्थ० इति पाटः ।

सन्वजीवाणं के० ? असंखेँ० । अणंतगुणविङ्गि० दुभागो सादिरे० । अणंतगुणहा० दुभागो देख्र० । अवत्त० अणंतभागो । सेसाणं पगदीणं एसेव भंगो । णविर अवत्तन्व० असंखेँ०भा० । आहार०२ पंचविङ्गि॰पंचहाणि-अविदि०-अवत्त० संखेँ छ० । अणंतगुणविङ्गि॰ हाणी० णाणा०भंगो । एवं भ्रजगारभंगो कादन्वो । एवं याव अणाहारए ति णेदन्वं ।

परिमाणं

६१९. परिमाणं दुवि०। ओघेण पंचणा०-छदंसणा०-अहक०-भय-दु०-तेजा०-क०-वणा४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छबड्डि-छहाणि-अबट्ठि० कॅनिया ? अणंता। अवत्त० कॅनिया? संखेंजा। थीणगि०३-मिच्छ०-अहक०-ओरालि० एवं चेव। णवरि अवत्त० असंखें०। तिण्णिआउ०-वेडिचयछ० छबड्डि-छहाणि-अबट्टि०-अवत्त० कॅनिया? असंखें०। आहार०२ सच्चपदा के०? संखेंजा। तित्थय० तेरसपदा के०? असंखेंजा। अवत्त० कें०? संखें०। सेसाणं सादादीणं चोंहसपदा केनि०? अणंता। एवं सुजगारभंगो कादच्यो। एवं याव अणाहारए ति णेदच्यं।

असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव सब जीवोंके साधिक द्वितीय भाग-प्रमाण हैं। अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव सब जीवोंके कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण हैं। अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। शेष प्रकृतियोंका यही भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। आहारकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सब जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है। इस प्रकार भुजगारभंगके समान करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

परिमाण

६१९. परिसाण हो प्रकारका है—ओव और आंद्रश । ओवसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय, भय, जुगुप्सा, तैजसरारीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण और पाँच अन्तरायको छह वृद्धि, छह हानि और अविध्यतपदके बन्धक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व, आठ कवाय और औदारिकशरीरके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यात हैं । तीन आयु और वैक्रियिक छहको छह वृद्धि, छह हानि, अविध्यत और अवक्तव्यपदके बन्धक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । आहारकिद्धकके सब पदांके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । आहारकिद्धकके सब पदांके बन्धक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इस प्रकार भुजगारभङ्गके समान करना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

१. आ० प्रती आहार० पंचवट्टि इति पाटः । २. ता० प्रती सेसाणं चोहसपटा इति पाटः । ३. ता० प्रती भुजगारभंगो वाय इति पाटः ।

खेँतं

६२०. खेँताणुगमेण दुवि० । ओघे० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०-भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-वण्ण० ४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्डि-छहाणि-अवट्टि० केविड खेँत्ते ? सव्वलोगे । अवत्त० केव० ? लो० असंखेँ० । तिण्णिआउ०-वेउव्विय-छ०-आहारदुग-तित्थ० छवड्डि-छहाणि-अविटि०-अवत्त० केव० ? लो० असंखेँ० । सेसाणं चोँहसपदा के० ? सव्वलोगे । एवं भुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

फोसणं

६२१. फोसणाणुगमेण दुवि०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-अद्दक०-भय-दु०-तेजा०-फ०--वण्ण०४-अगु०--उप०--णिमि०--पंचंत० छवड्डि--छहाणि-अवट्वि० केविड खेँचं फोसिदं ! सन्वलोगो । अवत्त० के० खेँचं फोसिदं ! लो० असंखेँ०। थीणिगिद्धि०३-अणंताणु०४-तेरसपदा सन्वलो०। अवत्त० अद्वचेँ०। मिच्छत्त० तेरसपदा णाणा०-भंगो । -अवत्त० अद्व-वारह०। अपचक्खाण० ४ तेरसपदा सन्वलो० अवत्त० छचीँ०। दोआउ०-आहारदुगं चोँहसपदा लोग० असंखेँ०। मणुसाउ० चोँहसपदा

क्षेत्र

६२०. श्रेत्रानुगमकी अपेशा निर्देश दो प्रकारका है—ओव और आहंश। ओघसे पाँच झानावरण, नी दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कवाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्यु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह दृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है । सब लोक क्षेत्र है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है । लीन आयु, वैक्रियिक छह, आहारकद्विक और तीर्थक्करकी छह दृद्धि, छह हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है । लोकके असंस्थातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । श्रेष प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है । लोकके असंस्थातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । श्रेष प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंका कितना क्षेत्र है । सब लोकप्रमाण क्षेत्र है । इस प्रकार भुजगार-भक्तके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

स्पर्शन

६२१. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे पाँच झानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कपाय भय, जुगुएसा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुल्यु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित परके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सब ठोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है । ठोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब ठोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मिथ्यात्वके तेरह पदोंका भङ्ग ज्ञानावरणके समान है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब ठोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब ठोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब ठोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अप्रत्याख्यानावरण चारके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने सब ठोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दो आयु और आहारकदिकके चौदह पदोंके

अहचों (सव्वलो) । दोगदि-दोआणु) तेरसपदा छचों । अवत्त ० खेंत्त । ओरा ० तेरसपदा णाणा ० मंगो । अवत्त ० बारह ० । वेउ व्वि० - वेउ ० अंगो ० तेरसपदा बारह ० । अवत्त ० खेंत्त ० । तित्थ ० तेरसपदा ० अहचों ० । अवत्त ० खेंत्त भंगो । सेसाणं सादादीणं चोंइसपदा सव्वलो ० । एवं भुजगारमंगो याव अणाहारए ति णेदव्यं ।

बन्धक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यायुके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। दो गित और दो आनुपूर्विके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। औदारिक-शरीरके तेरह पदोंका भक्त ज्ञानावरणके समान है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैकियिकशरीर और वैकियिक आङ्गोपाङ्गके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंने कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तीर्थङ्कर प्रकृतिके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंके बन्धक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक भुजगार भङ्गके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ--पाँच ज्ञानावरणादिके तेरह पदोंका बन्ध एकेन्द्रियादि सब जीव करते हैं। इसलिए उक्त पदोंकी अपेक्षा सब लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धिदण्डक, मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण चार और औदारिकशरीरकी अपेक्षा उक्त तेरह पर्दोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरणादिका अवक्तव्यपद उपशमश्रेणिमें गिरते समय होता है, तथा प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्यपद विरतसे विरताविरत या अविरत होते समय होता है, इसलिए इस पदकी अपेक्षा श्पर्शन लोकके असंख्यासवें भागप्रमाण कहा है। चारों गतियोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंके सासादन गुणस्थानके प्राप्त होनेपर स्त्यानगृद्धि आदिका अवक्तव्यपद होता है। यत: यह स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण है, क्योंकि इसमें देवोंके विहारवस्वस्थान स्पर्शनकी प्रधानता है। इसलिए यह उक्त प्रमाण कहा है। विरत या विरताविरत जीव सर कर उपपादके समय भी अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कका अवक्तव्य पद करते हैं और इनका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुपमाण है, अतः उक्त प्रकृतियोंके अवक्तत्र्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। सासोदन जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजू और कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण है और इनका मारणान्तिक समुद्धातके समय मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मिथ्यात्वका अवक्तव्यवन्ध सम्भव है, अतः मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। नरकाय और देवायुका बन्ध स्वस्थानमें असंज्ञी आदि और आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयत जीव करते हैं, अतः इन प्रकृतियांके सब पदांके बन्धक जीवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। मनुष्यायुका बन्ध स्वस्थानमें एकेन्द्रियादि जीव और विहारवत्स्वस्थानमें देव करते हैं, इसलिए इसके सब पदोंके वन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ वटे चौदह राजू और सब लोकप्रमाग कहा है। मात्र अग्निकायिक और वायुकायिक जीव मनुष्यायुका अन्ध नहीं करते, इतना विशेष जानना चाहिए। नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वीका नारिकयोंमें मारणान्तिक समुद्वात करनेवाले जीव भी बन्ध करते हैं,

कालो

६२२. कालाणुगमेण दुवि०। ओषे० पंचणा०-छदंस०-अद्दक०-भय-दु०-तेजा०-फ०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्डि-छहाणि-अवद्विदंघगा केवचिरं कालादो होति १ सव्बद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० संखेँज०। थीणगि०३-मिच्छ०-अद्दक०-ओरा० तेरसपदा सव्बद्धा। अवत्त० ज० ए०, उ० आवित् असंखेँ०। सादादिदंडयस्स चोइसपदा सव्बद्धा। तिण्णिआउ० पंचवड्डि-पंचहाणि-अवदि०-अवत्त० ज० ए०, उ० आवित् असंखेँ०। अणंतगुणवड्डि-हाणि० ज० ए०, उ० पित् असं०। वेउव्वियछ० बारसपदा ज० ए०, उ० आवित् असं०। अणंतगुणवड्डि-

अतः इन प्रकृतियोंके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र ऐसी अवस्थामें इनका अवक्तव्यवन्य नहीं होता, अतः इनके अवक्तव्यपदके वन्धक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। मनुष्यों और तिर्यक्कोंके देवों और नारिकयोंमें उत्पन्न होनेपर प्रथम समयमें औदारिकशरीरका अवक्तव्यवन्ध होता है और यह स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण होनेसे इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। नारिकयों और देवोंमें मारणान्तिक समुद्धात करनेवाले जीवोंके वैकियिक-द्रिकका नियमसे बन्ध होता है, अतः इनके तेरह पदोंके बन्धक जीवोंका स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। मात्र ऐसे समयमें इनका अवक्तव्यवन्ध नहीं होता, इसलिए इस अपेक्षासे स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। स्वस्थानविहारके समय देवोंके तीर्थक्कर प्रकृतिका बन्ध सम्भव है, अतः इसके तेरह परोंकी मुख्यतासे स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजूप्रमाण कहा है। तथा इसका अवक्तव्यपद जो दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न होकर इसको बन्ध करने लगते हैं उनके, या उपशमश्रेणिसे गिरते समय या ऐसे मनुष्योंके इसके बन्धके समय मर कर देव होनेपर होता है। यतः ऐसे जीव संख्यात हैं, अतः इसके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंके चौदह पदोंका बन्ध एकेन्द्रिय आदि सब जीव करते हैं, अतः इन प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन सब लोकप्रमाण कहा है । शेष कथन भुजगार अनुयोगद्वारको लच्चमें रखकर घटित कर छेना चाहिए ।

काल

६२२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओध और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजसशारीर, कार्मणशारीर, वर्ण-चतुष्क, अगुरुलपु, उपधात, निर्माण और पाँच अन्तराथकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितपदके बन्धक जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्थानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषाय और औदारिकशरीरके तेरह पदोंके बन्धक जीवका सब काल है। अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सातावेदनीय आदि दण्डकके चौरह पदोंके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। तीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्त-गुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिक छहके वारह पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वैक्रियिक छहके वारह पदोंके बन्धक जीवोंका जघन्य

हाणि० सन्वद्धा । एवं तित्थय० । णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० संखेँज० । आहार० २ पंचवड्डि-पंचहा० ज० ए०, उ० आविति० असंखेँ० । अणंतगुणवड्डि-हाणि० सन्वद्धा । अवट्ठि०-अवत्त० ज० ए०, उ० संखेँज० । एवं भ्रजगारभंगो याव अणाहारए ति णेदन्वं ।

काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार तीर्थङ्करकी अपेक्षासे भी काल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आहारकद्विककी पाँच वृद्धि और पाँच हानिके बन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिके बन्धक जीवोंका काल सर्वदा है। अवस्थित और अवक्तव्यपदके बन्धक जीवोंका जधन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार भुजगारके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ--पाँच ज्ञानावरणादिका एकेन्द्रियादि सब जीव तेरह पदाँके साथ बन्ध करते हैं, इसिलए इन प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा सर्वदा काल कहा है। आगे जिन प्रकृ-तियोंके जिन पदोंका काल सर्वदा कहा है वहाँ भी यही समझना चाहिए कि उन प्रकृतियोंके विवक्षित पदोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वेदा बन्ध होता रहता है। अतः यहाँ इस कालको छोड़कर शेष कालका खुलासा करते हैं-पाँच ज्ञानावरणादिका अवक्तव्यवन्ध उपशमश्रेणिसे गिरते समय होता है और प्रत्याख्यानावरण चारका अवक्तव्यवन्ध विरतसे विरताविरत या अविरत होते समय होता है। ऐसे जीव कमसे कम एक समय तक या छगातार संख्यात समय तक ही यह किया करते हैं, इसलिए इनके अवक्तव्यपदकी अपेक्षा जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। स्यानगृद्धि आदि आठ प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद गुणस्थान प्रतिपन्न जीव नीचे उत्तरते समय यथायोग्य करते हैं और औदारिकशरीरका अवस्तव्यपद असंज्ञी आदि जीव करते हैं। ये असंख्यात होते हैं, इसलिए यह भी सम्भव है कि इन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद एक समय तक करें और दूसरे समयमें कोई भी जीव अवक्तव्यपद करनेवाले न हों और यह भी सम्भव है कि असंख्यात समय तक कमसे नाना जीव इस पदको प्राप्त होते रहें। यही कारण है कि इन प्रकृतियोंके अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंस्थातवें भागप्रमाण कहा है। किन्त अनन्तगुणवृद्धि और अनन्त-गुणहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है और क्रमसे व्यवधान रहित होकर अन्तर्मुहूर्तके बाद निरन्तर नाना जीव इन पदोंको असंख्यात बार प्राप्त हो सकते हैं, इसलिए इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैक्रियिक-छहके बारह पदोंका जघन्य काल एक समय तो स्पष्ट ही है, क्योंकि प्रत्येक पद एक समय तक होकर दूसरे समयमें न हो। किन्तु इनका उत्कृष्ट काल जो आवित्तिके असंस्थातवें भाग-प्रमाण कहा है सो उसका कारण यह है कि अवक्तव्यपदका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल तो एक ही समय है और अवस्थितपद्का एक जीवकी अपेक्षा उत्क्रष्ट काल सात-आठ समय है. इसिंछए लगातार असंख्यात समय तक भी इन पदांके होने पर उस सब कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा, परन्त शेष दस पदोंमें से प्रत्येक पदका एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट काल आवित्तिके असंख्यातवें भागप्रमाण है और यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा भी यह काल उतना ही कहा है सो इसका भाव यही है कि आवलिके असंख्यातवें भागकी भी असंख्यातसे गुणा करने पर जो उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है वह भी आवलिके असंख्यातवें

अंतरं

६२३. अंतराणुगमेण दुवि०। ओघे० पंचणा०-छदंस०-चदुसंज०-भय-दु०-तेजा०क०-वण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० छवड्डि-छहाणि-अवद्विद्वंधंतरं णित्थ अंतरं।
अवत्त० ज० ए०, उ० वासपुधत्तं०। थीणिगिद्धि०३-मिच्छ०-अणंताणु०४ तेरसपदा०
णित्थ अंतरं। [अवत्त०] ज० ए०, उ० सत्तरादिंदियाणि। सादादीणं चोहसपदा०
णित्थ अंतरं। अपचक्खाण०४ तेरसपदा णित्थ अंतरं। अवत्त० ज० ए०, उ०
चोहसरादिंदियाणि। एवं पचक्खाण०४। णवरि अवत्त० ज० ए०, उ० पण्णारसरादिंदियाणि। तिण्णि आउ० पंचवड्डि-पंचहाणि-अवद्वि० ज० ए०, उ० असंखेळा लोगा।
अणंतगुणवड्डि-हाणि-अवत्त० ज० ए०, उ० वदुवीसं ग्रहुत्तं०। वेउविवयछ०आहार०२ पंचवड्डि-पंचहाणि-अवद्वि० ज० ए०, उ० असंखेळा लोगा। अणंतगुण-

भागप्रमाण ही है। इसीसे इन पदोंका जधन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तोर्यक्कर प्रकृतिका सब पदोंका वैकियिकपट्कके समान होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है। मात्र इसका अवक्तव्यपद करनेवाले जीव संख्यात ही होते हैं, अतः इसके अवक्तव्यपदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। भाहारकदिककी पाँच बृद्धि और पाँच हानि लगातार संख्यात बार हो सम्भव हैं, इसलिए इन पदोंका उत्कृष्ट काल आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि एक आविलके असंख्यातवें भागप्रमाण ही काल उपलब्ध होता है। इनका जघन्य काल एक समय है यह स्पष्ट ही है। तथा इनका अवक्तव्य और अवस्थित पद अधिकसे अधिक संख्यात बार होगा, इसलिए इन दोनों पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इसी प्रकार भुजगार अनुयोग- हारको ध्यानमें रखकर मार्गणाओंमें भी यह काल समझ लेना चाहिए।

अन्तर

६२३. अन्तरानुगमको अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश। ओषसे पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपधात, निर्माण और पाँच अन्तरायकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितवन्धका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तव प्रमाण है। स्यानगृद्धि तीन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके तेरह पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है। सातावेदनीय आदिके चौदह पदोंका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्यपदका अधन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण चारके सब पदोंका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है। तीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनंतर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनंतर एक समय है। वीन आयुओंकी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अनन्तगुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है। अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है।

बिहु-हाणि० णत्थि अंतरं । अवत्त ० ज० ए०, उ० अंतो० । एवं तित्थय० । णवरि अवत्त ० ज० ए०, उ० वासपुघ० । एवं भ्रुजगारभंगो याव अणाहारए त्ति णेदव्वं ।

भनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है। अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मृहूर्त है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृतिके सब पदीका अन्तरकाल जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्तवप्रमाण है। इसी प्रकार भुजगारके समान अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ---यहाँ जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका अन्तर काल नहीं कहा है। इसका भाव इतना ही है कि उन प्रकृतियोंके उन पर्दोंके बन्धक जीव सर्वदा उपलब्ध होते हैं। तथा जिन प्रकृतियोंके जिन पदोंका जघन्य अन्तर एक समय कहा है उसका भाव यह है कि उन प्रकृतियोंके उन पदोंका एक समयके अन्तरसे भी बन्ध सम्भव है। मात्र विचार उन प्रश्नियोंके उन पदोंके उत्कृष्ट अन्तरका करना है जो अलग-अलग कहा है। उपशम-श्रेणिका उत्क्रष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है ,इसलिए यहाँ पाँच श्लानावरणादिके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथन्त्व प्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वका उत्कृष्ट अन्तर सात दिन-रात है, इसिल्ए स्त्यानगृद्धि तीन, मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी चारके अवक्तव्य पदका उत्ऋष्ट अन्तर सात दिन-रात कहा है। तात्पर्य यह है कि कदाचित सात दिन-रात तक कोई भी तीसरे आदि गुणस्थानवाला जीव सासादन और मिथ्यात्व गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, इसिछए यह अन्तर बन जाता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके साथ विरताविरत गुणस्थानको प्राप्त न होनेका अन्तर चौदह दिन - रात और विरत अवस्थाको प्राप्त न होने का उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात है। इसके अनुसार कोई विरताविरत अविरत अवस्थाको चौदह दिनरात तक और कोई विरत विरताविरत अवस्थाको पन्द्रह दिनरात तक नहीं प्राप्त होता ,यह सिद्ध होता है; क्योंकि आयके अनुसार ही व्यय होता है-ऐसा नियम है। अतः अत्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्य-पदका उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिनरात और प्रत्याख्यानावरण चारके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिनरात कहा है। नरकायु, मनुष्यायु और देवायुकी पाँच दृद्धि, पाँच हानि और अवस्थितपदका उत्कृष्ट अन्तर परिणामींको ध्यानमें रख कर असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा इन गतियंभें यदि कोई उत्पन्न न हो तो अधिकसे अधिक चौबीस मुहूर्तका अन्तर पढ़ता है। तदनुसार इन आयुओंका बन्ध भी इतने काल तक नहीं होता, इसलिए इनकी अनन्तगुणवृद्धि, अनन्तगुणहानि और अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा है। बैक्रियिक छह और आहारकद्विककी पाँच वृद्धि, पाँच हानि और अवस्थित पदका उत्कृष्ट अन्तर भी वन्धपरिणामोंके अनुसार असंख्यात छोकप्रमाण कहा है। परन्तु अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे कोई न कोई जीव इनका अवदय ही बन्ध प्रारम्भ करता है, इसिछए इनके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्भुहूर्त कहा है। तीर्थक्कर प्रकृतिका कुल विचार उक्त प्रकृतियोंके ही समान है। मात्र इसके अवक्तव्यपद्के उत्कृष्ट अन्तरमें अन्तर है। बात यह है कि तीर्थक्कर प्रकृतिका अवक्तव्यवन्ध इतने प्रकारसे प्राप्त होता है—कोई सम्यग्द्रष्टि मनुष्य तीर्थद्वर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ करे, उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेवाला जीव उतरते समय या मर कर देव होकर पुनः बन्ध प्रारम्भ करे और तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला अविरत-सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टि होकर व मर कर दूसरे व तीसरे नरकमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यग्दृष्टि हो, पुनः बन्ध प्रारम्भ करे । इन सबका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होनेसे इसके अवक्तव्यपद का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्तवप्रमाण कहा है। शेष कथन सुगम है।

भावो

६२४. भावाणुगमेण दुवि०। ओघे० सच्वपगदीणं सव्वपदाणं बंधगा ति को भावो ? ओदहगो भावो । एवं यात्र अणाहारए ति णेदव्वं ।

अपाबहुअं

६२५. अप्पानहुगं दुवि० । अधि० पंचणा०-णवदंस०-मिच्छ०-सोलसक०भय-दु०-ओरालि०-तेजा०-क०-चण्ण०४-अगु०-उप०-णिमि०-पंचंत० सन्वत्थो०
अवत्त० । अविहि० अणंत० । अणंतभागविह्न-हा० दो वि० तु० असं०गु० । असंखेंजभागविह्न-हाण दो वि तु० असं०गु० । संखेंजभागविह्न-हाणि० दो वि० तु०
असं०गु० । संखेंजगुणविह्न-हाणि० दो वि तु० असं०गु० । असंखेंजगुणविह्न-हाणि० दो
वि तु० असंखें०गु० । अणंतगुणहाणि० असं०गु० । अणंतगुणविद्धी विसे० । एवं
तित्थय० । णवि अविह्नि० असं०गु० । आहार०२ सन्वत्थो० अविह्नि० । अणंतभागविह्न-हाणि० दो वि तु० संखेंजगु० । असंखेंजभागविह्न-हाणि० दो वि तु० संखें०गु० । संखेंजभागविह्न-हाणि० दो वि तु० संखेंजगु० । संखेंजगुणविह्न-हाणि० दो वि

भाव

६२४. भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ व आदेश। ओघसे सब प्रकृतियोंके सब पदोंके बन्धक जीवोंका कीनसा भाव है ? ओदयिक भाव है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

अल्पबहुत्व

६२५. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है--ओघ और आदेश। ओघसे पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलद्द कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मण-शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तरायके अवक्तव्यपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अवस्थित पदके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अनन्तभाग-वृद्धि और अनन्तमागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाछे तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागदृद्धि और संख्यातभागहांनिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाळे तुल्य होकर असंस्थातगुणे हैं। इनसे संस्थातगुणदृद्धि और संस्थातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदवाले तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसी प्रकार तीर्थं द्वर प्रकृतिकी अपेक्षासे अल्पबहुत्व जानना चाहिए। इतनी विशे-षता है कि यहाँ पर अवक्तव्यपद्के बन्धक जीवींसे अवस्थितपद्के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहारकद्विकके अवस्थितपद्के बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि भौर अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यात-भागवृद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागद्दानिके बन्धक जीव दोनों हो तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहातिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यात-

अवत्त ० संखें अगु० | अणंतगुणहा० संखें अगु० | अणंतगुणवड्ढी विसे० | सेसाणं सादादीणं सञ्बत्थो० अविह० | अणंतभागविह्न-हा० दो वि० तु० असं०गु० | असंखें अभागविह्न-हा० दो वि तु० असं०गु० | संखें अभागविह्न-हाणि०दो वि तु० असं०गु० | असंखें अगुणविह्न-हाणि० दो वि तु० असं०गु० | असंखें अगुणविह्न-हाणि० दो वि तु० असं०गु० | असंखें अगुणविह्न-हाणि० दो वि तु० असं०गु० | अवंतगुणहा ० असं०गु० | अणंतगुणहा ० असं०गु० | अणंतगुणविह्नि० विसे० | णेरइ० धुविगाणं सञ्बत्थो० अविह० | उविर मूलोवं । [थीणगिद्धिदंडओ] तित्थ० सञ्चत्थो० अवत्त ० | अविह० असं०गु० | सेसाणं ओघं । एवं सत्तसु पुढवोसु । णविर सत्तमाए दोगिदि-दोआणु०-दोगो० थीणगिद्धिभंगो एदेण कमेण भुजगारमंगो याव अणाहारए ति णेदव्वं ।

एवं वड्डिबंधे ति समत्तमणियोगद्दाराणि ।

अज्झवसाणसमुदाहारो

६२६. अञ्झवसाणसम्रदाहारे ति तत्थ इमाणि तिष्णि अणियोगदाराणि—पगदि-सम्रदाहारो हिदिसम्रदाहारो तिव्वमंददा ति ।

गुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणदृद्धि और असंख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अनन्तगुणदृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। शेष सातावेदनीय आदिके अवस्थितपदके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे अनन्तभागवृद्धि और अनन्तभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदांके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असं-ख्यातमागृहद्धि और असंख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर अस-ख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदींके नुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणदृद्धि और संख्यातगुणहानिके बन्धक जीव दोनों ही पदोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुण-हानिके वन्धक जीव दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवक्तव्यपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तगुणहानिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तर्गुणवृद्धिके बन्धक जीव विशेष अधिक है। नारिकयोंमें ध्रुवबन्धवास्री प्रकृतियोंके अवस्थित-पदके वन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। आगे मूलोचके समान भक्न है। स्यानगृद्धिदण्डक और तीर्थङ्करप्रकृतिके अवक्तव्यपद्के बन्धक जीव सबसे स्तोक है। इनसे अवस्थितपदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे शेष पदों व शेष प्रकृतियोंके सब पदोंका भक्न ओघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं षृथिवीमें दो गति, दो आनुपूर्वी और दो गोत्रका भक्क स्यानगृद्धिके समान है। इसी क्रमसे अनाहारक मार्गणा तक भुजगार भक्नके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार वृद्धिबन्ध अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अध्यवसानसमुदाहार

६२६. अध्यवसानसमुदाहारमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं —प्रकृतिसमुदाहार, स्थिति-समुदाहार और तीत्रमन्दता।

१. आ॰प्रतौ संखेजगुणबङ्घि-हा॰ दो वि तु॰ असं॰ गु॰। अणंतगुणहा॰ इति पाटः। २. ता॰ प्रतौ अविधि॰। उविरि मूलोधं।''''तित्थ॰, ऋा॰ प्रतौ अविधि॰। मूलोघं।''''तित्थ॰ इति पाठः।

पयडिसमुदाहारो पमाणाणुगमो

६२७. पगदिसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगदाराणि णाद्व्वाणि भवंति -पमाणाणुगमे अप्पाबहुगे ति । पमाणाणुगमेण पंचणाणावरणीयाणं केविडि-याणि अणुभागवंधज्झवसाणहाणाणि ? असंखेजा लोगा अणुभागवंधज्झवसाण-हाणाणि । एवं सव्वपगदीणं । एवं याव अणाहारए ति णेदव्वं । णवरि अवगद०-सुदुमसंप०एगेगं परिणामहाणं ।

एवं पमाणाणुगमो समत्तो

अपाबहुअं

६२८. अप्पाबहुगं दुवि०-सत्थाणअप्पाबहुगं चेव परत्थाणप्पाबहुगं चेव। सत्थाणप्पाबहुगं चेव। सत्थाणप्पाबहुगं चेव। सत्थाणप्पाबहुगं चेव। सत्थाणप्पाबहुगं चेव। स्वाणप्पाबहुगं चेव। स्वाणप्पावहुगं चेव। स्वाणप्पावहुगं चेव। स्वाणप्पावहुगं चेव। स्वाणप्पावहुगं चेव। अप्रिमाग्वहुगं चेव। स्वाणप्पावहुगं च

६२९. सञ्बबहूणि केवलदंस० अणुभागबंघ०। चक्खु० अणुभागबंघ० असं०-गुणही०। अचक्खु० अणुभा० असं०गुणही०। ओघिदं० अणुभागबंघ० असं०गुणही०। थीणगिद्धि० असं०गुणही०। णिदाणिदा० अणुभा० असं०गुणही०। पयलापयला०

प्रकृतिसमुदाहार प्रमाणानुगम

६२७. प्रकृतिसमुदाहारमें ये दो अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—प्रमाणानुगम और अल्पबहुत्व । प्रमाणानुगमसे पाँच झानावरणीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान कितने हैं ? असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं । इसी प्रकार सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपगतनेदी और सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंमें एव एक परिणामस्थान होता है ।

इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ । अल्पबहुत्व

६२८. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्वस्थान अल्पबहुत्व और परस्थान अल्पबहुत्व । स्वस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आदेश। ओपसे केवलकानावरणीयके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे बहुत हैं। इनसे आभिनिबोधिक- ज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे अतज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं।

६२९. केवलदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे चक्षु-दर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अचक्षुदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिदर्शनावरणके अनुभागवन्धा-ध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्यानगृद्धिके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन

ता॰ प्रतौ इमाणि दव्वाणि भवंति इति पाठः । २. ऋा॰ प्रतौ केविडयाणि ऋणुभागवंधऋगवसाण डाणिणि ! एवं इति पाठः । ३. आ. प्रतौ सुद्रणाणा॰ अणुभागवंध० असं०राणहो० । मण्पक० इति पाठः ।

अणु० असं०मुणही० । णिद्दा० असं०मुणही० । पयला० असं०मु०ही ।

६३०. सव्ववहूणि सादस्स अणुभागबंघ० । असादा० अणुभा० असं०गुणही० ।

६३१. सव्वबहूणि मिच्छ० अणुभागवं० । अणंताणुवं०लोमे अणुभा० असं०गुणही० । माया० विसे० । कोघे विसे० । माणे विसे० । संजलणलोमे असं०गुणही० ।
माया० विसे० । कोघे विसे० । माणे विसे० । पचक्खाण०लोमे अणु० असं०गुणही० । माया० विसे० । कोघे विसे० । माणे विसे० । अपचक्खाणलोमे अणु०
असं०गुणही० । माया० विसे० । कोघे० विसे० । माणे विसे० । णवुंस० असं०गु० ।
अरदि० असंखें०गु० । सोग० असं०गु० । भय० असं०गु० । दुगुं० असं०गु० ।
हस्थि० असं०गु० । पुरिस० असं०गु० । रदि० असं०गु० । हस्स० असं०गु० ।

हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६३०. सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे असातावेद-नीयके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६३१. मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे बहुत हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी ह्योभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मायामें विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी कोधमें विशेष दीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मानमें विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन लोभमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलनमायामें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान विशेष द्दीन हैं। इनसे संज्वलन कोधमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलनमानमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण छोभमें अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असं-ल्यातगुणे होन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुसागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरणमानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अप्रत्या-स्यानावरण लोभके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे अप्रत्याख्याना वरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनुमागषन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रितके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे दीन है । इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है ।

१. आ. प्रतौ णिदा० असं•गुणही० । सव्वबद्धणि इति पाठः ।

- ६३२. सञ्चबहूणि देवाउ० अणुभाग०। णिरयाउ० अणुभा० असं०गुणही०। भणुसाउ० असं०गुणही०। तिरिक्खाउ० असं०गुणही०।
- ६३३. सन्वबहूणि देवग० अणुभा० । मणुस० असं०गुणही० । णिरय० असं०गुणही० । तिरिक्खग० असं०गुणही० । सन्वबहूणि पंचिंदि० अणुभा० । एइंदि० असं०गुणही० । बीइंदि० असं०गुणही० । तीइंदि० असं०गुणही० । चदुरिं० असं०गुणही० । सन्वबहूणि कम्मइ० अणुभा० । तेजा० असं०गुणही० । आहार० असं०गुणही० । सन्वबहूणि समचदु० अणुभा० । हुंड० असं०गुणही० । णग्गोद० असं०गुणही० । सादि '० असं०गुणही० । सुज्ज० असं०गुणही० । वामण० असं०गुणही० । सन्वबहूणि आहार०अंगो० अणुभा० । वेउन्वि०अंगो० असं०गुणही० । [ओरालिय०अंगो० असं०गुणही० ।] संघडणाणं संठाणभंगो । सन्वबहूणि पसत्थवण्ण०४ अणुभा० । अप्पसत्थव०४ असं०-

६३२. देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे नरकायुके अनुभाग-वन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे तिर्यक्कायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

६३३. देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इससे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्या तुगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्चगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असं-ख्यातगुणे हीन हैं। पंचेन्द्रियजातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे एकेन्द्रियजातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे द्वीन्द्रिय जातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे त्रीन्द्रियज्ञातिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चतुरिन्द्रियजातिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुमागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे आहारकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंस्यातगुणे हीन हैं । इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्य-वसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। समचतुरस्रसंस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे हण्डसंस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे न्यब्रोधपरि-मण्डल संस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे खातिसंस्थानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कुन्जक संस्थानके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वामन संस्थानके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। आहारक आङ्गोपाङ्गके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे वहत हैं। इनसे वैक्रियिक आङ्गोपाङ्गके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे औदारिक आङ्गोपाङ्गके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातसुणे हीन है 🕴 संहननींका भक्क संस्थानोंके समान है। प्रशस्त वर्णचतुष्कके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे अप्रशस्त वर्णचतुष्कके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं।

१. ता. प्रतौ सादा॰ इति पाठः ।

गुणही । गदिभंगो आणुपुच्ची । एत्तो सञ्जयुगलाणं सञ्जवहूणि पसत्थाणं अणुभा । तप्पडिपक्खाणं अणुभा ० असं०गुणही ० ।

६३४. सव्वबहूणि विरियंतरा० अणुभा०। हेट्ठा० दाण० असं०गुणही ०। एवं ओधभंगो-पंचिं०-तस०२-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-कोधादि०४-मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-चक्खु०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अब्भवसि०-मिच्छा०-सण्णि-आहारए ति ।

६३५. णिरएसु यत्तियाओ पगदीओ अत्थि तासि मूलोघं। एवं सत्तसु पुढवीसु । तिरिक्खेसु सञ्चवहूणि णिरयाउ० अणुभा०। देवाउ० असं०गुणही०। मणुसाउ० असं०गुणही०। तिरिक्खाउ० असं०गुणही०। सञ्चवहूणि देवगदि० अणुभा०। णिरयग० असं०गुणही०। तिरिक्खाउ० असं०गुणही०। सञ्चवहूणि देवगदि० गुणही०। सेसाणं मूलोघं। एवं सञ्चतिरिक्खाणं सञ्चअपज्ञ०-एइंदि०-विगर्लि० पंचकायाणं च। मणुस०३ गदीओ तिरिक्खगदिभंगो। सेसं मूलोघं। देवाणं मूलोघं। ओरालि० मणुसभंगो। ओरा०मि० तिरिक्खगदिभंगो। वेउ०-वेउ०मि० देवगदि-भंगो। आहार०-आहार०मि० सञ्चद्वभंगो। कम्मइ० ओरालि०मिस्सभंगो। एवं

चार आनुपूर्वियोंका भङ्ग चार गतियोंके समान है। सब युगलोंमें सब प्रशस्त प्रकृतियोंके अनु-भागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं।

६३४. वीर्योन्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। पीछे दानान्तराय तक प्रतिलोम क्रमसे प्रत्येकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन असंख्याने पद्मीनी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, कोधादि चार कषायवाले, मत्यझानी, श्रुता-झानी, विभङ्गहानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्या-रिष्ट, संही और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

६३%, नारिकयों में जितनी प्रकृतियाँ हैं उनका भक्क मूलोघके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियों में जानना चाहिए। तिर्यक्रों में नरकायुके अनुमागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। उनसे देवायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। उनसे मनुष्यायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। उनसे तिर्यक्रायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। उनसे तिर्यक्रायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्रगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्रगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्रगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यातिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। होष प्रकृतियोंका भक्क मूलोघके समान है। इसी प्रकार सब तिर्यक्र सब अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। मनुष्यितकमें चार गतियोंका भक्क तिर्यक्रगतिके समान है। तथा शेष भक्क मूलोघके समान मक्क है। वेहोंमें मृलोघके समान भक्क है। औदारिककाययोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भक्क है। औदारिककाययोगी जीवोंमें तर्यक्रियकन मिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भक्क है। आहारककाययोगी और विक्रियकन मिश्रकाययोगी जीवोंमें देवगतिके समान भक्क है। आहारककाययोगी और आहारकामश्रकाय-

१. ता. भा. प्रत्योः हेट्ठा हुंड० असं०गुण्ही० इति पाठः ।

अणाहारए ति । अवगद० ओघं । एवं सुहुमसंप० । आभिणि-सुद-ओधि०-मणपञ्ज०-संज०-सामा०-छेदो०-ओधिदं०-सुक्क०-सम्मा०-खइग०-उवसम० ओघं । णवरि अप्प-पणो पगदीओ णादव्याओ । परिहार०-संजदासंज०-वेदग० सव्वहभंगो ।

६३६. णील-काऊणं सन्वबहूणि देवग० । मणुसग० असं०गुणही० । णिरयग० असं०गुणहीणाणि । [तिरिक्खग० । असं०गु०] । एवं आणु० । तेउले० देवभंगो । एवं पम्माए वि । मदि०-सुद०-विभंग०-असंज०-अब्मवृसि०-मिच्छा०-असण्णि० सन्वपयाडि-अणुभागबंधन्झवसाणद्वाणाणि तिरिक्खगदिभंगो । सासणे णिरयभंगो । सम्मामि० वेदग०भंगो । एवं सन्वपगदीणं याव अणाहारए ति णेदन्वं । चदुवीसमणियोगहाराणि अप्याबहुगेण साधेद्ण कादन्वं । णवरि जम्हि अणंतगुणहीणाणि तम्हि अणुभागबंधन्झव-साणद्वाणाणि असंखेँअगुणहीणाणि कादन्वाणि । एदेण बीजेण सत्थाणप्याबहुगं । एवं अणाहारए ति णेदन्वं ।

एवं सत्थाणप्पाबहुगं समत्तं।

६३७. परत्थाणप्पात्रहुगं पगदं । दुवि० । ओघेण एत्तो चदुसद्विपिहिनो दंडमो— योगी जीवोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भङ्ग है । कार्मणकाययोगी जीवोंमें औदारिकिमश्रकाय-योगी जीवोंके समान भङ्ग है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इसी प्रकार स्दमसाम्परायसंयत जीवोंमें जानना चाहिए । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदो-पस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्कठेदयावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है । इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी प्रकृतियाँ जाननी चाहिए । परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सर्वार्थ-

सिद्धिके समान भङ्ग है।

६३६. नील और कापोतलेश्यामें देवगतिके अनुभागयन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तर्यक्रगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्रगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार आनुपूर्वियोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए। पीतलेश्यामें देवोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अभन्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें सब प्रकृतियोंके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तिर्यक्रगतिके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें नारिकयोंके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तिर्यक्रगतिके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें नारिकयोंके समान भङ्ग है। सम्यग्निथ्यादृष्टियोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंका अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए। चौबीस अनुयोगद्वार अल्पबहुत्वके अनुसार साध कर करने चाहिए। इतनी विशेषता है कि जहाँ पर अनन्तगुणे हीन हैं, वहाँ पर अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन करने चाहिए। इस बीजसे स्वस्थान अल्पबहुत्व है। इस प्रकार अनाहारक तक जानना चाहिए।

इस प्रकार स्वस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

६३७. परस्थान अल्पबहुत्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—

१. ता. प्रतौ असण्णिः '''''णि तिरिक्खगदिभंगो, आ. प्रतौ असण्णिः ''''' तिरिक्खगदि-भंगो इति पाठः।

सन्वबहूणि अणुभागवंधन्यवसाणद्वाणाणि साद० । जस०-उचा० अणुभागवंध० असं०गुणहीणाणि । देवगदि० अणुभा० असं०गुणही० । कम्म० असं०गुणही० । तेजा०
असं०गुणही० । आहार० असं०गुणही० । वेउन्वि० असं०गुणही० । मणुस० असं०गुणही० । ओरा० असं०गु० । मिच्छ० असं०गु० । केवलणा०-केवलदं०-विरियंत०
तिष्णि वि तु० असं०गु० । असादा० विसेसहीणाणि । अणंताणुवं०लोमे असं०गु० ।
माया० विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । संजलणलोमे० असं०गु० । माया०
विसे० । कोधे विसे० । माणे० विसे० । पचक्खाण०लोमे० असं०गु० । माया०
विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । अपन्वक्खाणलोमे० असं०गु० । माया०
विसे० । कोधे० विसे० । माणे० विसे० । आमिणि०-परिमो० दो वि तु० असं०गु० ।
चक्खा० असं०गु० । सुद०-अचक्खा०-भोगंत० तिष्णि वि तु० असं०गु० । ओधिणा०

ओघ और आदेश । ओघसे यहाँ चौंसठ पिद्क दण्डक है। यथा—सातावेदनीयके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत है । इससे यशकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्भणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसरारीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे आहारकशरीरके अनु-भागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे द्दीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्ध्यावसान स्थान असंख्यात-गुणे हीत हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही प्रकृतियोंके परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागधन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी छोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्यात-गुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्ता-नुबन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संख्वलन लोभके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलन मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन कोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वळन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीत हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष होत हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागबन्धाध्ययसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है । इनसे आभिनि-बोधिक ज्ञातावरण और परिभौगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शना-

जोधिदं - लाभंत ० तिण्णि वि तु ० असं ० गु ० । मणपञ्ज ० - दाणंत ० दो वि तु ० असं ० गु ० । थीणिग ० विसे ० । णवंस ० असं ० गु ० । इत्थि ० असं ० गु ० । पुरिस ० असं ० गु ० । अरिद ० असं ० गु ० । सोग ० असं ० गु ० । मय ० असं ० गु ० । दुर्गु ० असं ० गु ० । णिहाणिहा ० असं ० गु ० । पयलापयला ० असं ० गु ० । णिहा ० असं ० गु ० । पयलाप असं ० गु ० । णिहा ० असं ० गु ० । पयला ० असं ० गु ० । णिरया ० असं ० गु ० । स्ति ० असं ० गु ० । हस्स ० असं ० गु ० । देवा उ ० असं ० गु ० । विरिक्ता ० असं ० गु ० । एवं ओधि । पिरिया ० असं ० गु ० । मणुसाउ ० असं ० गु ० । तिरिक्ता ० असं ० गु ० । एवं ओधि । पंचि ० - तस ० २ - पंचि मण ० - पंचवि ० - कायजोगि - इत्यि ० - पुरिस ० - णवुंस ० - कोधा दि ० ४ - चक्ता ० - अचकता ० - भाणि - आहार ए ति ।

६३८. आदेसेण णिरयगदीए सन्वबहूणि साद०। जस०- उचा० असं०गु०। मणुस० असं०गु०। कम्म० असं०गु०। तेजा० असं०गु०। ओरा० असं०गु०।

वरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्यानगृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे क्वीवेदके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचळाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे द्दीन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन 🧗। इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्क-गतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे **इ**नि हैं। इनसे देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे नरकायुके अनुभागबन्धाध्यवसानं स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्जायुके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इसी प्रकार ओघके समान पक्केन्द्रियद्विक, त्रसद्विक, पाँचीं मनीयोगी, पाँचों बचनयोगी, काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चार कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

६३८. आदेशसे नरकगितमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगितके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाः

मिच्छ० असं०गु० | केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० तिण्णि वि तु० असं०गु० | असादा० विसे० | अणंताणु०लोभे० असं०गु० | माया० विसे० | कोधे० विसे० | माणे० विसे० | संजलणलोभे० असं०गु० | माया० विसे० | कोधे विसे० | माणे० विसे० | पचक्खाणलोभे० असं०गु० | माया० विसे० | कोधे० विसे० | माणे० विसे० | अपचक्खाणलोभे० असं०गु० | माया० विसे० | कोधे० विसे० | माणे० विसे० | अपिण०-परिभो० असं०गु० | चक्खु० असं०गु० | सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०गु० | ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०गु० | मणपज्ञ०-दाणंत० असं०गु० | थीणगि० विसे० | णवुंस० असं०गु० | इत्थि० असं०गु० | पुरिस० असं०गु० | अरदि० असं०गु० | सोग० असं०गु० | भय० असं०गु० | दुगुं० असं०गु० | णिहा-

यवसान स्थान असंस्थातगणे हीन हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं । इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धा-भ्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी छोभके अनुभागबन्धाभ्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है । इनसे अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वस्न लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगणे हीन हैं। इनसे संज्वलन मायाके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान विशेष होन हैं। इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष द्दीन हैं। इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष दीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाभ्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रत्या-ख्यानावरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनु-भागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष दीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं ।इनसे अप्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुसागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अप्रत्याख्यानावरण मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे आभिनिवोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और ळाभान्तरायके अनुमागनन्धाध्यवसान स्थान परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्यानगृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्नीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरितके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्थात- णिहा० असं०गु०। पयलापयला० असं०गु०। णिहा० असं०गु०। पयला० असं०गु०। णीचा० असं०गु०। अजस० विसे०। तिरिक्ख० असं०गु०। रिद० असं०गु०। हस्स० असं०गु०। मणुसाउ० असं०गु०। तिरिक्खाउ० असं०गु०। एवं सत्तमाए पुढवीए। णविर मणुसाउ० णित्थ। सेसास पुढवीस णीचा०-अजस० तुझाणि णादव्वाणि। यथा पढमपुढवीए तथा देवगदीए सव्वेस वि कप्पेस। एवं बेउव्वियमि०। णविर णीचा०-अजस० णिरयोघं। वेउव्वियमि० आउ० णित्थ।

६३९. तिरिक्खेसु सव्वबहूणि अणुभा० साद०। जस०-उचा० असं०गु०। देवग० असं०गु०। कम्म० असं०गु०। तेजा० असं०गु०। वेउव्वि० असं०गु०। मिच्छ० असं०गु०। केवलणा०-केवलदंस०-विरियंत० असं०गु०। असादा० विसे०। अणंताणु०लोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोधे० विसे०। माणे० विसे०।

गुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागनन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाभ्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुँप्साके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलापचलाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्युद्धगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके भनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्कायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असं-क्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार सातवी पृथिवीमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यायुका भक्क नहीं है। शेष पृथिवियोंमें नीचगोत्र और अयशःकीतिके अनुभागबन्धाध्य-बसान स्थान तुल्य जानने चाहिए। जिस प्रकार प्रथम पृथिवीमें है उसी प्रकार देवगतिमें तथा सब कल्पोंमें भी जानना चाहिए। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि नीचगोत्र और अयशःकीर्तिका भन्न सामान्य नारकियाँके समान है तथा वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें आयुका भङ्ग नहीं है।

६३९, तिर्यक्कोंमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे यशःकीतिं और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देव-गतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवलवर्शनावरण, केवलवर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी सायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं।

संजलणलोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। पचक्खा०लोभे० असं०गु०। माया० विसे०। कोघे० विसे०। माणे० विसे०। एवं अपचक्खाण०४। आभिणि०-परिभो० असं०गु०। चक्खु० असं०गु०। सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०गु०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०। मणपजा०-दाणंत० असं०। थीण० विसे०। णवंस० असं०। इत्थि० असं०। पुरिस० असं०। अरदि० असं। सोग० असं। भय० असं०। दुगुं० असं०। णिद्दाणिद्दा० असं०। पयलापयला० असं०। णिद्दा० असं०। प्रतिक्ख० असं०। रदि० असं०। हस्स० असं०।

इनसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानु-बन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे संज्वलनमायाके अनुमागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण लोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं । इनसे प्रत्याख्यानावरण मायाके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे प्रत्याख्यानावरण मानके अनुमागबन्धाध्ययसान स्थान विशेष हीन हैं । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण चतुष्कके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंका अल्पबहुत्व है। आगे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचश्रुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और छाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्त-रायके अनुभागवन्थाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इससे स्त्यानगृद्धिके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे द्दीन हैं। इनसे अरतिके अनु-भागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुप्साके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे दीन हैं। इनसे निक्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात-गुणे हीन हैं। इनसे प्रचळाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन है । इनसे नरकगतिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्रगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असं-ख्यातगुणे हीन हैं । इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे हास्यके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे नरकायुके अनुभागवन्धाध्यव-

णिरयाउ० असं० | देवाउ० असं० | मणुस० असं० | ओरा० असं० | मणुसाउ० असं० | तिरिक्खाउ० असं० | एवं सन्वतिरिक्खाणं | णविर पंचिदियतिरिक्ख- जोणिणीसु णाणत्तं | अजस०-णीचा० सिरसाणि | एदं णाणत्तं | यथा जोणिणीसु तथा मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु च | णविर णाणत्तं | देवाउ० अणुभा० बहूणि | णिरयाउ० थोवाणि |

६४०. पंचिं वितिरि अपञ्ज व सन्वबहूणि अणुभाग भिच्छ । सादा असं । अस०-उचा असं । केवलणा ०-केवलदं ०-विरियंत ० असं । असादा विसे । अणंताणु ० लोभे ० असं । माया विसे ० । कोधे ० विसे ० । माणे ० विसे ० । एवं संजलण ० ४ - पचक्खाण ० ४ - अपचक्खाण ० ४ । आभिणि ० - परिभो ० असं ० । चक्खु ० असं ० । सुद ० - अचक्खु ० - भोगंत ० असं ० । अधिणा ० - ओधिदं ० - लाभंत ० असं ० । मणप ० - दाणंत ० असं ० । थीण ० विसे ० । णवुंस ० असं ० । इत्थि ० असं ० । पुरिस ०

वसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार सब तिर्यञ्चायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार सब तिर्यञ्चांके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें नानात्व है। अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान समान हैं। यही नानात्व है। जिस प्रकार योनिनी तिर्यञ्चोंमें अल्पबहुत्व है, उसी प्रकार मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। किन्सु इतना नानात्व है कि देवायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान बहुत हैं और नरकायुके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान थोड़े हैं।

६४०. पञ्चेन्द्रिय तिर्येख्व अपर्याप्तकोंमें मिध्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे यशकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानुबन्धी छोभके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यात-गुणे हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी मायाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी क्रीयंके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे अनन्तानु-बन्धी मानके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इसी प्रकार संज्वलन चतुष्क, प्रत्याख्यानावरणचतुष्क और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके विषयमं जानना चाहिए । आगे आर्मिन-बोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके समान होकर असंख्यातगुणे होन हैं । इनसे चक्षुदर्शनावरणके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके परस्पर समान होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधि-दर्शनावरण और लाभान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान तीनोंके तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनोंके

१. आ॰ प्रती असं॰ । मणुस॰ दाणंत॰ इति पाठः ।

असं० | अरदि० असं० | सोग० असं० | भय० असं० | दुगुं० असं० | णिद्दाणिद्दा० असं० | पयलापयला० असं० | णिद्दा० असं० | पयला० असं० | अजस०-णीचा० दो वि तु० असं० | तिरिक्ख० असं० | रिद० असं० | हस्स० असं० | मणुसग० असं० | ओरा० असं० | मणुसाउ० असं० | तिरिक्खाउ० असं० | एवं मणुसअपज्ञत्त-सन्वएहंदि०-सन्वविगर्लि०-पंचि०-तस०अपज्ञ०-पंचकायणं च | णवरि एइंदिए तेउ०-वाउ० णाणत्तं | णीचा० बहुगाणि | अजस० विसेसही० | एवं णाणत्तं |

६४१. ओरालियका० मणुसगदिभंगो । ओरा०मि० सव्यवहूणि साद० । जस०-उचा० असं० । देवग० असं० । कम्म० असं० । तेजा० असं० । वेजव्वि० असं० । मिच्छ० असं० । सेसासु० णवरि पंचिंदियतिरिक्खभंगो । एत्तियाओ अस्थि ।

परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे स्त्यानागृद्धिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे नपुंसकवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे स्त्रीवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अरितके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे शोकके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे द्दीन हैं। इनसे भयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे जुगुष्सांके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है'। इनसे निद्रानिद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे प्रचलाप्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीत हैं। इनसे निद्राके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्ति और नीचगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान दोनों ही परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तिर्यक्क्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हास्यके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मनुष्यगतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे औदारिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे मनुष्यायुके अनुमागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे तिर्यक्रायुके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंमें नानात्व है। अर्थात् इनमें नीचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान बहुत हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इस प्रकार नानात्व है।

६४१. औदारिककायोगी जीवोंमें मनुष्योंके समान भक्क हैं। औदारिकिमश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे यशःकीर्ति और उचगोत्रके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगितके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैक्रियिकशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे मिथ्यात्वके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। आगे शेष प्रकृतियोंका भक्क पद्मोन्द्रिय तिर्थक्कोंके समान है। इस प्रकार अल्पबहुत्व है।

६४२. वेउव्वियका० णिरयमंगो । आहार १०-आहार०मि० सव्वबहूणि साद०। जस०-उचा० असं०। देवग० असं०। कम्म० असं०। तेज० असं०। वेउ० असं०। केवलणा०-केवलदं०-विरियंत० असं०। असादा० विसे०। संजलणलोमे १० असं०। माया० विसे०। कोधे० विसे०। माणे० विसे०। आभिणि०-परिभोग० असं०। चक्खु० असं०। सुद०-अचक्खु०-भोगंत० असं०। ओधिणा०-ओधिदं०-लाभंत० असं०। मणपञ्ज०-दाणंत० असं०। पुरिस० असं०। अरदि० असं०। सोग० असं०। मय० असं०। दुगुं० असं०। णिद्दा० असं०। पयला० असं०। अजस० असं। रिद० असं०। हस्स० असं०। देवाउ० असं०। एवं मणपञ्ज०-संज०-सामाइ०-छेदो०-परिहार०। एदेसु आहारसरीरं अत्थि। संजदासंज० परिहार०भंगो। णवरि

६४२. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें नारिकयोंके समान भक्न है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत है । इनसे यशःकीर्ति और उच्चगोत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे होन हैं। इनसे देवगतिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे कार्मणशरीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनुसे तैजसशरीरके अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे वैक्रियकशारीरके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे असातावेदनीयके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं । इनसे संज्वलन लोभके अनुमागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं । इनसे संज्यलन मायाके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष हीन है[ं] । इनसे संज्वलन क्रोधके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष होन हैं । इनसे संज्वलन मानके अनुभागबन्धान ध्यवसान स्थान विशेष हीन हैं। इनसे आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे चक्षदर्शनावरणके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे श्रुतज्ञानावरण, अचक्ष्दर्शनावरण और भोगान्तरायके अतुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लामान्तरायके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंस्यातग्णे हीन हैं। इनसे मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन है । इनसे पुरुषवेदके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातंगुणे हीन है । इनसे अरतिके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे शोकके अनुभागबन्धान ध्यवसान स्थान असंख्यातगणे हीन हैं। इनसे भयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं । इनसे जुगुप्साके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीनाहैं । इनसे निद्राके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे प्रचलाके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंस्थातगुणे हीन हैं। इनसे अयशःकीर्तिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असं्यातगुणे हीन हैं। इनसे रतिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे हारयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवायुके अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातराणे हीन हैं । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामाधिकसंयत छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिए। इतनी विशेषता है

१. ता० आ० प्रत्योः गिरयमंगो । एवं वेउव्वियमि० । आहार० इति पाठः । २. ता० प्रतौ संजलणं लोभे इति पाठः ।

पचक्खाण०४ अस्थि ।

६४३. कम्म० ओघं। णविर चढुआउ०-आहार०-णिरयगिद वज सेसं कादव्वं। एवं अणाहार०। अवगद० ओघं। एवं सुहुमसं०। मिद०-सुद०-असंज०-अब्भव०-मिच्छा० ओघं। एवं विभंग०। आभिणि०-सुद०-ओधि०-सम्मा०-खहग०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ओघं। णविर अप्पप्पणो पगदिविसेसो णादव्वो।

६४४. किण्ण-णोल-काऊणं ओघं। तेउ० ओघं।णिरयाउ०-णिरयगदिं वजा। एवं पम्माए वि । सुक्काए 'ओघो। दोआउ०-णिरय०-तिरिक्खगदि वजा। असण्णीसु सन्वबहृणि मिच्छ० । सादा० असं०। जस०-उचा र० असं०गुणही० । देवग० असं०-गुणही० । कम्म० असं०गुणही० । तेजा० असं०गुणही० । वेउन्वि० असं०गुणही० । उवरि तिरिक्खोधं । एवं परत्थाणपाबहुगं समत्तं ।

एवं पगदिसम्रदाहारो समत्तो ।

कि इनमें आहारकशरीर है। संयतासंयत जीवोंका भक्त परिहारविद्युद्धिसंयतोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके प्रत्याख्यानावरणचतुष्क हैं।

६४३. कार्मणकाययोगी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि चार आयु, आहारकशरीर और नरकगितको छोड़ कर शेषका अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। अपगतवेदी जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके जानना चाहिए। मत्यज्ञानी, श्रुताञ्चानी, असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इसी प्रकार विभङ्गज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्निथ्यादृष्टि जीवोंमें ओघके समान भङ्ग है। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रकृतिविशेष जाननी चाहिए।

६४४. कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें ओयके समान भङ्ग है। पीतलेश्यामें ओघके समान भङ्ग है। मात्र नरकायु और नरकगितको छोड़कर यह अल्पबहुत्व कहना चाहिए। इसी प्रकार पद्मलेश्यामें भी जानना चाहिए। तथा इसी प्रकार युद्धलेश्यामें भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि दो आयु, नरकगित और तिर्यक्षगितको छोड़कर यह अल्पबहुत्व कहना चाहिए। असंज्ञियोंमें भिथ्यात्वके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे बहुत हैं। इनसे सातावेश्नीयके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे यशःकीर्ति और उच्चगीत्रके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे देवगितके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे कार्मणशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैकियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इनसे वैकियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इससे वैकियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इससे वैकियिकशरीरके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे हीन हैं। इससे अगो सामान्य तिर्यक्कोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार परस्थान अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार प्रकृतिसमुदाहार समाप्त हुआ।

१. आ॰ प्रतौ वि । णवरि सुकाए इति पाटः । २. ता॰ प्रतौ साद० अ [ज्र] स॰ उचा॰ इति पाटः ।

डिदिसमुदाहारो पमाणाणुगमो

६४५. हिदिसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि दुवे अणियोगद्दाराणि—पमाणाणुगमो सेढि-परुवणाणुगमो ति । पमाणाणुगमो दुवि० । ओघे० मदियावरणस्स जहण्णियाए हिदीए असंखेळा लोगा अणुभागवंधक्यवसाणहाणाणि । विदियाए हिदीए असंखेळा लोगा अणुभाग० । तदियाए हिदीए असंखेळा लोगा अणुभा० । एवं असंखेळा लोगा असंखेळा लोगा असंखेळा लोगा असंखेळा लोगा एवं याव उक्कस्सियाए हिदि ति । एवं अप्पसत्थाणं । पसत्थाणं पगदीणं विवरीदं णेदच्वं । एवं याव अणाहारए ति णेदच्वं ।

एवं पमाणाश्रममं समत्तं सेढिपरूवणा

६४६. सेढिपरूवणाणुगमो दुविहो-अणंतरोवणिथा परंपरोवणिथा च । अणंतरोवणिथाए दुवि० । ओधे० पंचणा०-णवदंस०-असादा०-मिच्छ०-सोलसक०-खवणोक०णिरय०-तिरिक्ख०-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-अप्पसत्थ०४-दोआणु०-उप०'-अप्पसत्थ०-थावर०-सुहुम०-अपज्ञ०-साधार० -अधिरादिछ०-णीचा०-पंचंत० एदेसिं सच्यत्थोवा जहण्णियाए द्विदीए अणुभा० । विदियाए द्विदीए अणुभा० विसे० । तदीए
द्विदीए अणुभा० विसे० । एवं विसेसाधियाणि विसेसाधियाणि याव उकस्सियाए

स्थितिसमुदाहार

६४५. स्थितिसमुदाहारका प्रकरण है। उसके विषयमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं— प्रमाणानुगम और श्रेणिप्ररूपणानुगम। प्रमाणानुगम दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मितिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। द्वितीय स्थितिके असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त प्रत्येक स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त प्रत्येक स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात छोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार अप्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिये। तथा प्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें विपरीत कमसे छे जाना चाहिए। इस प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रमाणा**नुगम समाप्त हु**आ । श्रेणित्ररूपणा

६४६. श्रेणिप्ररूपणानुगम दो प्रकारका है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा! अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आहेश। ओघसे पाँच ज्ञाना-वरण, नौ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, नौ नोकषाय, नरकगित, तिर्यद्वगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायंगिति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर आदि छह, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनकी जधन्य स्थितिमें अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे दूसरी स्थितिमें अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इससे तीसरी स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक विशेष अधिक

१. आ॰ प्रतौ अप्पसत्थ॰४ आदाउजो॰ उप॰ इति पाटः । २. ता॰ प्रतौ सादा॰ इति पाठः ।

द्विति ति । सादा०-मणुसग०-देवग०-पंचि०-पंचसरीर-समचदु०-तिण्णिअंगो०-वजरि०-पसत्थ०४-दोआणु०-अगु०-पर०-उस्सा०-आदाउज्ञो०-पसत्थ०-तस०४-धिरादिछ - णिमि०-तित्थ०-उचा० सव्वत्थोवा उक्कस्सियाए द्विदीए अणुभाग्वंधज्झवसाण् । समऊणाए द्विदीए अणुभा० विसे० । विसमऊणाए द्विदीए अणुभा० विसे० । तिसमऊणाए द्विदीए अणुभा० विसे० । एवं विसेसाधियाणि विसेसाधियाणि याव जहाण्याए द्विदीए अणुभा० असंखेजगुणाणे । तिदयाए द्विदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि । तिदयाए द्विदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि । तिदयाए द्विदीए अणुभा० असंखेजगुणाणि । एवं असं०गु० असं०गु० याव उक्कस्सिया द्विदि ति । एवं एदेण बीजेण याव अणाहारए ति णेदव्वं ।

एवं अणंतरोवणिधा समत्ता ।

६४७. परंपरोवणिधाए मदियावरणस्स जहण्णियाए द्विदीए अणुभागबंधज्झवसाण-द्वाणिहिंतो तदो पिलदोव० असंखेजिदिभागं गंत्ण दुगुणविद्विदा। ए [वं दुगुणविद्विदा] दुगुण-विद्विदा याव उकस्सियाए द्विदि ति । एगद्विदिअणुभाग वंधज्झवसाणदुगुणविद्वि-हाणिद्वाणं-तराणि असंखेजाणि पिलदोवमवन्गम्लाणि । णाणाद्विदिअणुभागवंधज्झवसाणदुगुण-विद्वि-हाणिद्वाणंतराणि अंगुलवनगम्लञ्चेदणयस्स असंखेजिदिभागो । णाणाद्विदिअणुभा०-

विशेष अधिक अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। सातावेदनीय, मनुष्यगति, देवगति, पद्मिन्द्रियजाति, पाँच शरीर, समचतुरससंस्थान, तीन आङ्गोपाङ्ग, वज्रषमनराच संहनन, प्रशस्त वर्णचतुष्क, दो आनुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगिति, त्रसचतुष्क, स्थिर आदि छह, निर्माण, तीथङ्कर और उच्चगोत्रकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान स्थान सबसे स्तोक हैं। इनसे एक समय कम स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इनसे तो समय कम स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान विशेष अधिक हैं। इस प्रकार जयन्य स्थितिके प्राप्त होने तक विशेष अधिक विशेष अधिक अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं। चार आयुआंकी जघन्य स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे स्तोक हैं। इस प्रकार जयन्य स्थितिके अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान सबसे स्तोक हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान के जनुमागवन्धाध्यवसान स्थान असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान हैं। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

इस प्रकार अनन्तरोपनिधा समाप्त हुई।

६४% परम्परोपनिधाकी अपेक्षा मितज्ञानावरणको जघन्य स्थितिके अनुभागबन्धाध्यव-सान स्थानोंसे लेकर पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प जाने पर वे दूने होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक दूने दृने अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान जानने चाहिए। एकस्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणद्वद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पत्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण हैं। नानास्थितिअनुभागबन्धाध्यवसानद्विगुणद्वद्धि-द्विगुणहानि स्थानान्तर अङ्गुलके प्रथम वर्गमूलके अर्थच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थिति-

१. ता॰ आ॰ प्रत्योः पसत्थ॰४ तस॰४ थिरादिछ॰ इति पाटः । २. आ॰ प्रती एगर्ट्ठिद चि अणुभाग- इति पाठः ।

दुगुणबङ्गि-हाणि० थोवाणि । एगद्विदिअणुमागबंधज्झवसाणदुगुणबङ्गि-हाणिद्वाणंतराणि असंखेंज्जगुणाणि । एवं आउगवजाणं सन्वअप्यसत्थपगदीणं सो चेव भंगो ।

६४८. सादस्स उक्सिस्याए द्विदीए अणुभागवंथज्झवसाणेहिंतो तदो पलिदोव-मस्स असंखेँजिदभागो ओसिंकद्ग दुगुणविद्ध्या । एवं दुगुणविद्धित दुगुण० याव जहिष्णया द्विदि ति । एगद्विदिअणुभाग०दुगुणविद्धि-हाणिद्वाणंतराणि असंखेँजाणि पलिदो-वमवग्गम्लाणि । णाणाद्विदिअणुभा०दुगुणविद्धि-हाणिद्वाणंतराणि अंगुलवग्गम्लच्छेदण-यस्स असंखेँजिदिभागो । णाणाद्विदिअणुभागवंध०दुगुणविद्धि-हाणिद्वाणंतराणि थोवाणि । एयद्विदिअणुभा०दुगुणविद्धि-हाणिद्वाणंतरं असंखेँजगुणं । एवं आउगवजाणं सन्वपसत्थपगदीणं सो चेव भंगो । एदेण बीजेण एवं अणाहारए ति णेदव्वं । एवं परंपरोवणिधा समना ।

अणुभागबंधज्झवसाणहाणाणि

६४९. याणि चैव अणुभागवंधज्झवसाणद्वाणाणि ताणि चेव अणुभागवंध-द्वाणाणि । अण्णाणि पुणो परिणामद्वाणाणि ताणि चेव कसाउद्यद्वाणाणि ति भणंति । मदियावरणस्स जहण्णिगे कसाउद्यद्वाणे असंखें जा लोगा अणुभागवंधज्झव-अनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं । इनसे एकस्थितिअनुभाग-वन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर असंख्यातगुणे हैं । इस प्रकार आयुके सिवा सब अप्रशस्त प्रकृतियोंका वही भक्क है ।

६४८. सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागवन्धाध्यवसानस्थानोंसे पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प पीछे जाने पर वे दूने होते हैं। इस प्रकार जधन्य स्थितिके प्राप्त होने तक वे दूने-दूने होते जाते हैं। एकस्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुण-वृद्धि-द्विगुणहानिस्थानान्तर पत्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण हैं। नानास्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणहादि-द्विगुणहानिस्थानान्तर अङ्गुलके प्रथम वर्गमूलके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानास्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणहादि-द्विगुणहानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकस्थितिअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणहादि-द्विगुणहानिस्थानान्तर सत्तोक हैं। इस प्रकार आयुओंके सिवा सब प्रशस्त प्रकृतियोंका वही भङ्ग है। इस बीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ सब प्रकृतियोंकी जयन्यादि या उत्कृष्टादि किस स्थितिमें रहनेवाले अनुभागबन्धके कितने अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान हैं और वे किस स्थान पर जाकर दूने या आधे होते हैं, इस बातका प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार किया गया है। इसे परम्परोपनिधा कहते हैं; क्योंकि इसमें एकके बाद दूसरी स्थितिके अनुभागअध्यवसानस्थानोंका विचार न कर परम्परया इस बातका विचार किया गया है।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई।

अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान

६४९. जो अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान हैं वे ही अनुभागबन्धस्थान हैं। तथा अन्य जो परिणामस्थान हैं वे ही कषायउदयस्थान कहे जाते हैं। मतिज्ञानावरणके जघन्य कषाय-उदयस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। दूसरे कथाय उदय-

१. ता॰ प्रतौ द्वाणंतराणि पलिदोवमवग्रामुलाणि इति पाटः।

साणद्वाणाणि । विदियाए कसाउदयहाणे असंखेंजा लोगा अणुभागवंधज्झवसाणहाणाणि । तदिए कसाउदयहाणे असंखेंजा लोगा अणुभागवंधज्झवसाणद्वाणाणि ।
एवं असंखेंजा लोगा असंखेंजा लोगा यात्र उक्तस्सिया कसाउदयहाणं ति । एवं
अप्यसत्थाणं सन्वपगदीणं । सादस्स उक्तस्सए कसाउदयहाणे असंखेंजा लोगा अणुभागः । समऊणाए कसाउदयहाणे असंखेंजा लोगा अणुभाः । विसमऊणाए
कसाउदयहाणे असंखेंजा लोगा अणुभाः । तिसमऊणाए कसाउदयहाणे असंखेंजा लोगा अणुभाः । एवं असंखेंजा लोगा असंखेंजा लोगा यात्र जहण्णियं कसाउदयहाणं ति । एवं सन्वासि पसत्थाणं पगदीणं । एवं एदेण वीजेण कसाउदयहाणाणि यात्र अणाहारए ति णेदव्वं ।

६५०. तेसिं दुविधा परूवणा-अणंतरोवणिधा परंपरोवणिधा च । अणंतरोवणिधाए सन्वासिं [अ] पसत्थपगदीणं णिरयाउगवजाणं सन्वत्थोवा जहण्णियाए द्विदीए जहण्णए कसाउदयहाणे अणुभागवंधज्ञ्जवसाणहागाणि । जह० द्विदीए विदियकसा-उदय० विसेसाधियाणि । जह० द्विदीए तदिए कसाउदय० विसेसाधियाणि । एवं विसे० विसे० याव जहण्णिया० द्विदीए उकस्सयं कसाउदयहाणं ति । एवं याव उकस्सियाए द्विदीए उकस्सयं कसाउदयहाणं ति । सन्वपसत्थाणं पगदीणं तिण्णि-

स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट कषाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट कषाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार सब अप्रशस्त प्रकृतियोंके जानना चाहिए। सातावेदनीयके उत्कृष्ट कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। एक समय कम कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। दो समय कम कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। तीन समय कम कषाय उद्यस्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य कषाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार सब प्रशस्त प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिए। इस प्रकार इस बीजपदके अनुसार अनाहारकमार्गणा तक कषायउद्यस्थान जानने चाहिए।

६५०. इनकी प्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा नरकायुको छोड़कर सब अप्रशस्त प्रकृतियोंको जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान सबसे थोड़े होते हैं। इनसे जघन्य स्थितिके दूसरे कषाय उद्यस्थानमें वे विशेष अधिक होते हैं। इनसे जघन्य स्थितिके तीसरे कषाय उद्यस्थानमें वे विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक वे विशेष अधिक विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। तीन आयुओंको छोड़ कर सब प्रशस्त

१. ता॰ प्रतौ विदियाएं उक्करसट्ठाणे असंखेजा इति पाठः। २. ता॰ प्रतौ कसाउदयट्ठाणाणि असंखेजा इति पाठः। ३. आ॰ प्रतौ जद्द० विदियकसाउदय॰ इति पाठः।

आउगवजाणं सव्वत्थोवा उक्तस्सियाए द्विदीए उक्तस्सिए कसाउदयद्वाणे अणुभागवंध-ज्यवसाणः । उक्तः द्विदीए समऊणे कसाउदः विसेः । उक्तः द्विदीः विसमऊणे कसाउः विसेः । उक्तः द्विदीः तिसमऊः विसेः । एवं विसेः विसेः याव जहण्णयं कसाउदयद्वाणं ति । एवं याव जहण्णियाए द्विदीः जहण्णयं कसाउदयद्वाणं ति ।

६५१. णिरयाउ० कसाउदयहाणे अणुभागनंधज्झवसाणहाणाणि थोवाणि । विदिए कसाउद० अणुभाग०ज्झवसा० असं०गु० । तदिए कसाउदयहाणे अणुभा० असं०गु० । एवं असंखेंअगुणाणि असंखें०गु० याव उक०द्विदि ति । तिण्णं आउगाणं उकस्सियाए कसाउदयहाणे अणुभागवंधज्झवसाणहाणाणि थोवाणि । समऊणे कसाउद० अणुभा० [अ] संखेंअगुणाणि । विसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु० । तिसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु० । तिसमऊ० कसाउद० अणुभा० असं०गु० । तिसमऊ० कसाउद० जणुभा० असं०गु० । एवमसंखेंअगुणाणि असं०गु० । याव अणाहारए ति णेदन्वं ।

६५२. परंपरोवणिधाए दुवि०। ओघे मदियावरणादीणं णिरयाउगवजाणं सन्वअप्पसत्थपगदीणं जहण्णियाए द्विदीए जहण्णए कसाउदयद्वाणे जहण्णगं अणुभागगंधज्झवसाणद्वाणेहिंतो तदो असंखेंजा लोगं गंतूण दुगुणविद्वदा। एवं दुगुणविद्वदा दुगुणविद्वदा याव उक्कस्सिया द्विदीए उक्कस्सिए कसाउदयद्वाणे चि । सादादीणं

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान सबसे योड़े होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके एक समय कम कषाय उदयस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके दी समय कम कषाय उदयस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। उनसे उत्कृष्ट स्थितिके तीन समय कम कषाय उदयस्थानमें वे विशेष हीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक वे विशेष हीन विशेष हीन होते हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए।

६५१. नरकायुके जघन्य कषाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान स्तोक हैं। इनसे दूसरे कषाय उद्यस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इनसे तीसरे कषाय उदयस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक वे असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे हैं। तीन आयुओं के उत्कृष्ट कषाय उदयस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान थोड़े हैं। उनसे एक समय कम कषाय उदयस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे दो समय कम कषाय उदयस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे तीन समय कम कषाय उदयस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जघन्य कषाय उदयस्थानमें अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार जघन्य कषाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे अनुभागवन्धाध्यवसानस्थान हैं। इस प्रकार इस बीज पदके अनुसार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

६५२. परम्परोपनिधाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश! ओघसे नरकायुके सिवा मतिक्षानावरण आदि सब अप्रशस्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य कषाय उद्यस्थानमें जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंसे छेकर असंख्यात छोकप्रमाण स्थान जाकर हिराणी वृद्धि होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कषाय उद्यस्थानके प्राप्त होने तक हिराणी दिराणी वृद्धि होती है। तीन आयुओंके सिवा सातावेदनीय आदि सब प्रशस्त प्रकृत्

तिणां आउगवजाणं सञ्चपसत्थपगदीणं उक्तस्सियाए द्विदीए उक्तस्सए कसाउदयद्वाणे अणुभा०हिंतो तदो असंखेंजा लोगं गंतूण दुगुणविह्वि । एवं दुगुणविह्विदा याव क जहिणायाए द्विदीए जह० कसाउदयद्वाणे ति । एगअणुभागवंधज्झवसाणदुगुणविह्वि हाणिद्वाणंतरं असंखेंजा लोगा । णाणाअणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतराणि आविलि० असंखेंजिदिभागो । णाणा०अणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतराणि थोवाणि । एगअणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतराणि थोवाणि । एगअणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतराणि थोवाणि । एगअणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतराणि थोवाणि । एगअणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतराणि थोवाणि । एगअणुभा०दुगुणविह्वि-हाणिद्वाणंतरं असंखेंज्जगुणं । एवं आउगवजाणं पगदीणं एदेण वीजेण याव अणाहारए ति णेदच्चं । एवं परंपरोविण्या समत्ता ।

एवं डिदिसमुदाहारो समत्तो । तिञ्चमंददाए अणुकड्डी

६५३. एतो तिव्वमंददाए पुव्वं गमणिकं अणुकक्षिं वत्तइस्तामो । तं जहा—
सण्णीहि पगदं । अन्मवसिद्धियपाओँगं जहण्णाने बंधमे मदियावरणस्स जहण्णिदिबंधमाणस्स याणि अणुभागवंधज्ञवसाणहाणाणि विदियाए हिदीए तदेगदेसो वा
अण्णाणि च । तिदयाए हिदीए तदेगदेसो वा अण्णाणि च । एवं पिलदोवमस्स
असंखेँ अदिभागो तदेगदेसो वा अण्णाणि च । एवं जहण्णियाए हिदीए अणुकही । जिम्ह
जहण्णियाए हिदीए अणुकडी णिहिदा तदो से काले विदियाए हिदीए अणुकडी
णिहियदि । जिह्न विदियाए हिदीए अणुकडी णिहिदा तदो से काले तिदियाए हिदीए

तियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट उद्यस्थानमें अनुभाग अध्यवसान स्थानोंसे छेकर असंख्यात छोक-प्रमाण स्थान जाकर द्विगुणी वृद्धि होती है। इस प्रकार जघन्य स्थितिके जभन्य कथाय उदयस्थानके प्राप्त होने तक द्विगुणी द्विगुणी वृद्धि होती है। एक अनुभागदन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात छोकप्रमाण हैं। नानाअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आविष्ठके असंख्यातचें भाग प्रमाण हैं। नाना अनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकअनुभागवन्धाध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यातगुणा है। इस प्रकार आयुके सिवा सब प्रकृतियोंका इस बोजपदके अनुसार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार परम्परोपनिधा समाप्त हुई । इस प्रकार स्थितिसमुदाहार समाप्त हुआ ।

६५३. आगे तील्रमन्द्का पहले विचार करना है। उसमें अनुकृष्टिको बतलाते हैं।
यथा—संज्ञी जीव प्रकृत हैं। अभव्योंके योग्य जघन्य बन्धकमें मितलानावरणकी जघन्य
स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, द्वितीय स्थितिमें
उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीसरी स्थितिमें उनका
एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्यके असंस्यातवें
भागप्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होने तक उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान
स्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य स्थितिमें अनुकृष्टि जाननी चाहिए। जघन्य स्थितिमें
जहाँ अनुकृष्टि समाप्त होती है, उससे अनन्तर समयमें द्वितीय स्थितिमें अनुकृष्टि समाप्त होती
है। जहाँ दूसरी स्थितिमें अनुकृष्टि समाप्त होती है, उससे अनन्तरसमयमें तीसरी स्थितिमें

र. ता॰ प्रतौ त्ति स्सादीणं (१) तिण्णं इति पाठः ।

अणुकड्डी णिट्ठियदि । एवं याव उकस्सिया द्विदि ति । यथा मदियावरणस्स तथा-इमासि । तं जहा—पंचणा० णवदंस० मोहणीयस्स छब्बीसं अण्यसत्थव०४ उप० पंचंत०। एस अणुकड्डिं वंघ० ।

६५४. एसी सादस्स अणुकाई वन्तइस्सामी। तं जहा—सादस्स उकस्सयं हिर्दि वंधमाणस्स याणि अणुभागवंधज्ज्ञवसाणहाणाणि तदो समऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च। विसमऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च। विसमऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च। तिसमऊणाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च। एवं जाव जहण्णयं असादवंधपाओं गसमाणं ति ताव ताणि च अण्णाणि च। तदो जहण्णयादो असादवंधहाणादो याव समऊणा हिदी तिस्से जाणि अणुभागवंधज्ज्ञवसाणहाणाणि ताणि उविरद्धाणि हिदीणं अणुभागवंधज्ज्ञवसाणहाणे-हिंतो तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो समऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो समऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तत्वे समऊणाण च। तिसमऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तिसमऊणाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। तदो जहण्णियादो असादवंधसमऊणादो जा समऊणा हिदी तिस्से हिदीए अणुकडी झीणा। तदो से काले समऊणाए हिदीए अणुकडी झीयदि। जिन्ह समऊणाए हिदीए अणुकडी झीणा। तदो से काले दुसमऊणाए हिदीए अणुकडी झीयदि। चिन्ह विसमऊणाए हिदीए अणुकडी झीणा तदो से काले दुसमऊणाए हिदीए अणुकडी झीयदि। चिन्ह विसमऊणाए हिदीए

अनुकृष्टि समाप्त होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार मतिज्ञानावरणकी अनुकृष्टि कही है, उसी प्रकार इन प्रकृतियोंकी जाननी चाहिए। यथा—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मोहनीयकी छटवीस प्रकृतियाँ, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तराय। यह अनुकृष्टिका बन्ध करनेवालेके कहना चाहिए।

६५४. आगे सातावेदनीयकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागवन्धान्यवसान स्थान होते हैं, उससे एक समय कम स्थितिके वे और दृखरे अनुभागवन्याध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिके वे और दूसरे अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार जघन्य असाताबेदनीयके बन्धके योग्य स्थानोंके समान स्थानोंके प्राप्त होने तक वे और दूसरे स्थान होते हैं। आगे जघन्य असाता-वेदनीयबन्धस्थानके समान स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक उसके जो अनुभाग-बन्धाध्यवसाम स्थान हैं वे उत्परकी स्थितियोंके अनुभागबन्धाध्यवसानस्थानोंसे एकदेश रूप होते हैं और अन्य होते हैं। आगे एक समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और दूसरे अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसके आगे दो समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यत्रसान स्थान होते हैं । इस प्रकार पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति विकल्पों तक प्रत्येक स्थितिविकल्पमें पूर्व पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर एक समय कम जघन्य असातावेदनीयके समान बन्धसे जो एक समय कम स्थिति है उस स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण हो जाती है। आगे अनन्तर समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण हो जाती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है, उससे अनन्तर समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुदृष्टि श्लीण होती है। जहाँ दो समय

१. ता॰ प्रतौ ताणि च विसमऊणाए इति पाठः ।

अणुकड्डी झीणा तदो से काले तिसमऊणाए द्विदीए अणुकड्डी झीयदि। एवं पाव सादस्स जहण्णियाए द्विदि ति । एवं यथा सादस्स तथा मणुस०-देवग०-समचदु०-वजारि०-मणुस०-देवग०तप्पाओंग्गाणु०-पसत्थवि०-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदे०-जस०-उचा० एस भंगो १५ ।

६५५. एत्तो असादस्स अणुक्कड्डिं वत्तइस्सामो । तं जहा—असादस्स जहण्णिया हिंदी बंधमाणों जाणि अणुभागबंधज्झवसाणहाणाणि विदियाए हिंदीए ताणि च अण्णाणि च । एवं याव सागरोवमसदपुधत्तं ताणि च अण्णाणि च । एसा परूवणा कदमासिं^³ १ असादवंधिददीणं इमासिं एसा परूवणा । तं जहा^४—याओ द्विदीओ बंधमाणो असादस्स जहण्णयं अणुभागं बंधदि तासि हिदीणं एसा परूवणा । एदेसि हिंदीणं या उकस्सिया हिंदी तिस्से याणि अणुभागबंधज्झवसाणहाणाणि तदो सम-उत्तराए हिंदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं विसमउत्तराए हिंदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च। एवं पिछदोवमस्स असंखेँ अदिभागो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो असादस्स जह० अणुभागबंधपाओँग्गाणं द्विदीणं याव उकसिया हिदी तिस्से हिदीए अणुकड़ी झीयदि । यम्हि असादस्स जहण्णयं अणुभागबंधपाओं-माणं हिंदीणं उक्कस्सियाए हिंदीए अणुकड़ी झीणा तदो से काले समउत्तराए हिंदीए कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अनन्तर समयमें तीन समय कम स्थितिको अनुकृष्टि चीण होती है। इस प्रकार सालावेदनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार सातावेदनीयकी अनुकृष्टि कही है, उसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वञ्जर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगित, स्थिर, हुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका यही भङ्ग जानना चाहिए।

६५५. आगे असातावेदनीयकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिको बाँधनेवाले जीवके जो जघन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, दूसरी स्थितिको बाँधनेवाले जीवके वे और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार सौ सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक वे और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। यह प्रक्रपणा किन स्थितियोंकी है ? इन असातावेदनीय बन्ध स्थितियों की यह प्रक्रपणा है। यथा—जिन स्थितियोंको बाँधते हुए असातावेदनीयका जघन्य अनुभाग बाँधता है उन स्थितियोंकी यह प्रक्रपणा है। तथा इन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उसके जो अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इसी प्रकार दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येकके पूर्व-पूर्व अनुभागवन्धाध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर असातावेदनीयकी जो जघन्य अनुभागवन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थिति होती है। जहाँ असातावेदनीयकी जघन्य अनुभागवन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थिति को जनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय उत्ति अगले समयमें एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय

१. ता॰ प्रती यथा मुद्रस तथा इति पाठः । २. ता॰ प्रती जहण्णियाए द्विविधमाणो इति पाठः । २. ता॰ प्रती एसपरूवणा कदमासि इति पाठः । ३. ता॰ प्रती एसपरूवणा कदमासि इति पाठः । ४. ता॰ प्रती तं जहा इति स्थाने प्रायः सर्वत्र तं यथा इति पाठः । ५. ता॰ प्रती हिदीए इति पाठो नास्ति । ६. ता॰ प्रती नपाओग्गाणं दिदीए इति पाठः ।

अणुकड़ी शीयदि । यम्हि समउत्तराए हिदीए अणुकड़ी शीणा तदो से काले विसम-उत्तराए अणुकड़ी शीयदि । यम्हि विसमउत्तराए द्विदीए अणुकड़ी शीणा तदो से काले तिसमउत्तराए हिदीए अणुकड़ी शीयदि । एवं याव असादस्स उक्कसिया हिदि ति । णिरय०-एइंदि०-बीइं०-तीइं०-चदुरिं०-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-अप्पसत्थ० - थावर०-सुहुम-अपञ्ज०-साधार०-अधिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेँ०-अजस० एवं असादभंगो ।

६५६. एत्तो तिरिक्खगदिणामाए अणुक्कड्डि वत्तइस्सामो । तं जहा—सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स सन्वजहण्णियं हिदिं बंधमाणयस्स याणि अणुभागवंधन्झवसाणहाणाणि तदो विदियाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो तदियाए हिदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पिलदोवमस्स असंखें जिदिभागो 'तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो जहण्णियाए हिदीए अणुक्कड्डी छिज्जदि । जिम्ह जहण्णियाए हिदीए अणुक्कड्डी छिज्जदि । जिम्ह समउत्तराए हिदीए अणुक्कड्डी छिज्जदि । जिम्ह समउत्तराए हिदीए अणुक्कड्डी छिज्जदि । जिम्ह समउत्तराए हिदीए अणुक्कड्डी छिज्जदि । विसमउत्तराए हिदीए अणुक्कड्डी छिज्जदि । एवं याव अन्भवसिद्धिपाओं गजहण्णिहिद्चिरिमसमयं अपत्ता ति । तदो अन्भवसिद्धियपाओं गजहण्णयं हिदिं बंधमाणस्स याणि अणुभागवंधन्झवसाणाणि विदियाए हिदीए ताणि च अण्णाणि च । तदियाए हिदीए ताणि च अण्णाणि

अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अनन्तर समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है, उससे अगले समयमें तीन समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इसी प्रकार असाता-वेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। नरकगित, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रियजाति, चीन्द्रयजाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगिति, स्थावर, सूद्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अश्चम, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयश्कातिका मङ्ग इसी प्रकार असातावेदनीयके समान है।

६५६. आगे तिर्यञ्चगतिनामकर्मकी अनुकृष्टि बतलाते हैं। यथा—सातवी पृथिवीमें सबसे जघन्य स्थितिका वन्ध करनेवाले नारकीके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उनसे द्वितीय स्थितिमें उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें पूर्व-पूर्व अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिविकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें पूर्व-पूर्व अनुभागबन्धाध्यवसान स्थानोंका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान प्राप्त होते हैं। तब जाकर जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है, उससे अगले समयमें एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है, उससे अगले समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिका अन्तिम समय जब तक न प्राप्त होती है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिका अन्तिम समय जब तक न प्राप्त होती है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उनसे द्वितीय स्थितिका क्यान स्थान होते हैं। तीसरी स्थितिमें वे और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार सो सागर प्रथकत्व प्रमाण स्थिति विकल्पोंके प्राप्त होने तक प्रत्येकमें वे और अन्य

१. ता० पतौ असंखेजदिभागे इति पाठः ।

च। एवं याव सागरोवमसदपुधनं ताव ताणि च अण्णाणि च। एसा परूवणा कदमासिं ? तिरिक्खगदिणामाए यासिं बंधहिदीणं ' इमासिं एसा परूवणा । तं जहा— याओ हिदीओ बंधमाणो तिरिक्खगदिणामाए जहण्णयं अणुभागं बंधिद तासिं द्विदीणं एसा परूवणा । एदासिं द्विदीणं या उक्तिस्स्या द्विदी तिस्से याणि अणुभागंबंधज्ञ्ञ-वसाणाणि तदो समउत्तराए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । विसमउत्तराए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । विद्यमउत्तराए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो अञ्भवसिद्धिपाओंम्गजह० अणुभाग० जह० बंधुक्तिस्स्याए द्विदीए अणुक्तद्वी झीयदि । जम्ह अञ्भवसि० जह० अणुक्तद्वी झीणा तदो जा समउत्तरा द्विदी तिस्से अणुक्तद्वी झीयदि । यम्ह समउत्तराए द्विदीए अणुक्तद्वी झीणा तदो से काले विसम-उत्तराए द्विदीए अणुक्तद्वी झीयदि । यम्ह समउत्तराए द्विदीए अणुक्तद्वी झीयदि । एवं याव तिरिक्खगदि-णामाए उक्वस्सियाए द्विदीए तिर्मे । तिरिक्खाणु०-णीचागो० तिरिक्खगदिभंगो ।

६५७. एत्तो ओरालियसरीरणामाए अणुकड्डिं वत्तहस्सामो । तं जहा-ओरालिय-सरीरणामाए उकस्सियं द्विदिं वंधमाणस्स याणि अणुभागवं० तदो सयऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । विसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तिसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पलिदो० असंखेँअदिभागो

अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। यह प्ररूपणा किन स्थितियोंकी है ? तिर्यक्वगितनामकर्म-की इन बन्धस्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। यथा—िजन स्थितियोंकी बाँधते हुए तिर्यक्वगित नाम-कर्मके जधन्य अनुभागका बन्ध करता है, उन स्थितियोंकी यह प्ररूपणा है। इन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उसके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय अधिक स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमेंसे प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। अनन्तर अभव्यप्रायोग्य जधन्य अनुभागबन्धाध्यवसान खान होते हैं। अनन्तर अभव्यप्रायोग्य जधन्य अनुभागबन्धाध्यवसान खुक्त जघन्य बन्धोत्कुष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जिस स्थानमें अभव्यसिद्धप्रायोग्य जघन्य स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। जहाँ एक समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण हुई है, उससे अगले समयमें दो समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण हुई है, उससे अगले समयमें तीन समय अधिक स्थितिकी अनुकृष्टि श्लीण होती है। इस प्रकार तिर्यक्वगिति नामकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। तिर्यक्वगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्रका भक्त तिर्यक्वगतिके समान है।

६५७. आगे औदारिकशरीर नामकर्मकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—औदारिक शरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं, उससे एक समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार

१. ता० आ० प्रत्योः यादि बंधिह्रदीणं इति पाठ:।

तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो उक्कस्सियाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिआदि । जिम्ह उक्कस्सिए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले समऊणाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिआदि । यिम्ह समऊणाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिण्णा तदो से काले विसमऊणाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिआदि । जिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिआदि । जिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिआदि । जिम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुकड्डी वोच्छिआदि । एवं याव ओरालियसरीरस्स जहण्णियाए द्विदि काले तिसमऊ० अणुकड्डी वोच्छिआदि । एवं याव ओरालियसरीरस्स जहण्णियाए द्विदि ति । पंचण्णं सरीराणं तिष्णमंगोवंगाणं पसत्थ०४ अगु० पर० उस्सा० आदाउजो० णिमि० तिस्थयरस्स च ओरालियस०भंगो ।

६५८. एतो पंचिंदियणामाए अणुककिं वत्तइस्सामो । तं जहा—पंचिंदियणामाए उक्तिस्सयं द्विदिं वंधमाणस्स याणि अणुभागवंधव्झवसाणाणि तदो समऊणाए
द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो विसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि
च । तदो तिसमऊणाए द्विदीए तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पिल असंखेँजिदिमागो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो उक्तिस्सियाए द्विदीए अणुकही णिद्वायदि ।
यम्ह उक्तिस्सियाए द्विदीए अणुकही णिद्विदा तदो से काले समऊणाए द्विदीए अणुकही णिद्वायदि ।
यम्ह उक्तिस्सियाए द्विदीए अणुकही णिद्विदा तदो से काले विसमऊणाए द्विदीए अणुकही णिद्वायदि । यम्ह विसमऊणाए द्विदीए अणुकही णिद्विदा

पल्यके असंस्यातवें भागप्रमाण स्थितियों में से प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्व अनुभागवन्धाध्यवसान स्थानींका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तब जाकर उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है, उससे अगले समयमें एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है, उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न हुई है, उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि व्युच्छिन्न होती है। इस प्रकार औदारिकश्रारकी जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्ग, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, परघात, उच्छृास, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका भङ्ग औदारिकश्रारके समान है।

६५८. आगे पद्मेन्द्रियजातिकी अनुकृष्टिको बतलाते हैं। यथा—पद्मेन्द्रियजातिकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवालेके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। उनसे एक समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। उनसे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। उनसे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्वका एकदेश और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तब जाकर उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ उत्कृष्ट स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ एक समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि समाप्त कम स्थितिकी

१. ता॰ प्रतौ अणुकड्डी वा छिजदि इति पाठः । २. ता॰ प्रतौ तदो समऊणाए इति पाठः । हे. ता॰ प्रतौ याम्ही इति पाठः ।

तदो से काले तिसमऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी णिहायदि । एवं याव अद्वारससागरोवमकोडाकोडीओ समउत्तराओ ति । तदो अद्वारससागरोवमकोडाकोडीओ पिडपुण्णं
बंधमाणयस्स याणि अणुभागवंधज्ञ्ञवसाणाणि तदो समऊणाए द्विदीए ताणि य
अण्णाणि य । विसमऊणाए द्विदीए ताणि य अणाणि य । तदो तिसमऊणाए द्विदीए
ताणि य अण्णाणि य । एवं याव पिडपक्खणामपाओग्गज्ज्ञ्ण्णागो द्विदिवंधो ताव
ताणि य अण्णाणि य । तदो पिडपक्खणामाए जहण्णगादो द्विदिवंधो ताव
ताणि य अण्णाणि य । तदो पिडपक्खणामाए जहण्णगादो द्विदिवंधोदो समऊणाए
द्विदीए याणि अणुभाग० उविद्धाणं अणुभागवंध० तदेगदेसो य अण्णाणि य । तदो
विसमऊणा० द्विदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो तिसमऊणा० द्विदी० तदेगदेसो च अण्णाणि च । एवं पिछ० असं०भागो तदेगदेसो च अण्णाणि च । तदो
अञ्चवसिद्धियपाओग्गजह० द्विदी० अणुक्बड्डी झीयदि । जिम्ह पिडपक्खणामपाओग्गजह० द्विदी० अणुक्कड्डी झीणा तदो से काले विसमऊणा० द्विदी० अणुक्कड्डी झीयदि ।
जिम्ह समऊणाए द्विदीए अणुक्कड्डी झीणा तदो से काले विसमऊणा० द्विदी० अणुक्कड्डी झीयदि ।
जिम्ह विसमऊ० द्विदी० अणुक्क० झीणा तदो से काले तिसमऊणा०
द्विदी० अणुक्क० झीयदि । एवं याव पंचिदियणामाए जहण्णिया द्विदि ति । एवं
तस-बादर-पञ्चत-पत्तेय० ।

एवं अणुकड्डी समत्ता।

अनुकृष्टि समाप्त होती है। इस प्रकार एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध होने तक जानना चाहिए। अनन्तर पूरे अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाँधनेवालेके जो अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान प्राप्त होते हैं, उनसे एक समय कम स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके वे और अन्य अनुभागबन्धा-ध्यवसान स्थान होते हैं। दो समय कम स्थितिका बन्ध करनेवालेके ये और अन्य अनुभाग-बन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे तीन समय कम स्थितिका बन्ध करनेवालेके वे और अन्य अनुभागबन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार प्रतिपक्ष नामप्रायोग्य जधन्य स्थिति-बन्धके प्राप्त होने तक वे और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे प्रतिपक्ष नामके जघन्य स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिके जो ऊपरकी स्थितियोंके अनुभागबन्धान ध्यवसान स्थान हैं, उनका एकदेश और अन्य अनुभागत्रन्थाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे दो समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुभागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। आगे तीन समय कम स्थितिके उनका एकदेश और अन्य अनुमागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवं भाग प्रमाण स्थितियांके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिके पूर्व-पूर्वके अनुमाग अध्यवसान स्थानोंका एकदेश ओर अन्य अनुमागवन्धाध्यवसान स्थान होते हैं। तय जाकर अभव्यप्रायोग्य जधन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ प्रतिपक्ष नामप्रायोग्य जचन्य स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है, उससे अगले समयमें एक समय कम स्थितिका अनु-कृष्टि क्षीण होती है। जहाँ एक समय कम श्यितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है, उससे अगले समयमें दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। जहाँ दो समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण हुई है, उससे अगले समयमें तीन समय कम स्थितिकी अनुकृष्टि क्षीण होती है। इस प्रकार पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इस प्रकार त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक प्रकृतिके विषयमें जानना चाहिए।

इस प्रकार अनुकृष्टि समाप्त हुई।

तिव्वमंदो

६५९. एत्तो तिन्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा-मदियावरणस्स जहाण्णयाण् हिदीए जहण्णापुभागो थोवो । विदियाण् हिदीण् जहण्णापुभागो अणंतगुणो । तदि-याण् हिदीण् जहण्णापुभागो अणंतगुणो । एवं पिति असं जहण्णापुभागो अणंतगुणो । तदो जह हिदी उक्तस्सपदे उक्त अणुभा अणंतगु । तदो यम्हि हिदा जहण्णा तदो समउत्तराण् हिदीण् जह अणंतगुणो । विदि उक्त अणु अणंतगुणो । हतरत्थ जहण्णाणु अणंतगु । तदियाण् हिदी उक्त अणु अणंतगु । इतरत्थ जहण्णाणु अणंतगु । तदियाण् हिदी उक्त अणु अणंतगु । इतरत्थ जह अणु अणंतगु । एवं गेवच्वं याव उक्तिस्सयाण् हिदीण् जहण्णपदे जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । तदो उक्तिस्सयाण् हिदीण् पितदोवमस्स असंसे भागं ओसिकद्ण जम्हि हिदो उक्तस्सो तदो समउत्तराण् हिदीण् उक्त अणुभागो अणंतगुणो । विसमउ हिदी उक्त अणु अणंतगु । वदो तिसमउ हिदी उक्त अणु अणंतगु । एवं याव मदियावरणस्स उक्त हिदी उक्तस्सपदे उक्त अणु अणंतगु । पंचणा - णवदंस - मोहणीय उच्चीस-अप्प अस्तथ अप उप - पंचल एदेसि मदियावरणभंगो ।

तीव्र-मन्द

६५९. आगे तीत्रमन्दको बतलाते हैं। यथा—मतिज्ञानावरणकी जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे श्लोक है। इससे दूसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे तीसरी स्थितिमें जधन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे जवन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे पहले अन्तकी जिस श्यितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा कह आये हैं, उससे एक समय अधिक स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे प्रारम्भको द्वितीय स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इससे आगेकी दूसरी स्थितियें जवन्य अनुसाग अनन्तगुणा है। इससे प्रारम्भकी तीसरी श्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे आगेकी तीसरी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तर्गुणा है । इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके जधन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तर्गुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। आगे उत्कृष्ट स्थितिसे पल्योपमके असंख्यातवे भागप्रमाण पीछे जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे दो समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे तीन समय अधिक स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार मतिज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुसाग अनन्तगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, छटवीस मोहनीय, अप्रशस्त वर्णचतुष्क, उपघात और पाँच अन्तराय इनका भङ्ग मतिज्ञानावरणके समान है।

विशेषार्थ—यहाँ मितिकामावरणकी जघन्य स्थितिबन्धसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें जघन्य और उत्कृष्ट अनुमाग कितना होता है, इसका विचार किया गया है। विचार करते हुए यहाँ जो कुछ वतलाया गया है उसका भाव यह है कि प्रथमसे दूसरीमें और दूसरीसे तीसरीमें, इस प्रकार पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण

ता॰ प्रतौ जिस्ह दिदी उक्कस्सो इति पाट ।

६६०. एतो सादस्स तिन्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—सादस्स उक्कस्स० हिदीए जहण्णपदे जहण्णाणुभागो थोवो । समऊणाए हिदीए जह० अणु० तत्तियो चेव । विसमऊ० हिदीए जह० अणु० तत्तियो चेव । तिसमऊ० हिदी० जहण्णाणु० तत्तियो चेव । एवं याव जहण्णगो असादबंधसमाणो ति ताव तत्तियो चेव । तदो जहण्णगादो असादबंधादो या समऊणा हिदी तिस्से हिदीए जहण्णाणुभागो अणंतगु० । विसमऊ० हिदी० जह० अणु० अणंतगु० । तिसमऊ० हिदी० जह० अणु० अणंतगु० । तिसमऊ० हिदी० जह० अणु० अणंतगु० । एदेण कमेण जहण्णगा असादबंधसमाणसादबंधगाणं आदिं काद्ण असंखें जाओ हिदीओ णिव्वम्मणकंडयस्स असंखें अदिभागो एत्तियमेत्तीओ हिदीओ तासिं जहण्णाणुभागो अणंतगुणाए सेढीए णेदव्वा । तदो णियत्तिदव्वं सादस्स उक्कस्सियाए हिदीए उक्कस्स-पदे उक्क० अणु० अणंतगु० । विसमऊ० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । विसमऊ० हिदी० उक्क० अणु० अणंतगु० । एवं णिरंतरं उक्कस्यं आदिं काद्ण असंखें जाओ हिदीओ एत्तियमेत्तं णिव्वम्मणकंडयं तत्तिय-

स्थितियों में जघन्य अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। फिर परयके असंख्यातवें भागके अन्तमें जो स्थिति विकल्प हैं, उसके जघन्य अनुभागसे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों के आगेकी स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे जघन्य स्थितिसे आगेकी द्वितीय स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों के आगेकी दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे जघन्य स्थितियों आगेकी तीसरी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंसे आगेकी तीसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार इसी कमसे उत्कृष्ट स्थिति तक अनुभागका कम जानना चाहिए। मात्र जहाँ उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा प्राप्त होता है, वहाँ इससे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पूर्वकी स्थितियोंसे उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता है और आगे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंसे पूर्व-पूर्व स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे आगे-आगेकी स्थितका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता है।

६६०. आगे सातावेदनीयके तीन्न-मन्दको बतलाते हैं। यथा—सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग स्तोक है। एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार जघन्य असातावेदनीयके बन्धके समान स्थितिके प्राप्त होने तक उतना ही अनुभाग है। अनन्तर जघन्य असातावेदनीयके बन्धके लग्धसे जो एक समय कम स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तरगुणा है। इस कमसे असातावेदनीयके बन्धके समान सातावेदनीयके बन्धकोंसे लेकर असंख्यात स्थितियाँ, जो कि निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागनप्रमाण हैं, इतनीमात्र उन स्थितियाँका जघन्य अनुभाग अनन्तरगुणित श्रेणिक्पसे ले जाना चाहिए। इसके बाद लोटकर सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तरगुणा है। इस प्रकार निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर निर्वर्गणा काण्डक

मेत्रीणं द्विदीणं या उक्कस्सअणु० अणंतगुणो अणंतगुणाए सेढीए पेदव्वं। तदो जाहिंतो द्विदीहिंतो एयंतसादपाओँमाजहण्णगं अणुभागं भाणिदण णियत्तिदा उक्कस्सियाए हिदीए उकस्सियमणुभागस्स तदो ऍत्तो हिदीदो णियत्तो तदो हिदीदो या समऊ '० डिदी तिस्से डिदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्तस्सियादो डिदीदो णिव्वम्गण-कंडयमें तीओ हिदीओ ओसिकदूण जा हिदी तिस्से हिदीए उक्क० अणु० अणंत-मु० । तदो पुण णिव्वग्गणकंडयमें तीणं उक्क० अणु० अणंतगु० अणंतगुणाए सेढीए णिरंतरं णेदन्वं । तदो पुण हेट्ठादो ऍकिस्से द्विदीए जह० अणु० अणंतगु० । तदो पुण उक्तस्सनादो दुगुणणिव्वम्गणकंडयमेँत्तीओ हिदीओ ओसकिद्ण या द्विदी तिस्से द्विदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो णिव्वग्गणकंडयमेँ नीणं उक्क० अणु० अणंत-गुणाए सेढीए णिरंतरं णेदच्वं । तदो पुण एकिस्से द्विदीए जह० अणु० अणंतगु०। तदो पुण उक्क० द्विदीदो तिगुणणिव्यग्गणकंडयमें तीओ द्विदीओ ओसिकदण जा द्विदी तिस्से द्विदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो णिव्वमाणकंडयमें तीणं द्विदीणं उ० अणु० अणंतगु० अणंतगुणाए सेडीए णिरंतरं णेदव्वं । एवं हेट्ठादो^ड ऍकिस्से द्विदीए जहणाणुभागस्स उवरिमाणं द्विदीणं असंखेँजाणं उक्तस्सगा अणुभागा । एवं ओघसिज-माणा हेद्विमहिदीणं जहण्णाणुक्षागेहि उवरिमाणं हिदीणं उक्कस्साणुभागेहि ताव आगदं याव असादस्स समाणं जहण्णयं हिदिवंधं णिट्यम्मणकंडगेण^४ अपत्ता त्ति । तदो हेड्डिमाए द्विदी० जह० अणु० अणंतगु०। तदो उवरिमाणं हिंदीणं जम्हि द्विदीदो प्रमाण असंख्यात स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है जो उत्तरोत्तर अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। अनन्तर जिस स्थितिसे एकान्त सातावेदनीयप्रायोग्य जघन्य अनुभागको कहकर और ठौटकर उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग कहा था,उस स्थितिसे एक समय कम जो स्थिति है, उसका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर उत्कृष्ट स्थितिसे निर्वर्गणा-काण्डकमात्र स्थितियाँ इटकर जो स्थिति है उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग पूर्वोक्त जघन्य अनुभाग-वाली स्थितिसे अनन्तगुणा है। फिर आगे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तर्गणित श्रेणिरूपसे उत्तरोत्तर अनन्तर्गणा-अनन्तर्गणा है । तद्चन्तर अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तराणा है । अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे द्विगुणे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ हृदकर जो स्थिति है, उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे आगे निर्वर्गणा-काण्डक प्रमाण स्थितियांका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। तदनन्तर अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तराजा है । अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिसे तिराणे निर्वर्गणा-काण्डकमात्र स्थितियाँ इटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्क्रष्ट अनुभाग निरन्तर अनन्तगुणित श्रेणिस्त्पसे हे जाना चाहिए। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जबन्य अनुभाग और उपरिम असंख्यात स्थितियोंके उत्कृष्ट अनुभाग हैं। इस प्रकार क्रम-क्रम से घटाते हुए अधस्तन स्थितियोंके जयन्य अनुभागों और उपरिम स्थितियोंके उत्कृष्ट अनुभागोंसे तब तक आये हैं, जब तक असाताके समान जघन्य स्थितिबन्धको एक निर्वर्गणाकाण्डकके द्वारा नहीं प्राप्त हुए हैं। उससे अधस्तन स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम स्थितियोंके जिस स्थानमें उत्कृष्ट अनु-

१. ता॰ आ॰ प्रत्यो॰ य समऊ॰ इति पाठः । २. अणंतगुणो सेढीए इति पाठः । ३. ता॰ आ॰ प्रत्योः अद्वादो इति पाठः । ४. ता॰ आ॰ प्रत्योः द्विदियंधणिक्वमाणकंडगेण इति पाठः ।

उक्स्सो तदो समऊणाए द्विदी० उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो विसमऊ० द्विदी० उ० अणु० अणंतगु०। तात्र अणंतगुणाय सेडीए णिरंतरं आगदं यात्र असादस्स जहण्णगो द्विदिवंधो। तदो जहण्णगादो असाद०द्विदिवंधादो उक्क० अणुभागेहिंतो जहण्णगादो असाद० णिव्वगणकंडयमें तीओ दिदीओ ओसिक्द्ण या द्विदी तिस्से द्विदीए ज० अणु० अणंतगु०। तदो जह०दो असाद० द्विदीदो सयऊ० द्विदी० उ० अणु० अणंतगु०। तेण परं हेद्विमाए द्विदीए जहण्णगो अणुभागो उत्तरमाए द्विदीए उक्क्स्सओ अणुभागो एगेगा ओगसिदा जहण्णादो असाद०दो समाणं आढचा तात्र णीदं यात्र सादस्स जह०द्विदी० जह० पदे ज० अणु० अणंतगु०। तदो सादस्स जह०द्विदी० जह० पदे ज० अणु० अणंतगु०। तदो सादस्स जह०द्विदी० उ० अणु० अणंतगु०। दुसमऊ० द्विदी० उ० अणु० अणंतगु०। दुसमऊ० द्विदी० उ० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगु०। तसमऊ० द्विदी० उ० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगु०। एवं उक्क० अणु० अणंतगु०। स्विप्त प्रेम् यथा सादस्स तथा मणुसग०—देवग०—समचदु०—वज्ञरि०—दोआणु०—पसत्थ०—थिर—सुभ—सभग-सस्सर-आदेंज०-जस०-उचा०।

भाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समयकम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार असातावेदनीयके जघन्य स्थिति-बन्धके प्राप्त होने तक अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे निरन्तर आया है। अनन्तर जघन्य असाता-वेदनीयके समान स्थितिबन्धके उत्कृष्ट अनुभागसे जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिबन्धसे निर्वर्गणकाण्डकमात्र स्थितियाँ इटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जघन्य असातावेदनीयके समान स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इस प्रकार एक-एक कम होता हुआ जघन्य असाताके समान स्थितिबन्घसे लेकर सातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्ध तक जघन्य पर्दमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है- इस स्थानके प्राप्त होने तक कहना चाहिए। अनन्तर सातावेदनीयका जघन्य अनुभाग जहाँ स्थित है, उससे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ ऊपर जाकर जहाँ उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय कम रिथतिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार साताबेदनीयके जघन्य स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट अनुमाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे निरन्तर ले जाना चाहिए । यहाँ जिस प्रकार सातावेदनीयका तीत्रमन्द कहा है, उसी प्रकार मनुष्यगति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वऋषभनाराचसंहनन, दो आनुपूर्वी, प्रशस्त विहायो-गति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सातावेदनीय प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए इसकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर जघन्य स्थितिबन्ध तक अनुभाग उत्तरोत्तर यथाविधि अधिक प्राप्त होता है। खुलासा इस प्रकार है— सातावेदनीयकी उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभोग उतना ही है। दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन

१. आ॰ प्रती हिदिशंघी उक्क॰ इति पाठः । २. आ॰ प्रती एगेगा ओघसिदा । ३. ता॰ प्रती । असदि॰ दो समाणं श्रदत्ता तावणिदं याव, श्रा॰ प्रती श्रसाद॰ दो समाणा श्रादत्ता ताव णिद्द याव इति पाठः ।

६६१. ऍत्तो असादस्स तिन्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—असादस्स जहण्णियाए हिदीए जह० पदं जह० अणु० थोवो । विदियाए हि० जह० अणुभा० तित्तयो चेव । तिदियाए हि० जह० अणु० तित्तयो चेव । एवं याव सागरोवमसदपुधत्तं ताव जह० अणु० तित्तयो चेव । एवं याव सागरोवमसदपुधत्तं ताव जह० अणु० तित्तयो चेव । तदो याओ हिदीओ बंधमाणो असादस्स जह० अणु० बंधदि तासिं हिदी० या उक्षस्सिया हिदी तिस्से समउत्तराए हिदीए जह० अणु० अणंत-

समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें जधन्य अनुभाग दतना ही है। इस प्रकार असातावेदनीयके जधन्य स्थितिबन्धके समान सातावेदनीयका स्थितिबन्ध प्राप्त होने तक जितने स्थितिविकल्प हैं, उन सबका जघन्य अनुसागबन्ध समान है। फिर इससे आगे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग उत्तरीत्तर अनन्तगुणा है। फिर यहाँ अन्तको स्थितिमें जो जघन्य अनुभाग प्राप्त हुआ है, उससे उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनुन्तगुणा है। उससे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणा-अनन्तराणा है । फिर जहाँ जघन्य अनुभाग छोड़ा था,उससे एक समय कम स्थिति-का जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर इससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंके बाद दूसरे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरितन निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्क्रप्ट अनुभाग अनन्तगुणा-अनन्तगुणा तब तक कहना चाहिए, जब तक असाता-वेदनीयके जघन्य बन्धके समान सातावेदनीयके बन्धमें एक निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थिति शेष रह जाय । अधरतन एक स्थितिका जधन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और उससे उपरितन निर्वर्गणा काण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा होकर यहाँ अन्तमें उत्कृष्ट अनुभागसे असातावेदनीयके जघन्य बन्धके समान सातावेदनीयका स्थितिबन्ध प्राप्त हो जाता है। फिर यहाँ असातावेदनीयके जघन्य बन्धके समान सातावेदीयका जो स्थितिबन्ध प्राप्त हुआ है उसकी अन्तिम स्थितिसे निर्वर्गणाकाण्ड रूप्रभाण स्थिति इटकर जो अधस्तन स्थिति है ,उसका जघन्य अनुभाग अनन्तगुण। है और इससे असातावेदनीयके जघन्य स्थितिबन्धके समान सातावेदनीयके स्थितिबन्धमें एक समय कम करके प्राप्त हुए स्थितिबन्धका उत्कृष्ट अनु-भाग अनन्तगुणा है। फिर अधस्तन एक-एक स्थितिका अधन्य अनुभाग और उपरिम एक-एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा-अनन्तगुणा कहते हुए वहाँ तक जाना चाहिए,जब जाकर सातावेदनीयकी जधन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा प्राप्त हो जावे । पुनः इससे एक निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ ऊपर जाकर वहाँ स्थित स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त्रमणा कहना चाहिए। पुनः एक-एक स्थिति कम करते हुए जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थिति का उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा कहना चाहिए । यह सातावेदनीयका तीव्रमन्द है। इसी प्रकार यहाँ मुलमें गिनाई गईं अन्य प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

६६१. इससे आगे असातायेदनीयका तीव्रमन्द बतळाते हैं। यथा—असातायेदनीयकी जघन्य स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। द्वितीय स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार सौ सागरपृथक्त्यप्रमाण स्थितियोंके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग उतना ही है। इससे आगे जिन स्थितियोंके वाँघता हुआ असातायेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करता है उन स्थितियोंके जघन्य असातायेदनीयके जघन्य अनुभागका बन्ध करता है उन स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है , उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा

गु०। तदो विदियद्विदी० [जह०] अणु० अणंतगु०। तदो तदियद्वि० जह० अणु० अणंतगु० । एवं पिलदो० असंखें भागमें तीओ हिदीओ जिन्नगणकंडयस्स असंखेंज-भागभैत्तीणं जह० अणु० भाणिद्ण तदो णियत्तिद्व्वं। असादस्स जह० हि० उ० पदे उ० अणु० अणंतगु०। एवं णिव्यमाणकंडयमें तीणं हिदीणं उ० अणु० अणंत-गुणाए सेडीए णिरंतरं षोदव्वं । तदो उवरिमाए द्विदीए जिस्से जह० अणुभागे भाणिद्ण णियत्तेदण हेडिमाणं उक्त० अणुभा० भाणिदा तिस्से हिदीए या सम-उत्तरा हिंदी तिस्से हिंदीए जहण्णागुभा० अणंतगु०। तदो पुण हेहिमादो णिव्वम्गण-कंडयभेॅर्तीणं द्विदीणं जासिं उक्त० अणु० अणंतगुणाए सेटीए णेदव्वं। तदो पुण उकस्से हिदी० ज० अणु० अणंतगु०। तदो हेहिमाणं णिव्वग्गणकंडयमेत्तीणं हिदीणं उक्कः अग्रुः अणंतुगुः सेडीए णेदव्वं । एदेण कमेण उवरिमाए हिदीए ऍकिस्सेः जह० अणु० हेड्सिमाणं असंखेँजाणं हिदीणं उक्क० अणुभा० णेद्व्या ताव याव ओघ-जहण्णाणुभागियाणं उक्त० हिदी० उक्त० े अणुभागं पत्तो ति । ओघजहण्णाणुभागिया णाम कस्स सुण्णा ? याओ हिंदीओ बंघमाणी असादस्स जहण्णअणुभागे बंधदि तदो एसा दिदी ओघजहण्णाणुभागिया णाम सण्णा। तीए द्विदीए ओघजहण्णाणु-भागियसण्णाए याघे ओघजहण्णाणुभागियाणं चरिमाए हिदीए उ० अणु० अणंतगु० ताघे ओघं जह० अणु०याणं उवरि णिव्यम्गणकंडयमेँतीणं हिदीणं जह० अणुभागा भणिदा होंति । ऍचो पाए उवरिमाणं अभणिदाणं द्विदीणं जह० द्विदी० जह० अणु०

है। उससे दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यात्वे भागप्रमाण स्थितियाँ जो कि निर्व-र्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं,उनका जघन्य अनुभाग कह कर वहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो उसके जघन्य अनुभागसे लौटकर असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डक मात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त्राणित श्रेणिरूपसे निरन्तर हे जाना चाहिए। अनन्तर आगेकी जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर और छोटकर अधस्तन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा है, उस स्थितिसे जो एक समय अधिकवाली स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधरतन निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए! इससे उत्क्रष्ट स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधरतन निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियों का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे हे जाना चाहिए। इस क्रमसे उपरिम एक स्थितिका जधन्य अनुभाग और अधस्तन असंख्यात स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग ओघ जघन्य अनुभागवाली स्थितियोंमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक छे जाना चाहिए। ओघ जघन्य अनुभागवाळी स्थिति यह किसकी संज्ञा है ? जिन स्थितियांका बन्ध करनेवाला जीव असातावेदनीय के जघन्य अनुभागका बन्ध करता है, अतः उस रिथरिकी ओघ जघन्य अनुभागवाली यह संज्ञा है। ओघ जघन्य अनुभाग संज्ञावाळी उस स्थितिके जिस स्थानमें ओघ जघन्य अनुभागवाली स्थितियोंमें से अन्तिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है, वहीं ओघ जघन्य अनुभागवाली उपरिम निर्वगणाकाण्डमात्र स्थितियोंका जघन्य अनुमाग कहा गया है। इससे आगे नहीं कही गई उपरिम स्थितियोंमें से

१. ता० प्रतौ स्त्रोघजहण्णाणुभागियाणं उक्क० इति पाठः ।

अणंतगु०। हेडिमाणं ऍकिस्से डिदीए उक्क० अणुमा० अणंतगु०। एदेण कमेण ऍकेंका डिदी ओगसिदा आगदं याव असादस्स उक्क० हिदीए जहण्णपं जह० अणु० अणंतगु० ताघे असादबंध० हिदी० णिडाबिणयाणि णिव्वम्मणकंडयमें तीणं हिदीणं उक्क० अणु० माणिदच्या। सेसाणं सव्वासि हिदीणं उक्क० अणु० मणिदा। तदो यासि हिदीणं उक्कस्सअणुमा० ण मणिदा तासि हिदीणं जहण्णिया हिदी तिस्से हिदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तदो समउत्तराए हिदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। विसमउत्तराए हिदीए उक्क० अणु० अणंतगु०। तिसमउ० हि० उ० अणु० अणंतगु०। एवं अणु०बंध० उक्क० अणु० अणंतगु० ताव याव उक्क० हि० उ० पदे उ० अणु० अणंतगु०। णिरयगदि-चदुजादि-पंचसंठा०-पंचसंघ०-णिरयाणु०-अप्प-सत्थ०-थावर-सहम-अपज०-साधार०-अधिर-असुभ-दूभग-दुस्सर-अणादे०-अजस० एवं [अ] सादभंगो २८।

जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे अधस्तन स्थितियों में एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस कमसे एक-एक स्थिति कम होती हुई जब असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, यह स्थान प्राप्त होता है तब जाकर असातावेदनीयकी बन्धस्थितियों द्वारा निष्ठापित निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है; शेष सब स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा गया है। इसिछए जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है। इसिछए जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिकवाली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है, इस स्थानके प्राप्त होने तक अनुभागवन्धकी अपेका उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा जानना चाहिए। इस प्रकार असातावेदनीयके समान नरकगित, चार जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहतन, नरकगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगित, स्थावर, सूचम, अपर्याप्त, साधारण अस्थिर, अशुभ दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्तिका तीव्रमन्द जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ पहले असातावेदनीयकी जघन्य स्थितिसे लेकर सी सागरप्रथक्त्वप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग समान कहा है। इससे आगे निर्वर्गणाकाण्डककी असंस्थातवें भागप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग प्रत्येक स्थितिकी अपेक्षा अनन्तगुणा कहा है। किर यहाँ अन्तमें प्राप्त हुई स्थितिके जघन्य अनुभागसे जघन्य स्थितिकी अपेक्षा अनन्तगुणा कहा है। किर इस अन्तमें प्राप्त हुई स्थितिके अगे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहा है। इस प्रकार जघन्य स्थितिसे लेकर निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहकर यहाँ अन्तकी स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे जिस स्थितिके जघन्य अनुभागसे लौट कर जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहा था, उस स्थितिसे अगली स्थितिको जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। पुनःइससे अधस्तन दूसरे निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। पुनःइससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन व्यन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा होता हुआ औष जघन्य अनुनान निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा होता हुआ औष जघन्य अनुन

१. आ॰ प्रतौ ओघसिद्धा आगदं इति पाठः ।

६६२. ऍत्तो तिरिक्खगदिणामाए तिन्वमंदं वत्तइस्सामो। तं जहा—सत्तमाए पुढवीए णेरइगस्स तिरिक्खगदिणामाए सन्वजहण्णयं हिदिं बंधमाणस्स जह० हि० ज० पदे ' जह० अणु० थोवा । विदिया० हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। एवं जह० अणु० अणंतगुणाए सेडीए गदा याव ताव णिन्वग्गणकंडयमेत्तीओ हिदीओ। तदो ज० हि० उ० पदे० उक० अणु० अणंतगु०। तदो यदो णियत्तो तदो समउत्तराए हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। विदिया० हिदी० उक० अणु० अणंतगु०। एवं णिन्वग्गणकंडयमेत्तेण अणंतरेण उविद्या० हिदी० जह० अणु० अणंतगु०। एवं णिन्वग्गणकंडयमेत्तेण अणंतरेण उविद्याए हिदीए जह० अणुभा० हेहिमाए हिदीए उक० अणु०। एवं णीदं याव ताव अन्भव०पाओंग्गजहण्णयस्स हिदिवंधस्स हेहादो समऊणाए हिदि त्ति । तदो अन्भव०पाओंग्गजहण्णाहिदिवंधस्स हेहा णिन्वग्गणकंडयमेत्तीणं हि० उक्क० अणु० ण भणिदा । सेसं सन्वं भणिदं । हेहिमाणं हिदीणं एदाओ च हेहिमा० हिदीओ ण सन्वाओ णिरंतराओ संपत्तीदो । णविर परूवणाए दु णिरंतराणि भणिदं संपत्तीदो । अन्भव०पाओंग्ग० हेहा याणि हिदिवंधहाणाणि ताणि

भागवाली स्थितियों में से उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक गया है। पुनः आगे जिस स्थिति तक जवन्य अनुभाग कहा गया है, उससे अगली स्थितिका जवन्य अनुभाग अनन्त-गुणा है। तथा इससे अधस्तन जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग कहा गया है, उससे अगली स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार असातावेदनीय की उत्कृष्ट स्थितिके जवन्य अनुभागके अनन्तगुणे प्राप्त होने तक जानना चाहिए। यहाँ सब स्थितियोंका जघन्य अनुभाग तो कहा जा चुका है, पर अन्तकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य अनुभागसे जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य अनुभागसे जिन स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, उन स्थितयोंमें से जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। इस प्रकार उत्कृष्ट एनः इससे आगेकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा कहना चाहिए। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागके प्राप्त होने तक यही कम जानना चाहिए। इस प्रकार अन्सातावेदनीयकी अपेक्षा तीत्रमन्दका विचार किया। इसी प्रकार मूलमें गिनाई नरकगित आदि अन्य प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीत्रमन्दका विचार होनेसे उनका कथन असातावेदनीयके समान जाननेकी सूचना की है।

६६२. आगे तिर्यञ्चगित नाम कर्मके तीव्रमन्दको बतलाते हैं। यथा—सातवी पृथिवीमें तिर्यञ्चगित नामकर्मकी सबसे जधन्य स्थितिका बन्ध करनेवाले नारकीके जधन्य स्थितिके जघन्य पदमें जधन्य अनुभाग सबसे स्तीक हैं। उससे दूसरी स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंके प्राप्त होने तक जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे जहाँसे जोटे हैं, उससे जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जहाँसे लोटे हैं, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दूसरी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अभव्य प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धके पूर्व एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक निर्वर्गणाकाण्डकमात्रके अन्तरालसे उपिम स्थितिका जघन्य अनुभाग और अधस्तन स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इसी कमसे ले जाना चाहिए। यहाँ अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धके पूर्वकी निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा गया है, रोष सब कहा गया है। अधस्तन स्थितियोंमेंसे ये सब अधस्तन स्थितियों निरन्तर नहीं प्राप्त होती हैं। इतनी विशेषता है कि प्रक्रपणामें इनकी निरन्तर प्राप्ति कही गई

१. आ॰ प्रतौ जह० हि० पदे इति पाठः।

पिल० असं०भा० सेवियं पुण परूवणं काद्ण' णिरंतरं याव अब्भव०पाओंगज० हि॰ बं॰ समऊणे ति । तदो अब्भव०पाओ॰जहण्णादो हिदिवं०णिव्वम्मण'-कंडयमें तीओ हिदीओ ओसिकद्ण या हिदी तिस्से हि॰ उक्क॰ अणुभागेहिंतो अब्भव०पाओंगाजह० हि॰ जह० अणु॰ अणंतगु॰। तदो समउत्तराए हिदीए जह॰ अणु॰ तित्तया चेव । विसमउ० हि॰ जि॰ अणु॰ तित्तया चेव । तिसमउत्तराए हिदीए तित्तया चेव । एवं सागरोवमसदपुधत्तमें तीणं तुल्लो जह॰ अणु॰ बं॰। तदो यासि हिदीणं तुल्लो जह॰ तासि णाम सण्णा परियत्तमाणजहण्णाणुभाग-बंधपाओंगं णाम। तदो परियत्तमाणजह॰ बं॰ याओंगा॰ उक्क॰ हिदीदो जह॰ अणुभागेहिंतो समउ० हि॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसमउ॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। तिसम हि॰ जह॰ अणंतगु॰। एवं असंकेंजहिदि॰ णिव्वग्गणकंडयस्स असंकेंजिदिभागो एत्तियमेंत्तीणं हिदीणं यासि जह॰ अणंतगु॰ सेडीए षेदव्वा। तदो णियत्ति-द्वं अब्भव॰पाओंग्जहण्णं हिदिगंधस्स हेट्ठादो णिव्वग्गणकंडयः तासि जा ज॰ हिदी तिस्से उ॰ अणुभा॰ अणंतगु॰। तदो समउ० हि॰ उ॰ अणंतगु॰। दुसमउ॰ हि॰ उ॰ अणुभा॰ अणंतगु॰। तिसमउ० हि॰ उ॰ अणंतगु॰। एवं णीदं यात्र तात्र अब्भव॰पाओं॰ ज॰ हि॰ समऊणा ति। तदो अब्भव॰पाओं॰ ज॰ बंध-

हैं। अभव्यप्रायोग्य स्थितिबन्धसे अधस्तन जो स्थितिबन्धस्थान हैं, वे पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं,परन्तु अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक निरन्तर रूपसे प्ररूपणा की है।फिर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ पीछे जाकर जो स्थिति है, उस स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। दो समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। तीन समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार सौ सागर प्रथक्त्वप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभागबन्ध तुल्य है। यहाँ जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग तुल्य है,उनकी परिवर्तमान जधन्यानुभागवन्धप्रायोग्य संज्ञा है। फिर परिवर्तमान जघन्य अनुभागवन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें से उत्कृष्ट स्थितिके अनुभागसे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। दो समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। तीन समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार असंख्यात स्थितियों तक जानना चाहिए । ये असंख्यात स्थितियाँ निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इतनी मात्र स्थितियोंका जघन्य अतु-भाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए । फिर लौटकर अभव्यत्रायोग्य जघन्य स्थिति-बन्धसे अधस्तन जो निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ हैं उनमेंसे जो जघन्य स्थिति है, उसका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। ष्टससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अभन्यप्रायोग्य अघन्य स्थितिसे एक समय कम स्थितिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। फिर अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे एक

१. ता॰ प्रती पुणं पमाणं कादूण इति पाठः । २. ता॰ प्रती द्वित्रं[भा]दो णिव्वग्गण— इति पाठः । ३. ता॰ प्रती विसमऊ ॰ द्वि॰ इति पाठः । ४. श्रा॰ प्रती तुद्धा इति पाठः ।

समऊणादो उक्कस्सए हि अणुभागेहिंतो यदो हि॰ ज॰ भणिद्ण णियत्तो तत्तो समउ॰ जह॰ अणंतगु॰। तदो पुण जहण्णाणुभागवंधपाओंग्गाणं ज॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। समउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसमउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। तिसमउ॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं णिव्वग्गणकंडयमेँत्तीणं हिदीणं उ॰ अणु॰ अणंतगु॰ सेडीए णेदव्वं। तदो पुणो जिस्से हि॰ ज॰ अणु॰ भणिद्ण णियत्ता तदो समउ॰ ज॰ अणंतगु॰। तदो पियत्तभाण [जहण्णाणुभाग] वंधपाओंगाणं हिदीणं णिव्वग्गणकंडयमेँत्तं अव्धुस्सिर्ण या हिदी तिस्से हिदीए उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। तदो णिव्वग्गणकंडयमेँत्तं अव्धुस्सिर्ण या हिदी तिस्से हिदीणं णेदव्वा। एदेण कमेण उविद्याणं हिदीणं एकिस्से वि॰ ज॰ वं॰पाओंगाणं च हिदीणं णिव्वग्गण॰मेंत्तीणं हिदीणं उक्क॰ अणु॰ अणंतगु॰ सेडीए णेदव्वा। एदेण कमेण उविद्याणं वि। एदेण कमेण ज॰ अणु॰ वं॰पाओंगाणं च हिदीणं णिव्वग्गण॰मेंत्तीणं हिदीणं पिव्वग्गण॰मेंत्तीणं ज॰ अणु॰ वं॰पाओंगाणं च किस्सरं हिदीणं णिव्यग्गण॰मेंत्तीणं ज॰ अणु॰ वं॰पाओंगाणं चक्स्सने यत्तो हिदीयो उक्कस्सने। तदो ज॰ अणु॰ वं॰पाओंगाणं उक्कस्सने यत्तो हिदीयो उक्कस्सने। हिदीणं पा सव्वज॰ हिदी तिस्से हि॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेहदो ऍकिस्से हि॰ ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेहदो ऍकिस्से हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। हेहदो ऍकिस्से हि॰

समय कम स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे, जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर लौटे थे, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जघन्य अनुभागबन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमें जो जघन्य स्थिति है, उसका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्क्रप्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय अधिक रिथतिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त-गुणा है । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिह्नपसे ले जाना चाहिए। फिर जिस स्थितिका जघन्य अनुभाग कहकर छोटे थे, उससे एक समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। फिर परिवर्तमान जघन्य अनुभागबन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमेंसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियाँ आगे जाकर जिस स्थितिका उत्कृष्ट अनु भाग अनन्त्मुणा कहा था, उससे आगेकी निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए । इस क्रमसे जघन्य वन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक उपरिम स्थितियोंमेंसे एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और जघन्य बन्ध-प्रायोग्य स्थितियोंमेंसे निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणित श्रेणिरूप-से ले जाना चाहिए। इस क्रमसे जघन्य बन्धप्रायोग्य स्थितियोंसे जो उपरिम स्थितियाँ हैं, उन स्थितियोंमें से निर्वर्गणाकाण्डकमात्र स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा है,परन्तु उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा है; इसलिए जघन्य अनुभागबन्धप्रायोग्य स्थितियोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति है उस स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे, आगे जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग नहीं कहा है, उन स्थितियोंमें जो सबसे जघन्य स्थिति है उस स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थिति-का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है, उससे एक

१. ता॰ ऋा॰ प्रत्योः समङ॰ इति स्थाने समऊ॰ इति पाठः । ऋग्ने ऽपि 'उ' स्थाने 'ऊ' हस्यते । २. ता॰ प्रतौ परियत्तमाणवंधपाओग्गाणं, आ॰ प्रतौ परियत्तमाण ''''वंधपाओग्गाणं इति पाठः ।

ऍकिस्से हि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। इतरत्थं ज॰ अणंत॰। हेट्टादो ऍकिस्से हि॰ उ॰ अणंतगु॰। एवं णीदं याच तिरिक्खगदिणामाए उक्त॰ द्विदीए ज॰ अणु॰ अणंतगु॰। तदो पिलि॰ असं॰भागमें जोसिकद्ण जिम्ह द्विदा उक्तस्सा तदो समउत्तराए दि॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। विसम॰ उ॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं अणुभागवंध॰ अणंत॰ याच तिरिक्खगदिणामाए उक्तस्सियाए हि॰ उक्त॰पदे उक्त॰ अणु॰ अणंतगु॰। एवं तिरिक्खणु॰-णीचा॰।

६६३. एतो अरेरालिय० तिन्त्रमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा—ओरालियसरीरणामाए उक्तिस्स्याए द्वि० ज० द्विदी० ज० अणु० थोवा । समऊ० ज० अणु० अणंतगु० । विसमऊ० ज० अणु० अणंतगु० । एवं पलि० असं० ज० अणंतगु० । तदो
उक्तिस्स्याए द्विदी० उ० अणु० अणंत० । तदो जिम्ह द्विदा ज० द्वि० ज० अणु०
तदो समऊ० अणंत० । उक्तिस्स्यादो द्वि० समऊ० द्वि० उक्क० अणु० अणंतगु० ।
तदो हेद्दादो ऍकिस्से द्वि० ज० अणंत० । तदो उक्तिस्स्यादो विसम० उ० द्वि० उक्क०
अणु० अणंत० । एवं हेददो ऍकिस्से जह० उवरिमाए ऍकिस्से द्वि० उ० अणु०

समय अधिक स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। उससे उपरिम एक स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यक्रगितकी उत्हृष्ट स्थितिका जघन्य अनुमाग अनन्तगुणा है, इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। पुनः यहाँसे पल्यके असंख्यातवें माग प्रमाण पीछे हटकर जिस स्थितिमें उत्हृष्ट अनुमाग स्थित है, उससे एक समय अधिक स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय अधिक स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यक्रगितकी उत्हृष्ट स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यक्रगितकी उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार तिर्यक्रगितकी उत्हृष्ट स्थितिका उत्हृष्ट अनुमाग अनन्तगुणा है। इसी प्रकार तिर्यक्रगित्यानुपूर्वी और नीचगोत्रकी अपेक्षासे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ मूलमें किस स्थितिका जघन्य और किस स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग कितना है, इसका खुलासा किया ही है। तथा पहले हम मितज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके समय ही खुलासा कर आये हैं, अतः यहाँ विशेष नहीं लिख रहे हैं। इसी प्रकार आगे भी जान लेना चाहिए।

६६३. आगे औदारिकशरीरका तीव्रमन्द बतलाते हैं। यथा—औदारिकशरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियों तक उत्तरीत्तर एक-एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार यहाँ अन्तमें जो स्थिति प्राप्त हो, उसके जघन्य अनुभागसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थितहै, उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार अधस्तन एक स्थितिका जघन्य अनुभाग और उपरिम एक स्थितिका उत्कृष्ट

१. ता॰ प्रतौ इतस्था इति पाठः । २. आ॰ प्रतौ तिरिक्खाणु॰ एत्तो इति पाठः ।

एनेमे वा सिज्झमाणा गदा ताव याव ओरालि॰ जहण्णियाए द्वि॰ जहण्ण॰ अणु॰ अणंत॰। तदो जहण्णादो हिदीदो पलि॰ असं॰मेंनीओ द्विदी॰ अब्धुस्सरिद्ण यम्हि द्विदा उक्कस्सं तदो समऊ॰ दि॰ उ॰ अणु॰ अणंत॰। विसमऊ॰ द्वि॰ उक्क॰ अणु॰ अणंत॰। तिसमऊ॰ द्वि॰ उ॰ अणंत॰। एवं ताव णीदं याव ओरालि॰ जह-णिगायाए द्वि॰ उ॰ पदे उ॰ अणु॰ अणंत॰। एवं पंचसरीर-तिण्णंअंगो॰-पसत्थ॰४-अगु॰३-आदाउजो॰-णिमि॰-तित्थ॰ ओरा॰मंगो॰ ।

६६४. एत्तो पंचिं तिव्वमंदं वत्तइस्सामो । तं जहा-यथा वीसंसागरोवमकोडा-कोडीओ बंधमाणस्स उक्क द्विदी जहण्णपदे जह अणु थोवा । समऊ हि ज अणंत । बिसम ज ज अणंत । तिसम ज ज अणंत । प्वं णिव्वग्गणकंडय-में तीणं हि ज ज अणु अणंत सेडीए णेदच्या । तदो उक्किस्सियाए हि उठ पदे उक्क अणु [अणंत] । तदो णिव्वग्गणकंडयमें तीओ हिदीओ ओसिक्द्ण जम्हि हिदा जह तदो समऊ जह अणु अणंत । तदो उक्किस्सियादो हि समऊ हि उक्क अणु अणंत । तदो हेहादो एकिस्से हि ज अणंत । तदो उक्किस्सियाए हिदी ।

अनुभाग एक-एक स्थितिमें प्राप्त होता हुआ ओदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक गया है। फिर जघन्य स्थितिसे पल्यके असंख्यात भाग प्रमाण स्थितियाँ उपर जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार औदारिकशरीरकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार पाँच शरीर, तीन आङ्गोपाङ्क, प्रशस्त वर्णचतुष्क, अगुरुलघुत्रिक, आतप, उद्योत, निर्माण और तीर्थङ्कर प्रकृतिका तीत्रमन्द औदारिकशरीरके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ औदारिकशरीरका तील्ल-मन्द बतलाया है। यह प्रशस्त प्रकृति है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य पदकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक बतलाया है। आगे जिस क्रमसे जिस स्थितिमें जघन्य और उत्कृष्ट अनुभाग प्राप्त होता है, उसका स्पष्टी-करण मुलमें किया ही है।

६६४. आगे पञ्चीन्द्रयजातिके तील्रमन्दको बतलाते हैं। यथा—बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग सबसे स्तोक है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिक्तपसे ले जाना चाहिए। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियोंमेंसे अन्तिम स्थितिका जो जघन्य अनुभाग प्राप्त हुआ है, उससे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियों नीचे जाकर जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियों नीचे जाकर जिस स्थितिमें जघन्य अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे नीचेकी एक स्थितिका

१. ता० प्रतो तित्थ० ओरा० । एतो इति पाठः।

दुसमऊ० उ० अणु० अणंत०। तदो हेहदो एकिस्से ट्वि० ज० अणु० अणंत०। तदो उक्सिसयादो तिसमऊ० हि० उक० अणु० अणंत०। एवं हेट्टदो ऍकिस्से डि॰ ज० अणंत० ! उवरि ऍकिस्से हि० उ० अणंत० । एवं ओघसिजमाणं ताव गदा याव अद्वारससागरोत्रमकोडाकोडीओ समउत्तरा ति । अद्वारसण्णं सागरोत्रमकोडाकोडीणं उवरि समउत्तरा द्विदिं आदिं कादृण णिव्वम्गण०में तीणं हिदीणं उक्ससा अशुभागा ण भणिदा । उवरि सेसं सन्वं भणिदं । तदो अद्वारसण्णं साम० पडिपुण्णं ज० ज० अणु० अर्णत० । तदो समऊ० ज० अणु० तत्तिया चेत्र । त्रिसम० ज० तत्तिया चेत्र । तिसम० ज० तत्तिया चेत्र । एवं याव जहण्णियाए एइंदियणामाए द्विदिबंधो ताव तत्तिया चेव । तदो परियत्तमाणजहण्याणुभागवंधपाओंम्माणं जहण्यियाए द्विदी० जह० अणुभागेहिंतो तदो समऊ० द्विदीए ज० अणु० अणं० । विसम० ज० अणंत० । तिसम० ज० अणंत०। एवं असंखेँजाओ द्वि० णिव्वित्तेदृण णिव्वमाणकंडयस्स असंखेंजिदिभागो तत्तियमेंत्तीणं हिंदीणं ज० अणंत० सेडीए णेदव्या । तदो अद्वारसण्णं सागरो० उवरि यासि हिदीणं उकस्सिया अणुभागा ण भणिदा तासि सन्बु-कस्सियाए द्विदीए उ० अणु० अणंत० । समऊ० उक्क० अणु० अणंत० । विसमऊ० उक्कः अणु० अणंतः । तिसमऊ० उक्कः अणु० अणंतः । एवं याव अद्वारसकोडा-कोडीणं समउत्तरादो त्ति ताव उक्त० अणु० अणंत० सेडीए णेदव्वं । तदो अद्वारस-

जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे उत्कृष्ट स्थितिसे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे नीचेकी एक स्थितिका जधन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे उत्कृष्ट स्थितिसे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस प्रकार नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है और उपरकी एक स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार ओघके अनुसार सिद्ध होता हुआ एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक अनुभाग गया है। यहाँ एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंसे लेकर ऋपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं कहा है; ऊपरका होष सब अनुभाग कहा है। आगे पूर अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण अन्तिम स्थितिके जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। उससे दो समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। उससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग उतना ही है। इस प्रकार एकेन्द्रियजाति नामकर्मके जघन्य स्थितिबन्धके समान स्थितिबंधके प्राप्त होने तक जबन्य अनुमाग उतना ही है। आगे परिवर्तमान जघन्य अनुमागबन्ध योग्य प्रकृतियोंके जधन्य स्थितिबन्धके जघन्य अनुभागसे एक समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम स्थितिका अधन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इससे तीन समय कम स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तराुणा है। इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात स्थितियोंका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे ले जाना चाहिए। उससे अठारह कोड़ाकोड़ी सागरके ऊपर जिन स्थितियोंका **उत्कृष्ट** अनुभाग नहीं कहा गया है, उनमेंसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका स्कृष्ट अनुभाग अनन्तर्गुणा है। इस प्रकार एक समय अधिक अठारह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण कोडाकोडीणं समउत्तराए हि॰ उकस्सएहि अणुभागेहिंतो परियत्तमाणजहण्णाणुभागबंधपाओंम्गाणं द्विदीणं हेट्टादो याओ द्विदीओ जहण्णाणुभागो भणिदछोगाओ
तासिं या जहण्णिया द्विदी तिस्से हेिहमाणंतराए ज॰ अणु॰ अणंत॰। तदो अट्टारससाग॰कोडाकोडी॰ उ॰ अणु॰ अणंत॰। तदो पुण णिव्वम्गण॰मेंत्तीणं उ॰ अणु॰
अणंतगु॰ सेडीए णिरंतरं णेदव्यं। तदो पुण हेट्टदो ऍकिस्से द्वि॰ ज॰ अणंत॰।
उविर णिव्यमा॰मेंत्तीणं हि॰ उ॰ अणु॰ अणंत॰। एदेण कमेण हेट्टादो ऍकिस्से द्वि॰
ज॰ अणुभा॰ उविरमाणं णिव्यमाण॰मेंत्तीणं उक्त॰ अणुभा॰ अणंतगु॰। एवं ताव याव
परियत्तमाणजहण्णाणुभागपाओंमा।॰ जहण्णियाए द्वि॰ उक्त॰ पदे उ॰ अणु॰ अणंत॰।
ताधे तिस्से द्विदीए हेट्टादो याओ दिदीओ तासिं णिव्यमा॰मेंत्तीणं जहण्णाणुभागा
भणिदा होति। उकस्सगे अणुभागेहिंतो एइंदियणामाए जहण्णादो दिदिवंघादो णिव्यगाणकंडयमेंत्तीओ ओसिकद्ण या दिदी तिस्से द्विदीए ज॰ पदे ज॰ अणु॰ अणंत॰।
तदो एइंदियणामाए जहण्णगादो द्विदिवंघादो समऊणाए द्विदीए उ॰ अणु॰ अणंत॰।
तेण परं हेट्टिमाए द्वि॰ जहण्णाणुभा॰ उवरिमा॰ द्वि॰ उ॰ अणु॰ एगेगं
ओधसिज्झमाणएइंदियणामाए जहण्णगादो द्विदीदो आढता ताव णीदं याव पंचिदियणामा॰ जहण्णियाए द्वि॰ पदे जह॰ अणु॰ अणंत॰। तदो णिव्यम्ग॰कंडयमेंत्तीओ दि॰

स्थितियोंमें अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणित श्रीणिरूपसे **छे** जाना जाहिए। फिर एक समय अधिक अठारह कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितियोंमेंसे अन्तिम स्थितिके उत्कृष्ट अनुभागसे परिवर्तमान जधन्य अनुभागबन्धके स्थितियोंके नीचे जिन स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा है उनमें जो जघन्य स्थिति है, उससे नीचेकी अनन्तर स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे अठारह कोडाकोडी सागरप्रमाण अन्तिम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्त्रगुणा है। किर उससे निर्वर्गणा काण्डक-प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे छे जाना चाहिए। उससे पुनः नीचेकी एक स्थितिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे ऊपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है। इस क्रमसे नीचेकी एक स्थितिका और उपरकी निर्वर्गणाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका उत्क्रष्ट अनुभाग अनन्तराणा है । इस प्रकार परिवर्तमान जघन्य अनुभागवंधप्रायोग्य जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट पदमें उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है-इस स्थानके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। फिर इस स्थितिसे नीचे जो स्थितियाँ हैं, उनमेंसे निर्वर्गणा-काण्डकप्रमाण स्थितियोंका जघन्य अनुभाग कहा गया है। पुनः जिसका अन्तमें उत्कृष्ट अनु-भाग कहा है, उससे एकेन्द्रियजाति नामकर्मके जघन्य स्थितिवन्धसे निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण स्थितियाँ हटकर जो स्थिति है, उस स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे एकेन्द्रिय जातिनामकर्मके जघन्य स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तराणा है। उससे आगे नीचेकी स्थितिका अधन्य अनुभाग और उपरकी स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग इस प्रकार एक-एक स्थितिका ओवके अनुसार सिद्ध होता हुआ एकेन्द्रियजाति नामकर्मकी जधन्य स्थितिबंधसे लेकर पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिका जघन्य पदमें जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है-इस स्थान के प्राप्त होने तक छे जाना चाहिए । फिर निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण

१. ता० प्रतौ होति द्रिद्रिए तदा एइंदियणामाए जहण्णगादो द्रिट्वंबादो उक्तस्सने, आ० प्रतौ होति हिदोए एइंदियणामाए जहण्णगादो दिठदिवंबादो उक्कसने इति पाठ: ।

अब्धस्सिरिद्ण जिम्ह द्विदा उ० तदो समऊणाए द्वि० उ० अणु० अणंत० । विसम० उ० अणु० अणंत० । तिसम० उ० अणु० अणंत० । एवं याव पंचिंदियणामाए जहिण्याए द्विदीए उ० अणु० अणंतगुणो ति । यथा पंचिं० णामाए तथा बादर-पज्जन-पन्ते०-तस० तिब्बमंददा कादच्वा । एवं तिब्बमंददा ति समत्तमिणयोगदारं ।

एवं अञ्झवसाणसम्रदाहारो समत्तो जीवसमुदाहारो

६६५. जीवसमुदाहारे ति तत्थ इमाणि अट्ट अणियोगदाराणि—एगट्टाणजीव पमाणाणुगमो णिरंतरट्टाणजीवपमाणाणुगमो सांतरट्टाणजीवपमाणाणुगमो णाणाजीव-कालपमाणाणुगमो बङ्कियरूवणा यवमञ्ज्ञपरूवणा फोसणपरूवणा अप्पावहुगे ति ।

६६६. एयट्टाणजीवपमाणाणुगमेण ऍकेंक्सिन्ह द्वाणिन्ह जीवा केंत्रिया ? अणंता । णिरंतरट्टाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि अविरहिदाणि द्वाणाणि । सांतरट्टाणजीवपमाणाणुगमेण जीवेहि णिरंतरट्टाणाणि । णाणाजीवकालपमाणाणुगमेण ऍक्सेंक्सिन्ह द्वाणिन्हि णाणा जीवा केविचरं कालादो होति ? सव्वद्धा ।

६६७. बहुपरूवणदाए तत्य इमाणि दुवे अणुयोगद्दाराणि—अणंतरोवणिधा परंपरो-वणिधा चेदि । अणंतरोवणिधाए जहण्णए अञ्झवसाणद्वाणे जीवा थोवा । विदिए अञ्झव-साणद्वाणे जीवा विसेसाधिया । तदिए अञ्झवसाणद्वाणे जीवा विसेसाधिया । एवं स्थितियाँ ऊपर जाकर जिस स्थितिमें उत्कृष्ट अनुभाग स्थित है, उससे एक समय कम स्थिति का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे दो समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे तीन समय कम स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्मकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा है । इस प्रकार पञ्चेन्द्रिय जानना चाहिए । यहाँ जिस प्रकार पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मका कथन किया है, उसी प्रकार बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और त्रस नामकर्मकी तील्ल-मन्दताका कथन करना चाहिए ।

इस प्रकार तीव्रमन्दता नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार अध्यवसानसमुदाहार नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ । जीवसमुदाहार

६६५. जीवसमुदाहारका प्रकरण है। उसमें ये आठ अनुयोगद्वार होते हैं —एकस्थान-जीवप्रमाणानुगम, निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, सान्तरस्थानजीवप्रमाणानुगम, नानाजीवकाल-प्रमाणानुगम, वृद्धिप्ररूपणा, यवमध्यप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा और अल्पबहृत्य।

६६६. एकस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा एक - एक स्थानमें जीव कितने हैं शिवनत हैं। निरन्तरस्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंके विरहसे रहित सब स्थान हैं। सान्तर-स्थानजीवप्रमाणानुगमकी अपेक्षा जीवोंके अन्तरसे रहित सब स्थान हैं। नानाजीवकालप्रमाणानुगमकी अपेक्षा एक-एक स्थानमें नाना जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है।

६६७. वृद्धिप्ररूपणाकी अपेक्षा उसमें ये दो अनुयोगद्वार होते हैं—अनन्तरोपनिधा और परम्परोपनिधा। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जधन्य अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। द्वितीय अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। तृतीय अध्यवसानस्थानमें जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार यवसभ्यके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थानमें जीव विशेष अधिक, विशेष

विसेसाधिया विसेसाधिया याव यवमज्झ ति । तेण परं विसेसहीणा विसेसहीणा याव उक्कस्सिए अज्झवसाणहाणे ति ।

- ६६८. परंपरोवणिधाए जहण्णए अज्झवसाणद्वाणे जीवेहिंतो तदो असंखेँजा लोगा गंतूण दुगुणविद्धदा । एवं दुगुणविद्धदा दुगुणविद्धदा याव यवमज्झं । तेण परं असंखेँजा लोगं गंतूण दुगुणहीणा । एवं दुगुणहीणा दुगुणहीणा याव उक्कस्सअज्झव-साणद्वाणं ति ।
- ६६९. एयजीवअज्झवसाणदुगुणवड्डि-हाणिद्वाणंतरं असंखेंजा लोगा । णाणाजीव-अज्झवसाणदुगुणवड्डि-हाणिद्वाणंतराणि आवलि० असंखें० । णाणाजीवेहि दुगुणवड्डि-हाणि० थोवाणि । एयजीवअज्झवसाणदुगुणवड्डि-हाणिद्वाणंतराणि असंखेंजगुणाणि ।

६७०. यवमज्झपरूवणदाए हाणाणं असंखेंजदिभागे यवमज्झं । यवमज्झस्स हेट्टादो हाणाणि थोवाणि । उवरिं हाणाणि असंखेंजगुणाणि ।

६७१. फोसणपरूवणदाए तीदे काले एयजीवेण उकस्सए अज्झवसाणद्वाणे फोसण-कालो थोवो । जहण्णए अज्झवसाणद्वाणे फोसणकालो असंखें जगुणं । कंड यस्स फोसण-कालो तित्तयो चेव । यवमज्झे फोसणकालो असंखें जगुणं । कंड यस्स उविंद फोसण-कालो असंखें जगुणं । यवमज्झस्स उविंद कंड यस्स हेटदो फोसणकालो असंखें जगुणं । कंड यस्स उविंद यवमज्झस्स हेटदो फोसणकालो तित्तयो चेव । यवमज्झस्सुविंद फोसण-कालो विसेसाधिओ । कंड यस्स हेट्टदो फोसणकालो विसेसाधियो । कंड यस्सुविंद फोसणकालो विसेसाधियो । सन्वेसु वि द्वाणेसु फोसणकालो विसेसाधिओ ।

अधिक हैं। इससे आगे उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक जीव विशेष हीन, विशेष हीन हैं। ६६८, परम्परोपनिधाकी अपेक्षा जयन्य अध्यवसानस्थानमें जो जीव हैं, उससे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाने पर वे दूने होते हैं। इस प्रकार यवमध्यके प्राप्त होने तक दूने-दूने जीव होते हैं। उससे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर वे द्विगुणहीन होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानके प्राप्त होने तक वे द्विगुणहीन द्विगुणहीन होते हैं।

६६९. एकजीवअध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर असंख्यात लोकप्रमाण हैं। नाना-जीवअध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर आवित्तके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। नानाजीव-अध्यवसानस्थानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर स्तोक हैं। इनसे एकजीवअध्यवसानद्विगुणवृद्धि-हानिस्थानान्तर प्रत्येक असंख्यातगुणे हैं।

६७०, यवमध्यप्ररूपणाकी अपेक्षा स्थानोंके असंख्यातवें भाग जाकर यवमध्य होता है।

यवमध्यके अधस्तन स्थान स्तीक हैं और उपरिम स्थान असंख्यातगुणे हैं।

६७१. स्पर्शनप्ररूपणाकी अपेक्षा अतीत कालमें एक जीवका उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल स्तोक है। इससे जघन्य अध्यवसानस्थानमें स्पर्शनकाल असंस्थातगुणा है। काण्डक का स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यमें स्पर्शनकाल असंस्थातगुणा है। इससे काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल असंस्थातगुणा है। इससे यवमध्यके उत्पर और काण्डकसे नीचे स्पर्शनकाल असंस्थातगुणा है। इससे काण्डकके उत्पर और यवमध्यसे नीचे स्पर्शनकाल उतना ही है। इससे यवमध्यके उत्पर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके नीचे स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे काण्डकके उत्पर स्पर्शनकाल विशेष अधिक है। इससे साथ स्थानोंमें स्पर्शन काल विशेष अधिक है। इससे साथ स्थानोंमें स्पर्शन काल विशेष अधिक है।

६७२. अप्पाबहुगे ति उक्तस्सए अज्झवसाणङ्वाणे जीवा थोवा । जहण्णए अज्झव-साणङ्वाणे जीवा असंखें जगुणा । कंडयजीवा तित्तया चेव । यवमज्झे जीवा असंखें ज-गुणा । कंडयस्सुविर जीवा असंखें जगुणा । यवमज्झस्सुविर कंडयस्स हेट्टदो जीवा असंखें जगुणा । कंडयस्सुविर यवमज्झस्स हेटदो जीवा तित्तया चेव । यवमज्झस्सुविर जीवा विसेसा० । कंडयस्स हेटदो जीवा विसे० । कंडयस्सुविर जीवा विसे० । सब्वेसु हाणेसु जीवा विसेसाधिया । एवं जीवसमुदाहारे ति समत्तमणियोगहाराणि ।

एवं उत्तरपगदिअणुभागवंधो समत्तो एवं अणुभागवंधो समत्तो

६७२. अल्पबहुत्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट अध्यवसानस्थानमें जीव सबसे स्तोक हैं। इनसे जघन्य अध्यवसानस्थानमें जीव असंख्यातगुणे हैं। काण्डकके जीव उतने ही हैं। इनसे यव-मध्यमें जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके उपर जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे यवमध्यके उपर और काण्डकसे नीचे जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे काण्डकके उपर और यवमध्यके नीचे जीव उतने ही हैं। इनसे यवमध्यके उपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकसे नीचे जीव विशेष अधिक हैं। इनसे काण्डकके उपर जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सब स्थानोंमें जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार जीवसमुदाहार नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ । इस प्रकार उत्तरप्रकृतिअनुभागबन्ध समाप्त हुआ । इस प्रकार अनुभागबन्ध समाप्त हुआ ।

पारतीय हानपीठ स्वापना : सन 1944

च्हे प्रव

ज्ञान की विजुन्त, अनुप्तन्थ और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मीतिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. लाहु शान्तिप्रसाय जैन स्व. शीनती रना जैन

> अध्यक्ष धीनती इन्दु जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी ग्रेड, नयी दिल्ली-110 003